मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र

(प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९५०)

मुद्रक तथा प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
तथा
विद्यापीठ मुद्रणालय
बनारस छावनी

सूची

प्रकाशकका वक्तव्य

गाधीजी ग्रथमालाका यह ग्यारहवा प्रकाशन ग्रन्थमालाके ग्यारहवे खडका तृतीय भाग है। साम्प्रदायिक समस्यापर पूज्य बापूकी लेखनीसे जो अमूल्य विचारधारा मानव-जगत्को प्राप्त हुई है उसका यह तृतीय सग्रह है, इस भागमें पूज्य बापूके साम्प्रदायिक समस्या सबधी लेख समाप्त हो गये। इस भागके सकलन तथा सपादनमें श्री बागेश्वरी प्रसाद तथा श्री विद्यारण्य मांशस बड़ी सहायता मिली है। हम इनके आभारी हैं।

काशीके प्रसिद्ध काग्रेस कार्यकर्ता तथा गाधी भक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल शास्त्री तथा कारमाइकल पुस्तकालयके सग्रहोंसे हमे बड़ी सहायता मिली है। हम इनके भी आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई, व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन ट्रस्ट', अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

गाधीजी ग्रन्थमालामे अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धाजलियाँ दो भाग, कवियोंकी श्रद्धाजलिया, अहिंसा सम्बन्धी लेखोंके चार भाग, साम्प्रदायिक समस्या दो भाग, हरिजनोद्धार एक भाग, कुल दस अक प्रकाशित हो चुके हैं। जिस खंडकी सामग्री तैयार हो जाती है उसे हम प्रकाशित कर देते हैं। इससे विज्ञापित क्रममे व्यतिक्रम तो अवश्य पड़ता है, किन्तु खडोंकी क्रम-सख्या वही रखी जाती है जो पहले निश्चय हो चुकी है। क्रमशः सब खड प्रकाशित किये जायेंगे, इस अकके बाद हरिजनोद्धार दूसरा भाग प्रेसमें है।

हमे हर्ष है कि ग्रथमालामें प्रकाशित अबतकके सब भागोंका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया हैं। उनके द्वितीय सशोधित सस्करणका प्रबन्ध किया जा रहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमे जो बल, उत्साह तथा सहायता प्राप्त हो रहा है, उससे पूर्ण विश्वास है कि गाधी साहित्यके प्रचार तथा प्रसारके शुभ अनुष्ठानमे हम सफल होंगे।

वाले हिन्दुओंके प्रति जो अविश्वास है उसे दूर करनेमें अली भाई कभी समर्थ न थे, और आज भी नहीं हैं ?

इसके विपरीत और हो ही क्या सकता है ? अली भाइयोंकी सेवा इतनी अधिक है कि मुसलमानोंमें उनका अनुयायी वर्ग हमेशा रहेगा ही, अतएव निर्विवाद है कि उनके आनेसे यह लड़ाई और भी बलवती होगी।

नेताओंका वजन चाहे जितना क्यों न पड़ता हो, तो भी गहरे जमे हुए अविश्वासको वे दूर नहीं कर सकते।

स०—४ क्या आप यह मानते हैं कि हिन्दू—खासकर गुजरातके हिन्दू अहिंसात्मक युद्धके लिए जितने तालीमयाफ्ता हैं उतनी ही तालीम मुसलमानों को—खास कर उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और मलाबारके मुसलमानोंको भी मिली है ? और इन प्रान्तोंमें पहले जो घटनाएँ घट चुकी हैं, उनको मद्दे नजर रखते हुए जब तक प्रान्तोंका पूरा-पूरा संगठन न हो जाय तब तक उन्हें तुरन्त ही लड़ाईमें शामिल होनेसे रोकना चाहिए अन्यथा व्यर्थ ही मुसलमानोंकी जान जायेगी।

ज०—जो प्रान्त कठोरतापूर्वक अहिंसाका पालन करनेको तैयार नहीं हैं, उन्हें इस लड़ाईमें शामिल न होनेके लिए मैं बार-बार चेतावनी दे सका हूँ। उनका सहानुभूति प्रकट करना ही काफी है।

हिन्दी-नवजीवन
८ मई, १९३०



गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्यु हम सबकी स्पर्धाके योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेण्ट है, जो अन्ततोगत्वा दोनों कौमोंको जोड़ेगा। कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलोंको नहीं जोड़ेगा। पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थीने बतायी है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाणसे पाषाण हृदयोंको पिघलावेगी, और पिघलाकर एक करेगी। पर यह जहर किसी तरह क्यों न हो, इतना गहरा फैल गया है कि गणेशशंकर विद्यार्थीके समान महान, आत्मत्यागी, और नितान्त वीर पुरुषका रक्त भी, आज तो हमसे इसे धो बहानेके लिए शायद काफी न हो। अगर भविष्यमें ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदानसे हम वैसा ही प्रयत्न करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें। मैं उनकी दु:खिनी विधवा और उनके बच्चोंके साथ अपनी आन्तरिक समवेदना प्रकट नहीं करता, पर गणेशशंकर विद्यार्थीकी योग्य पत्नी और सन्तानके नाते

उन्हें बधाई देता हूँ। वह मरे नहीं हैं। आज वह तबसे कहीं अधिक सच्चे रूपमे जी रहे है, जब हम उन्हें भौतिक शरीरमें जीवित देखते थे और पहचानते न थे।

हिन्दी–नवजीवन
९ अप्रैल, १९३१



सच क्या है ?

कारवारके श्री नाडकरणीके एक पत्रका कुछ अंश नीचे देता हूँ:

"अभी अभी मैंने पढा है कि आपको लिखे गये एक पत्रमे, जो अखबारोंमे छप चुका है, सर्वदल मुस्लिम सम्मेलनके एक नेता श्री मुशीर हुसेन किडवाईने ईजिप्टकी अल्पमतवाली कोमके सवालके बारेमें लिखते हुए कहा है कि, "मेरी रायमे ईजिप्टमे जगलूलने जो रुख अख्तियार किया था, वही यहाँके हिन्दुओंका होना चाहिए, यानी उन्हे आँख बन्द करके अल्पमतवाली कौमकी माँगोपर दस्तखत कर देना चाहिए ।"

श्री किडवाईके उक्त पत्रकी अन्य किसी बातका जिक्र किये बिना सिर्फ उसी बातकी सचाईकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, जिसमे ईजिप्टकी राजनीतिका एक दृष्टान्त उन्होने दिया है। ता० १५ अगस्त १९२९ के 'सर्वेण्ट ऑव इण्डिया' के अग्रलेखकी कतरन साथमे भेजता हूँ। उसमे लेखकने उन्हीं दिनो सर इब्राहीम रहिमतुल्लाकी एक ऐसी ही बातके जवाबमे जो लिखा है, उससे पता चलेगा कि ईजिप्ट (जहाँ मुसलमानोकी कौम बड़ी है, और कॉप्ट नामक देशी ईसाइयोकी छोटी) की स्थितिके बारेमे श्री किडवाई जिसे सच्ची बातके रूपमे आपके सामने रख रहे हैं, वस्तुस्थिति उसके बिल्कुल विपरीत है।

मुझे विश्वास है कि इस उद्धरणकी एक-एक बातकी सत्यता वर्तमान इतिहासके किसी भी प्रामाणिक सन्दर्भ-ग्रन्थको देखनेसे सिद्ध हो सकती है।"

श्री नाडकरणी द्वारा भेजे गये उद्धरणके आवश्यक अंश नीचे देता हूँ।

"सचमुच ही सर इब्राहिमने इतिहास ठीक तरह नहीं पढा। उदाहरणके लिए, ईजिप्ट के बारेमे उन्होंने जो कहा है उसीको लीजिए। बडी कोमको छोटी कौमके साथ उदारता-पूर्वक पेश आना चाहिए, इसकी हिमायत करते हुए उन्होंने ईजिप्टके ईसाइयोके साथ जगलूल पाशाके व्यवहारका उदाहरण दिया है। मालूम होता है, सर इब्राहिम यह मानते हैं कि अपने हित और हकूकके बारेमे जगलूलकी सूक्ष्म भावनाओंको देखकर ही कॉप्ट लोग मुसलमानोका शासन स्वीकार करने को तैयार हो गये थे। परन्तु हकीकत तो ठीक इसके उलटी है। कॉप्ट लोगोने अपने भाग्यको ईजिप्टके राष्ट्रवादियोंके साथ पूरी तरह मिला दिया,

जिसकी वजहसे मुसलमान उनके साथ उदारताका व्यवहार करनेको प्रेरित हुए। उससे पहले कॉप्ट लोग जुल्मसे पूरी तरह मुक्त न थे। उनकी हालतके सुधर जानेका एकमात्र कारण यह था कि वे न केवल देशकी आजादीके जगमें उसके विरोधी या उसके प्रति लापरवाह न रहे, बल्कि उन्होंने बादमें बहुत ही आगे बढ़कर काम भी किया। कॉप्ट लोगोंका यह काम बहुत बुद्धिमानीपूर्ण था, और यही वजह है कि वहाँके प्रधान-मण्डलमें कॉप्ट लोग रक्खे गये हैं।"

यह उद्धरण जैसा मिला है, यहाँ दिया है। इस उद्धरणमें कही गयी बातकी अथवा जिस कथनका यह जवाब है, उसकी सचाईके बारेमें मैंने कोई छानबीन नहीं की है। साथ ही, मुझे एक सत्यकी सेवाके सिवा इसमें किसी प्रकारकी दिलचस्पी भी नहीं है।

सत्याग्रहीकी हैसियतसे सम्पूर्ण आत्मसमर्पणकी परम शक्तिमें मुझे श्रद्धा है। संख्याकी दृष्टिसे हिन्दू कौम बडी है। इसलिए ईजिप्टकी बड़ी कौमके कायका विचार किये बिना, वह छोटी कौमे जो माँगें, उन्हें दे दे। लेकिन यदि हिन्दू छोटी कौम होते तो भी, एक सत्याग्रहीके और हिन्दूके नाते मैं यही कहता कि आखिर सम्पूर्ण आत्मसमर्पणसे हिन्दुओंका कोई नुकसान न होगा।

इस दलीलके जवाबमे बिना विचारे कहा जाता है कि, 'तो फिर आप भारतवर्षको अंग्रेजोकी शरणमें रहनेकी सलाह क्यो नहीं देते? वे जो हकूमत चाहते हैं, वह उन्हें दे दो और आनन्द करो।' इस उतावले जवाबमें एक महत्वकी बात लोग भूल जाते है और वह यह है कि मैंने बन्दूकके वश होनेकी कभी सलाह नहीं दी है। सत्याग्रहीके शास्त्रमे पशुबलकी शरणमे जानेकी कोई गुंजाइश ही नहीं है। अथवा उस समय शरणमे जाना बन्दूक चलाने वालेकी इच्छापर नहीं बल्कि उसकी दु:ख देनेकी शक्तिपर निर्भर होगा। सत्याग्रहीका आत्मसमर्पण उसकी कमजोरीका नहीं, वरन् उसकी शक्तिका परिणाम होना चाहिए। मैंने इज्जतके त्यागका नहीं, बल्कि पार्थिव वस्तुओंके त्यागकी सलाह दी है। धनोपार्जनकी जगहो और ओहदोंका त्याग करनेमे थोड़ी भी अप्रतिष्ठा नहीं है। यदि अंग्रेज बन्दूकका त्याग करके हमारे साथ मात्र मित्र बनकर रहें, तो मैं उनकी भी हिमायत करूगा। आत्मसमर्पण और कष्टसहनका नियम सर्वव्यापी है, और उसमें अपवादकी थोड़ी भी गुंजाइश नहीं।

हिन्दी-नवजीवन
७ मई, १९३१

एकताकी बुनियाद ही नहीं है

'खून क्यों नहीं खौल उठता ?' इस प्रश्नके पूछने वालेका दूसरा प्रश्न यह है:

हिन्दू-मुस्लिम एकताकी बुनियादही खोखली है, इस बातपर गाधीजी जोर क्यों नहीं देते, और इसके इलाजका इशारा क्यों नहीं करते ? मसलन, मुसलमानोंके रहनेके मुहल्ले जुदे, बचपनके खेल जुदे, पढ़नेके मदरसे—मकतब—जुदे, व्यायामशालाएँ जुदी, मुकाबलो (मैच) के दल भी आपसके ही। इतना होनेपर तो यही कहा जायगा कि तमाम सामानमें ही एकताके कार्यका श्रीगणेश किया जा सकता है। गाधीजी इस पर कब जोर देंगे ?

इस प्रश्नके मूलमे अधूरी विचार-श्रेणी है। जो भेद बताये गये है, अन्य कारणोसे वे अमेरिका, इंगलैण्ड वगैरा देशोमे भी हैं; फिर भी वहाँ राजनैतिक एकता है। और उक्त भेदोमे से भी कई तो सिर्फ शहरोमे ही होते हैं। गाँवोंमे वैसे भेद हैं ही नहीं। जरूरत मदरसो, अखाड़ो या खेलोंकी एकताकी नहीं है, एकता हृदयकी अपेक्षित है। वह प्राप्त न हो तो दूसरी एकता निरर्थक है, वह प्राप्त हो जाय, तो दूसरी अनावश्यक है।

हिन्दी-नवजीवन
७ मई, १९३१



कौमी झगड़ेका निपटारा

कार्यसमितिने जो योजना तैयार की है, और जिसे स्वीकार कर लेनेकी सलाह सारे देशको दी है, वह योजना पहलेतो डॉक्टर अंसारीके सतत परिश्रमका फल है और फिर उस उपसमितिके परिश्रमका, जिसके सदस्य पण्डित मालवीयजी, डॉक्टर अंसारी और सर्दार शार्दूल सिंह हैं।

मैने डॉक्टर अंसारीको इससे पहले कभी किसो काममें इतना एक रूप और तल्लीन नही देखा, जितना वह कौमी सवालके बारेमे इधर रहे हैं। उन्हें अपने पेशे से प्रेम है और उसके लिए जीनेमे वह सन्तुष्ट हैं। राजनैतिक क्षेत्रमे या महासभाके सभापतिके रूपमे वह लोगोंके सामने इसलिए आये हैं कि दोस्त उन्हें उस जगह घसीट लाये है। वह इतने उदारचित और देशभक्त हैं कि मित्रोंके आग्रहको टाल नहीं सकते। लेकिन आज तो कौमी सवालके निपटारेको उन्होने अपनी सबसे प्रिय वस्तु बना लिया है। उनके ये प्रयत्न सफल हो। उत्तमसे उत्तम गुण भी जब तक मनुष्यमे उतर नहीं आते, उनका कोई उपयोग नहीं हो सकता।

अगर कौमी सवालके निपटारेकी जरूरत कबूल की जाय, तो जहाँ तक सचाई का सम्बन्ध है, मुझे यह योजना पुख्त दिखायी पड़ती है। अगर हम विशुद्ध राष्ट्रवादी हैं, तो किसी योजनाकी आवश्यकता नहीं रहती। धर्मकी दृष्टिसे हम भले भिन्न-भिन्न हो, राष्ट्रके रूपमे हमे एक और अविभाज्य होना चाहिए। हम व्यवस्थापकोंका चुनाव और नौकरोंकी नियुक्ति उनकी योग्यताके आधारपर करेंगे, कौम या मजहबके खयालसे नहीं। इस आदर्शकी कसौटीपर हमारी यह योजना पूरी नहीं उतरती—यह हमारे पतनकी सूचक है। लेकिन हम पतित हैं ही। हम एक दूसरेका अविश्वास करते हैं, एक दूसरेसे डरते है, और तो भी स्वराज्य चाहते हैं, क्योंकि वह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी विचारसे महासभाने समझौतेकी एक शकल निकाली है। कार्यसमितिकी बैठकमे मौलाना शौकतअलीने गुस्सा होकर कहा था—"आप बार-बार मुझसे क्यो पूछते है कि मै क्या चाहता हूँ ? मैं जो चहता हूँ आपको बता चुका हूँ। आप मुझे यह क्यो नहीं बताते कि आप क्या देंगे ?" बात चुभ गयी। विशुद्ध राष्ट्रीयता वला महासभाका सूत्र निरर्थक ठहरा। मौलानाका यह दावा कि वह सारी मुस्लिम कौमके नुमाइन्दा हैं, मंजूर नहीं किया गया। इसलिए वह यह जाननेके हकदार थे कि महासभा क्या दे सकती है। महासभा ऐसी कोई चीज नहीं दे सकती थी, जिसे देनेके लिए राष्ट्रवादी सिक्ख, मुसलमान या हिन्दू तैयार और सम्मत न हो।

कार्यसमितिकी यह इच्छा नहीं हो सकती कि वह जबर्दस्ती कोई बात किसीके गले उतारे। लेकिन उक्त तीन कौमोंके राष्ट्रवादियोके लिए कुछ ऐसा मसाला तैयार हो चुका है, जिसके अनुसार, और जिसपर वे मेहनत कर सकते हैं। वे अपनी-अपनी कौममे शान्तिपूर्वक लोकमत तैयार करे।

मैं हिन्दुओसे आरम्भ करता हूँ। हम अतिशय बहुसंख्यक है। अगर हम शारीरिक दृष्टिसे अपनेको बौना और मुसलमानो तथा सिक्खोको राक्षस समझते हैं, तो धारासभाओकी मददसे हम कभी उन्नति नहीं कर सकेंगे। भयका त्याग करके हम उन्नत बन सकेंगे, अपने अवयवोको खींचतान कर नहीं। शारीरिक शक्तिका हिम्मतके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि हिम्मत तो हृदयकी वस्तु है। बडेसे बड़ा पहलवान भी एक काल्पनिक डरके सामने कांपता हुआ पाया गया है। वह हृदयकी ताकत है, जिसे देखकर शरीरकी ताकत थर्रा उठती है। आइये हम हिम्मत करे, और मुसलमानो तथा सिक्खोंकी माँगोपर अपनी सही कर दे। अहिसा या प्रेमकी तराजूका तो यही इन्साफ है। अगर इस योजनासे हम हिन्दुओकी आँखे खुल जॉय तो कोई बुराई न होगी, यदि अराष्ट्रीय मुसलमान और सिक्ख इसे ठुकरा भी दे।

यदि हम इस योजनाको बिला ननुनचके मंजूर करते हैं, तो हमे किसी भी दूसरी योजनाको, जो तमाम सिक्खो और तमाम मुसलमानोको मंजूर हो, मंजूर करनेके

लिए तैयार रहना चाहिए। लेकिन मै नहीं चाहता कि पहले ही से किसी दूसरी योजनाकी बात कहकर हम इस योजनासे डर जायँ। व्यक्तिगत रूपसे मैं इस मामलेमें अपनी राय ठहरा चुका हूँ, और कई बार उसे व्यक्त भी कर चुका हूँ। परन्तु मै हिन्दुओंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि वे इस योजनाको स्वीकार कर ले, क्योंकि इसे पंडित मदनमोहन मालवीयजी और श्रीयुत माधवराव अणेके आशीर्वाद प्राप्त हैं, कार्य-समितिके दूसरे हिन्दू सदस्योंकी बात न करूँगा।

हिन्दी-नवजीवन
१६ जुलाई, १६३१



अल्पसंख्यक जातियोंकी रक्षा

मेरा खयाल है कि सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान संयुक्त और पृथक निर्वाचक मण्डलके वास्तविक अन्तरको नही समझते। इन प्रश्नोकी चर्चा सुननेके लिए एकत्रित दस मुसलमानोमेसे, शायद नौ मुसलमान, यह समझते हो कि रक्षित स्थानोके साथ संयुक्त निर्वाचक मण्डलका क्या अर्थ है और हिस्सोमे आये हुए स्थानोके साथ पृथक निर्वाचक मण्डलका क्या मतलब है? उनसे पूछिए तो अधि-कांशमे वे यही कारण बतावेगे कि संयुक्त निर्वाचनमें मुसलमान रह जायेगे और अकेले हिन्दू ही चुने जायंगे, जब कि पृथक निर्वाचनमे कुछ मुसलमान तो निर्विवाद चुने ही जायंगे। सर्वसाधारण जनतामेसे अधिकांश यह नहीं जानते कि दोनो ही दशामें मुसलमानोका चुना जाना तो निश्चित है ही, अन्तर केवल इतना ही है कि एक स्थितिमे अकेले मुसलमान मुसलमान प्रतिनिधियोको और अकेले हिन्दू हिदू प्रतिनिधियोको चुनेंगे। जब कि दूसरी स्थितिमे हिन्दू और मुसलमान दोनो इकट्ठे मिलकर एक निश्चित संख्यामे हिन्दू और मुसलमान दोनो प्रतिनिधियोको चुनेंगे। सभामे आये हुए किसी भी जनसमूहसे पूछा जाय कि मुसलमान प्रतिनिधिको सब लोग—हिन्दू और मुसलमान दोनो मिलकर चुनें और वह हिन्दू और मुसल-मान सबका प्रतिनिधि हो और उसके पीछे सबकी शक्ति हो यह आपको पसन्द होगा अथवा मुसलमान प्रतिनिधिको केवल थोड़ेसे मुसलमान चुने, वह अपने लोगोका ही प्रतिनिधि समझा जाय और हिन्दू प्रतिनिधि उसे पराया या गैर समझे यह पसन्द होगा? यदि उनसे यह प्रश्न साफ तौरपर पूछा जाय तो मेरा निश्चय है कि वे निश्चित रूपसे पहली बातको ही पसन्द करेंगे, क्योंकि अपनी जातिके अच्छे व्यक्ति कौंसिलोंमे हो यह चाहनेपर भी, वे साथ ही यह अधिक पसन्द करेंगे कि उनके प्रतिनिधि एक ही जातिके प्रतिनिधि हो और उनके प्रतिनिधि-पत्रपर अल्प-

अगर कौमी सवालके निपटारेकी जरूरत कबूल की जाय, तो जहाँ तक सचाई का सम्बन्ध है, मुझे यह योजना पुख्त दिखायी पड़ती है। अगर हम विशुद्ध राष्ट्रवादी हैं, तो किसी योजनाकी आवश्यकता नहीं रहती। धर्मकी दृष्टिसे हम भले भिन्न-भिन्न हों, राष्ट्रके रूपमें हमें एक और अविभाज्य होना चाहिए। हम व्यवस्थापकोंका चुनाव और नौकरोंकी नियुक्ति उनकी योग्यताके आधारपर करेंगे, कौम या मजहबके खयालसे नहीं। इस आदर्शकी कसौटीपर हमारी यह योजना पूरी नहीं उतरती—यह हमारे पतनकी सूचक है। लेकिन हम पतित हैं ही। हम एक दूसरेका अविश्वास करते हैं, एक दूसरेसे डरते हैं, और तो भी स्वराज्य चाहते हैं, क्योंकि वह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी विचारसे महासभाने समझौतेकी एक शकल निकाली है। कार्यसमितिकी बैठकमें मौलाना शौकतअलीने गुस्सा होकर कहा था—"आप बार-बार मुझसे क्यों पूछते हैं कि मैं क्या चाहता हूँ? मैं जो चहता हूँ आपको बता चुका हूँ। आप मुझे यह क्यों नहीं बताते कि आप क्या देंगे?" बात चुभ गयी। विशुद्ध राष्ट्रीयता वाला महासभाका सूत्र निरर्थक ठहरा। मौलानाका यह दावा कि वह सारी मुस्लिम कौमके नुमाइन्दा है, मंजूर नहीं किया गया। इसलिए वह यह जाननेके हकदार थे कि महासभा क्या दे सकती है। महासभा ऐसी कोई चीज नहीं दे सकती थी, जिसे देनेके लिए राष्ट्रवादी सिक्ख, मुसलमान या हिन्दू तैयार और सम्मत न हों।

कार्यसमितिकी यह इच्छा नहीं हो सकती कि वह जबर्दस्ती कोई बात किसीके गले उतारे। लेकिन उक्त तीन कौमोंके राष्ट्रवादियोंके लिए कुछ ऐसा मसाला तैयार हो चुका है, जिसके अनुसार, और जिसपर वे मेहनत कर सकते हैं। वे अपनी-अपनी कौममें शान्तिपूर्वक लोकमत तैयार करें।

मैं हिन्दुओंसे आरम्भ करता हूँ। हम अतिशय बहुसंख्यक हैं। अगर हम शारीरिक दृष्टिसे अपनेको बौना और मुसलमानों तथा सिक्खोंको राक्षस समझते हैं, तो धारासभाओंकी मददसे हम कभी उन्नति नहीं कर सकेंगे। भयका त्याग करके हम उन्नत बन सकेंगे, अपने अवयवोंको खींचतान कर नहीं। शारीरिक शक्तिका हिम्मतके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि हिम्मत तो हृदयकी वस्तु है। बड़ेसे बड़ा पहलवान भी एक काल्पनिक डरके सामने कांपता हुआ पाया गया है। वह हृदयकी ताकत है, जिसे देखकर शरीरकी ताकत थर्रा उठती है। आइये हम हिम्मत करें, और मुसलमानों तथा सिक्खोंकी माँगोंपर अपनी सही कर दें। अहिंसा या प्रेमकी तराजूका तो यही इन्साफ है। अगर इस योजनासे हम हिन्दुओंकी आँखें खुल जॉय तो कोई बुराई न होगी, यदि अराष्ट्रीय मुसलमान और सिक्ख इसे ठुकरा भी दें।

यदि हम इस योजनाको बिला ननुनचके मंजूर करते हैं, तो हमें किसी भी दूसरी योजनाको, जो तमाम सिक्खों और तमाम मुसलमानोंको मंजूर हो, मंजूर करनेके

लिए तैयार रहना चाहिए। लेकिन मैं नहीं चाहता कि पहले ही से किसी दूसरी योजनाकी बात कहकर हम इस योजनासे डर जायँ। व्यक्तिगत रूपसे मैं इस मामलेमें अपनी राय ठहरा चुका हूँ, और कई बार उसे व्यक्त भी कर चुका हूँ। परन्तु मैं हिन्दुओंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि वे इस योजनाको स्वीकार कर लें, क्योंकि इसे पंडित मदनमोहन मालवीयजी और श्रीयुत माधवराव अणेके आशीर्वाद प्राप्त हैं, कार्य-समितिके दूसरे हिन्दू सदस्योंकी बात न करूँगा।

हिन्दी-नवजीवन
१६ जुलाई, १९३१



अल्पसंख्यक जातियोंकी रक्षा

मेरा खयाल है कि सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान संयुक्त और पृथक निर्वाचक मण्डलके वास्तविक अन्तरको नहीं समझते। इन प्रश्नोंकी चर्चा सुननेके लिए एकत्रित दस मुसलमानोंमेंसे, शायद नौ मुसलमान, यह समझते हों कि रक्षित स्थानोंके साथ संयुक्त निर्वाचक मण्डलका क्या अर्थ है और हिस्सोंमें आये हुए स्थानोंके साथ पृथक निर्वाचक मण्डलका क्या मतलब है? उनसे पूछिए तो अधिकांशमें वे यही कारण बतावेंगे कि संयुक्त निर्वाचनमें मुसलमान रह जायेंगे और अकेले हिन्दू ही चुने जायंगे, जब कि पृथक निर्वाचनमें कुछ मुसलमान तो निर्विवाद चुने ही जायंगे। सर्वसाधारण जनतामेंसे अधिकांश यह नहीं जानते कि दोनों ही दशामें मुसलमानोंका चुना जाना तो निश्चित है ही, अन्तर केवल इतना ही है कि एक स्थितिमें अकेले मुसलमान मुसलमान प्रतिनिधियोंको और अकेले हिन्दू हिंदू प्रतिनिधियोंको चुनेंगे। जब कि दूसरी स्थितिमें हिन्दू और मुसलमान दोनों इकट्ठे मिलकर एक निश्चत संख्यामें हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रतिनिधियोंको चुनेंगे। सभामें आये हुए किसी भी जनसमूहसे पूछा जाय कि मुसलमान प्रतिनिधिको सब लोग—हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर चुनें और वह हिन्दू और मुसलमान सबका प्रतिनिधि हो और उसके पीछे सबकी शक्ति हो यह आपको पसन्द होगा अथवा मुसलमान प्रतिनिधिको केवल थोड़ेसे मुसलमान चुनें, वह अपने लोगोंका ही प्रतिनिधि समझा जाय और हिन्दू प्रतिनिधि उसे पराया या गैर समझे यह पसन्द होगा? यदि उनसे यह प्रश्न साफ तौरपर पूछा जाय तो मेरा निश्चय है कि वे निश्चित रूपसे पहली बातको ही पसन्द करेंगे, क्योंकि अपनी जातिके अच्छे व्यक्ति कौंसिलोंमें हों यह चाहनेपर भी, वे साथ ही यह अधिक पसन्द करेंगे कि उनके प्रतिनिधि एक ही जातिके प्रतिनिधि हों और उनके प्रतिनिधि-पत्रपर अल्प-

संख्यक जातिकी मुहर हो इसकी अपेक्षा वे सारी जनता, हिन्दू-मुसलमान सबके प्रतिनिधि हों। जो बात मैं मुसलमानोंके सम्बन्धमें करता हूँ वही बहुसंख्यक जातियोंके अत्याचारके भयसे डरनेवाली अल्पसंख्यक अन्य जातियोंके सम्बन्धमें भी है। उन्हें आम तौरपर यह नहीं बतलाया जाता अथवा अच्छी तरह नहीं समझाया जाता कि संयुक्त निर्वाचन-प्रथामें, उनकी जातिके लोगोंके लिए अमुक स्थान निश्चित रूपसे रक्षित होनेके कारण वे अपना हित साधे बिना न रहेंगे; इस खयालसे उनका एक निश्चित संख्यामें चुना जाना अवश्यम्भावी है। सर्वसाधारण लोगोंको यही बताया जाता है कि संयुक्त और राष्ट्रीय निर्वाचक मण्डलमें वे जरा भी प्रतिनिधित्व न पा सकेंगे। उन्हें यह बात साफ तौरपर नहीं बतायी जाती कि जहां जहां अल्पसंख्यक जातियोंके लिए अलग स्थान अथवा बैठकें मांगनेके सबल कारण हैं, वहां वहाँ वह दी जाती।

एक ही बात बार-बार कही जानेसे, कई बार उसमें सत्यका आभास और बल आ जाता है। किन्तु एक स्थिति ऐसी होती है जब कि वस्तुओंका पृथक्करण करके सच और झूठको अलग करना जरूरी हो जाता है। अल्पसंख्यक जातियोंकी रक्षाका सच्चा अर्थ क्या है ? ऐसी रक्षा लोकतन्त्रकी विरोधी न हो सके, इसके लिए उसकी मर्यादाएँ क्या हैं ?

सभी राष्ट्रोंमें अल्पसंख्यक समुदाय होते हैं। अपने जीवन सम्बन्धी विषयोंमें दृढ़ प्रतीतिवाला कोई भी मनुष्य समूह और बहुसंख्यक समुदायसे मतभेद रखता है, अल्पसंख्यक है और रक्षाका अधिकारी है—उसकी रक्षा होनी चाहिए। यह बात नहीं है कि हिन्दुस्तानके धर्म अथवा जातियोंके कारण ही अल्पसंख्यक समुदाय बनते हों। जहां-जहां शासनमें प्रजासत्ता और लोकतन्त्रका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है, वहाँ सब जगह मुख्य प्रवाहसे अल्पसंख्यक समुदाय अथवा मनुष्योंकी रक्षाकी आवश्यकता सदैव प्रतीत हुई है। किन्तु इन देशोंमें कभी इस बातकी कल्पना नहीं हुई कि इस कारणसे शासन-विधानकी रचना पृथक निर्वाचक मण्डलके आधारपर होनी चाहिए।

प्रजा-सत्ताक शासनका अवश्यम्भावी अर्थ बहुमतका शासन ही है। जबतक हम प्रजा सत्ताक शासन चाहते हैं, तबतक बहुमतके शासनसे सहमत हुए बिना हम नहीं रह सकते। अल्पमत वालेको यदि बहुमतवालोंके साथ एक ही समाज और एक ही राष्ट्रमें रहना हो, तो किसी भी हालतमें उन्हें बहुमतके आदेशका पालन करना ही होगा।

सफल प्रजा-सत्ताक शासनका अर्थ केवल बहुमतका शासन ही नहीं है। प्रत्युत उसमें बहुमत आगे होकर कार्रवाई अमलमें ला सके, तुरन्त निर्णय कर सके और असरकारक कार्य कर सके, इसके लिए योग्य तन्त्र भी होना चाहिए। इन बातोंमें से किसी बातके करनेमें असमर्थ प्रजा-सत्ताकी अधीनतामें हम सुरक्षित नहीं रह सकते। राष्ट्रीय सरकारमें राष्ट्रकी विभिन्न जातियोंका पूरा-पूरा प्रतिबिम्बित किया

जाना ही काफी नहीं है। क्योंकि सरकार यह कोई दिवालपरका सुन्दर अथवा सर्वथा यथार्थ चित्र प्रदर्शित करनेके लिए नहीं है; प्रत्युत काम करनेके लिए है। कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है जब कि बहुमतकी इच्छाको पूर्ण रूप देकर अल्पसंख्यकोंके मतकी उपेक्षा करना आवश्यक हो जाता है। जितना ही इसे आगेके लिए स्थगित करेंगे उतनी ही उसमें रुकावटें होंगी, और उतना ही वह तंत्र अयोग्य होगा। एक क्षणके लिए कल्पना कर लीजिए कि भारतीय शासन-कार्य गोलमेज परिषद्की लघुमति-समितिकी सी समितिके हाथों सौंप दिया गया है। नतीजा यह होगा कि शासन-कार्य असम्भव हो जायगा।

यदि प्रजा-सत्तामें बहुमतका शासन-कार्य अनिवार्य है तो लघुमतकी रक्षा क्या है? क्या यह प्यासे लघुमतको शेष काफलेके साथ चलानेके लिए मृगजाल मात्र है, केवल जुठाई है? कदापि नहीं। वास्तविक और स्वीकार्य अर्थमे सच्ची रक्षा जैसी वस्तु भी है। सभी उत्तम प्रजा-सत्ताक शासनोंमे वास्तविक एवम् समुचित रक्षा होती है। किन्तु इस रक्षाका तरीका यह है कि पहले तो व्यक्ति अथवा अल्पसंख्यक समुदायके जीवनमें सरकारके हस्तक्षेपका क्षेत्र मर्यादित कर दिया जाता है, दूसरे छोटे अथवा निर्बल समुदायोंके हित अथवा कल्याणके लिए आवश्यक कार्रवाई करने और उनकी शिकायतोंके असरकारक रूपमे पेश किये जा सकनेकी सुविधा अथवा व्यवस्था की जाती है, और अन्तमें कानूनमे वे बराबर समझे जाते हैं। इस रक्षाका अर्थ बहुमतको शासन करनेमें असमर्थ बना देना नही है।

कम से कम आवश्यक मर्यादाओंको छोड़कर सरकार यदि प्रजाकी स्वतंत्रता पर आक्रमण करे तो जिस प्रकारसे उसकी रक्षा की जाती है उसीमे इङ्गलैण्डके शासन-विधानकी खूबी है। इङ्गलैण्डमे पैर रखकर जितनी व्यक्तिगत स्वतंत्रताका मनुष्य अनुभव करता है उतनी और किसी देशमे नहीं। दूसरे देशोंमे प्रजासत्ताक शासन बहुमतका जुल्म हो गया है। किन्तु इंगलैण्डमे स्वतंत्रताका तत्त्व दृढ़ और चिरस्थायी परम्पराके रूपमे सुरक्षित है। इससे इंग्लैण्डकी तमाम छोटी-छोटी जातियोंकी रक्षा हो सकती है। परन्तु वे बहुमतका सख्त से सख्त विरोध किया जा सके इसके लिए भिन्न निर्वाचनका अधिकार प्राप्त करनेका और वर्गोंके अनुसार पार्लियामेंटको प्रतिनिधियोंसे भर देनेका प्रयत्न नहीं करते हैं। सरकारके शासनपर अर्थात् बहुमतके शासनके क्षेत्रपर परिणामकारी अंकुश रखकर ही वे संतोष मानते है। आप संख्यामे अधिक हैं इसलिए शासनका भार आपपर रहेगा। परन्तु किन बातोंमे? यहीं तक, इससे अधिक नहीं। यही छोटी कौमोंकी सच्ची रक्षा है।

भूतकालके इतिहाससे छोटी कौमोंपर जो प्रतिबन्ध लगे हुए हों वे दूर होने चाहिए, उनपर जबर्दस्त लोगोंने यदि जुल्म किया हो तो कानून सबके लिए समान और सुलभ होने चाहिए। अधिकारी वर्ग उनके हितकी परवा न करे, बहुसंख्यक लोग उनका विचार न करे तो उन्हें अपने दुःख और कठिनाइयां असरकारक रूपसे

पेश करनेका, उन्हें दूर करनेका और जिनसे उनका हित हो ऐसा मार्ग ग्रहण करनेका अवकाश होना चाहिए।

अब हम इस प्रस्ताव पर आते हैं कि बड़ी व्यवस्थापिका सभाके दूसरे विभागके लिए जुदा निर्वाचक मण्डल होने चाहिए। इस दूसरे विभागको बहुमतके शासनमें अन्तराय डालनेका अधिकार न दिया जाय, परन्तु उसे अपनी कठिनाइयाँ पेश करनेका, उन्हें दूर करनेके लिए नये-नये मार्ग दिखानेका अधिकार दिया जाय तो ऐसा विभाग बनाना और उसमें भिन्न निर्वाचनोंके द्वारा खास वर्गोंके प्रतिनिधि रखना उचित ही होगा। यह ऐसा स्थान होगा जहाँ छोटी कौमोंके दुःख और विचार प्रकट हो सकेंगे, और उनकी खास आवश्यकताएँ जो भूली जा सकती हैं और जिनकी लोकसभामे हिमायत नहीं की जा सकती उन्हें पूरी करनेके लिए खास उपाय सूचित किये जा सकेंगे।

वहां भिन्न निर्वाचक मण्डलों द्वारा चुने गये प्रतिनिधि अपनी शिकायतें पेश कर सकते हैं और उसके बारेमें प्रस्ताव भी कर सकते हैं। परन्तु अन्तिम निर्णयका अधिकार और सुराज्यकी जिम्मेवारी तो लोकशासनके तत्त्व पर- अर्थात् बहुमत शासनके तरीके पर चुने गये विभागकी ही होगी, जो ध्येय और निश्चयमें एक और अखण्ड होंगे, कार्य करने मे शीघ्र होंगे। बहुमतको सच्ची और कार्यकारी स्वतंत्रता न हो तब तक कोई भी राष्ट्र स्वराज्यका तंत्र नहीं चला सकता।

शासन-विधानमे अपनी रक्षाके लिए माँग पेश करनेका छोटी कौमोको पूरा अधिकार है, परन्तु यह रक्षा उन्हें प्रजाकी स्वतंत्रताकी रक्षाका विश्वास दिलाने वाली धारामे प्राप्त करनी चाहिए, व्यवस्थापिका सभाकी रक्षामे नहीं। दूसरी माँगें लोकशासनके तत्त्वके साथ सुसंगत नहीं हैं। केवल निर्वाचनकी व्यवस्थाकी बनिस्बत व्यक्ति और मण्डलोंकी स्वतंत्रताकी रक्षाका विश्वास दिलाने वाले कानून कितने कार्यकारी और महत्वके है। इसका काफी और दृढ़ प्रमाण इंगलैण्डके इतिहासमें मिलता है।

परन्तु इन कानूनोसे भी परे एक बड़ी रक्षक शक्ति है, और उसे समझनेकी और उसका कार्यकारी उपयोग करनेकी शिक्षा राष्ट्रको मिली है। वह शक्ति सत्याग्रह द्वारा विरोध करनेका अधिकार है।

हिन्दी-नवजीवन
२९ अक्टूबर, १९३१

❀

हमारी असफलता

इलाहाबादमे जो कि महासभा (कांग्रेस) का सदर मुकाम है—साम्प्रदायिक दंगा होने और उसके लिए पुलिस ही नहीं बल्कि फौजको भी बुलानेकी जरूरत पड़नेसे मालूम पड़ता है कि महासभा अभी इस योग्य नहीं हुई कि ब्रिटिश सत्ताका स्थान ले ले। यह बात चाहे जितनी नागवार लगे, लेकिन अच्छा यही है कि हम इस नग्न सत्यको महसूस करें और उसका मुकाबला करें।

महासभा सारे भारतके प्रतिनिधित्वका दावा करती है, न कि सिर्फ उन थोड़ेसे लोगोंका जो कि उसके सदस्य हैं। इसलिए जो लोग इसके विरोधी है और जो हो सके तो इसे कुचल भी डालेंगे, उनका भी इसे प्रतिनिधित्व करना चाहिए। जबतक हम इस दावेको इस अच्छाईके साथ सिद्ध न करे तबतक हम ऐसी स्थितिमे नहीं हो सकते जो ब्रिटिश सरकारको हटाकर स्वाधीन राष्ट्रके रूपमे अपना काम चला सके।

ब्रिटिश शासनको चाहे हम हिंसासे हटाना चाहें या अहिंसासे, यह बात तो दोनों ही सूरतोमें लागू होती है।

बहुत सम्भव है कि जबतक ये पंक्तियाँ छपकर प्रकाशित होंगी तबतक इलाहाबाद तथा अन्य स्थानोमें शान्ति स्थापित हो चुकी होगी। मगर महासभाकी एक संस्थाके रूपमें सम्पूर्ण रूपसे ब्रिटिश सत्ताका स्थान लेनकी तैयारी है या नहीं, इस बातकी जाँच-पड़ताल करनेमें हमे उससे कोई मदद नहीं मिलेगी।

कोई भी कांग्रेसवादी गम्भीरताके साथ इस बारेमे संदेह नहीं करेगा. कि इस समय महासभा ऐसी स्थितिमे नही है कि वह जो चाहे कर सके। अगर उसमें ऐसी सामर्थ्य हो तो वह इसके लिए किसीके कहनेकी प्रतीक्षा नहीं करेगी। लेकिन हरेक कांग्रेसवादीका यह विश्वास है कि महासभा तेजीके साथ ऐसी संस्था बन रही है। हरिपुराकी ज्वलन्त सफलताको इस बातके अत्यन्त ठोस सबूतके रूपमे पेश किया जायगा।

ये दंगे और दूसरी चन्द बातें ऐसी है जिनपर हमे ठहरकर यह सोचना ही चाहिए, कि क्या सचमुच महासभाका विकास हो रहा है और वह अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही है? मुझे यह मानना ही पड़ेगा कि यह दावा करनेका अपराधी मैं ही हूँ। क्या ऐसा करनेमे मैंने जरूरतसे ज्यादा जल्दबाजी नहीं की?

मेरा यह विश्वास है कि महासभाकी व्यापक वृद्धि उसके द्वारा अहिंसाकी नीतिका स्वीकार और पालन करनेसे हुई है, फिर वह चाहे कितना ही अधूरा क्यों न हो। लेकिन अब कांग्रेसी अहिंसाके रूपपर विचार करनेका वक्त आ गया है। सवाल यह है कि यह अहिंसा कमजोर और असहायोंकी अहिंसा है या बलवान

सशक्तों की ? अगर कमजोरोंकी हो तो यह हमे अपने ध्येयपर कभी नहीं पहुँचायेगी, बल्कि देरतक इसका पालन किया गया तो हमें हमेशाके लिए स्वराज्यके अयोग्य बना देगी। क्योकि कमजोर और असहाय तो असलमे इसलिए अहिंसक बनते हैं कि इसके सिवा वे कुछ कर ही नहीं सकते; लेकिन वस्तुतः उनके दिलोंमें हिंसा समायी रहती है और उसके प्रदर्शनके लिए वे केवल अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं। अतः कांग्रेसवादियोके लिए यह आवश्यक है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे इस बातकी जाँच करें कि उनकी अहिसा किस किस्मकी है। अगर उसका मूल सच्ची ताकतमे न हो, तो महासभाके लिए सबसे अच्छी और ईमानदारीकी बात यह होगी कि वह ऐसी घोपणा करके अपने व्यवहारमें आवश्यक रद्दोबदल कर ले।

अब तक यानी सत्रह साल तक अहिसापर अमल कर लेनेके बाद महासभाको इतनी सामर्थ तो हो ही जाना चाहिए कि वह कुछ हजार नहीं बल्कि लाखो ऐसे स्वयंसेवकोंकी अहिसक सेना खड़ी कर सके जो उन सब अवसरोपर काम आ सके जिनके लिए कि पुलिस और फौजकी जरूरत पड़ती है। इस प्रकार हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि शान्ति-स्थापनाके लिए मरने वाले एक वीर गुप्ता ही नहीं बल्कि सैकड़ो सामने आ सकें और अहिसक सेना हथियार बन्द सैनिकोकी तरह न केवल दंगेके वक्त बल्कि शान्तिके समय भी काम करे। ये सैनिक बराबर ऐसी रचनात्मक हलचलोमे रहेंगे जिनसे कि दंगोका होना ही नामुमकिन हो जाय। साथ ही जिस प्रकार सेनाको किसी भी जरूरतके लिए तैयार रहना चाहिए उसी प्रकार उनका यह फर्ज होगा कि वे विविध जातियोको सम्मिलित करनेके अवसर ढूँढते रहें, शान्तिका प्रचार-कार्य करते रहें, ऐसी हलचलोमे लगे रहें जिससे अपने मुहल्ले या डिवीजनके हरेक मर्द-औरत-बच्चेसे सम्पर्क बना रहे, और भीड़के क्रोधको शान्त करनेके लिए पर्याप्त संख्यामे अपने प्राणोकी आहुति देनेके लिए तैयार रहें तो दंगोको हमेशाके लिए समाप्त कर देंगे। जान-बूझकर भीड़के क्रोधका शिकार होने वाले कुछ सौ तरुण स्त्री-पुरुषोकी आहुति ऐसे पागलपनका मुकाबला करनेके लिए, पुलिस और फौजके प्रदर्शनकी बनिस्बत निश्चय ही किसी भी दिन एक सस्ता और बहादुराना उपाय ही होगा।

यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेंगे तब दंगे तथा अन्य ऐसी बाते नहीं होगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वतंत्रताकी लड़ाईके दर्मियान अगर हम अहिंसात्मक कार्यके तत्त्वको अच्छी तरह समझकर हरेक कल्पनीय परिस्थितिमें उसका इस्तेमाल न करें तो हमारी यह आशा थोथी ही होगी। जिस हद तक कि कांग्रेसी मंत्रियोंको पुलिस या फौजका सहारा लेना पड़ा है, उस हदतक, मेरी रायमे, हमें अपनी असफलता मंजूर करनी ही चाहिए। क्योंकि दुर्भाग्य वश यह बिलकुल ठीक है कि मंत्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अतः मेरी ही तरह अगर हरेक काग्रेसवादी और कांग्रेस-कार्य-

समिति भी, यह सोचते हों कि असफल हुए हैं, तो मै चाहूँगा कि वे इस बातपर विचार करें कि हम असफल क्यों हुए।

हरिजन-सेवक
२६ मार्च, १६३८



शान्ति-सेनाकी शर्तें

कुछ समय पहले मैंने एक ऐसे स्वयंसेवकोंकी सेना बनानेकी तजवीज रखी थी जो दंगों, खासकर साम्प्रदायिक दंगोंको शान्त करनेमें अपने प्राणों तककी बाजी लगा दें। विचार यह था कि यह सेना पुलिसका ही नहीं बल्कि फौज तकका स्थान ले ले। यह बात बड़ी महत्वाकांक्षापूर्ण मालूम पड़ती है। शायद यह असम्भव भी साबित हो। फिर भी, अगर कांग्रेसको अपनी अहिंसात्मक लड़ाईमे कामयाबी हासिल करनी हो, तो उसे ऐसी परिस्थितियोंका शान्ति-पूर्वक मुकाबला करनेकी अपनी शक्ति बढ़ानी ही चाहिए। साम्प्रदायिक दंगे राजनीतिक दिमाग वालोंके द्वारा खड़े किये जाते हैं। जो लोग इनमें भाग लेते हैं उनमेंसे ज्यादातर उन्हींके प्रभावमें रहते हैं। इन भद्दे साम्प्रदायिक दंगोंको शान्ति-पूर्वक रोकनेके उपाय निकालना कांग्रेसियोंकी बुद्धिसे परेकी बात निश्चय ही नहीं होनी चाहिए। यह मै बिना इस बातका कोई खयाल किये कहता हूँ कि कोई साम्प्रदायिक समझौता हो या न हो। यह नही हो सकता कि कोई दल हिंसात्मक साधनोंसे जबरदस्ती समझौता कराये, ऐसा समझौता सम्भव भी हो तो उसके उस कागज की इतनी भी कीमत न होगी, जिसपर कि वह शायद लिखा जाय। क्योंकि ऐसे समझौतेके पीछे आपसकी समझदारीका कोई बल नहीं होगा। नतीजा यह होगा कि समझौता हो जानेके बाद भी यह आशा करना बहुत बड़ी बात होगी कि कोई साम्प्रदायिक दंगा कभी होगा ही नहीं।

इसलिए हमें देखना चाहिए कि जिस शान्ति-सेनाकी हमने कल्पना की है उसके सदस्योंकी क्या योग्यताऍ होनी चाहिए।

(१) शान्ति-सेनाका सदस्य पुरुष हो या स्त्री, अहिंसामें उसका जीवित विश्वास होना यह तभी सम्भव है जब कि ईश्वरमें उसका जीवित विश्वास हो। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वरकी कृपा और शक्ति बगैर कुछ कर ही नहीं सकता। इसके बिना उसमें क्रोध, भय और बदलेकी भावना रखते हुए मरनेका साहस नहीं होगा।

ऐसा साहस तो इस श्रद्धासे ही आता है कि सबके हृदयोंमे ईश्वरका निवास है, और ईश्वरकी उपस्थितिमे किसी भी भयकी जरूरत नहीं। ईश्वरकी सर्वव्यापकताके ज्ञानका यह भी अर्थ है कि जिन्हें विरोधी या गुण्डे कहा जा सकता हो उनके प्राणोंका भी हम खयाल रक्खें। यह इरादतन दस्तन्दाजी उस समय मनुष्यके क्रोधको शान्त करनेका एक तरीका है, जब कि उसके अन्दरका पशु-भाव उसपर हावी हो।

(२) शान्तिके इस दूतमें दुनियाँके सभी खास-खास धर्मोंके प्रति समान श्रद्धा होना जरूरी है। इस प्रकार अगर वह हिन्दू हो तो वह हिन्दुस्तानमे प्रचलित अन्य धर्मोंका आदर करेगा। इसलिए देशमे माने जानेवाले विभिन्न धर्मोंके सामान्य सिद्धान्तोंका उसे ज्ञान होना चाहिए।

(३) यह काम अकेले या जत्थोमें हो सकता है। इसलिए किसीको संगी-साथियोके लिए इन्तजार करनेकी जरूरत नहीं, फिर भी आदमी स्वभावतः अपनी बस्तीमेंसे कुछ साथियोंको ढूढ़कर स्थानिक सेनाका निर्माण करेगा।

(४) शान्तिका यह दूत व्यक्तिगत सेवा द्वारा अपनी बस्ती या किसी चुने हुए क्षेत्रमें लोगोके साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित करेगा जिससे जब उसे भद्दी स्थितियोमें काम करना पड़े तो उपद्रवियोके लिए वह बिलकुल ऐसा अनजबी न हो जिसपर वे शक करें या उन्हें नागवार माल्म पड़े।

(५) यह कहनेकी जरूरत ही नहीं कि शान्तिके लिए काम करनेवालोंका चरित्र ऐसा होना चाहिए जिसपर कोई अंगुली न उठा सके और वह अपनी निष्पक्षताके लिए मशहूर हो।

(६) आम तौरपर दंगोसे पहले तूफान आनेकी चेतावनी मिल जाया करती है। अगर ऐसे आसार दिखायी दें तो शान्ति-सेना आग भड़क उठने तकका इन्तजार न कर तभीसे परिस्थितिको सम्हालनेका काम शुरू कर देगी जबसे कि उसकी सम्भावना दिखायी दे।

(७) अगर यह आन्दोलन बढ़े तो कुछ पूरे समय काम करनेवाले कार्य कर्त्ताओंका इसके लिए रहना अच्छा होगा, लेकिन यह बिलकुल जरूरी नहीं कि ऐसा हो ही। खयाल है कि जितने भी अच्छे स्त्री-पुरुष मिल सकें उतने रक्खे जाँय, लेकिन वे तभी मिल सकते हैं, जब कि स्वयंसेवक ऐसे लोगोमेंसे मिलें जो जीवनके विविध कार्योंमे लगे हुए हो, पर उनके पास इतना अवकाश हो कि अपने इलाकोमें रहनेवाले लोगोके साथ मित्रताके सम्बन्ध पैदा कर सकें तथा उन सब योग्यताओको रखते हो जो कि शान्ति-सेनाके सदस्यमे होनी चाहिए।

(८) इस सेनाके सदस्योंको एक खास पोशाक होनी चाहिए जिससे कालांतरमें उन्हें बिना कठिनाईके पहचाना जा सके।

ये सिर्फ आम सूचनाएँ है। इनके आधारपर हरेक केन्द्र अपना विधान बना सकता है।

कहीं कोई झूठी उम्मीदें न बाँध बैठे, इसलिए कार्यकर्त्ताओंको मुझे यह चेतावनी जरूर दे देनी चाहिए कि शान्ति-सेनाके निर्माणमें मैं कोई अमली भाग न ले सकूँगा। इसके लिए मेरे पास न तो वैसा स्वास्थ्य, शक्ति, और न समय ही है। मेरे लिए तो आज उन्हीं कामोंको करना भारी पड़ रहा है जिन्हें छोड़नेकी मुझे हिम्मत नहीं होती। मै तो केवल चिट्ठी-पत्री या लेखोंके द्वारा ही रास्ता दिखा सकता या सूचनाएँ दे सकता हूँ। इसलिए जो लोग इस विचारको पसन्द करें और अपनेमे इसे करनेकी योग्यता महसूस करें, खुद उन्हींको यह काम उठाना चाहिए। यह मैं जानता हूँ कि इस प्रस्तावित शान्ति-सेनाकी सम्भावना खूब है और यह विचार ऐसा है जिसपर बड़ी अच्छी तरह अमल किया जा सकता है।

हरिजन-सेवक

१८ जून, १९३८



सात शिकायतें

एक मुसलमान मित्र लिखते हैं:—

"आपको यह सुनकर दुख होगा कि मेरे सूबेमें हालत बदसे बदतर हो गयी है। मुसलमान इससे बहुत ज्यादा क्षुब्ध हैं और चाहते हैं कि आप इस तरफ फौरन ध्यान दें। हमने युद्ध-समिति बना ली है और आपके सत्य-अहिंसाके रास्तेपर चलकर अपनी इन शिकायतोंको दूर कराना चाहते हैं:—

१—सरकार 'विद्यामन्दिर' की योजनापर डटी हुई है।

२—मादरी जबानकी परिभाषा उस इलाकेकी मातृभाषाके रूपमें की गयी है, जिसे हिन्दी और मराठी भाषा-भाषियोंके रूपमें बाटा गया है। इस तरह उर्दूका बॉयकाट कर दिया गया है।

३—उर्दू स्कूलोंका निरीक्षण पहले सिर्फ उर्दूदा इन्सपेक्टरोंके द्वारा हुआ करता था, लेकिन अब उस तरीकेको बन्द कर दिया गया है।

४—असेम्बलीकी स्वीकृत जबानोंमे उर्दू या हिन्दुस्तानीको भी शामिल करनेकी मेरी तरमीम गिरा दी गयी।

५—यूनिवर्सिटीमे मुसलमानोको प्रतिनिधित्व देनेके लिए मैंने यूनिवर्सिटी बिल पेश किया था वह रद्द हो गया।

६—माननीय वियाणीजीने चान्दूर (वरार) में एक कान्फरेंस की थी, जहाँ जुम्मेकी नमाजके वक्त मस्जिदके सामनेसे बाजा बजाते हुए उनका जुलूस निकाला गया और झण्डेकी पूजा की गयी।

७—सरकारी सर्क्यूलर द्वारा आपको "महात्मा" लिखना जरूरी करार दिया गया है, आपके जन्म-दिनको सरकारी छुट्टीका दिन ऐलान किया गया है और नतीजा इसका यह हुआ कि अमरावतीके लोकल बोर्डोंने आपकी मूर्तिका जुलूस निकालने और उसकी पूजा करनेके हुक्म जारी किये हैं। गाधीजी, आप मुझे यह कहनेकी इजाजत देंगे कि हम बुतपरस्त (मूर्तिपूजक) नहीं हैं और आपको न तो महात्मा मानते हैं, न मजहबी और राजनैतिक नेता ?"

शिकायतें कैसी भी क्यों न हों, अगर पत्र-लेखक और उनके अनुयायी सत्य-अहिंसाका रास्ता अख्यतार करेंगे तो कोई बुराई न होगी और उन्होंने जो कार्रवाई सोची है उसके अन्तमे दोनों पक्ष परस्पर अधिक नजदीक आ जायेंगे और गलतफह-मियोंका जाल छिन्न-भिन्न हो जायगा।

जहाँतक शिकायतोंका सम्बन्ध है, पत्र-प्रेषक तथा दूसरे जो लोग मुझसे असम्भव बातकी आशा करते हैं उन्हें मुझको यह चेतावनी देनी होगी कि अच्छाई और सद्भावनाकी वृद्धिके लिए मैं जो भी प्रभाव डाल सकूँ वह डालनेके लिए हमेशा तैयार हूँ, मगर मेरे सामने जब भी भारी मर्यादाएँ हैं। हरेक कांग्रेसी मंत्रीके खिलाफ होनेवाली हरेक शिकायतकी जाँच करनेका बोझ अगर मैं अपने ऊपर ले लूँ तो, दो दिन भी जिन्दा नहीं रह सकता। यह काम तो वर्किंग कमेटीके बनाये हुए पार्लि-यामेण्टरी बोर्डका है।

लेकिन इन शिकायतोंके बारेमे आम तौरपर मै यह कह सकता हूँ :—

१—विद्यामन्दिरकी योजनाके बारेमें जहाँतक मुझे पता है, मुझे उसमे कोई खराबी नहीं दीखती। यह मै जानता हूँ कि "मन्दिर" नाम पर कुछ मुसलमानोंने एतराज किया है। लेकिन शुक्लजी (मध्यप्रान्तके प्रधान मत्री) ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मुसलमान लड़के या उनके अभिभावक सिर्फ इसलिए इन स्कूलोंमे पढ़ सकते हैं जिनका अरबी नाम न होगा। मगर यह निश्चित रूपसे ऐसा मामला है जिसपर कोई एतराज नहीं होना चाहिए। क्योंकि मन्दिर शब्दका एकमात्र धार्मिक महत्व ही नहीं है। जब इसके साथ कोई गुणवाचक विशेषण हो तो उसका मामूली अर्थ मकान ही होता है, और शब्दका ऐसा उपयोग एक आम बात है।

२—दरअसल क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता। लेकिन किसी इलाकेकी मातृ-भाषा निश्चित रूपसे वही होती है जिसे कि वहाँके बाशिन्दे आम तौरपर बोलते हैं।

३—उर्दू या हिन्दुस्तानीको स्वीकृत करनेकी तरमीमका जहाँतक सवाल है, उसके गुण-दोषोंका मुझे कोई इल्म नहीं है।

४—उर्दूके इन्सपेक्टरोंको अगर इसलिए हटाया गया है कि वे खाली उर्दू ही जानते हैं तो जाहिरा तौरपर यह गलती ही मालूम पड़ती है।

५—यही बात यूनिवर्सिटी बिलकी भी है।

६—जुम्मेकी नमाजके वक्त अगर मस्जिदके सामने बाजा बजाया गया तो यह सचमुच गलती थी। लेकिन इस इलजामको साबित करनेके लिए बहुत जोरदार प्रमाण चाहिए।

७—यह ऐसी शिकायत और एक ऐसा दावा है कि इन दोनों ही बातोंमें मैं आपसे सहमत हूँ। 'महात्मा' शब्दको सरकारी स्वीकृति देना गलती है। जैसे ही यह बात मेरे सामने आयी, मैंने इसका विरोध किया था। और मेरे नामके पहले 'महात्मा' शब्द बिलकुल न लगानेके लिए अगर कोई आन्दोलन हो तो मैं उसका समर्थन करूँगा। क्योंकि मेरा नाम तो किसी विशेषणके बिना ही मीठा लगता है। इस विशेषणसे तो अक्सर मुझे बड़ा कष्ट होता है—खासकर जब कि हिंसा या असत्य, सिगरेट या शराब अथवा नकली खादीकी बिक्रीको बढ़ानेके लिए इसका उपयोग किया जाता है, तब तो बिच्छूकी तरह यह मुझे काटता है। मेरे जन्म-दिनको सरकारी तातील घोषित करनेकी गिनती दण्डनीय अपराधोंमें होनी चाहिए। अपने जन्मदिनका सिर्फ एक उपयोग मैंने पसन्द किया है और वह खूब कतायी या ऐसी ही कोई राष्ट्रीय सेवा। यह दिन तो काम ही कामका होना चाहिए, खेलकूदका नहीं। यह तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि कोई लोकल बोर्ड ऐसी मूर्खता करेगा कि मेरी मूर्तिका जुलूस निकालने और उसकी पूजा करनेका हुक्म जारी करे। मैं उम्मीद करता हूँ कि पत्र-प्रेषकको मिली हुई यह खबर बिलकुल गलत होगी। मेरा तो ख्याल है कि ऐसे हुक्म निकालना कानूनन भी ठीक नहीं है। जहाँतक मुझे महात्मा या नेता न माननेका सवाल है, मैं पत्र-प्रेषकको इसके लिए धन्यवाद देता हूँ क्योंकि नेतृत्वकी—फिर वह मजहबी हो या राजनैतिक—मैंने ख्वाहिश ही नहीं की है।

हरिजन-सेवक

१५ अक्तूबर, १९३८

'मिस्टर' और 'एस्क्वायर'

बनाम

श्री, मौलवी, मौलाना, जनाब आदि

कुछ मित्रोने मुझसे कहा कि बम्बईमे श्री जिन्नासे मिलनेके लिए जानेसे पहले मैंने जो वक्तव्य दिया था, उसमें 'जिन्ना' के पहले 'श्री' रखनेसे उन्हें जरूर बुरा लगा होगा। मैं इससे पशोपेशमें पड़ गया और कहा कि अगर उन्हें बुरा लगता तो वह शिष्टताके साथ मुझे इसका इशारा कर देते, ताकि मैं उनसे माफी मांग लेता और फिर उसी विशेषणका प्रयोग करता जो उन्हें सबसे ज्यादा पसन्द होता। पाठकोंको याद होगा कि असहयोग जब जोरोंसे चल रहा था, उन दिनो 'मिस्टर' और 'एस्क्वायर' का प्रयोग कांग्रेसजनों और राष्ट्रीय अखबारोंने छोड़ दिया था और धर्मका कोई भेदभाव किये बगैर सबके लिए अधिकतर 'श्री' का ही प्रयोग किया जाता था। यह रिवाज अब यद्यपि बहुत कुछ कम हो गया है, पर मैंने इसको कभी नहीं छोड़ा। क्योंकि अपनी बुरी आदतके सिवा, बल्कि मैं कहूँगा कि अपनी दास-मनोवृत्तिके बगैर, भारतीय नामोके आगे या पीछे हम 'मिस्टर' और 'एस्क्वायर' का प्रयोग कभी न करते। यूरोपमें कोई अंग्रेज किसी विदेशी नामके साथ कभी 'मिस्टर' या 'एस्क्वायर' नहीं लगाता, बल्कि उनके अपने-अपने देशोंमें प्रचलित विशेषणोका ही प्रयोग करता है। इस प्रकार हिटलरको कभी 'मिस्टर' नहीं कहा जाता, वह तो हर हिटलर ही कहलाता है। इसी प्रकार मुसोलिनीके साथ 'मिस्टर' या 'हर' के बजाय 'सिन्योर' ही लगाया जाता है। नामके आगे-पीछे लगानेके अपने विशेषणको हमने क्यों छोड़ दिया होगा, यह मैं नहीं जानता। लेकिन प्रचलित आदतसे एक क्षणके लिए भी अलग होकर विचार करें, तो हमें मालूम पड़ जाना चाहिए कि भारतीय नामोके आगे या पीछे 'मिस्टर' और 'एस्क्वायर' का प्रयोग बड़ा हास्यास्पद लगता है।

मगर यह बात मुझे माननी होगी कि आपसके सन्देहके इन दिनोंमें मुसलमान नामोके पहले 'श्री' का प्रयोग शायद हमारे मुसलमान दोस्तोको अच्छा न लगे। मुसलमान मित्रोके साथ मैंने इस बारेमे बात-चात की है। उन्होने कहा कि साधारणतः 'मौलवी' शब्द इसके लिए काम आता है। दक्षिणमे मैंने अक्सर 'जनाब' का प्रयोग होते देखा है। जो भी हो, मैं यह कह सकता हूँ कि हिन्दुस्तानी मुसलमानोके नामोके पहले 'श्री' शब्दका प्रयोग करनेमें उनके प्रति अधिकाधिक मित्रताके सिवा मेरे मनमें और कोई भाव नहीं रहा है। मुझे तो जब कोई 'मिस्टर' कहता है तो बड़ी झुंझली आती है। हिन्दुओमें प्रचलित प्रथा तो नामके अन्तमें

'जी' का प्रयोग करने की है। 'साहब' भी 'जी' का ही पर्यायवाची है। मुझे याद है कि स्वर्गीय हकीम अजमलखाँको मैं हमेशा हकीमजी कहा करता था। कुछ मुसलमान मित्रोंने मुझसे कहा कि मुसलमान 'साहब' को ज्यादा पसन्द करेंगे। इससे पहले मुझे इस तरजीहका कोई पता नहीं था। लेकिन इस संशोधनके बादसे अनजाने 'जी' का प्रयोग हुआ हो उसके अलावा, मैंने उन्हें हमेशा हकीम साहब ही कहा। 'मि०' अजमल खाँ तो मैं उन्हें अपनी नंगी पीठपर भीगे हुए बेंतोकी मारके डरके सामने भी नही कह सकता। मालूम यह होता है कि अंग्रेजी शिक्षा पानेके बाद ही हम 'मिस्टर' और 'एसक्वायर' बने है !!! क्या इस साँचेमें ढले हुए पाठक भारतमे प्रचलित शुद्ध नामोंकी सूची देकर मुझे और मेरे जैसे आदमियोंकी मदद करेंगे ?

हरिजन-सेवक

२६ अक्तूबर, १६३८



हिन्दू-मुस्लिम-एकता

स्व० मौलाना शौकतअलीके स्मारकके बारेमे मैंने कई तजवीजें पढ़ी हैं। ज्यों ही मुझे मौलानाकी मृत्युके बारेमें मालूम हुआ, जिसकी कि अभी बिलकुल ही आशा नहीं थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रोंको उनके साथ अपने अन्तस्तलकी समवेदना प्रकट करते हुए लिखा। उनमेसे एक मित्रने लिखा है—

"सच्ची और स्थायी हिंदू मुस्लिम-एकताकी कितनी तात्कालिक और सख्त जरूरत है, इस विषयमे किसीकी दो रायें हो ही नहीं सकतीं। और जितनी ही जल्द यह एकता होगी, उतना ही सबके लिए हितकर होगा। इस मामलेमें देरी करनेसे गम्भीर चिंताकारक परिणाम हो सकते हैं जिनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। आज जो हालत है उससे अत्यन्त भयानक स्थिति आ सकती है, जिससे मौ० शौकतअली अपने खास ढगसे सच्चा हिन्दू मुस्लिम समझौता करानेके लिए सचमुच चिंतित थे। स्वर्गमें उनकी आत्माको यह जानकर कि उनका एक जीवन उद्देश्य आखिरकार पूरा हो गया जितनी शान्ति मिलेगी उतनी किसी दूसरे कामसे नहीं। ऐसे भी लोग हो सकते हैं जिन्हें कि इसमें सन्देह हो, लेकिन मौलानाको उनका दिमाग किस तरह काम करता था इसको अच्छी तरह जानकर, जैसा कि मै उन्हे जानता था, मैं भरोसेके साथ इस बातकी ताईद कर सकता हूँ।"

कभी-कभी जो वे जोशमे आकर खिलाफ बोल जाते थे, उसके बावजूद मौलानाके दिलमे एकता और शान्तिके लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफतके दिनोंमे बड़े मोहक ढंगसे बोलते व काम करते थे। मुझे इसमे कोई शक नहीं कि उनकी यादगारमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कौमोका एकताके लिए किया हुआ संयुक्त निश्चय ही सबसे सच्चा स्मारक होगा—खाली कागजी एकताका निश्चय नहीं, बल्कि दिली एकताका, जिसका आधार शक और बेएतबारी नहीं, बल्कि आपसका विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमे नहीं चाहिए, और बगैर इस एकताके हिन्दुस्तानके लिए सच्ची स्वतन्त्रता भी हासिल होनेकी नहीं।

हरिजन-सेवक

१७ दिसम्बर, १९३८



हिन्दू-मुस्लिम एकता

शिमलाकी मेरी पिछली यात्राके दर्मियान मेरा ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित किया गया कि कुछ कॉंग्रेसी अखबारोमे 'मुस्लिम लीग' और उसकी कार्रवाइयोकी ऐसी आलोचना की जा रही है जिससे कि कटुता बढ़ रही है। ऐसी कोई आलोचना मेरे देखनेमें नहीं आयी है। इसका कारण शायद यही है कि अखबारोंको मैं पढ़ता नहीं, रोज सरसरी तौरसे उन्हें चंद मिनट देख भर लेता हूँ। पर अगर ऐसी शिकायतके लिए कोई आधार हो, तो उसे हटा देना चाहिए। मुस्लिम लीग एक महान सस्था है। उसके अध्यक्ष एक जमानेमें एक उत्कट कॉंग्रेसमैन माने जाते थे। कॉंग्रेसको उनसे बहुत आशा थी। लार्ड विलिंगडनके साथ जिस बहादुरीसे वे लड़े थे, उसे हम भूल नहीं सकते। बम्बई कॉंग्रेसका "जिन्ना हाल" कॉंग्रेसके अर्थ किये गये महान प्रयत्नोका एक स्थायी स्मारक है और कॉंग्रेसजनो द्वारा की गयी उनकी सेवाओंकी कद्रका एक चिह्न है। लीगमे ऐसे अनेक सदस्य हैं जो चिरस्मरणीय खिलाफतके दिनोंमे कॉंग्रेसके साथ पूरे दिलसे थे। मेरा ऐसा ख्याल नहीं है कि ये दोस्त अपने कलके कार्यकर्ताओंके प्रति अपने दिलोमे इतनी कटुता रख सकते हैं, जैसा कि उनके आजके भाषणों और लेखोंसे जाहिर होता है। इसलिए कांग्रेसमैन और कॉंग्रेसी अखबार आज लीग या उसके सदस्योंके प्रति कटुता जाहिर करते हैं तो यह उनको मुनासिब नहीं। लीग और उसके सदस्योके साथ पेश आनेमे कांग्रेसकी अहिंसा-नीतिको कांग्रेसजनोके भाषणों, लेखों और कार्योंपर आसानीसे नियंत्रण कर देना चाहिए।

उन्हें दृढ़तापूर्वक यह विश्वास और आशा करनी चाहिए कि जल्दी या देरसे और मेरे ख्यालसे तो जल्दी ही—साम्प्रदायिक एकता, ऊपरी या बनावटी नहीं बल्कि सच्ची और पायेदार एकता, होनेवाली है। मरहूम मौलाना शौकतअलीके पुत्र जाहिद, जो शिमलामें मुझसे मिले थे, कहते थे—"हमे हर्गिज नहीं लड़ना चाहिए। पानीसे खून कहीं ज्यादा गाढ़ा होता है। हम सब एक ही खूनके हैं। एकताके लिए आप जरूर कोशिश कीजिए।"

यात्राके दरमियान दूसरे मुसलमान दोस्तोने मुझसे कहा—"एकताके लिए आप जरूर जतन करें। इस कामको आप ही कर सकते हैं। अगर आपके जीते जी एकता न हुई तो फिर खुदा ही मददगार है।" इसी तरहका संदेश एक दूसरे महान मुसलमानने भी मुझे भेजा है।

हो सकता है कि यह सब मेरे दावेकी झूठी तारीफ हो पर मैं यह जानता हूँ कि यह मुझे विनम्र बनाती है। क्या अच्छा होता कि मेरे इतने तमाम मुसलमान दोस्तोंने सचाईके साथ जो आशा जाहिर की है उसे पूरी करनेकी ताकत ईश्वरने मुझे दी होती। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि ऐसा एक भी दिन नहीं जाता जब कि मैं इस एकताके लिए चिंतन और प्रार्थना नहीं करता। दोनो कौमोके बीचमें आज जो इतनी ज्यादा कटुता और कशमकश मुझे लाचार बनकर देखनी पड़ती है इसका कारण इच्छा या प्रयत्नका अभाव नहीं है। मैंने यह आशा नहीं छोड़ी है कि न सिर्फ हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच बल्कि तमाम कौमोके बीच, जो कि भारतको एक राष्ट्र बनाती हैं, सच्ची एकताकी स्थापना देखनेके लिए मैं जीवित रहूँगा। अगर उसे पानेका रास्ता मुझे मालूम होता, तो मै यह जानता हूँ कि उसकी—फिर वह कितना ही कठिन और कटीला क्यो न हो—इच्छा और शक्ति मुझमे है। मैं यह भी जानता हूँ कि सबसे कम दूरीका और सबसे निश्चित मार्ग अहिंसाका है। कुछ मुसलमान मित्र मुझसे कहते हैं कि मुसलमान खालिस अहिसाको कभी स्वीकार नहीं करेंगे। उनका कहना है कि मुसलमानोके लिए हिसा उतनी ही जायज और जरूरी है जितनी कि अहिसा। इन दोनोका इस्तेमाल परिस्थितियोपर निर्भर करता है। दोनोके जायज होनेका औचित्य साबित करनेके लिए कुरानका प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं। यह भलीभाँति जाना-माना मार्ग है जिसपर कि युगोसे दुनियाँ चलती आ रही है। ससारमे खालिस हिसा जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन मैंने बहुतसे मुसलमान दोस्तोसे सुना है कि कुरान अहिसाके उपयोगकी शिक्षा देता है। क्षमाको उसने बदलेसे ऊँचा माना है। इस्लाम लफ्जके मानी ही अमनके हैं और अमन या शान्तिका नाम अहिसा है। बादशाह खानने, जो एक पक्के मुसलमान हैं और नमाज पढ़ने और रोजा रखनेसे कभी नहीं चूकते, अहिसाको बतौर धर्मके पूरी तरह अपना लिया है। ऐसा कहना कोई जवाब नहीं कि वह अपने इस अकीदापर पूरा अमल नहीं करते। मैं जानता हू और मेरे-लिए यह शर्मकी बात है कि अमल तो

जैसा चाहिए वैसा मैं भी नहीं करता। हमारे कार्योंमें अगर अन्तर है तो वह प्रकारका नहीं, मात्राका है। लेकिन अहिंसाके बारेमे कुरान-मजीदकी दलील अस्थानीय है, मेरे दावेके लिए वह जरूरी नहीं।

मैं यह मानता हूँ कि अहिंसाके पूरे अमलके लिए केवल एक पक्षका उसमें विश्वास करना जरूरी है। सचमुच अगर दोनो पक्ष उसमे विश्वास और उसपर अमल करें, तो न तो इसमे उसकी कोई तारीफी है और न उसके प्रदर्शनकी जरूरत। एक दूसरेके साथ सब अमनसे रहें इसके लिए प्रयत्न करना सबसे कुदरती चीज है। लेकिन अहिंसाके अमलमे जो सौन्दर्य निहित है उसका लाभ किसी पक्षको नहीं मिलता। दुर्भाग्यसे आज वे हिन्दू जो अपनी अयोग्यतापर अफसोस करते हैं बड़े शौकसे इस फनको सीख लेना चाहते हैं। मैं इसे हिंसाकी कला नहीं कहूँगा, यह कि जिसे वे मुस्लिम-हिंसाके रूपमे बयान करते है उससे बराबरी कर सकें। और अगर दोनो पक्षोको हिंसाके इस्तेमालमे बराबरीसे मुकाबिला करने लायक बनकर मुल्कमे शान्तिकी स्थापना करनी है तो मैं यह जानता हूँ कि ऐसी शान्ति मेरे जीवन-कालमे यहाँ आने की नहीं, और अगर आयी तो उसे देखनेकी मुझे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वह शांति तो शस्त्र-बलपर आधार रखनेवाली शांति होगी, जो किसी भी क्षण भंग हो सकती है। यूरोपमें इसी तरहकी शांति रही है। ऐसी शांतिसे हमे बेजार कर देनेके लिए क्या यूरोपका वर्तमान युद्ध काफी नहीं है ?

जो मुसलमान मित्र मुझसे बहुत आशा रखते हैं, वे शायद अब मेरी इस मर्मवेदनाको समझ गये होगे कि मैंने जो सख्त कोशिश की है और अब भी कर रहा हूँ उसके बावजूद मैं वह अमन व एका हासिल न कर सका। उन्हें यह भी देखना चाहिए कि मेरा मुख्य काम कम-से-कम हिन्दुओंको यह सिखा देना है कि वे अहिंसाकी कला सीख लें, जबतक कि मैं मुसलमानोको उस स्थितिपर न ला सकूँ, जिसे कि अली-बन्धुओ और उनके साथियोंने खिलाफतके दिनोंमें अख्तियार किया था। वे कहा करते थे—"हमारे हिन्दू भाई हमारे टुकड़े-टुकड़े भी कर डालें, तब भी हम उनसे प्रेम करेंगे। वे हमारे सगे भाई-बन्धु हैं।" मरहूम मौलाना अब्दुल बारी कहा करते थे—"हिन्दुस्तानके मुसलमान उस बेदरेग और बिला शर्त मददको कभी भूलनेको नहीं, जो हमारी तवारीखके इन नाजुक दिनोंमें हिन्दुओंने हमें दी है।" मुझे इसका विश्वास है कि इन दिनोंके हिन्दू और मुसलमान दोनो ही आज भी वही हैं, जो कि वे तब थे। लेकिन जमाना बदल गया है। और जमानेके साथ-साथ हमारे अखलाक बदल गये हैं। मुझे इसमे जरा भी शक नहीं कि एक-न-एक दिन हमारे दिलोका मेल-मिलाप होगा। आज हमारे लिए जो नामुमकीन-मालूम पड़ता है उसे किसी दिन ईश्वर मुमकीन बना देगा। उसी दिनके लिए काम मैं करता हूँ, जीता हूँ और प्रार्थना करता हूँ।

हरिजन-सेवक

७ अक्तूबर, १६३६

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

अगर कोई इस बातका सबूत चाहे कि कांग्रेसकी अहिंसा सचमुच स्थगित या निष्क्रिय हिंसा थी, तो इसका सबूत हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें प्रदर्शित प्रभावकारी हालाँकि बिलकुल अनुशासनहीन हिंसाके रूपमें दिया जा सकता है। यदि खिलाफत आन्दोलनमें भाग लेनेवाले हजारों हिन्दू-मुसलमान सच्चे दिलसे अहिंसक रहे होते, तो आज एक दूसरेके प्रति इतने हिंसापूर्ण न होते जितने कि आजकल वे लगातार पाये जाते हैं। और यह भी कहा जा सकता है कि इन दंगोंमें भाग लेनेवाले सबको गैर-कांग्रेसी करार दे दिया जाय, तो कांग्रेसको आम जनताकी संस्था कहना छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि दंगोंमें भाग लेनेवाले हिन्दू और मुसलमान आम-जनतासे ही निकलते हैं। फिर इसके अलावा, हम कांग्रेसी सभाओंमें यह भी देखते हैं कि प्रतिस्पर्धी कांग्रेसी-एक दूसरेके विरुद्ध भी हिंसापर उतर आते हैं। कांग्रेसके चुनावोंमें दिखाया जानेवाला अनुशासन-भंग और फरेब ही इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि कांग्रेसमें भी हिंसा मौजूद है। इसलिए यह कहना कठिन है कि यदि अहिंसक कांग्रेसी काफी बहुसंख्यामें होते और यदि हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें उन्होंने काफी प्रभावकारी भाग लिया होता, तो वे इन दोनोंको बन्द कर सकते थे या कमसे कम उन्हें बन्द करनेकी कोशिशमें अपनी जान दे सकते थे। यदि ज्यादातर कांग्रेसी सच्चे अहिंसक होते, तो मुसलमान भी यह मान जाते कि कांग्रेसियोंपर मुस्लिम-विरोधी होनेका दोष नहीं लगाया जा सकता। कांग्रेसियोंके लिए इतना ही कहना काफी नहीं है कि उनका रुख बिलकुल निर्दोष है। मैं भले ही कानूनी तौरपर खरा उतर जाऊँ, लेकिन अगर हिंसाकी तराजूपर मेरे कामोंको तौला जाय, तो मैं भी बुरी तरह असफल सिद्ध हूंगा। लेकिन अहिंसा तो शूरवीर और दृढ़ लोगोंकी ही अहिंसा होनी चाहिए। अहिंसाकी भावना अतिरिक्त श्रद्धासे उत्पन्न होनी चाहिए। इसलिए मैंने यह कहनेमें कभी संकोच नहीं किया कि यदि हमारे हृदयोंमें हिंसा है तो अपनी नपुंसकता छिपानेके लिए अहिंसाका चोला पहननेकी अपेक्षा हिंसात्मक रहना ही अच्छा है। नपुंसकताकी अपेक्षा हिंसा ही हमेशा अच्छी है। एक हिंसकसे कभी अहिंसक होनेकी उम्मीद की जा सकती है, लेकिन नपुंसकसे कभी ऐसी आशा नहीं की जा सकती है।

हरिजन-सेवक
२१ अक्तूबर, १६३६



बहु-संख्यकोंका फर्जी डर

यह देखकर दरअसल डर होता है कि कॉंग्रेसने जिस घोषणाकी मॉंग की है, ब्रिटिश अखबार और ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अल्पसंख्यकोंके हितोंकी दुहाई देकर उस घोषणाको, मैं कह सकूॅं तो, सर्वसाधारणके हितमें रुकवाना चाहते हैं। काँग्रेसने जो मॉंग रखी है, उसके वजनको अगर अभी अच्छी तरह महसूस न किया गया, तो वह घोषणा नहीं होगी। यदि ऐसी कोई घोषणा नहीं होती, तो काँग्रेसियोंको इससे निराश नहीं होना चाहिए। जब स्वतंत्रताका योग्य समय आयेगा, वह मिल जायगी। लेकिन ब्रिटिश सरकार और उसके दोस्तोंके लिए यह अच्छा होगा कि वे आसानीसे विश्वास कर लेनेवाली दुनियाँको अल्पसंख्यकोंके हितोंकी दलील देकर भुलावेमें न डालें। इमानदारीकी बात तो यह है कि अंग्रेज कह दें कि हम अभी भारतपर अधिकार रखना चाहते हैं। यह इच्छा उनकी स्वाभाविक ही है। भारतको उन्होंने जीता है। अपने विजित देशको कोई तबतक नहीं छोड़ता जब-तक कि विजित लोग सफल विद्रोह नहीं कर लेते या जागृतिपूर्ण विवेक द्वारा विजेता अपनी जीतपर स्वयं पछताने नहीं लगता अथवा विजित प्रदेशसे विजेताको किसी किस्मका भी लाभ होना बन्द नहीं होता। मैंने उम्मीद की थी और अब भी कर रहा हूँ कि अंग्रेज—जो लड़ाईसे बहुत थके हुए हैं और वर्तमान युद्धमें होनेवाले उन्मादपूर्ण कत्लेआमके कारण परेशान हैं—सब प्रकारके झगड़ोंसे, और इसलिए भारतकी समस्यासे भी, जल्दीसे जल्दी निश्चिंत होना चाहते हैं। लेकिन वे तबतक पूर्णतया निश्चिंत नहीं हो सकते जबतक कि भारत उनकी गुलामीमे जकड़ा हुआ है।

मै जानता हूँ कि कुछ लोग मुझसे इस कारण रुष्ट हैं कि मैंने यह दावा किया है कि काँग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है, जो सम्पूर्ण भारतवासियोंका प्रतिनिधित्व कर सकती है। यह निरा घमंडका ही कल्पना नहीं है। काँग्रेस विधानकी पहली धारामें ही यह स्पष्ट है। काँग्रेस समस्त भारतकी स्वतंत्रता चाहती है और उसके लिए काम करती है। वह न केवल बहुसंख्यकोंकी प्रतिनिधि है और न सिर्फ अल्प-संख्यकोंकी। वह तो बिना किसी भेदभावके सबका प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए जो लोग इसका विरोध करते हैं, उन्हें भी स्वतंत्रताका दावास्वीकृत होनेपर चिन्ताकी जरूरत नहीं। जो लोग इस दावेका समर्थन करते हैं, वे कांग्रेसके इस दावेकी ताकत बढ़ाते हैं।

ब्रिटेन अब दुनियाँके सामने ऐसे हिन्दुस्तानियोंको ही लानेकी कोशिश करता रहा है, जो भारतमे ब्रिटेनको शासक और विभिन्न दावेदारोंमे पंच बनाये रखना चाहते हैं। ऐसे लोग हमेशा रहेंगे। सवाल तो यह है कि क्या ब्रिटेनके लिए यह

उचित है कि वह भारतपर अपना अधिकार कायम रखनेके लिए हमारे आपसी झगड़ोंका इस तरह ढिंढोरा पीटता फिरे, अथवा उसके लिए यह उचित है कि वह अपनी भूलको महसूस करे और भारतपर खुद अपना शासन-विधान बनानेकी जिम्मेवारी डालकर निश्चित हो जाये ?

और, फिर ये अल्पसंख्यक कौन हैं ? धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टियोंसे अल्पसंख्यक गिने जाते हैं। इस तरह मुसलमान (धार्मिक), दलित श्रेणियाँ (सामाजिक), लिबरल, राजे-महाराजे (राजनीतिक), प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक (धार्मिक), जैन (सामाजिक), जमींदार (राजनीतिक) अल्पसंख्यक होते है। आल-इण्डिया शिया-पोलिटिकल-कान्फ्रेंसके सेक्रेटरीका एक पत्र मेरे पास आया है, जिसमे शियाओंको एक अलग ही फिरका माननेकी मांगकी गयी है। इस अजीब गड़बड़झालेमे कौन बहुसंख्यक होनेका दावा कर सकता है ? मुसलमान भी कई हिस्सोंमे बँटे हुए है और इसाइयोंका भी यही हाल है। ऐसे प्रत्येक दलको स्वीकार करना ब्रिटिश सरकारकी नीति रही है जो पर्याप्त जोरसे आवाज बुलंद करने लगे और दूसरोंके लिए कुछ तकलीफदेह बन जाये। मैंने अल्पसंख्यकोंकी यह मनगढ़न्त तस्वीर ही नही खींची है। यह बिलकुल असली चित्र है। खुद कांग्रेसका इन सब दलोंसे, जिनका मैंने जिक्र किया है, वास्ता पड़ा है। मेरी सूची अभी पूरी नहीं है यह तो केवल उदाहरण-मात्र है। इसे बहुत दूरतक लम्बा खींचा जा सकता है।

मैं जानता हूं कि हिन्दुओंको बहुसंख्यक कहनेका फैशनसा चल पड़ा है। लेकिन हिन्दुत्व भी एक बहुत लचीला शब्द है। इसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। और सब हिन्दू-मुसलमानों या इसाइयोंकी तरह कोई एक सामाजक नहीं है और जब कोई व्यक्ति प्रान्तीय धारासभाओंमें बहुसंख्यकोंका विश्लेपण करने लगता है, तभी यह महसूस होता है कि धारासभा कितने अधिक तथाकथित अल्प संख्यकोंका समूह है। दूसरे शब्दोंमे, और सचमुच भी जहाँतक हिन्दुस्तानका ताल्लुक है—यहाँ केवल राजनीतिक आधारपर ही पार्टियोंका संगठन हो सकता है, अल्प-संख्यक या बहुसंख्यक साम्प्रदायिक पार्टियां नहीं बन सकतीं। बहुसंख्यकोंके अत्याचारोंका शोर बिलकुल कृत्रिम आन्दोलन है।

राजेन्द्रबाबूने जवाबमे जिन्ना साहबको कांग्रेस व मुस्लिम लीगके सवालात एक पंचके सुपुर्द करनेकी बात लिखी थी। मुझे मालूम हुआ है कि उन्होंने इसके जवाबमे लिखा है कि मैंने यह सारा मामला वायसरायके सामने पेश कर दिया है और उनसे इस मामलेको जल्दी हाथमे लेनेकी प्रार्थना की है, चूंकि वायसराय और प्रान्तोंके गवर्नरोंको विधानके मातहत यह अधिकार और जिम्मेवारी दी गई है कि वे अल्प-संख्यकोंके अधिकारों व हितोंकी रक्षा करें।

जिन्ना साहबने कहा है—

"अब यह सारा मामला हिज-एक्सीलेंसीके विचाराधीन है और वही एक ऐसे

योग्य अधिकारी है, जो ऐसे मामलोंको अपने हाथमे ले सकते है और हमारी जरूरते पूरी करनेके लिए उचित कदम उठा सकते है। वायसराय ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति है, जो उन प्रान्तोंके मुसलमानोंको पूर्ण सन्तोष और आश्वासन दे सकते है जिन प्रान्तोंका शासन-सूत्र आज कांग्रेसी मन्त्रियोंके हाथमे है।"

यह दुर्भाग्यकी बात है कि जिन्ना साहबने राजेन्द्रबाबूके इस युक्तियुक्त प्रस्तावको भी ठुकरा दिया। क्या यह मित्रताके बढ़ाये हुये हाथको ठुकराना नहीं है? कुछ भी हो, वायसरायकी जॉच और कांग्रेसी-मंत्रियोंके विरुद्ध लगाये गये आरोपोंपर उनके फैसलेके वरखिलाफ कोई व्यक्ति कुछ नहीं कह सकता। हमे उम्मीद करनी चाहिए कि वे शीघ्र ही जॉच करेंगे। मुसलमान अल्पसंख्यक माने जाते हो या बहुसंख्यक, उनके तथा अन्य सम्प्रदायोंके अधिकारों व स्वार्थों, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक हितकी, पवित्र धरोहरकी भॉति, इज्जत व रक्षा करनी चाहिए और भारतकी स्वतन्त्रतासे इन अधिकारोंकी रक्षामे कोई अन्तर नहीं आयेगा। सच तो यह है कि उस समय इन अधिकारोंकी रक्षा और भी अच्छी तरह होगी, क्योंकि स्वतन्त्रताके घोषणा-पत्रके बनानेमें राष्ट्रके सब प्रतिनिधियों—मुसलमानो और अल्पसंख्यकों, वास्तविक या तथाकथित अल्पसंख्यकोंका भी काफी हाथ होगा।

एक क्षणके लिए कल्पना करे कि अगर अंग्रेज एकदम अचानक ही यहॉसे चले जायें और यहाँ शासन करनेके लिए कोई भी विदेशी आक्रान्त न रहे तो क्या होगा? यह कहा जा सकता है कि पंजाबी—वे सिक्ख हो, मुसलमान हो या कोई दूसरे हो—सारे हिन्दुस्तानपर जबरन कब्जा कर लेगे। यह भी बहुत सम्भव है कि गोरखे पंजाबियोंसे मिल जाये। यह भी कल्पना कर लीजिए कि गैर-पंजाबी मुसलमान पंजाबियोंके साथ भारतपर अधिकार करनेके लिए मिल जाते हैं। तब कांग्रेसी, जो ज्यादातर हिन्दू है, कहाँ रहेंगे? यदि वे तबतक भी सच्चे अहिंसक रहे, तो उन्हें ये लड़ाके तंग नहीं कर सकेंगे। वे कांग्रेसी इन लड़ाकोंसे मिलकर ताकतको बॉटना नहीं चाहेंगे, पर उसके विपरीत यह कोशिश करेंगे कि उनके अपने नि:शस्त्र देशवासी इन लड़ाकोंके शिकार न होने पायें। इसलिए यदि किसीको अधिक शक्ति-शाली तत्वसे बचावके लिए ब्रिटिश संरक्षणकी आवश्यकता हो सकती है तो वे कांग्रेसी और वे हिन्दू या दूसरे लोग ही हो सकते हैं, जिनका प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है। इसलिए सवाल यह नहीं रह जाता कि तादादमे कौन ज्यादा है, बल्कि यह हो जाता है कि मजबूत कौन है। इसका एक ही जवाब हो सकता है। अल्पसंख्यकोंके खतरेकी आवाज उठानेवालोंको नाममात्रके बहुसंख्यकोंसे डरनेकी कतई जरूरत नहीं है। इनकी बहुसंख्या केवल कागजपर लिखी बहुसंख्या है, फिर यह कुछ ज्यादा कर भी नहीं सकती, क्योंकि यह सैनिक दृष्टिसे बहुत कमजोर है। यद्यपि यह बात ऊपरसे असत्य मालूम पड़ती है, किन्तु अक्षरश: यह सत्य है कि तथाकथित

अल्पसंख्यकोंको जो थोड़ा बहुत डर है भी, उसका आधार भी सिर्फ तबतक है, जबतक कि दुर्बल बहुसंख्यकके पास प्रजातंत्रका खेल खेलनेके लिए ब्रिटिश शस्त्र-बलका सहारा है। लेकिन ब्रिटिश-सत्ता जबतक चाहेगी, तबतक कभी एक पार्टीका, और कभी दूसरी पार्टीका, इन पार्टियोंका नाम वह जो चाहे रखें, साथ देकर यह खेल कामयाबीके साथ खेलती रहेगी। और यह जरूरी नहीं है कि इसमें ब्रिटिश बेइमानी ही करे। इमानदारीके साथ वे यह विश्वास कर सकते हैं कि जबतक भारतमें इस तरह दो पार्टियाँ आपसमें लड़ती रहती है, इन दोनों पार्टियोंमें संतुलन रखनेकी ईश्वरीय प्रेरणाके अनुसार उन्हें भारतमें रहना ही चाहिए। लेकिन यह मार्ग प्रजातंत्रका नहीं है। यह तो फासिज्म, नाजिज्म, बोल्शेविज्म या साम्राज्यवाद—ये सभी जिसकी लाठी उसकी भैंसके सिद्धान्तके रूप है—का मार्ग है। मैं खुशीसे यह आशा कर सकता हूं कि यह युद्ध इस स्थितिको बदल देगा पर यह तभी हो सकता है, जब कि भारतको स्वतंत्र मान लिया जाये, और वह स्वतंत्र भारत राजनीतिक मैदानमें भी विशुद्ध अहिंसाका परिचय दे।

हरिजन-सेवक
२१ अक्तूबर, १९३९



मैं क्या ईश्वरका सन्देशवाहक हूँ ?

एक मुस्लिम मित्रने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा है। वह कुछ काट-छाँट कर नीचे दिया जाता है—

"आप प्रत्येक वस्तुपर सही तौरसे विचार नहीं कर सकते। आपके मार्गमें मुख्य कठिनाई यह है कि आपने अपने जो सिद्धान्त खुद बना लिए हैं, उन्हींकी रोशनीमें आप सदा हरेक चीजको देखते हैं और उन्हींके अनुसार उनकी व्याख्या करते हैं और इस तरह आपका हृदय काफी सख्त हो गया है कि आप किसी चीजको खुले दिमागसे नहीं देख सकते, चाहे वह कितनी ही महत्वकी क्यों न हो।

"अगर ईश्वरने आपको अपना संदेश-वाहक नियुक्त नहीं किया है, तो यह दावा नहीं किया जा सकता कि आप जो कुछ कहते या शिक्षा देते हैं, वह ईश्वरके वचन हैं। सत्य और अहिंसाकी सचाईका कोई प्रतिवाद नहीं कर सकता, क्योंकि वे पैगम्बरोंकी शिक्षाएँ हैं और बहुत ऊँचे आध्यात्मिक सिद्धान्त हैं, लेकिन उनका सच्चा अर्थ और उन्हें कहाँ किस तरह अमल करना है, यह भी सिर्फ वही बता सकता है जिसका परमात्मासे सीधा सम्बन्ध हो। महज अपनी स्थूल और सूक्ष्म वासनाओं और लालसाओंको दबाने और उनके विरुद्ध आचरण करनेमें कोई व्यक्ति पैगम्बर नहीं हो जाता।

"आप अपनेको जगतका गुरू मानते है, आप यह दावा करते है कि आपने उस बीमारीको जान लिया है जिससे ससार पीड़ित है, आप यह भी ऐलान करते हैं कि आपकी पसन्द की हुई और आपकी अमलमे लाई हुई सचाई और आपकी मागी हुई और प्रयोगमे लायी हुई अहिंसा पीड़ित ससारके सच्चे इलाज हैं। आपकी यही सब बातें आपको धोखा देती हैं और सत्यका ठीक-ठीक स्वरूप नहीं जानने देतीं। आप यह स्वीकार करते हैं कि आप गलतियाँ करते हैं। आपकी अहिंसा दरअसल एक छिपी हुई हिंसा है, क्योंकि उसका आधार सच्चा आध्यात्मिक जीवन नहीं है और न वह परमात्माकी ओरसे सच्ची प्रेरणाका चिन्ह है।

"एक सच्चे मोमिनके नाते और इस्लामकी इस शिक्षाके अनुसार कि हरेक मुसलमानको प्रत्येक प्राणी तक सत्यका सदेश पहुचाना चाहिये, मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप अपने दिलको सब तरहके पेचीदा विचारोंसे रहित करके साफ कर लिजिए, आप अपनेको ऐसे एक साधारण मनुष्यकी स्थितिमे समझिए जो सीखना चाहता है, न कि दुनियाँको उपदेश देना चाहता है, और इस तरह आप सत्यके असली शोधक बनिए।

"आप अगर सचमुच सत्यकी तलाश करना चाहते है, तो मै आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप कुरान पढें और हजरत मुहम्मदकी (अल्लाहकी शान्ति उन्हे प्राप्त हो) शिबली नोमानी और एम० सुलेमान नदवी लिखित जीवनी बिलकुल खुले हृदयसे पढे।

"हिन्दुस्तानमे रहनेवाले मुख्तलिफ सम्प्रदायोंकी एकताके सवालपर मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि एक राष्ट्र या कौमके रूपमे ये सब सम्प्रदाय कभी सगठित नहीं हो सकते। एक दूसरेके धर्म और रहन-सहनको उदारतासे सहने और मुसलमानोको एक राष्ट्र या कौमके रूपमे स्वीकार करने, उनकी सस्कृति व कानूनकी पूरी रक्षा, और राजनीतिमे बराबरीके दर्जेकी शर्तोंपर किये गये समझौतेसे ही हिन्दुस्तानमे शान्ति और एकता कायम हो सकती है।"

पत्र-लेखककी एक भी दलील मैंने नहीं छोड़ी।

मैंने अपने दिलको सख्त नहीं बनाया है। मैंने सिवाय उस अर्थमे, जिसमे कि सभी मानवप्राणी उसके संदेश-वाहक हैं, कभी यह दावा नहीं किया कि मैं परमात्माका संदेश-वाहक हूँ। मैं भी एक मरणशील मनुष्य हूँ और किसी भी दूसरे आदमीकी तरह गलती कर सकता हूँ। मैंने कभी गुरू होनेका भी दावा नहीं किया। लेकिन मैं प्रशंसकोंको ठीक उसी तरह मुझे गुरू या महात्मा कहनेसे नहीं रोक सकता, जिस तरह मैं अपने निन्दकोंको सब तरहकी गालिया देने और मुझपर ऐसी-ऐसी बुराइयाँ थोपनेसे नहीं रोक सकता, जो मुझमे कतई नहीं हैं। मैं तो स्तुति और निन्दा दोनोंको ही सर्वशक्तिमान परमात्माके चरणोंमे रखकर अपने मार्गपर बढ़ा चला जाता हूँ।

मैं अपने पत्र-लेखककी, जो एक हाई स्कूलमे हेडमास्टर हैं, जानकारीके लिए यह बता दूँ कि मैंने इनके द्वारा निर्दिष्ट तथा इस्लाम-संबंधी अन्य कई पुस्तकोंको

आदरके साथ पढ़ा है। मैंने कुरानको भी कई दफा पढ़ा है। मेरा धर्म मुझे इस योग्य बनाता है और प्रेरित करता है कि संसारके सभी महान्-धर्मोंमे जो कुछ भी सचाई और अच्छाई है, उसे मै अपनेमें धारण कर लूँ। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इस्लामके पैगम्बर या और किसी पैगम्बरके संदेशका जो अर्थ उक्त पत्र-लेखकने किया है, उसे ही जरूरी तौरसे स्वीकार कर लूँ। जो सीमित बुद्धि परमात्माने मुझे दी है; उसका प्रयोग मुझे संसारके पैगम्बरो द्वारा मानव-जातिको दी गई शिक्षाओंका अर्थ समझनेके लिए अवश्य करना चाहिए। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि पत्र-लेखक इस बातपर सहमत हैं कि पवित्र कुरान भी सत्य और अहिंसाकी शिक्षा देता है। इसमें कोई शक नहीं कि परमात्माने जो प्रकाश हमें दिया है उसके अनुसार इन सिद्धान्तोको अपने अमलमें लाना उक्त पत्र-लेखकका और हममेसे प्रत्येकका अपना-अपना काम है।

पत्रके आखिरी पैरेमें एक बहुत खतरनाक सिद्धान्तका जिक्र किया गया है। हिन्दुस्तान एक राष्ट्र या एक जाति क्यो नहीं है? क्या यह मुगल-कालमे भी एक न था? क्या भारत दो कौमोका मिलकर बना हुआ है? यदि ऐसा ही है, तो दोका क्यों? क्या ईसाई तीसरी जाति नहीं हैं? क्या पारसी चौथी जाति नहीं है और क्या इसी तरह दूसरे धर्म भी पृथक-पृथक जाति नहीं हैं? क्या चीनके मुसलमान दूसरे चीनियोसे पृथक राष्ट्रीयता रखते है? क्या इंगलैण्डके मुसलमान दूसरे अंग्रेजसे पृथक है? क्या पंजाबके मुसलमान हिन्दुओ और सिक्खोसे भिन्न हैं? क्या वे सब एक ही पानी पीनेवाले एक ही हवासे सांस लेनेवाले और एक ही जमीनसे खाद्य चीजें पानेवाले पंजाबी नहीं है? वहाँ उन्हें अपने-अपने धार्मिक कृत्यसे रोकनेवाली कौन-सी बात है? क्या संसारभरके मुसलमान एक पृथक राष्ट्रके हैं या सिर्फ हिन्दुस्तानके ही मुसलमान दूसरे मुसलमानोसे विशेष होकर पृथक राष्ट्र हैं? क्या भारतको दो टुकड़ोमे, मुसलमानो और गैर-मुस्लिमोंमें, बाटना है? यदि ऐसा ही हो तो हिन्दू-प्रधान गांवोमे रहनेवाले मुट्ठीभर मुसलमानो या इसके विपरीत सीमाप्रान्त और सिन्धके मुस्लिम-प्रधान गांवोमे रहनेवाले मुट्ठीभर हिन्दुओंका क्या होगा? उपर्युक्त पत्र-लेखकने जो मार्ग सुझाया है, वह लड़ाईका मार्ग है। जियो और जीने दो या पारस्परिक क्षमा और सहिष्णुता ही जीवनका नियम है यही शिक्षा है जो मैंने कुरानसे पायी है, बाइबिलसे पायी है, जिन्द-अवस्तासे पायी है और गीतासे पायी है।

हरिजन-सेवक
२८ अक्तूबर, १९३९

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम एकताका मतलब है साम्प्रदायिक एकता। कोई समझौता इस समय हमारी निगाहमें नही है। जनाब जिन्ना साहब मुसलमानोंके हकोंकी रक्षाके लिए अंग्रेजोंकी ताकतपर ही भरोसा करते है। कांग्रेसका कुछ करना-धरना उन्हें सन्तुष्ट नही कर सकता। क्योंकि वह सदा ही, और उनके दृष्टिकोणसे यह स्वाभाविक भी है, उससे अधिक मांग सकते हैं जो अंग्रेज उन्हें दे सकते या देनेका विश्वास दिला सकते हैं। इसलिए मुस्लिम लीगकी मांगोंकी कोई सीमा नहीं हो सकती। जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है वह सारे हिन्दुओं या किसी और एक जातिकी प्रतिनिधि नहीं है। उसके प्रतिनिधि होनेकी मंशा बस यही है कि वह उन तमाम लोगोंका प्रतिनिधित्व करती है जिनका यह विश्वास है कि मुल्कको आजाद कराना चाहिए। और इस सिलसिलेमे लड़नेके लिए कांग्रेसका कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। वास्तवमें कांग्रेस ही देशकी एकमात्र राष्ट्रीय-सेना है। यही नहीं इससे बढ़कर यह बात है कि यह सेना अहिंसावादी है। कांग्रेस आजतक परम्परासे केवल राष्ट्रीय हितोंका ही प्रतिनिधित्व करती आई है, उसने कभी किसी एक दलका प्रतिनिधित्व नहीं किया। उसने निश्चय ही अकेले हिन्दुओंका ही कभी प्रतिनिधित्व नहीं किया। इस कामके लिए हिन्दू-महासभा और मुस्लिम लीग ही दावेदार हैं।

इसलिए इस हालतमें कांग्रेसके लिए यही उपाय रह जाता है कि वह कांग्रेसवादियोंको रास्ता दिखानेके लिए अपनी साम्प्रदायिक नीतिका स्पष्टीकरण कर दे, फिर चाहे वे कांग्रेसवादी किसी भी जातिके हों। अगर मुस्लिम लीग अंग्रेजोंसे कुछ हासिल कर सकती है, तो इसके लिए कांग्रेसको लीगसे लड़नेकी दरकार नहीं है।

हरिजन-सेवक
४ नवम्बर, १९३९



मतभेद

अलीगढ़के एक एम ए लिखते हैं—

"बहुतसे अवसरोंपर आपने कहा है कि कुरानशरीफके आपके अध्ययनने आपको यह स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम अपने अनुयायियोंको अहिंसाका आदेश देता है। आप यह भी कहते हैं कि शरीफ पैगम्बरके जीवनका आपका अध्ययन आपके इसी विश्वासका समर्थन करता है। मुझे आप यह कहनेकी इजाजत देंगे कि आपने अपने अध्ययनका जो

निष्कर्ष निकाला है, उसमे केवल अपनी इच्छाका ही ध्यान रक्खा होगा। सीधी-सादी बात तो यह है कि आपका दर्शन बल-प्रयोगका एकदम परित्याग करता है। उसके विपरीत इस्लाममे कुछ अवसरोपर बल-प्रयोगकी आज्ञा है। क्या बादमे पैगम्बरने बल-प्रयोगका उत्तर बल-प्रयोगसे नहीं दिया? अन्य प्रमाण देनेकी मै हिम्मत नही करता; क्योकि आप तो अपनी व्याख्या छोडकर अन्य व्याख्या स्वीकार ही नही करते। फिर भी मुझे आशा है कि सबसे पहिले असहयोग-आन्दोलनके समय आपके वशीभूत मौलाना साहबने ही जो कुछ कहा था, उसके प्रति कुछ श्रद्धा दिखावेगे। अदालतके सामने अपने वक्तव्यमे उन्होने कहा था, 'मैं महात्मा गाधीसे इस बातमे सहमत नहीं हूँ कि किसी भी दशामे बलका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। क्योकि मुसलमान होनेके नाते मैं यकीन करता हूँ कि इस्लाममे बताये गये कुछ खास मौकोंपर बल-प्रयोग करनेकी इजाजत है।' यही नही बल्कि अपने मुकदमेके दरम्यान उन्होंने अदालतके सामने अपने उसी वक्तव्यमे फिर यह भी कहा कि 'गैर-मुस्लिम सरकारके विरुद्ध इस्लाम केवल तलवार चलाना, लम्बा युद्ध और गला काटना ही सिखाता है।'

"मुझे निश्चय है कि मौलाना साहब आज भी इससे इनकार नही कर सकते।

"यह तो रहा इस्लाममे अहिंसाके बारेमें। अब मैं इस प्रश्नके बारेमे कि आया मुसलमान एक पृथक राष्ट्र हैं या नहीं, यह कहूँगा कि इस्लामके प्रारम्भसे ही मुसलमान तो एक पृथक राष्ट्र है। वे तो उस समय भी पृथक राष्ट्र ही थे जब मुहम्मद-बिन-कासिम भारत-भूमिपर आया और मुगल राज्य-कालमे भी वे पृथक राष्ट्र ही थे। आज भी वे पृथक राष्ट्र है, और अगर वे अपने धर्मके प्रति सच्चे है तो सदा वे पृथक राष्ट्र ही रहेगे। अकबरने न एक सामान्य-धर्म बल्कि एक सामान्य-सामाजिक-पद्धति भी चलानेका प्रयत्न किया, लेकिन उसका प्रयत्न असफल रहा। मुसलमान इस अर्थमे पृथक राष्ट्र है कि वे अपने शिनाख्तको अन्य किसी समुदायमे विलीन नही कर सकते। इससे एकताके समर्थकोको भयातुर होनेकी आवश्यकता नही है। किसी क्षेत्र-विशेषमे किसी विशेष उद्देश्यके लिए सहयोग सर्वदा सम्भव है। एक वायु-मण्डलमे सास लेने या एक भूमिपर बसनेसे ही राष्ट्र नही बनते। विचारोके ऐक्यसे राष्ट्र बनते है। धर्म मस्तिष्कको ढालता है। मुसलमान सिक्खका पड़ोसी हो सकता है। लेकिन उनके दृष्टि-बिन्दु, उनके विचार करनेके ढग और उनकी जिन्दगीके तौर-तरीके सदा एक-दूसरेसे भिन्न होगे। पृथ्वीके गोलेपर हवा तो सब जगह एक ही है। क्या इगलैण्डकी हवा किसी प्रकार भारतकी हवासे भिन्न है? प्राकृतिक अवस्थाये तो केवल शारीरिक रूपपर प्रभाव डालती है। मस्तिष्क उनसे प्रभावित नही होता। बेशक ईसाई भी पृथक राष्ट्र है और पारसी भी। भारत तो विभिन्न राष्ट्रोका देश है। जिस दिन राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) 'भारतीय राष्ट्रोका संघ' बन जायगी, वह दिन भारतके इतिहासमे परम-सौभाग्यका दिन होगा।

"बेशक, चीनमे भी मुसलमान एक पृथक राष्ट्र है। अगर यह कहा जाय कि उन्होने अपनेको अन्य जातियोंमे विलिन कर दिया है तो मै केवल यही कह सकता हूँ कि

समस्त इस्लामी दुनियाको उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। जो क्रिया चल रही है, वह अगर चलती रही तो मुसलमानोंका भाईचारा एक तमाशाभर रह जायगा। इस्लामने निश्चित रूपसे नियम बना दिया है कि मुसलमान अपनी पोशाक तकमें कुछ अन्तर रक्खें। क्या मौलाना साहब कांग्रेसकी कार्यसमितिके सदस्योंमें साफ नहीं झलकते ?"

इसका मुझे ज्ञान नहीं कि इस पत्रमें जो भाव है, वही बहुतसे शिक्षित मुसलमानोंका इस समय भाव है। कुरानकी इस व्याख्याके बारेमें किसी लम्बी दलीलमें पड़नेका मेरा विचार नहीं है। गैर-मुस्लिम होनेके कारण मेरी स्थिति तो घाटेमें है। अगर मैं दलील देना शुरू करूं तो उसका स्वभावतः यही जवाब मिलेगा कि, "आप तो गैर-मुस्लिम हैं। आप मुसलमानोंकी धर्म-पुस्तककी व्याख्या क्या जानें ?" उसका मैं फिर उत्तर दूँ कि इस्लाम और अन्य धर्मोंके प्रति मुझे उतनी ही श्रद्धा है जितनी कि मैं अपने धर्मके प्रति रखता हूँ, तो उससे कोई मतलब नहीं निकलेगा।

अपने संवाददातासे मैं यह कहूँ कि बद्रके युद्ध और पैगम्बरके जीवनकी वैसी ही दूसरी घटनाओंका भी मुझे ध्यान है। मैं यह भी जानता था कि खुद कुरानमें कई ऐसी आयतें हैं जो मेरी व्याख्यासे मेल नहीं खातीं। फिर भी मेरी रायमें यह सम्भव हो सकता है कि किसी पुस्तककी शिक्षा या किसी मनुष्यका जीवन किसी धर्म-पुस्तक कि जुदा आयतों या किसी महान जीवनकी घटनाओंसे, वे चाहे जितनी क्यों न हों, भिन्न हो सकता है। महाभारत खूनी युद्धकी कहानी है लेकिन कट्टर हिन्दुओंके विरोधके बीच भी मैंने यही कहा है कि वह पुस्तक युद्ध और हिंसाकी निष्फलताको दिखानेके लिए लिखी गई है।

मौलाना साहबके बचावमें कुछ कहनेका मुझे अधिकार नहीं है। वह तो स्वयं ही अपना बचाव करनेमें समर्थ हैं। ऊपर मौलाना साहबके बयानके जो उद्धरण दिये गये हैं उनका निश्चय ही मुझे स्मरण नहीं है। अपने संवाददाताकी सचाईपर मैं शक नहीं करता। केवल वह बयान ही पवित्र कुरानकी मूल-शिक्षाके बारेमें मेरे उस मतपर प्रभाव नहीं डालता, जिसे मैं बरसोंसे मानता आया हूं। अनन्तकाल तक मतोंमें तो भेद रहेगा ही। मैं तो पारस्परिक सहनशीलताका प्रतिपादन करता हूँ।

राष्ट्रोंके बारेमें संवाददाताने जो बात कही है, वह तो चौंका देनेवाली है। यह दावा करनेके लिए कि भारतमें मुसलमान पृथक राष्ट्र हैं, वहसकी गुंजाइश निकल सकती है। लेकिन मैंने कभी भी यह कहा जाता नहीं सुना कि संसारमें जितने धर्म हैं, उतने ही राष्ट्र हैं। अगर हैं, तो उससे नतीजा यह निकलेगा कि आदमी जब अपना धर्म बदलेगा तो उसके साथ उसकी राष्ट्रीयता भी बदल जायगी। संवाददाताके मतानुसार अंग्रेज और मिस्र, अमरीका, जापान आदिके निवासी राष्ट्र नहीं हैं, लेकिन मुसलमान, पारसी, सिख, हिन्दू, ईसाई, यहूदी, बौद्ध वे चाहे

जहाँ पैदा हुए हों, विभिन्न राष्ट्र हैं। मुझे भय है कि मेरे मित्र बड़े कमजोर आधार-पर यह दावा करते है कि राष्ट्रोका भेद धर्मके मुताबिक होता है और होना चाहिए। अप्रतिपादनीय प्रस्तावको साबित करनेके जोशमे संवाददाता अतिशयोक्ति कर गये हैं।

मुस्लिम खानदानोंने भारतको दो राष्ट्रोमे बांट दिया था, इस बातसे मैं इनकार करता हूँ। अकबरका उदाहरण असंगत है। उसका उद्देश्य तो धर्मोंका मेल करना था। वह तो एक ऐसा सपना था जो पूरा नहीं हो सकता था। लेकिन अन्य मुस्लिम शाहंशाहो और राजाओने समूचे भारतको अवश्य ही अविभाज्य माना। बचपनमे मैंने तो इसी ढंगसे इतिहास सीखा है।

अगर हम हिन्दू-मुसलमानो तथा दूसरोंको जन-तंत्रका निर्माण करना है, तो ऐसा हम तभी कर सकेंगे जब समस्त राष्ट्र अपने अधिकसे अधिक सम्भव मताधिकारसे चुने गये अपने प्रतिनिधियोंके द्वारा अपनी बात कहेगा, चाहे ब्रिटेनकी उसमें सदिच्छा हो या कट्टर विरोध। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो घोषणाएँकी गयी हैं, उनसे तो ब्रिटेनकी सदिच्छाकी आशा दिखायी नहीं देती। ब्रिटिश साम्राज्यवाद तो अब भी मजबूत है और सर सेम्युअल होरकी उसके विपरीत घोषणाके बावजूद उसका खातमा मुश्किलसे होगा। भारतके हिस्से करनेका प्रस्ताव तो साम्राज्यवादकी बढ़ात्तरीके लिए है। क्योकि भारतके हिस्से केवल ब्रिटिश संगीनोकी मददसे या खौफनाक गृह-युद्धसे ही हो सकते हैं। मुझे आशा है कि कांग्रेस इनमेसे किसीकी भी सहायक न होगी। ब्रिटेनका भारतके बारेसे युद्ध-संबंधी उद्देश्योंकी घोषणा करनेसे इनकार कर देना तो शायद छिपे तौरसे भारतके लिए शुभ ही हुआ है। इससे कांग्रेस मार्गमेसे हट जाती है और मुस्लिम लीगको आठ प्रान्तोके कांग्रेसी-शासनके दबावसे मुक्त होकर इस बातका निर्णय करनेका अवसर मिल जाता है कि आया वह भारतके टुकड़े करके ब्रिटिश शासनको कायम रक्खेगी या अविभाज्य भारतकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ेगी।

मुझे आशा है कि लीग भारतके टुकड़े करना नहीं चाहती। मैं यह भी आशा करता हूँ कि मेरे संवाददाता भारतमें अधिक मुस्लिम-मतका प्रतिनिधित्व नहीं करते। हाल ही में जनाब जिन्ना साहब और पंडित जवाहरलाल नेहरूमे फिर बात-चीत शुरू होगी। हम आशा करें कि इस बातचीतके फलस्वरूप साम्प्रदायिक झगड़ेके स्थायी हलका आधार निकल आयगा।

हरिजन-सेवक
११ नवम्बर, १९३९

❀

कांग्रेस क्या हिन्दू-संस्था है ?

लार्ड जेटलैण्डने अपने वक्तव्यके अन्तमें जो यह इलजाम लगाया है कि राष्ट्रीय महासभा याने कांग्रेस हिन्दुओंकी ही प्रतिनिधिक संस्था है और इसलिए वह सिर्फ नामके लिए राष्ट्रीय है पर वस्तुतः वह साम्प्रदायिक है जाहिरा तौरपर उसके बारेमें हमने कुछ नहीं सुना । पर कांग्रेसकी इससे बड़ी कोई मानहानि नहीं हो सकती । क्योंकि अपने जन्म-कालसे ही वह राष्ट्रीय रही है । उसके जन्मदाता एक अंग्रेज थे। स्वर्गीय ए० ओ० ह्यूम बहुत समयतक उसके मंत्री रहे हैं । उसके मंत्रियोंमे एक या दो सदा मुसलमान रहे हैं । मुसलमान, अंग्रेज, ईसाई और पारसी उसके अध्यक्ष हुए हैं । दादाभाई जबतक कि काम करनेके काबिल रहे तबतक कांग्रेसके कर्त्ता-धर्त्ता वही रहे हैं । हरेक बातमें वही रास्ता दिखलाते थे और उन्हींका दिमाग काम करता था । सर फिरोजशाह मेहता बम्बई प्रान्तके बेताजके बादशाह थे । और वही जिनको चाहते उनको कांग्रेस और बम्बई कार्पोरेशनका अध्यक्ष बनाते थे । बदरूद्दीन तैय्यबजी बरसोंतक कांग्रेसकी कार्रवाइयोंमें निश्चयात्मक भाग लेते रहे हैं । यह कौन नहीं जानता कि जबतक हकीम अजमल खाँ साहब जिन्दा रहे कांग्रेसकी कार्रवाइयोंमें कोई भी बात बिना उनकी स्वीकृतिके नहीं होती थी ? डॉ० अंसारी बरसोंतक संयुक्त-प्रधान-मंत्री रहे हैं । खिलाफतके दिनोंमे अली-बन्धुओंका कांग्रेसपर जो प्रभाव था उसे पाठक जानते ही हैं । आज भी वर्किंग कमेटी मौलाना अबुलकलाम आजादके सहयोग और बुद्धिमत्तापूर्ण पथ-प्रदर्शनके बगैर कुछ नहीं करती । हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नोंपर जो कुछ निश्चय होता है वह उन्हींकी रायसे होता है । कांग्रेस अब अपनी शताब्दिके उत्तरार्द्धमें है और अपने इस सारे इतिहासमें वह इस प्रकार समस्त भारतके प्रतिनिधित्वका प्रयत्न करती रही है जिस प्रकार और किसी संस्थाने नहीं किया । और कांग्रेसने जो भी विजय पायी उससे सभी जातियोंको लाभ पहुँचा है ।

अगर सचमुच ऐसी बात है, तो कांग्रेसने उस कार्यको क्यों हथिया लिया जो कि अखिल भारतीय हिन्दू सभाका काम है, कुछ क्रुद्ध पत्र-प्रेषक मुझसे पूछते हैं । 'ट्रिब्यून' ने भी, उसके सम्पादकको जो कांग्रेसकी तर्कहीनता मालूम पड़ी, उसपर प्रकाश डाला है । इस तर्कहीनता या असंगतिको कबूल करना पड़ेगा । लेकिन तर्क ही से जीवन-व्यवहार नहीं होता, न संस्थाओंका ही काम चलता है । स्पष्टत. देशकी राजनीतिक प्रगतिके लिए कांग्रेसको साम्प्रदायिक समाधानकी आवश्यकता प्रतीत हुई, और उसके फलस्वरूप १९१६ मे कांग्रेस-लीग- पेक्टकी सृष्टि हुई ।

तभीसे कांग्रेसने साम्प्रदायिक एकताको कांग्रेस-कार्यक्रमका आधार बना लिया है । तार्किक दृष्टिसे यद्यपि यह काम साम्प्रदायिक संस्थाओंका होना चाहिए था,

लेकिन विविध जातियाँ अगर आपसमें लड़ें-झगड़ें और जब राष्ट्रीय हितकी दृष्टिसे उसका हल आवश्यक हो जाय तो कांग्रेस जैसी लोक-संस्था चुपचाप सब कुछ देखती-भर नहीं रह सकती। इस प्रकार उसे स्पष्ट रूपसे कर्तव्यका जो आह्वान मालूम पड़ा उसके सामने यह उसकी अवहेलना नहीं कर सकी। कांग्रेस ऐसी संस्था है और होनी चाहिए, जो साम्प्रदायिक मामलोंमें शुद्ध राष्ट्रीय रहे और मैं इस बातपर जोर देता हूँ कि कांग्रेसमें ही भारतकी आशा और आकांक्षाएं निहित हैं। जहाँतक कि भारतकी राजनीतिक आकांक्षाओंका सम्बन्ध है अगर यह सारे भारतका प्रतिनिधित्व न करती हो तो यह किसीके साथ कोई समझौता या करार नहीं कर सकती। लेकिन इसकी तो सारी परम्परा ही ऐसी है कि यह मुसलमानोंके खिलाफ हिन्दुओंका या हिन्दुओंके खिलाफ मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। वह तो भारतके सब पुत्रोंके सर्वसामान्य हितके प्रतिनिधित्वके ही योग्य है। सामान्य हितकी दृष्टिसे किन्हीं आदमियों या उनकी संस्थाओंके साथ समझौते करनेकी कांग्रेस कोशिश करे तो उसमें मुझे कोई गलती नहीं मालूम पड़ती। हाँ, यह कहनेकी कोई जरूरत नहीं कि वे हों परस्पर सहायक, परस्पर विरोधी हर्गिज न हों। इसमें शक नहीं कि यह काम है मुश्किल, लेकिन अगर लोग और संस्थाएं कांग्रेसके प्रति सद्भावनासे काम लें, तो यह काम उसके क्षेत्र या उसकी योग्यतासे बाहरका नहीं है। आज उसे सबका विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए उसे उस दिनकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अगर कोई और संस्था ऐसा करे तो कांग्रेसजन उसका स्वागत ही करेंगे।

हरिजन-सेवक
१८ नवम्बर, १९३९



अनावश्यक भय

वायसराय महोदय और श्री राजेन्द्रप्रसाद तथा जिन्ना साहबके पत्र-व्यवहार-पर वायसरायकी भूमिकाके बारेमें मैंने जो वक्तव्य दिया था उसपर एक माननीय मित्रने लिखा है—

"आजके पत्रमें आपका वक्तव्य पढ़कर मुझे कुछ विस्मय और क्षोभ हुआ क्योंकि उसके कारण हमारी अगली कार्रवाई इस बातपर निर्भर हो जाती है कि मुस्लिम लीगके साथ हमारा समझौता हो जाय और वायसराय मेल-मिलापके अपने प्रयत्न बन्द कर दें। मैं समझता हूँ कि इससे ब्रिटिश सरकार या मुस्लिम लीग किसीके भी साथ समझौता करना बहुत मुश्किल हो जाता है।

शायद यही भावना और भी बहुतसे कांग्रेसजनोंकी भी है। इसलिए मुझे इस

भयके निराकरणकी कोशिश करनी आवश्यक है । मेरी रायमे दोनो ही सूरतोंमें सविनय-भगका स्थगित करना लाजिमी है । जब कि वायसराय विभिन्न दलोको खुश करनेका प्रयत्न कर रहे है, हमे भद्र-अवज्ञा शुरू न करनी चाहिए। यह तय है कि ऐसा अनिश्चित या बहुत लम्बे समयतक नहीं हो सकता । हम कोई गलती न करें। यह अवज्ञा सिर्फ इसीलिए स्थगित की गयी है जिससे वाइसराय्को समझौतेके उनके प्रयत्नमे मदद मिले।

रही मुस्लिम लीगकी बात, सो यह मुझे स्वयंसिद्ध मालूम पड़ता है कि आपसमे लड़ते हुए हम बडे पैमानेपर सविनय-भंग शुरू नहीं कर सकते। यह बिलकुल साफ है। इनके अलावा, अपने तई या दूसरोसे सचाईको छिपाकर हम सच्चा समझौता नहीं कर सकते। मैं इस बातपर विश्वास नहीं करता कि मुसलमान अन्य लोगोंकी प्रगतिको, जो कि दूसरोकी ही तरह उनके लिए भी उतनी ही फायदेमन्द है, किसी लम्बे अर्सेतक रोक सकते हैं । यह कबूल करनेमे मुझे कोई खतरा नहीं मालूम पड़ता कि करोड़ो मुसलमान आजादी न चाहें तो जबतक दूसरे उनसे लड़नेको तैयार न हो दूसरोके लिए उसे कुछ समयके लिए जरूर रोक सकते हैं । जहाँतक कांग्रेसका ताल्लुक है मैने इस सम्भावनाको निकाल दिया है । इस स्पष्ट बातकी स्वीकारोक्ति मुस्लिम लीगके प्रति सद्भावनाका संकेत है । साथ ही, इससे देशकी प्रगतिको अवरुद्ध करनेकी जिम्मेदारी मुस्लिम लीगपर आ जाती है। अतः इस स्वीकारोक्तिसे समझौतेका वातावरण बढ़ना चाहिए।

मेरी आलोचनामे 'कार्रवाई' शब्दका जो प्रयोग किया गया है वह ध्यान देनेके काबिल है। जिन दो सूरतोका मैने उल्लेख किया है उनमे मैने सिर्फ सविनय-भंग ही स्थगित रखनेको कहा है, हर तरहके काम बन्द रखनेको नहीं। कांग्रेस कोई जड़-संस्था नहीं है, वह तो सदा प्रगतिशील है । आगेकी घटनाओंकी कल्पना तो मैं नहीं कर सकता। लेकिन मुझे इसमें कोई शक नहीं कि समस्याके मुकाबिलेके लिए कांग्रेस अपने आप लादी हुई अपनी सीमाओंके अन्दर सविनय-भगके अलावा अन्य उपाय ढूढ़ लेगी। इस बातको मैं फिरसे कहूँगा कि अधीर होकर हम अपने ध्येयको ही नुकसान पहुँचायेंगे। रोज ही स्त्री-पुरुषके ऐसे पत्र मुझे मिलते रहे हैं, जिनमे वे लिखते हैं कि वे सिर्फ मेरी आज्ञाके इन्तजारमें हैं और वे अपने व्यवहारका अच्छा सबूत देंगे तथा हिंसा फूट पड़नेका भय कोई जरूरी नहीं है । इन सबसे मैं कहूँगा कि अगर वे जो कहते हैं वह सब सच है तो सब्रके साथ प्रतीक्षा करनेसे उनका ही बल बढ़ेगा और सफलता निश्चित हो जायगी।

हरिजन-सेवक
१८ नवम्बर, १९३९

'लंदन-टाइम्स' की आलोचना

'लंदन-टाइम्स' के अग्रलेखमे जो आलोचना आयी है, वह बहुत अनुचित मालूम होती है। जब-जब हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताका सवाल सामने आया है, तब-तब अल्प-संख्यकोका यह प्रश्न हमेशा आगे रक्खा गया है। कांग्रेसको और उसकी मांगको एकछत्र सत्ताका रुख समझना उल्टा अर्थ लगाना है। ऐसा विपर्यास अनजानमें हो गया हो तो इससे उसकी गम्भीरता कुछ कम नहीं होती। कांग्रेसने जान-बूझकर बलप्रयोगका परित्याग किया है। सैनिक पीठबल या परम्परा उसके पास नहीं है। जड़मूलसे ही वह साम्प्रदायिक एकतामे विश्वास करती आ रही है। हिन्दुओका तथा अहिन्दुओका प्रतिनिधित्व करनेका उसने हमेशा ही प्रयत्न किया है। उसका नेतृत्व करनेवालोमे पारसी, मुसलमान तथा ईसाई हमेशा रहे हैं। तमाम सम्प्रदायोको संतुष्ट और उनके अनुकूल होनेके लिए उसने अद्भुत प्रयत्न किये हैं। वह अन्यथा कर नहीं सकती थी, क्योंकि उसका एकमात्र बल वैध-आन्दोलन था। बादको उसने असहयोग और सविनय-भंगका शस्त्र निर्माण किया, जो हिंसाकी जगह अहिंसाका एक प्रभावकारी शस्त्र कहा जा सकता है।

ब्रिटिश सरकारने भारतकी आकांक्षाओको रोकनेकी दिशामे सांप्रदायिक मतभेदोका हमेशा उपयोग किया है। यह अनजानमे ही क्यो न हुआ हो, पर इससे होनेवाली हानि या बुराई कुछ कम नहीं हो जाती। कांग्रेसको अपना स्वार्थ साध लेनेकी कोई लोलुपता नही, यहाँ तो कांग्रेसी मंत्रिमण्डलोके एक साथ पदत्यागसे ही बिलकुल स्पष्ट हो गया है। कांग्रेस सांप्रदायिक झगड़ोमे कभी भाग नहीं ले सकती। ऐसा करनेसे तो एक बाजू हटकर वनवासकी अवस्थामे चुपचाप सुदिन आनेतक बाट जोहते रहना वह ज्यादा पंसद करेगी।

इस वक्त भी, मुस्लिम लीगको कांग्रेसके खिलाफ खड़ा करके एक बेहूदा ढंग अख्त्यार किया जा रहा है, ऐसा मालूम होता है। मुझे तो यह आशा थी कि यूरोपके इन संकटसे ब्रिटिश राजनेताओकी दृष्टि बेहतर हो जायगी।

इस विषयकी चर्चा करते हुये 'टाइम्स' ने राजाओका जो उल्लेख किया है, वह खासकर नामुन्सिफाना है। वे सर्वभौम-सत्ताके ही बनाये हुये हैं और उसके बिना उनका न तो कोई स्थिति है, न प्रतिष्ठा। मेरा यह कथन विचित्र-सा मालूम देगा, फिर भी मै यह कहूंगा कि राजा लोग सार्वभौम सत्ताकी स्पष्ट या अस्पष्ट सम्मतिके बगैर अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं कर सकते। वे अपने आपके सिवाय दूसरे किसीके प्रतिनिधि नहीं। ऐसे राजाओके साथ समझौता करनेके लिए कहनेका अर्थ है—सार्वभौम सत्ताके साथ समझौता करनेके लिए कहना। 'टाइम्स' कांग्रेससे पूछता है कि उसने पिछले दो बरसोके दर्म्यान मुसलमानो तथा दलितवर्गोंके साथ कैसा बर्ताव

किया है। इस सम्बन्धमें तो मै इतना ही कहूँगा कि प्रान्तोंके गवर्नरोंसे इसका जवाब मांगा जाय। मुस्लिम-लीग और कुछ दलित जातियोंके नेता जो शिकायत करते हैं उसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। लोकतन्त्रमें कुछ-न-कुछ असन्तोष तो अनिवार्य रूपसे रहता ही है। पर कांग्रेसने तो सुन्दर आफर रक्खा है कि भारतका भावी शासन-विधान जनता द्वारा चुने हुये प्रतिनिधियोंकी लोकसभा बनाये, जिसमें यह सन्तोषजनक जामिनी हो कि अल्पसंख्यकोंके हकोंकी पूरी-पूरी रक्षा की जायगी।

हरिजन-सेवक
१८ नवम्बर, १६३६

हिन्दू महासभा क्यों नहीं ?

एक भाई लिखते है—

लार्ड सभामे भारतवर्षपर जो चर्चा हुई थी उसके दौरानमे लार्ड जेटलैंण्डने अपने भाषणमे काग्रेसको हिन्दू सस्था वताया है। इसपर आपकी टिप्पणी मैंने पढ़ी है। मै यह कहे बिना नही रह सकता कि लार्ड जेटलैण्डके हाथसे जो भूल हुई है उसकी जिम्मेदारी एक हदतक खुद काग्रेसके रुखपर भी है। अगर काग्रेस राष्ट्रीय सस्था है—और वह वेशक है—तो उसका सिर्फ मुस्लिम-लीग जैसी निरी साम्प्रदायिक सस्थाके साथ जातीय समस्याको आम तौरपर और हिन्दू-मुस्लिम सवालको खास तौरपर हल करने के लिए चर्चा करना कहाँतक ठीक था? काग्रेसको तटस्थ रहना चाहिए था और जिन्ना साहबको हिन्दू-महासभाके अध्यक्ष श्री सावरकरसे समझौतेकी बातचीत कर लेने देना था। अगर यह अव्यावहारिक था तो काग्रेस देशकी भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक सस्थाओंके प्रतिनिधियोंकी परिषद् बुलाकर उसमे पचका काम करती। काग्रेसी नेताओंकी तरफसे किसी एक जातिके अगुओंकी सीधी और एकागी चर्चा द्वारा हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल करनेकी कोशिशका तो यही परिणाम निकल सकता था कि काग्रेसके विरोधियाको एक हथियार हाथ लगे। इन लोगोंमे यह आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वे इस अस्त्रका पूरा उपयोग करनेमे ढील करेंगे। मेरी रायमे काग्रेसकी एक राष्ट्रीय सस्थाके रूपमे, जो प्रतिष्ठा है वह इस प्रयत्नसे कम हुई है।'

मैं यह पहलेही स्वीकार कर चुका हूँ कि लेखककी दलीलमे जोर है। मैंने पहले भी दिखा दिया है कि किसी तरह अपने ऊपर आये हुए कर्त्तव्यको कांग्रेस टाल नही सकती थी। अवश्य ही मैं इस ख्यालसे सहमत नहीं हूं कि एक कठिन राष्ट्रीय उलझनको सुलझानेका प्रयत्न करनेसे काग्रेसकी हैसियत घटी है। मैं सभी हितैषियोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे उस चर्चाकी प्रगतिमे वाधा देनेवाली कोई बात न करें जो जिन्ना साहब और पं० जवाहरलाल नेहरूके बीचमें होनेवाली है।

हरिजन-सेवक
२ दिसम्बर, १६३६

सिंधके दंगे

मै सिधके दंगोंका हाल ध्यानसे पढ़ता रहा हूँ। उनसे मुझे पीड़ा हुई है। बहुत लोगोंको यह भ्रम है कि मेरे हाथमे सब बुराइयोंका इलाज है। काश ऐसा होता, हालांकि मुझे यह भरोसा नहीं है कि ऐसी शक्ति मेरे पास होना कोई बिलकुल अच्छी ही बात होगी। अगर मै उस शक्तिको बिना सोच-समझे हर कहीं इस्तेमाल करने लगा तो लोग अपंग बन जायेंगे, और उसे खुले हाथों काममें न लाया तो लोगोको क्या फायदा? अभी तो मुझमें जो भी शक्ति है उसका मैं पूरा-पूरा उपयोग करता हूं। ईश्वरकी कृपासे वह इतनी थोड़ी है कि उससे किसीको हानि नही पहुंच सकती मगर मेरा मुख्य काम तो लोगोको स्वावलम्बन सिखाना है। शिकारपुरसे यह करुणाजनक तार आया है—"दंगो, लूट और आततायीपनका बाजार गर्म है। सक्खर जिलेके गावोमे निर्दय हत्याकाण्ड हो रहा है। स्त्रियो और लड़कियोंके साथ बलात्कार हो रहे हैं और उन्हे उड़ाया जा रहा है। हिन्दुओंका जानमाल सुरक्षित नहीं है। स्थिति निहायत नाजुक है। सरकारकी नीति दृढ़ नहीं है। कृपा करके परिस्थिति ऑखो देखनेके लिए जॉच कमेटी तुरन्त भेजिए। —अध्यक्ष, आम हिन्दू-पंचायत।"

सिधसे मुझे इस तरहका यह तीसरा तार मिला है। पहले दोपर मैंने ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि मैं इलाहाबादमे व्यस्त था और मेरे पास पीड़ितोको तसल्ली देनेके लिए कोई ठोस चीज भी न थी। बात यह है कि शिकारपुर पंचायतने इस काममे मददके लिए मेरे पास आनेमे गलती की, क्योकि मै खुद लाचार हूं। कांग्रेसने अभी अहिसामे इतनी प्रगति नहीं की है कि यह दंगों और ऐसी ही घटनाओंका उपाय कर सके। अगर उसे अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनी है, तो उसे ऐसी परिस्थितियोका मुकाबिला करने योग्य अहिसाका अपनेमे विकास करना ही होगा। मैंने शान्ति-सेनाओंकी बात सुझायी थी, लेकिन वह प्रस्ताव अव्यावहारिक नही तो असामयिक जरूर सिद्ध हुआ। बेशक सिध सरकारको अपने इलाकेकी जनताके जान-मालकी रक्षा कर सकनी चाहिए। जाहिर है कि मामला उसके काबूसे बाहर निकल गया है। सिधकी स्वायत्त-सत्ता नाम-मात्रकी है और उतनी ही कम उसमें पहिलेकी सरकारसे जान-मालकी रक्षा करनेकी शक्ति है, क्योकि उसे पुलिस या फौजी कलाकी पहले कोई तालीम नहीं मिली। पिछले लेखोंमे मै दिखा चुका हूं कि दंगोमे होनेवाली धन और जनकी हानि और इससे भी बुरी बातोंको रोकनेमे केन्द्रीय सरकार भी बिलकुल असमर्थ होती है। वह चाहती तो इन बुराइयोंको फैलनेसे जरूर रोक सकती है और अपराधियोको सजा दे सकती है। परन्तु उसका संगठन तो केवल साम्राज्यके व्यापारकी रक्षाके लिए ही हुआ है। उन

कारण वह अमनकी रक्षा भी उसी हद तक करती है जिस हद तक इस व्यापारकी रक्षाके लिए जरूरी होता है। यही वजह है कि जनताकी सच्ची हिफाजत करनेके पूरे साधन ही उसके पास नहीं हैं। ऐसी हिफाजत के लिए जनताको रक्षणकी कला सीखना और दंगों वगैरहके दमनमें जनताका सहयोग लेना पड़ता है। परन्तु इससे तो साम्राज्यकी हुकूमत ही खतरेमे पड़ जाय।

ऐसी हालतमे अगर मैं सिंधियोको कोई कारगर मदद दे सकता हूं तो वह अहिंसा-का रास्ता बताकर ही दे सकता हूं। लेकिन यह एक दिनमे नहीं सीखा जा सकता है। दूसरा मार्ग जिसपर अबतक संसार चलता आया है, शस्त्र द्वारा जान-मालकी रक्षा करनेका है। ईश्वर तो उन्हींकी सहायता करता है जो अपने पैरोंपर खड़े होते हैं। सिंधियोंके लिए भी यही बात है। उन्हें डाकुओ, आततायियो आदिसे अपनी रक्षा करनेको कला सीखना चाहिए। अगर उन्हें खतरा मालूम दे और अपनी रक्षा करनेकी ताकत भी न हो तो फिर उन्हें वह जगह छोड़कर चला जाना चाहिए जहाँ रह सकना उनके लिए दूभर हो गया हो।

हरिजन-सेवक
२ दिसम्बर, १९३९



जिन्ना साहबसे अपील

[जनाब जिन्ना साहबने कांग्रेसी-मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफोंपर २२ दिसम्बरको 'मुक्ति-दिवस' मनानेकी जो अपील निकाली है, उसपर गांधीजीने गत ६ दिसम्बरको नीचा लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया।]

जनाब जिन्ना साहबकी इस आशयकी अपीलको मैंने पढ़ा है कि सारे हिन्दुस्तानके मुसलमान २२ दिसम्बरको जिस दिन कि जुमा है, इस बातके चिन्हस्वरूप 'मुक्ति तथा कृतज्ञता-प्रकाश दिवस' मनावें कि आखिरकार कांग्रेसी सरकार खत्म हो गई। अन्यायी कांग्रेसी हुकूमतसे मुक्ति पानेके लिए इबादतकी जायगी, साथ ही तमाम सभाओंमे जो मुस्लिम-लीगकी संरक्षतामे होंगी, पास करनेके लिए एक प्रस्ताव भी दिया गया है।

जिन्ना साहब और उनके साथी मुसलमानोंसे मैं यह अपील करना चाहता हूं कि वे ऐसा न करें। उनके प्रस्तावमें कांग्रेसपर बहुत संगीन आरोप किये गये हैं। खुदाके सामने मुसलमानोंकी भारी तादादसे इस तरह प्रार्थना करायी जायगी, गोया ये आरोप सिद्ध हो चुके हैं और इसलिए उनसे मुक्ति पानेपर अल्लाहको धन्यवाद दिया जायगा।

साथ ही, प्रान्तोंके गवर्नरोंसे दरखास्त की जायगी कि वे उन आरोपोंके बारेमें जाँच करें और उन्हें दूर करें। क्या यह ठीक और उचित होगा कि जो संगीन कदम उठानेके लिए कहा गया है उसे उठानेसे पहिले गवर्नरोंकी रायका इन्तजार किया जाय ? मैं इसे संगीन कहता हूँ, क्योंकि जिन मुसलमानोंसे इन आरोपोंको सच माननेके लिए कहा जायगा, वे उस पुरानी संस्थाके लिए साफ दुर्भाव रक्खे बगैर नहीं रह सकते जो उतनी ही उनकी भी है जितनी कि और भारतवासियों की है— और यह ऐसे समय किया गया है जब कि जिन्ना साहब और पण्डित जवाहरलाल नेहरू एक दूसरेसे मिलनेवाले हैं और सम्मानपूर्ण समझौतेपर पहुंचनेकी आशा करते हैं। अगर कांग्रेस ऐसी खराब है जैसा कि प्रस्तावमें कहा गया है तो वह इस काबिल ही नहीं होनी चाहिए कि उसके साथ कोई समझौतेकी बात चलाई जाय।

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंपर किये जानेवाले जिन आरोपोंका मुझे पता है, सिर्फ वे हैं जो मुस्लिम-लीग-कमेटीकी उस रिपोर्टमें मौजूद हैं जिसे 'पीरपुर-रिपोर्ट' कहते हैं, लेकिन मुझे यह मालूम है कि पार्लियामेंटरी सब-कमेटीने वह रिपोर्ट विभिन्न कांग्रेसी-मंत्रिमण्डलोंके पास भेजी थी और यह भी मुझे पता है कि सम्बन्धित मन्त्रि-मण्डलोंने सावधानीके साथ जाँच करके सब-कमेटीको रिपोर्ट दी थी कि अधिकांश शिकायतें निराधार हैं।

इसलिए, मुझे ऐसा लगता है कि जिन्ना साहबने अपने ऊपर आरोपी और न्यायाधीश दोनों ही होनेकी जबर्दस्त जिम्मेदारी ले ली है। यह भी कोई बात न होती अगर उन्होंने इन शिकायतोंको हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके सामने इस तरह न रखा होता गोया वे सिद्ध तथ्य हैं। जिन्ना साहब और उनके साथियोंसे मैं कहूँगा कि वे एक ऐसे आदमीकी अपीलपर ध्यान दें जो यह दावा करता है कि वह उनका मित्र है तथा मुस्लिम, भारतियों और इसलिए इस्लामका साथी और सेवक है।

जिन्ना साहबने गवर्नरोंसे जो यह प्रार्थना की है कि उनके सामने जो आरोप-लाये जायें उनकी जाँच करके उनपर वे अपनी राय दें, मैं उसमें हृदयसे उनके साथ हूँ। बाबू राजेन्द्रप्रसादको भेजे हुए अपने पत्रमें जिन्ना साहबने कहा है कि उन्होंने अपने आरोप वाइसरायके सामने पेश कर दिये हैं। मैं आशा करता हूं कि वाइसराय इस बारेमें जल्द अपना निर्णय घोषित करेंगे। जिन्ना साहबसे मेरा कहना है कि मुसल-मानोंकी भारी तादादसे इन संगीन आरोपोंकी ताईद और कांग्रेसकी निन्दा करानेसे पहिले वह वाइसराय और गवर्नरोंकी रायका इन्तजार करें जो कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।

हरिजन–सेवक
१६ दिसम्बर, १९३९

❀

सिंधका दुखड़ा

मेरे सामने सिंधसे आये हुये सक्खर और शिकारपुरके हालके दंगोंके बारेमें कई खत और डॉ० चोइथरामकी एक लम्बी-सी रिपोर्ट रखी है। सिंधके हिन्दुओंको याद रखना चाहिये कि सिंधमें राष्ट्रीय सरकार है, भले ही मैंने अकसर संक्षेप करनेके लिए 'कांग्रेसी सरकार' शब्द काममें लिए हैं। इन सरकारोंका ठीक नाम तो राष्ट्रीय लोकतंत्रीय सरकार है। ये जिस विदेशी नौकरशाही हुकूमतके स्थानपर कायम हुई हैं उससे जुदा ढंगकी है। हमें अपनी आपसी मतभेदों और दलबन्दियोंकी चर्चा करते समय कांग्रेसी सरकार और मुस्लिम-लीगी सरकार कहना पड़ता है, मगर और सब कामोंके लिए हमें उन्हें राष्ट्रीय सरकार समझ कर ही सोचना और बोलना चाहिए। हाँ, तो जिन्हें शिकायत हो उन्हें अपने-अपने प्रान्तकी राष्ट्रीय सरकारसे जरूर अपील करनी चाहिए और इन्साफ और अमनके पक्षमें लोकमत तैयार करना चाहिए। हमेशा साम्प्रदायिक ख्यालसे ही सोचना अनुचित है। मैं जानता हूँ कि कड़वी होनेपर भी सच्ची बातोंपर हम आँख बन्द नहीं कर सकते। मगर हर बातमें साम्प्रदायिक भावना सूँघना भी खामखाह अपनेको नीचा समझनेकी बिमारीका चिह्न है। इससे राष्ट्रीय जीवनमें अभीतक जो थोड़े दिनसे गड़बड़ी आ गई है उसके स्थायी होनेका अन्देशा है। मगर जैसे मैंने पहले राय दी है गैर-जिम्मेदार नौकरशाहीके मुकाबिले राष्ट्रीय सरकारें सख्त कार्रवाई करनेके बारेमें कमजोर साबित होंगी, क्योंकि वे प्रजाके नाम और सद्भावके बलपर ही राज कर सकती है और उसीके सामने वे जवाबदेह हैं। इसलिए अपराधोंका तो वे थोड़ी या बहुत सफलताके साथ सामना कर सकती हैं, मगर कौमी दंगों जैसी सार्वजनिक उथल-पुथलका इलाज करनेमें वे लाचार पायी जाती हैं। अंग्रेजी फौजकी मदद तो उन्हें हरवक्त मिल नहीं सकती। वैसे भी वह राष्ट्रीय सरकार ही क्या जिसे अंग्रेजी सेनाकी सहायतापर निर्भर रहना पड़े? साथ ही, सब दलोंमें कांग्रेसकी अहिंसा नीति प्रचार हो जाये तो फौज और पुलिसकी भी मदद लेनेकी जरूर मनाही होगी। दूसरे दलोंसे अहिंसक बननेकी आशा करनेसे पहले कांग्रेसवालोंको अपने रोजमर्राके व्यवहारमें काफी अहिंसाका परिचय देना है। यह इस बारेमें कुछ भी हो, सिंधकी पीड़ित जनताको तो मैं अहिंसाके उपाय ही बता सकता हूं।

सिंधका सवाल असलमें हिन्दू और मुसलमानका सवाल नहीं है। कमजोरों और बलवानोंका सवाल है। मुसलमान जिस बुरी तरह हिन्दुओंसे लड़ते हैं उतनी ही बुरी तरह वे आपसमें भी लड़ते हैं। हिन्दू भी एक दूसरेके सर फोड़ते पाये गये हैं। पशुता, पशुता ही है; यह कहना गलत होगा कि किसीमें ज्यादा है।

हिन्दू-धर्मका दूसरा नाम कमजोरी और इस्लामका शारीरिक बल होगया है।

हिन्दूओंको अहिंसाका पाठ तो पढ़ाया गया है, मगर जब शरीर-बलका सामना हुआ है तब उन्होंने अहिंसाकी ताकतका सामुहिक रूपसे परिचय नहीं दिया, उसकी श्रेष्ठता तो कभी साबित ही नहीं की। मेरी यह राय रही है कि शरीर-बलके मुकाबिलेमें कितना ही ज्यादा क्यों न हो, अहिंसाकी ताकत उससे बढ़कर है, इसी अहिंसाको, समूह ही नहीं, करोड़ों मनुष्य मिलकर भी उतनी ही अच्छी तरह काममें ला सकते हैं जितना कि एक-एक मनुष्य ला सकता है। यह प्रयोग अभी चल रहा है। पिछले २० सालमें इतना तो पता चल गया है कि यह प्रयोग करनेके काबिल है। इसे जारी रखनेमें कोई हानि दिखाई नहीं देती, बशर्ते कि अहिंसा सौ टंचकी हो।

मेरे देखनेमें ऐसी कोई बात नहीं आयी जिससे पता चले कि सक्खर या शिकारपुरमें एक भी ऐसा आदमी था जिसका बलवानोंकी अहिंसामें विश्वास हो और जिसने उसपर अमल किया हो। अगर ऐसा एक भी निकला होता तो उसे हम जरूर उसी तरह जान लेते जैसे गणेशशंकर विद्यार्थीको जानते हैं। ऐसा एक भी आदमी सरसे पैरतक हथियारबन्द आदमीसे किसी भी दिन ज्यादा जौहर दिखा सकता है।

सक्खर और शिकारपुरमें बहुत-से कांग्रेसी हैं, मगर उनका अहिंसाके ढंगपर संगठन ही है। इसमें उनका दोष नहीं। उन्हें इस चीजका ज्ञान ही नहीं है। जैसा कि आजकल मैं बार-बार कहता रहता हूँ, हमारी अहिंसा बलवानोंकी अहिंसा नहीं रही है। कमजोर लोगोंमें ऐसी अहिंसा एकदम नहीं आ सकती। मगर मेरे दवाखानेमें दूसरी औषधि भी नहीं है। मैं तो यही नुस्खा बता सकता हूं जो मेरे पास है और जो अमोघ है, बेखता है। इसलिए मैं तो यही कह सकता हूं कि जब तक सफलता न मिले बारबार कोशिश किये जाओ। सच्चे वीर और ही मिट्टीके बने होते हैं। उनमें वैर-भाव, क्रोध, अविश्वास और मौत या शारीरिक आघातके डरको कोई स्थान नहीं। हाँ, अहिंसा अवश्य उन लोगोंके लिए नहीं है जिनमें ये आवश्यक गुण न हों। जहां-कहीं ऐसे व्यक्ति होवेंगे वहाँ वे कमजोरोंकी भी रक्षा कर लेंगे, बशर्ते कि वे अपने सहायकोंकी बातपर ध्यान दें।

तो कमजोर यह समझ लें कि उन्हें दूसरेके शस्त्र-बलकी मददपर कभी निर्भर नहीं रहना है। ऐसी सहायतासे वे और भी कमजोर हो जायेंगे। मगर उनमें अहिंसात्मक मुकाबिलेकी योग्यता नहीं है तो उन्हें आत्मरक्षाकी कला सीखनी चाहिये। इसके लिए ताकतवर शरीरकी आवश्यकता नहीं होती, मजबूत दिल चाहिये। अफ्रीकाके भीमकाय हब्शीके सामने गोरे छोकरे मिट्टी-से मालूम देते हैं, मगर उन्हें गोरोंसे इतना डर लगता है या कमसे-कम पच्चीस बरस पहले तो लगता ही था कि उनके सामने आनेकी हिम्मत नहीं होती थी। गोरे बच्चोंको छोटी उम्रसे ही हब्शियोंसे न डरनेकी तालीम दी जाती थी। इसलिए जो लोग अपना बचाव करना सीखें उनके लिये पहला पाठ यह है कि घायल होने या मारे जानेका डर

छोड़दें। मैं चाँहूगा कि वे युद्धके नियमोंका पालन करें। जैसे चोरोंमें भी ईमानदारी जैसी चीज होती है, ठीक उसी तरह लड़नेवालोमे भी जरूर होनी चाहिये। कितनी बार समाचार मिलते हैं कि बच्चे और बूढ़े कत्ल कर दिये गये, स्त्रियोंकी लाज लूट ली गई! इन्सानोंको हैवान ही बनना है तो भी कुछ तो मर्यादा बाकी रहे। जब धर्मके नामपर कोई अत्याचार होता है तो धर्मकी ही हत्या होती है। इस अभागे मुल्कमे लगभग सभी दंगे धर्मके नामपर होते हैं, भले ही उनके पीछे राजनीतिक हेतु भी रहता हो। मेरा मुख्य मुद्दा यह है कि मौजूदा हालत असत्य है। हमारे राष्ट्रीय शब्द-कोशमे कायरता शब्दके लिए स्थान नहीं होना चाहिये।

मै हिजरतकी बात सुझा चुका हूं। मै उस तजबीजको दोहराता हूं। यह बात ऐसी नहीं है जो अमलमें न आ सके। लोगोंको उसकी कद्र नहीं मालूम है। अबसे पहले बड़े-बड़े महारथी इसका आश्रय लेते देखे गये हैं। योजना बना कर हिजरत करनेके लिए साहस और पहलेसे विचार करनेकी जरूरत होती है। 'ओल्ड टेस्टमेण्ट' (बाइबिल) का दूसरा अध्याय एक्जोडस (देशत्याग) के नामसे प्रसिद्ध है। इसमे यहूदियोके योजना बनाकर भागनेका वर्णन है। निर्वासन-कालमे उन्होने लड़ाईकी तैयारी की। मौजूदा जमानेमे हमें दुखबरोकी मिसाल मिलती है। ये सताये जानेके कारण रूस छोड़कर चले गये थे। उनके सामने कोई फौजी तैयारीका सवाल नहीं था, उल्टे वे तो अहिंसक थे। इसलिए अपनी मर्जीसे देश छोड़कर जानेमे कोई बुराई, बेइज्जती या कायरता नहीं है। हिन्दुस्तान लम्बा-चौड़ा मुल्क है। गरीब होने पर भी इसमें इतनी गुंजायश है कि जो लोग खास तौरपर योग्य, परिश्रमी और ईमानदार हैं वे एक जगहसे उठकर दूसरी जगह जा बसे। सक्खर और शिकारपुरके लोगोंमे यह तीनो गुण है। सरकारसे तो उन्हें मदद मॉगनी ही चाहिये। इतना ही है कि वह बहुत कम सहायता दे सकती है। राजनीतिक करारनामे करनेके सिवाय, अगर हिन्दू और मुसलमानोके स्थानीय मुखिया भी आपसमे मिलजुल कर बातचीत करें तो दोनोंका फायदा है। आपसी हत्याकाड करने और मौजूदा तरहसे वैरभाव बढ़ानेसे किसी भी व्यक्ति या दलको लाभ नहीं पंहुच सकता। पर जगह-जगह 'पर इज्जतके साथ कोई समझौता न हो सके और वहांके निवासियोमे अपने जान, मान और बाल-बच्चोकी अहिंसासे या हिंसासे किसी भी तरह रक्षा करनेकी अपनेमे ताकत महसूस न होती हो, तो बेशक उन्हें वह जगह छोड़ देनी चाहिये, जहां उन्हें अपने प्राणो और अपनी औरतोंके सतीत्वका सदा डर बना रहता हो।

हरिजन-सेवक
६ जनवरी, १९४०

❀

खुशीकी बात

जिन्ना साहबने जिस जनता-दिवसका ऐलान किया था उस दिन मुझे गुलबर्गाके मुसलमानोंकी तरफसे यह तार मिला कि "नजात-दिवसका मुबारकबाद; कायदे-आजम जिन्ना जिन्दाबाद"। मैंने समझा यह संदेश चिढ़ानेकी गरजसे भेजा गया है। मगर भेजनेवाले क्या जानें कि इस तारका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। जब मुझे वह मिला तो मै भी मन-ही-मन भेजनेवालोकी इस दुआमें शामिल हो गया कि "कायदे-आजम जिन्ना बहुत दिन जियें।" कायदे-आजम हमारे पुराने साथी है। आज कुछ बातोंमें हमारे-उनके विचार नहीं मिलते तो इससे क्या हुआ? उनके लिए मेरे सद्भावमे कोई फर्क नहीं आ सकता है।

मगर कायदे-आजमकी तरफसे एक खास कारण उन्हें बधाई देनेके लिए और मिल गया है। ईदके दिन रेडियोपर तो उन्होने बढ़िया भाषण दिया था उसपर बधाईका तार भेजनेकी मुझे खुशी हासिल हुई थी। अब वे और भी मुबारकवादके हकदार हो गये हैं, क्योकि वे कांग्रेसकी नीति और राजनीतिके विरोधी दलोके साथ करारनामे कर रहे हैं। इस तरह वे मुस्लिम-लीगको सांप्रदायिक चक्करसे निकालकर उसे राष्ट्रीय स्वरूप दे रहे हैं। मै उनके इस कदमको पूरी तरह वाजिब समझता हूँ। मैं देखता हूँ कि मद्रासकी जस्टिस पार्टी और डॉक्टर अम्बेडकरका दल जिन्ना साहबसे पहले ही मिल चुका है। अखबारोंमे खबर है कि हिन्दू-महासभाके प्रधान श्री सावरकर उनसे बहुत जल्द मिलनेवाले है। जिन्ना साहबने खुद जनताको सूचना दी है कि बहुत-से गैर-कांग्रेसी हिन्दुओंने उनके साथ हमदर्दी जाहिर की है। ऐसा होना मै पूरी तरह फायदेमन्द समझता हूँ। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है कि हमारे देशमे दो ही बड़े-बड़े दल रह जांय, एक कांग्रेसियोका और दूसरा गैरकांग्रेसियोका या कांग्रेस-विरोधी शब्द ज्यादा पसन्द हो तो, कांग्रेस-विरोधियोका। जिन्ना साहबकी कृपासे कम तादादवाली-जाति शब्दका नया और अच्छा अर्थ हो रहा है। कांग्रेसका बहुमत सवर्ण-हिन्दुओं, अवर्ण-मुसलमानो, ईसाइयो, पारसियो और यहूदियोके मेलसे बना है। इसलिए यह एक ऐसा बहुमत है जिसमे एक खास तरहकी राय रखनेवाले सब वर्गोंके लोग शामिल है। जो नया दल बनने जा रहा है वह एक खास तरहकी राय रखनेवाले तादादके लोगोका दल है। निर्वाचकोको पसन्द आनेपर इनका किसी भी दिन बहुमत हो सकता है। इस तरह दलोंका एक होना ऐसी बात है जिसे हम सबको दिलसे चाहना चाहिए। अगर कायदे-आजम इस तरहका मेल साध सकें तो मैं ही नही, सारा हिन्दुस्तान एक आवाजसे पुकारकर कहेगा "कायदे-आजम

यह क्यों भूल जाते हैं कि खिलाफतका मामला तो खालिस धार्मिक था। ऐसा समझने-वाले कांग्रेसी हिन्दू उस समय भी थे और आज भी हैं कि खिलाफतके अन्यायका मामला हाथमें लेकर कांग्रेसने भारी भूल की है। मुझे जरा भी शक नहीं है कि वह कदम सही उठाया गया था। और वैसी ही बात फिर हो तो अपने मुसलमान भाइयोंकी मददमें अपनी जान देनेसे न चूकूँ। जरूरतके वक्त जो काम आये वही सच्चा मित्र है। इसलिए मुझे आशा है कि लेखक और उनकेसे विचारवाले लोग अपना ख्याल ठीक कर लेंगे और मेरी तरह विश्वास रक्खेंगे कि किसी एक फिरके या कौमकी शुद्धिके हर कामसे सारे राष्ट्रका भला होता है, क्योंकि वे उसीके एक हिस्सा होते हैं। इसलिए ऐसे कामको हमारे मंचसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। रही बात राष्ट्रीय पंचायतकी, सो लेखककी बताई हुई एक-एक बातको कांग्रेसने मान लिया है। प्रचार-कार्य भी हो रहा है। लेकिन कांग्रेसी और खासकर कांग्रेसी मुसलमान हाथ-पर-हाथ धरे बैठे नहीं रह सकते और यह आशा नहीं कर सकते कि कार्यसमिति काम चला लेगी। कार्यसमितिका काम संस्थाकी निगरानी रखना और सलाह देना और संस्थाका रोजमार्रा काम चलाना है। मगर प्रचारका काम तभी जारी रह सकता है जब हजारो कांग्रेसी खुद उसमे दिलचस्पी लें। अगर कांग्रेसका बनाया हुआ कार्यक्रम बेमजा है, तो कांग्रेसी मौजूदा नेताओंको पल-भरमें हटा सकते हैं। यह बात खास तौरपर इसलिए सच्ची है कि कांग्रेसने अहिंसाको अपनी नीति माना है। उसकी सफलताका दारमदार हरेक कांग्रेसीके पूरे दिलसे दिये हुए सहयोगपर है। इस अर्थमे कांग्रेस देशमे राजनीतिकता लिमका सबसे बड़ा साधन है। जो कोई कांग्रेसमे भरती हो जाता है वह राजनीतिक तालिमका उम्मेदवार बन जाता है। ऐसी तालिम देनेके लिए छोटी-सी किताब होनी चाहिए। और चूँकि बहुतसे कांग्रेसी बेपढ़े-लिखे हैं। इसलिए बड़ी उम्रवालोंको पढ़ने-लिखनेका काम हाथमे लेने और उस कामोका चलानेके लिए एक खास महकमा खोलनेकी भी जरूरत हो सकती है। मैं लेखकको सिफारिश करता हूँ कि वे इस तजबीजपर अमल करें। वे अपने जिलेके नायब सरदार हैं, इसलिए वहींसे काम शुरु कर सकते है। उन्हें मुस्लिम-लीगके मेम्बरोंको अविश्वासकी नजरसे नहीं देखना चाहिए। वे उनके देशवासी हैं और हम-मजहब भी हैं। हमें एक-दूसरेका दुश्मन बननेकी जरूरत नहीं, सिर्फ इस वजहसे कि हमारे विचार या नीतियाँ भिन्न-भिन्न हैं।

हरिजन-सेवक
२७ जनवरी, १९४०

एकता बनाम न्याय

उस दिन एक सज्जन मिलने आये और कहने लगे—"आपने यह कहकर कि कौमी एकताके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता हिन्दुस्तानका नुकसान किया गया, जो पूरा नहीं हो सकता। उसके बजाय आपको यह कहना चाहिए था कि अलग-अलग जातियोंके साथ और उनके आपसमे न्याय न होगा तो स्वराज नहीं मिलेगा।" मैंने उन भाईको समझानेकी कोशिश की पर उन्हें तसल्ली नहीं हुई। वे बोले—"आपने तो अपने मुसलमान मित्रोको खुश करनेके लिए अपनी आत्मातक बेच देनेकी बात कर दी।" मैंने उनके इस आरोपपर आपत्ति की और कहा "अवश्य ही इतना तो आप भी जानते हैं और दुनिया भी जानती है कि मैं अपनी आत्मा बेचकर भारतकी आजादी खरीदनेवाला नहीं हूँ। और मै मुसलमानोकी मित्रता चहता हूँ तो अपने किसी स्वार्थके लिए नहीं बल्कि भारतकी खातिर चाहता हूँ। आपने मेरे साथ अन्याय किया है।" मेरे मुलाकातीने कुछ गरम हो कर जवाब दिया—"मुझे आपके देश-प्रेमका पता है। यह पता न होता तो मै आपके पास आता ही नहीं। मगर आपके देश-प्रेमने आपको इतना अंधा बना दिया है कि आपने तो जो भूल की और अब भी कर रहे हैं उसे आप देख नहीं सकते। आपको मालूम नहीं कि हिन्दू क्या कहते और करते है। उनका आपपर विश्वास है, इसलिए मुसलमानोंको नाराज करनेके डरसे वे सब कुछ सह लेते हैं। मैं आपसे हाथ जोड़ कर कहता हूँ कि आप एकताके बजाय न्यायकी हिमायत कीजिए।" अपने उन मित्रके साथ मेरा दलील करना व्यर्थ था। मेरे पास समय भी न था। हाँ, मैंने इस अखबारमे उस सवालपर लिखनेका उन्हें वचन दिया, इससे उन्हें कुछ सन्तोष हुआ। पता नहीं, मेरे इस उत्तरसे उनको इतमिनान होगा या नहीं।

मेरा अटल विश्वास है कि कौमी एकताके बगैर, अहिंसाके जरिये तो स्वराज नहीं मिल सकता। मगर जातियाँ एक दूसरेके साथ इन्साफ न करें तो एकता भी नहीं हो सकती। मुसलमानोंसे या और किसीसे भी दोस्ती, रिश्वत देकर नहीं की जा सकती। रिश्वत देना तो खुद कायरता होगी और इस कारण उसमे हिंसा भी रहेगी। पर मै अपने भाईको उसके हिस्सेसे ज्यादा देता हूँ तो न यह उसे रिश्वत देना हुआ और न किसी औरके साथ अन्याय। उदार होनेसे ही सन्देह दूर किया जा सकता है। उदारताके बिना न्याय सहज ही शायलाक (कर्जके बदले कर्जदारका मांस लेनेवाला) का-सा न्याय हो सकता है। मगर मुझे इतनी सावधानी तो रखनी ही होगी कि जिस कामकी खातिर यह उदारता दिखानी है वह काम ही बिगड़ न जाय।

इस कारण न एकताका विचार छोड़ सकता हूँ और न उसका प्रयत्न। पर जिस चीजकी आवश्यकता है वह न्याय नहीं। उससे भी अधिक उचित व्यवहारकी

जरूरत है। मगर कायदे-आजम जिन्ना साहबका मेरे जवाबमें जो बयान अखबारोंमें छपा है उससे मुसलमानोंके विचार ठीक-ठीक प्रकट होते हों तो एकताकी सारी आशायें चूर-चूर हो जाती हैं। उन्होंने अलग-अलग राजनीतिक दलोंको मिलानेका जो काम हाथमें लिया है उसका मैंने स्वाभाविक अर्थ लगाया। उसका जिन्ना साहबने खंडन किया है। इससे एक अजीब परिस्थिति पैदा हो गई है। उन्होंने हिन्दुस्तानका ऐसा चित्र खींचा है कि यह एक महाद्वीप है, जिसमें अपने-अपने धर्मोंके अनुसार कई राष्ट्र हैं। अगर यह चित्र सच्चा हो जाय तो कांग्रेसके पचास सालसे भी अधिकके किये-करायेपर पानी फिर जाता। पर मैं आशा रखता हूँ कि कायदे-आजम जिन्ना साहबकी राय मुस्लिम-लीगके इतिहासमें थोड़े दिन रहनेवाली चीज है। अलग-अलग प्रान्तोंके मुसलमान अपने हिन्दू या ईसाई भाइयोंसे कटकर अलग हर्गिज नहीं हो सकते। मुसलमान और ईसाई दोनों या तो हिन्दू-धर्म छोड़कर बने हैं या जिन्होंने हिन्दू-धर्म छोड़ दिया था उनकी सन्तान हैं। धर्मके बदले जानेसे ही यह नहीं हो सकता कि वे अपने प्रान्तोंके न रहें। जो अंग्रेज मुसलमान हो जाते हैं वे अपनी जाति नहीं बदल देते। मुझे उम्मीद है कि कायदे-आजम जिन्ना साहबकी जो राय है वह उनके साथियोंकी भी असली राय नहीं है।

हरिजन–सेवक
२७ जनवरी, १९४०



द्वेषपूर्ण झूठ

प्रश्न—अजमेरके आर्य-साहित्य-मण्डल लि० ने "खतरेका बिगुल" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें ३०वें पृष्ठपर एक बात मेरे पढ़नेमें आई। यह बात कही गई है कि "पठानोंकी दो आवश्यकतायें हैं—एक जिस्मानी (शारीरिक) अर्थात् खाने-पीनेकी जरूरत और दूसरी भोग सम्बन्धी (यौन सबंधी)। अत. हिन्दुओंको चाहिए कि जब पठान लोग उन्हें लूटने आवें तो वे उनका स्वागत करें और इतना धन और स्त्रियाँ उन्हें देवें कि वे फिर उन्हें अपहरण न करें।" इसी पुस्तकके ३१वें पन्नेपर यह कहा गया है: "हाँ, उस्मानिया यूनिवर्सिटीसे जब कई सौ विद्यार्थी 'वन्देमातरम्' का गीत गानेके कारण निकाले जाकर नागपुर-विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट होनेके लिए आए थे, तब भी तो निजाम राज्यके प्राईम-मिनिस्टर सर अकबर हैदरीके लिखनेमें महात्मा गांधीने नागपुर विश्वविद्यालयके वाइस चांसलर मिस्टर केदारको उन्हें वहाँ भर्ती न करनेके लिए प्राइवेट पत्र लिखा था। लेकिन धन्यवाद है मिस्टर केदारको, जिन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें महात्माजीको लिख दिया—'विश्व-विद्यालयका कुलपति मैं हूँ न कि आप, मैं अपनी जिम्मेवारी समझता हूँ' और उन सब हिन्दू विद्यार्थियोंको जो निजाम राज्यसे निकाले गये थे प्रविष्ट कर लिया।'

"ये बातें सच्ची हो तो आपपर बड़ा आक्षेप आता है। इनके उत्तरमें आपका क्या कहना है?"

उत्तर—मेरा जवाब यह है कि ये बातें एक-की-एक द्वेषपूर्ण झूठ हैं। मुझे मालूम है कि मेरे विरुद्ध जोरोंसे झूठा प्रचार हो रहा है। मगर मुझे दुःख यह देखकर होता है कि आर्य-समाजकी प्रकाशित की हुई पुस्तक द्वारा ऐसी असत्य बातें फैलाई जाती है। 'आश्रम-भजनावली' में संत दादूदयालका एक भजन है, जिसमें हम अपने निन्दकोंके भलेके लिए प्रार्थना करते है:

निन्दक बाबा वीर हमारा।
बिन ही कौड़ी वहै विचारा॥
कोटि कर्मके कल्मष काटै।
काज सवारै बिन ही साटै॥
आपन डूबे औरको तारै।
ऐसा प्रीतम पार उतारै॥
जुग-जुग जीवौ निन्दक मोरा।
रामदेव! तुम करो निहोरा॥
निन्दक मोरा पर उपकारी।
'दादू' निन्दा करै हमारी॥

या बाइबिलकी भाषामें मैं यह कहता हूँ 'ईश्वर इन्हें क्षमा करो, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।' अफसोस तो यह है कि जिन भाइयोंके बारेमें आपने लिखा है वे जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं। मै तो उनके लिए भी प्रार्थना करता हूँ। झूठ कभी उन्हें हानि नहीं पहुँचाता जिनके विरुद्ध कहा जाता है। उससे तो कहनेवालोंका ही नुकसान होता है। हाँ, वे अक्सर समाजमें भ्रम फैला देते हैं। पुस्तक-लेखकने पठान कौम और सर अकबर दोनोंकी मानहानि की है। खुदाई खिदमतगार बादशाह खाँ भी पठान और सर अकबर इतने भोले नहीं हैं कि लेखकने जैसा लिखा है वह काम मुझसे करवानेकी आशा रखे।

प्र०—'सिन्धका दुखडा' नामक अपने लेखमें आपने सिन्धके पीडित हिन्दुओंको सलाह दी है कि सिन्धमें रहकर अगर वे अपनी इज्जत और अपने स्वाभिमानकी रक्षा नहीं कर सकते, तो हिजरत कर जायं। आप ही बताइये वे कहाँ जायें! जहाँ जाकर वे शरण लें वहाँ उन्हें साधन कौन जुटा देगा? क्या मैं आपसे यह भी पूछ सकता हूँ कि हिजरतका उपाय सिर्फ हिन्दुओंके लिए ही है? जो मुसलमान चिल्ला-चिल्लाकर यह शिकायत करते हैं कि हमपर कांग्रेसी प्रान्तोंमें जुल्म ढाये गये हैं उन्हें हिजरतकी सलाह आप क्यों नहीं देते? हुआ तो यह है कि जिन प्रान्तोंमें उनकी तादाद थोड़ी है वहां आपने उन्हें ज्यादासे अधिक प्रतिनिधि दिये हैं और पंजाबमें जहां उनकी तादाद ज्यादा है कानूनन स्थायी बहुमत दे दिया गया है।

उ०—मेरी सलाह तो सबके लिए है कि जो लोग किसी खास जगह सताये जांय और स्वाभिमान खोये बिना वहाँ नहीं रह सकते वे उस जगहको छोड़कर दूसरी जगह चले जाँय। जहाँ मुसलमान थोड़े है वहाँ उनपर सचमुच अत्याचार हो और वे मेरी सलाह माँगे तो उन्हें भी मैं वही सलाह दूँगा जो मैंने सिन्धके हिन्दुओंको दी है। मगर आमतौरपर जहाँ मुसलमान कम तादादमे हैं वहाँ भी वे अपनी रक्षा कर सकते हैं। सिंधके हिन्दुओंको पहले ही कह चुका हूँ कि मुट्ठीभर होनेपर भी आपमें अपनी रक्षा करनेकी बहादुरी हो तो जहाँ आप बसे हुए हैं उन स्थानोंको छोड़कर आपको नही जाना चाहिए। मेरी सलाह तो उसके लिए है जिसमे स्वाभिमानका भाव तो है, मगर ताकत नहीं है और ताकत या तो अहिंसासे आती या घूँसेका जवाब लातसे देनेकी शक्तिसे।

अवश्य ही यह प्रश्न गौण है कि देश-त्यागके बाद शरणागतोंको क्या करना चाहिए। हिन्दुस्तान-जैसे लम्बे-चौड़े मुल्कमे दो-चार हजार आदमी आसानीसे खप सकते हैं। सिन्धी तो हैं भी साहसी। दुनियांभरमे फैले हुए हैं। मैं नहीं समझता कि उनके लिए जनतासे सहायताकी कोई अपील करनेकी आवश्यकता होगी। उन्हें मालूम होना चाहिए कि लिम्बड़ी छोड़कर आनेवाले लोग भी हैं जो निर्वासनके कष्ट वीरताके साथ और चुपचाप सह रहे है। जब अपनी इज्जतका खूब ख्याल होता है तो दुःख भी सुख हो जाता है। मगर शायद सिंधवालोंको कहीं जाना न पड़ेगा। मैं यह आसार देख रहा हूँ कि मुसलमान नेता अपनी जिम्मेदारी महसूस करके हिन्दुओंमे उनके सुरक्षित होनेकी भावना पैदा करनेका प्रबन्ध कर रहे हैं। ऐसा हुआ तो ठीक ही होगा।

जो बड़ा मुद्दा मैंने हाथमे लिया है उससे अली-बन्धुओंके साथ मेरी दोस्तीके सवालका बेशक कोई सम्बन्ध नहीं। कौमी एकताके बारेमे मैंने जो कुछ किया है उसपर मुझे जरा भी अफसोस नहीं। उसी तरहकी परिस्थितियोंमे मैं तो फिर वैसा ही करूँ। खिलाफतके समयकी एकता दुर्भाग्यसे अस्थायी तो साबित हुई, पर उससे दोनों ही जातियोंने कुछ खोया नहीं। आप साम्प्रदायिक निर्णयके लिए मुझे जिम्मेदार ठहरानेमे भूल करते हैं। इसमे दोनों ही कौमोंकी पसन्द होने जैसी कोई चीज नहीं है। हाँ, यह बात जरूर है कि वह आज हमपर लागू है और उसके स्थानपर हम मिलकर कोई दूसरा रास्ता अभीतक नहीं निकाल सके हैं।

हरिजन-सेवक
३ फरवरी, १९४०

❀

और भी निन्दा

प्रश्न—अली बन्धुओंने जो अमानुल्लाको भारतपर हमला करनेके लिए आमन्त्रित करने और मुस्लिम-राज स्थापित करनेका षड्यन्त्र रचा था उसमे साथ देनेसे आप नहीं हिचकिचाये। आपने मौलाना मुहम्मद अलीके तारका मसविदा बनाया था जिसमे उस वक्तके अमीरको यह सलाह दी गई थी कि वह अंग्रेजके साथ कोई समझौता न करे। कहा जाता है कि स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजीने यह मसविदा देखा था और अब आप चाहते है कि सिंधके हिन्दू अपने मुसलमान आक्रांताके सामने सब कुछ समर्पित करदे और यह माग पेश न करे कि सिंधको बम्बई सूबेके साथ मिला दिया जाये, जो सिंधमे न्यायपूर्ण शासनकी पुनरावृत्तिका एकमात्र उपाय है। आप यह अनुभव क्यो नहीं करते कि ज्ञान और प्रगतिके इस युगमे अल्पसंख्यक जो आशा करते है वह उनके उचित अधिकारोंका असली संरक्षण है, उसके पूर्ण होनेका पवित्र उद्देश्य नहीं।

उत्तर—ऐसे बहुतसे पत्र मेरे पास आये हैं। अबतक मैंने उन्हें दरगुजर ही किया है। लेकिन अब मै देखता हूँ कि यह बात हिन्दू-महासभामे पहुँचकर बढ़-चढ़ गई है। एक क्रुद्ध संवाददाता तो धमकी देते हैं कि उन जैसे आदमी इतने प्रामाणिक स्थानसे कही गयी बातपर जरूर विश्वास करने लगेंगे। इसलिए अपनी प्रतिष्ठाकी खातिर मुझे इस सवालका जवाब देना ही होगा। लेकिन मेरे इन संवाददाताको जानना चाहिए कि अपने बारेकी हरएक अफवाह या लेखकी तोड़-मरोड़का प्रतिवाद करने बैठूँ तो मुझे जीवन दूभर हो जायेगा। जिसकी रक्षाके लिए ऐसी कच्ची दीवालकी जरूरत है, वह प्रतिष्ठा ही क्या? जहाँतक कि अमीरके साथ मेरे षड्यंत्रका संबन्ध है, मैं कह सकता हूँ कि उसमे लेशमात्र भी सत्य नहीं है। और, मुझे मालूम है कि अली-बन्धुओंके सामने जब यह आरोप आया था तो दृढ़तासे उन्होंने उससे इन्कार किया था और मैंने उनका पूरा विश्वास किया। मुझे याद नहीं है कि मौलाना मुहम्मदअलीकी ओरसे उस समयके अमीरके लिए मैंने तारका कोई मसविदा तैयार किया था। जिस तारकी बात कही गई है, उसमे यूँ तो कोई दोष नहीं है और उससे जो अनुमान लगाया गया है उसका भी कोई मौका नहीं है। स्वर्गीय स्वामीजीने यह बात मुझसे कभी नहीं पूछी। मृत व्यक्तियोंके खिलाफ उस समय तक कुछ कहना अनुचित है जबतक कि उसके समर्थनके लिए कोई निश्चयात्मक प्रमाण न हो और उसका कहना संगत हो। यह सारी कथा 'यंग इंडिया' के मेरे लेखोको लेकर खड़ी की गई है। उससे जो अनुमान लगाये गये हैं, उसका कोई भी औचित्य नहीं है। अंग्रेजोंको बाहर निकाल देनेके अभिप्रायमे भारतपर हमला करनेके लिए मैं किसी सत्ताको आमंत्रित करनेका गुनाह नहीं करूंगा। पहली बात तो यही है कि वह मेरे अहिंसा-धर्मके विरुद्ध है। दूसरे यह कि अंग्रेजोंकी

बहादुरी और शस्त्रोंके प्रति मुझे इतना मानका भाव है कि मैं नहीं सोच सकता कि भारतपर कोई भी आक्रमण तबतक सफल हो सकेगा जबतक कि बहुत सी जबर्दस्त ताकतें न मिल गई हों। कुछ भी हो, मैं नहीं चाहता कि ब्रिटिश राज खत्म हो तो उनकी जगह और कोई दूसरा विदेशी राज आये। मैं तो खालिस स्वराज चाहता हूँ, फिर चाहे उसमें खामियाँ ही हों। आज भी मेरी स्थिति वैसी ही है जैसी कि उस समय थी जब मैंने 'यंग इंडिया' के उन वाक्योंको लिखा था, जिन्हें मेरे विरुद्ध प्रयुक्त किये जानेकी कोशिश की जा रही है। मैं अपने पाठकोंको यह भी याद दिला दूँ कि मैं गुप्त तरीकोंमें विश्वास नहीं करता।

सिंधके लिए अब भी मेरी वही सलाह है। सिंधका बम्बई प्रान्तके साथ मिलानेका प्रस्ताव चाहे और आधारोंपर ठीक हो या न हो, लेकिन इस आधारपर तो निश्चय ही वह ठीक नहीं कि इस एकीकरणसे सिन्धवासियोंके जान और मालको अधिक संरक्षण मिलेगा। प्रत्येक भारतवासीको फिर वह हिन्दू हो या और कोई अपने-आप अपनी रक्षा करनेकी कला सीखनी चाहिए। सच्चे लोकतंत्रकी यह शर्त है। सरकारका तो संरक्षण देना एक कर्त्तव्य है। लेकिन कोई भी सरकार उन लोगोकी रक्षा नहीं कर सकती जो सरकारके उन्हें संरक्षण देनेके कर्त्तव्यमे हाथ नहीं बँटायेंगे।

हरिजन-सेवक
१० फरवरी, १९४०



एकता बनाम न्याय

प्रश्न—आपने अपने लेख 'एकता बनाम न्याय' मे लिखा है कि अगर तुम अपने भाईको उसके हिस्सेसे ज्यादा दे देते हो तो इसे रिश्वत देना नहीं कह सकते, न इसमें तुम कोई अन्याय ही करते हो। उदार होनेसे ही सन्देह दूर किया जा सकता है। जिस न्यायमें उदारता नहीं होती वह जिस उद्देश्यसे किया जाता है उसीमे बाधक होता है। मेरा कहना है कि न्याय और उदारतापर एक साथ अमल नहीं किया जा सका। ड्राइडनने यह ठीक ही कहा है—'न्याय अन्धा है, यह किसीका पक्षपात नहीं करता।' फिर आप दुर्बल, विनीत और नम्रके प्रति उदार हो सकते हैं, ऐसे आदमीके प्रति नहीं जो अपनी ताकतके गर्वमें धमकाकर आपको जेर करना चाहता हो। ऐसे आदमीको उसके जायज हिस्सेसे ज्यादा देना उदारता नहीं, बल्कि कायरतापूर्ण आत्मसमर्पण है। हालाँकि तादादमें हिन्दू ज्यादा हैं, पर जैसा कि आपने खुद ही बताया है, उनका बहुमत काल्पनिक या नकली है और अमलमें वे कमजोर पक्षके हैं। फिर अगर मुसलमानोंके साथ उदारता दिखलानी हो तो इसके लिए हिन्दू-महासभा ही उपयुक्त संस्था नहीं जा सकती है। एक तीसरे दलका

क्या हक है कि वह दो पक्षोंके बीच एक पक्षके हितके विरुद्ध दूसरे पक्षके साथ उदारताका सलूक करे ?

उत्तर—आपने मेरे जिस लेखका जिक्र किया है उसमें मैंने आम उसूलोंका विचार किया है, न कि किन्हीं विशेष अल्पमतोंका। न्यायको न्याय होनेके लिए जैसा उदार होना चाहिए, वैसे ही अपना औचित्य सिद्ध करनेके लिए उदारताको पूरी तरह न्यायपूर्ण भी होना चाहिए। इसलिए उदारतामें किसी खास हितकी हानि नहीं होनी चाहिए। किसी अल्पमतके लिए दूसरे अल्पमत या अल्पमतोंकी बलि देनेकी तो बात ही नहीं है। आपकी यह बात भी ठीक है कि उदारता दीन और दुर्बलके प्रति दिखायी जाती है, गुण्डेके प्रति नहीं। फिर भी मैं गुण्डेकी ओरसे कहूँगा कि वह भी न्यायका पात्र है, क्योंकि ज्योंही आप उसे छोड़ देते हैं और उसके साथ इन्साफ नहीं करते त्योंही मानो उसकी गुण्डई और धमकीका औचित्य सिद्ध कर देते हैं। इस तरह अगर ज्यादा नहीं तो इतना मानना पड़ेगा कि व्यवहारमें, अल्पमतकी बनावट व प्रकृतिका विचार किए बगैर उसके साथ उदार न्याय करना ही एक ऐसा नियम है जिसमें खतरा नहीं है। मुझे पूरा विश्वास है कि जहाँ पूरा न्याय है वहाँ बहुमत और अल्पमतका सवाल खड़ा ही नहीं हो सकता। गुण्डा खुद एक अपशकुन मात्र है और किसी मौजूदा स्थितिका जैसे बुजदिलीका, एक जवाब है। मगर लोग यह भूल जाते हैं कि कायरता या बुजदिली अन्यायपूर्ण हो सकती है। सच यह है कि कायरोंमें न्याय-भावना ही नहीं होती। वे सिर्फ धमकी या क्रियात्मक बल-प्रयोगके आगे झुकना जानते हैं। मैं नहीं जानता कि कायर और गुण्डे दोनोंमें किसको अच्छा समझा जाये। दोनों एक-से हैं। दोनों एक-से बुरे हैं, फर्क इतना ही है कि गुण्डा हमेशा बुजदिलके पीछे लगा रहता है।

किसी पिछले अंकमें मैं यह स्वीकार कर चुका हूँ कि जहाँतक हिन्दुओंका ताल्लुक है वहाँतक हिन्दू-महासभा या इसी तरहकी कोई संस्था समझौता करनेके लिए उपयुक्त संस्था है। कांग्रेस सभी जातियोंका प्रतिनिधित्व करनेकी कोशिश करती है। चूंकि हिन्दू दूसरोंकी बनिस्बत राजनीतिक रूपसे अधिक सजग हैं इसलिए संयोगवश, न कि किसी हेतु प्रयोजनसे, कांग्रेसमें हिन्दुओंकी तादाद ज्यादा है। जैसा कि इतिहाससे सिद्ध है, काँग्रेस मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और हिन्दुओंकी संयुक्त रचना है, जिसके मार्ग प्रदर्शनका श्रेय अंग्रेजोंको था। और चाहे कांग्रेसके इस संयुक्त रूपके विरुद्ध कुछ भी कहा जाय, आज उसका वह रूप कायम है। एक मुसलमान धर्माचार्य निःसंदिग्ध रूपसे कांग्रेसके नेता हैं और दूसरी बार उसके अध्यक्ष चुने गये हैं। कांग्रेसवालोंकी सदा यह चेष्टा रही है कि जहाँतक हो सके विविध जातियोंके ज्यादा-से-ज्यादा सदस्य कांग्रेसमें भरती किये जायें, इसलिए राष्ट्रीय एकता और संगठनके लिए कांग्रेसने समझौते और शर्तनामे किये हैं। वह अपने इस कार्यको छोड़ नहीं सकती, इसलिए यद्यपि मैंने स्वीकार किया है कि

हिन्दू-महासभा या उसकी तरहकी कोई दूसरी हिन्दू-संस्था ही उपयुक्त रूपसे साम्प्रदायिक समझौता कर सकती है, फिर भी कांग्रेस तबतक राजनीतिक समझौते करनेमें अपनेको असमर्थ करार नहीं दे सकती, और न उसे ऐसा करना चाहिए, जबतक कि वह सर्वसाधारणकी विश्वासपात्र बनी हुई है।

हरिजन-सेवक
२४ फरवरी, १६४०



साम्प्रदायिक-निर्णय

अपने संक्षिप्त बंगाल-प्रवासमे साम्प्रदायिक-निर्णयके ऊपर किये जानेवाले सवालोंकी मुझपर झड़ी लग गई है। मुझसे कहा गया है कि न कांग्रेस-कार्यसमितिने और न मैंने ही साम्प्रदायिक-निर्णयपर अपनी कोई पक्की राय जाहिर की है। कार्यसमितिका निर्णय तो उसके कागज-पत्रोमे लिखा है और प्रकाशित भी हो चुका है। उसने उक्त निर्णयको न तो स्वीकार किया है, न अस्वीकार ही किया है। जबर्दस्ती लादी हुई किसी चीजकी न तो स्वीकृति हो सकती है, न उसे रद्द ही किया जा सकता है। किसी कैदीको जो सजा दी जाती है उसमें उसकी मन्जूरीकी जरूरत नहीं पड़ती। उसकी अस्वीकृति निरर्थक है। क्योंकि जल्द ही उसका भ्रम दूर हो जायगा। यह साम्प्रदायिक-निर्णय हिन्दुस्तानपर कुछ खुद उसकी अपनी अच्छाईके कारण नहीं बल्कि उसपर ब्रिटिश साम्राज्यके पंजेको मजबूत करने के लिए लादा गया है। इसलिए कहा जा सकता है कि कार्यसमितिने भी उसे उसी मात्रामे स्वीकार या अस्वीकार किया है जितना कि बंगालने। हाँ, इतना फर्क जरूर है कि बंगालकी तरह कार्यसमितिने इसके खिलाफ कोई आन्दोलन नहीं किया है।

जहाँतक मेरा ताल्लुक है, मैं 'साम्प्रदायिक निर्णय' का तिरस्कार करता हूँ। इससे हिन्दुस्तानके किसी दलका लाभ नहीं हुआ, सिर्फ ब्रिटिश पक्षको फायदा पहुँचा है। अगर मुसलमान इस ख्यालमे भूले हो कि उन्होने इससे फायदा उठाया है तो जल्द ही उनको मालूम हो जायगा कि वे भारी भूल कर रहे थे। अगर इस निर्णयको वदलने और जैसा इसे वनाना चाहिए वैसा वनानेकी मुझमे ताकत होती तो मै तुरन्त ऐसा कर डालता। लेकिन मुझमे ऐसी कोई ताकत नहीं है। ताकत तभी पैदा हो सकती है जव कि हममे एका हो। वंगाल अन्यायका एक वड़ा उदाहरण है। दो प्रमुख जातियोके वीच जवरदस्त यूरोपीय मताधिकारका पचड़ा घुसेड़ देनेके किसी न्यायपूर्ण कारणकी मैं कल्पना नहीं कर सकता। इन यूरोपियनकी तादाद नगण्य-सी है, उनके हित ब्रिटिश संगीनो द्वारा सुरक्षित हैं। फिर उस

पक्षको धारा-सभामें दाखिल करके और ज्यादा प्रबल बनानेकी क्या जरूरत है ? मै यह तो समझ सकता हूँ कि बिना मताधिकारके भी उनका प्रतिनिधित्व हो ताकि वे धारा-सभाओंके सामने अपना पक्ष रख सकें। पर जबतक उनके हित ब्रिटिश संगीनोसे सुरक्षित है, तबतक धारा-सभाओमे उन्हें जरूरतसे ज्यादा प्रतिनिधित्व देना एक बिलकुल अन्यायपूर्ण जबरदस्ती है। अगर यूरोपीय मताधिकार हटा लिया जाय, तो बंगालकी धारा-सभाका सारा नक्शा ही बदल जायगा। आज यह धारा-सभा जनता या असली मतदाताओंके प्रति पूर्णतः जिम्मेदार नहीं है। यूरोपीय दल न तो हिन्दुओंको, न मुसलमानोंको चैन लेने देता है। मुसलमान मंत्री भले ही इस ख्यालमे भूले रहें कि यूरोपीय पक्षके मतसे वे सुरक्षित हैं। व्यक्तिके नाते चाहे वे सुरक्षित हो, पर ऐसे लोगोंके किसी गुटको, जो तादादमे नगण्य है, प्रजासत्तात्मक धारा-सभासे अपने वोटके बलपर जिधर चाहे उधर उलट फेर-कर देनेकी नकली मताधिकार-शक्ति दे दी जाय, तो राष्ट्रीय हित कभी सुरक्षित नहीं रह सकते। इस बातसे धारा-सभाकी प्रजासत्तात्मक बनवाट ही नष्ट हो जाती है।

इस तरह 'निर्णय' मे जो बुराई है उसे मैं जानता हूँ। पर मै यह नहीं जानता कि सिवाय धीरजके साथ प्रयत्न करनेके किस तरह इसका निपटारा किया जा सकता है। हॉ, इतना मैं जानता हूॅ कि जबतक यह निर्णय कायम है तबतक सच्चा स्वराज नहीं हो सकता। बंगाल अन्यायका एक ज्वलन्त उदाहरण है। आसाम इसका दूसरा उदाहरण है। 'निर्णय' की बारीकीसे परखकी जाय तो मालूम होगा कि राष्ट्रीय-दृष्टिसे इसमें कोई अच्छाई नहीं है। अब या तो बृटिश-सरकार इसे बदलकर अन्यायका प्रतीकार कर सकती है, अथवा फिर सफल विद्रोहके जरिये इसे बदला जा सकता है। इसके अलावा आपसी राजीनामेके जरिये इसे बदला जा सकता है यह भी मैं जोड़नेवाला था, पर अगर हिन्दू मुसलमान राजी हो जाय तो भी यह असम्भव मालूम पड़ता है। इसके लिए यूरोपियनोंको भी राजी करना पड़ेगा, उनको स्वार्थ त्यागके लिए राजी होना पड़ेगा और यह बात राजनीतिके लिए अनहोनी-सी है। अगर स्वार्थ त्याग होता तो भारतमें राष्ट्रीय हितके विरुद्ध कोई यूरोपीय स्वार्थ या हित होता ही नहीं। और ऐसा कहनेवाला और इसे सिद्ध करनेकी उम्मीद करनेवाला बहुत बड़ा साहसी आदमी होगा कि भारतमें राष्ट्र-हित्के विरुद्ध कोई यूरोपीय स्वार्थ नहीं है।

हरिजन–सेवक

२४ फरवरी, १६४०

नोआखालीके हिन्दुओंको मेरी सलाह

मेरे मलिकदा-प्रवासके समय नोआखालीसे मनोरंजन बाबू और अन्य मित्र अपने इलाकेके हिन्दुओंकी मुसीबतोंके बारेमें मुझसे पत्र-व्यवहार भी कर रहे थे। मैंने शिकायतोंकी जाँच नहीं की है। इसके लिए न मेरे पास वक्त था, न इच्छा थी। यह प्रान्तीय कांग्रेस तथा अन्तमें केंद्रीय संस्थाके अधिकार-क्षेत्रकी बात है। लेकिन मुझे मोटे तौरपर सलाह देनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई। उनका मामला कमोबेश, सक्खर-प्रकरण जैसा ही है। मात्रामे बहुत ज्यादा अन्तर है। लेकिन मैं पूरी तरह अनुभव करता हूँ कि नोआखालीमें जिस तरहकी विस्तृत गुण्डई फैली बताई जाती है उसका मुकाबिला कोई भी लोक-निर्वाचित सरकार सफलतापूर्वक नहीं कर सकती। यह तत्त्वतः एक आत्म-रक्षाका मामला है। आत्म-सम्मान और आबरूकी रक्षा दूसरोंके जरिये नहीं की जा सकती। इनकी रक्षा तो हरेक स्त्री-पुरुषको खुद करनी चाहिए। सरकार तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना कर सकती है कि अपराध या जुल्म हो जानेके बाद अपराधीको सजा दे दे। पर वह अपराध होने ही न देनेका विश्वास नहीं दिला सकती—जहाँ तक सजा रोकका काम देती है वहीं तक इस दिशामें वह कुछ कर सकती है। आत्म-रक्षा हिंसात्मक और अहिंसात्मक दो तरीकोंकी हो सकती है। मैंने सदा अहिंसात्मक रक्षाकी सलाह दी है और उसीपर जोर दिया है। लेकिन मैं इतना मानता हूँ कि हिंसात्मक रक्षणकी तरह ही अहिंसात्मक रक्षाका ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। हिंसात्मक रक्षाके लिए जिस तरहकी शिक्षा और तैयारीकी जरूरत पड़ती है उससे इसकी शिक्षा और तैयारी भिन्न है। इसलिए अगर अहिंसात्मक आत्म-रक्षणकी शक्तिका अभाव है, तो हिंसात्मक साधनों और उपायोंका आश्रय लेनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। किन्तु चूँकि मनोरंजन बाबू एक पुराने कांग्रेसी हैं, इसलिए उन्होंने कहा— "आप तो कहते हैं कि मैं आत्म-रक्षाके लिए भी प्रत्याक्रमण नहीं करूँगा ?" मैंने उत्तर दिया—"अवश्य, मेरा मत तो यही है। लेकिन गया कांग्रेसमें एक प्रस्ताव पास हुआ था कि आत्म-रक्षार्थ बल-प्रयोग कांग्रेसियोंके लिए क्षम्य है। मैंने कभी इस प्रस्तावको उचित नहीं बताया है। अगर आत्मरक्षाके लिए हिंसा क्षम्य मान ली जाय तो अहिंसा निरर्थक हो जाती है। किसी आक्रमणकारी राष्ट्रके विरुद्ध राष्ट्रीय प्रतिरोध आत्म-रक्षणके सिवाय और क्या है ? इसलिए आपने जिस स्थितिका वर्णन किया है उसमें अपनी रक्षाके लिए यदि हिंसात्मक उपायोंका सहारा लेनेकी बात सोचते हो तो मैं कांग्रेससे अलग हो जानेकी सलाह दूँगा।" मनोरंजन बाबूने पूछा—"लेकिन मान लीजिए, मैंने गयावाला प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो क्या पीड़ित हिन्दुओंकी रक्षा करनेमें मुझपर साम्प्रदायिकताका अपराध लगाया जा सकेगा ?" मैंने उत्तर

दिया—"हर्गिज नहीं। पहली बात यह कि काँग्रेसी होनेसे आपका हिन्दू होना खत्म नहीं हो जाता। साम्प्रदायिकताके दोषी आप तब होंगे जब गलत या सही हर हालतमें हिन्दुओंका पक्ष लें। इस मामलेमें आप हिन्दुओंकी रक्षा इसलिए नहीं करते कि वे हिन्दू हैं, बल्कि इसलिए करते हैं कि वे पीड़ित हैं। मैं आशा करूँगा कि अगर आप मुसलमानोंको हिन्दुओं द्वारा पीड़ित होते देखें तो उनकी भी रक्षा करें। कांग्रेस सम्प्रदायभेद न मानता है और न उसे मानना चाहिए।

इसके बाद मिलनेवालोंने कांग्रेस झगड़ोंपर बातचीत की और मुझसे कहा कि कांग्रेसकी तरफसे सहायता पानेसे निराश हो जानेके कारण बहुतेरे हिन्दू हिन्दू-महासभामें शामिल हो गये हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हमलोग भी ऐसा कर सकते हैं? मैंने उनसे कहा कि सिद्धान्तः तो मुझे इसमें आपत्तिकी कोई बात नहीं दिखायी देती। पर मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता कि स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार यह उचित होगा या नहीं। लेकिन अगर मैं कांग्रेसी होऊँ और मुझे महसूस हो कि उस हैसियतसे मैं प्रभावशाली तरीकेपर कुछ नहीं कर सकता तो मैं उस संस्थामें शामिल होनेसे नहीं हिचकूँगा जो प्रभावशाली ढंगपर सहायक हो सके। पर इसके साथ मैंने यह भी कह दिया कि कोई जिम्मेदार कांग्रेसी कांग्रेस-संस्थामें पदाधिकारी होते हुए हिन्दू-महासभाका, जो स्पष्टतः एक साम्प्रदायिक संस्था है, सदस्य नहीं हो सकता। सारा सवाल कठिनाईयोंसे भरा हुआ है। इस अवसरपर शान्ति, सचाई और हिम्मतकी जरूरत है। अगर कांग्रेस प्रभावशाली रूपमें अहिंसात्मक नहीं बनेगी तो साम्प्रदायिकताकी विजय निश्चित है। अगर वह अहिंसासे खेलवाड़ करेगी तो खुद आचरणमें साम्प्रदायिक हो जायगी। क्योंकि कांग्रेसियोंमें हिन्दुओंका बहुमत है और अगर उन्हें अहिंसाके प्रभावशाली उपयोगका ज्ञान नहीं होगा तो फिर उनका हिंसाकी तरफ बहक जाना निश्चित है। मेरे मनमें तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि कांग्रेस तभी असाम्प्रदायिक रह सकती है, जब वह सब मामलोंमें अहिंसात्मक रहे। ऐसा नहीं हो सकता कि वह सिर्फ शासकोंके प्रति अहिंसात्मक रहे और दूसरोंके प्रति हिंसात्मक हो। यह मार्ग तो अयश और विनाशका मार्ग है।

हरिजन-सेवक
२ मार्च, १९४०

❀

हैं वह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। क्या इन विरोधियोंको यह डर है कि मुसलमान मतदाता मुसलिमलीगके आदमियोंको नहीं चुनेंगे ? क्या वे नहीं समझ सकते कि मुसलमान प्रतिनिधि मुसलमानोंके बारेमे जो मांग करेंगे उसका कोई विरोध नहीं होगा ? अगर हिन्दुस्तानी मुसलमानोके भारी बहुमतको यह लगे कि हम अपने हिंदू और दूसरे भाइयोंसे मिलकर एक राष्ट्र नहीं हो सकते तो उन्हें कौन रोक सकेगा ? लेकिन यह शंका तो जरूर की जा सकती है कि जिन पचास हजार मुसलमानोंने कायदे-आजमका भाषण सुना है उन्हें आठ करोड़ हिन्दुस्तानी मुसलमानोके प्रतिनिधि होनेका अधिकार है या नहीं ?

हरिजन-सेवक
३० मार्च, १६४०



विकट परिस्थिति

मुझसे एक सवाल पूछा गया है—"जब कायदे-आजम जिन्नाने हिन्दुओंके खिलाफ लड़ाई बोल दी है और मुस्लिम-लीगसे हिन्दुस्तानके शरीरके दो टुकड़े करनेके पक्षमें प्रस्ताव पास करवा लिया है, तो भी क्या आपका इरादा आम सविनय-भंग शुरू करने का है ? अगर है तो आपके इस सूत्रका क्या होगा कि कौमी एकताके बिना स्वराज्य नहीं हो सकता ?"

मैं मानता हूँ कि मुस्लिम-लीगने लाहौरमें जो कदम उठाया है उससे एक विकट परिस्थिति पैदा हो गयी है, मगर मैं इसे इतनी विकट नहीं समझता कि सविनय-भंग असम्भव हो गया हो। फर्ज कीजिए, कांग्रेसवालोंकी तादादमें बुरी तरह कमी आ गयी। सविनय-भंग करनेका तो उसके लिए भी रास्ता खुला रहेगा, बल्कि ऐसा करना उसका फर्ज भी हो सकता है। उस वक्त उसकी लड़ाई बहुमतके विरुद्ध न होगी, विदेशी शासकोंके खिलाफ होगी। अगर लड़ाईमें जीत हुई, तो उसका फल जैसे कांग्रेसको मिलेगा वैसे विरोधी बहुमतको भी मिलेगा। लेकिन बीचमे ही यह कह दूँ कि जबतक मेरी बताई हुई शर्तें पूरी न होंगी तबतक सविनय-भंग हर्गिज शुरू नहीं हो सकता। मौजूदा मामलेमें साम्राज्यके संचालकोंको साफ-साफ शब्दोंमें अपने इस इरादेका एलान करनेसे भी कौन रोक सकता है कि भविष्यमें हिन्दुस्तान अपना राज खुद अपनी मर्जीके मुआफिक करेगा, आजतक जैसा होता आया है उस तरह शासकोंकी इच्छाके अनुसार हुकूमत न होगी। इस तरहका

घोषणाका विरोध न मुस्लिम-लीग कर सकती है और न और कोई दल कर सकता है। कारण, मुसलमानोंको अपनी ही शर्तें मनवा लेनेका हक रहेगा। अगर बाकीके हिन्दुस्तानियोको आपसकी लड़ाई मोल नहीं लेनी है और मुसलमान अपनी बात मनवानेपर ही तुल जायेंगे तो दूसरे लोगोंको मान लेना पड़ेगा। बाकीके हिन्दुस्तानियोका बहुमत कितना ही जबरदस्त क्यो न हो, मुझे कोई ऐसा अहिंसक उपाय मालूम नहीं जिससे वे आठ करोड़ मुसलमानोंको अपनी बात माननेको मजबूर कर सकें। मुसलमानोको आत्म-निर्णयका वैसा ही अधिकार होना चाहिए जैसा शेष भारतको। आज हमारा सम्मिलित कुटुम्ब है। उसका कोई भी आदमी बँटवारेका दावा कर सकता है।

इस प्रकार जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा यह प्रस्ताव कि "कौमी एकताके बिना स्वराज नहीं हो सकता" आज भी इतना ही सही है जितना कि सन् १९१९ में था, जब मैंने पहले-पहल इसे पेश किया था।

लेकिन सविनय-भंगकी बात अलग है। अगर भीतरसे पुकार हो तो अकेला आदमी भी सविनय-भंग कर सकता है। मगर वह सिर्फ कांग्रेस या खास जमातके लिए नहीं होगा। उससे जो लाभ होगा वह सारे हिन्दुस्तानको होगा। कोई हानि हुई तो वह सविनय-भंग करनेवाले दल की होगी।

पर मैं विश्वास नहीं कर सकता कि जब सचमुच फैसला करनेकी नौबत आयगी तब मुसलमान देशके कभी टुकड़े चाहेंगे। उनकी समझदारी उन्हें रोकेगी, उनका स्वार्थ उनका हाथ पकड़ेगा, उनका धर्म उन्हें यह स्पष्ट आत्म-हत्या करनेसे मना करेगा। देशके इस अंग-भंगका और अर्थ हो भी क्या सकता है? "दो राष्ट्र-वाला" सिद्धान्त झूठा है। हिन्दुस्तानी मुसलमानोंमेसे ज्यादातर या तो अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बने है या धर्म छोड़नेवालोंकी सन्तान है। धर्म छोड़ते ही उनका अलग राष्ट्र नहीं बन गया। एक बंगाली मुसलमान बंगाली हिन्दूकी-सी भाषा बोलता है, वैसा ही खाना खाता है और अपने हिन्दू पड़ोसीके जैसे ही मनोरंजन करता है। उनका पहनावा भी मिलता-जुलता है। मैंने अक्सर देखा है कि किसी बाहरी चिह्नसे बंगाली हिन्दू और मुसलमानका पहचानना कठिन होता है। यही बात थोड़ी या बहुत दक्षिण भारत के भी गरीबोंमे दिखाई देती है। और गरीब ही भारतकी आम जनता हैं। जब मैं स्वर्गीय सर अली इमामसे पहले-पहल मिला था तो मुझे पता नहीं था कि वे हिन्दू नहीं हैं। उनकी भाषा, उनकी पोशाक, उनका व्यवहार और उनका खान-पान वैसे ही थे जैसे कि उन अधिकांश हिन्दुओंके थे जिनके बीचमें मैंने उन्हें देखा था। उनके नामसे ही उनका भेद खुलता था। कायदे-आजम जिन्नाके साथ तो वह बात भी नहीं, क्योंकि उनका-सा नाम तो किसी भी हिन्दूका हो सकता है। जब मैं उनसे पहले बार मिला तो मैं नहीं जानता था कि वे मुसलमान हैं। उनकी जाति तो उनके चेहरे और रंग-ढंगसे टपकती थी। पाठकोंको यह जानकर अचरज

होगा कि महीनों नहीं तो कई दिनों तक मै यही समझता रहा कि स्वर्गीय विट्ठलभाई मुसलमान हैं, क्योंकि वे लम्बी दाढ़ी रखते और तुर्की टोपी लगाते थे। बहुत-सी मुसलमान जातियोंपर उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू कानून लागू होता है। सर मुहम्मद इकबाल ब्राह्मण-वंशसे होनेका जिक्र गर्वके साथ किया करते थे। इकबाल और किचलू नाम हिन्दू और मुसलमान दोनोमे पाए जाते है। भारतके हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र नहीं हैं। जिन्हें ईश्वरने एक बनाया है उन्हें मनुष्य कभी टुकड़े नहीं कर सकेगा।

और क्या जैसा कायदे आजम कहते हैं, इस्लाम इतना ही एकांगी धर्म है? क्या इस्लाममे और हिन्दुत्व या और किसी धर्ममे कुछ भी समान बातें नहीं हैं? या इस्लाम सिर्फ हिन्दुत्वका शत्रु ही है? जब अली-भाइयों और उनके साथियोने हिन्दुओको सगे भाई समझकर छातीसे लगाया और दोनोंमे इतनी समान बाते देखी थी तो क्या उन्होंने भूलकी थी? इस समय मै हिन्दू-व्यक्तियोंका विचार नहीं कर रहा हूँ। संभव है, मुसलमान मित्र उन्हें जैसा समझते थे वैसे न निकले हो मगर कायदे-आजमने तो एक बुनियादी प्रश्न उठाया है। उनका कहना यह है—

"यह समझमें आना निहायत मुश्किल है कि हमारे हिन्दू मित्र इस्लाम और हिन्दुत्वके असली स्वरूपको क्यो नहीं पहचान पाते। सच्चे अर्थमे ये धर्म ही नहीं। ये तो असलमें दो अलग अलग समाज-व्यवस्थाएँ है और यह एक सपना है कि हिन्दू और मुसलमान मिलकर कभी एक राष्ट्र बन जायेंगे। एक भारतीय राष्ट्रकी यह गलत कल्पना मर्यादासे बहुत आगे बढ गई है। यही हमारे अधिकाश झगड़ोंका कारण है और अगर समय रहते हमने अपने विचार ठीक न कर लिए, तो इससे हिन्दुस्तानका नाश हो जायगा।

"हिन्दुओं और मुसलमानोंके दो अलग-अलग धर्म-विज्ञान, सामाजिक रीतियां और साहित्य है। उनका आपसमें न रोटी-व्यवहार है न बेटी-व्यवहार। असल बात तो यह है कि उनकी दो भिन्न संस्कृतियां है, जिनका मुख्य आधार परस्पर विरोधी विचार और कल्पनायें हैं। उनके जीवनके पहलू और दृष्टिकोण जुदा-जुदा हैं। यह भी बिल्कुल साफ है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंको इतिहासके अलग-अलग स्थानोंसे प्रेरणा मिलती है। उनके वीर-काव्य, उनके सूरमा और उनकी कथायें अलग अलग हैं। अक्सर एकका योद्धा दूसरेका शत्रु होता है और इसी तरह एककी जीत दूसरेकी हारके बराबर है। ऐसे दो राष्ट्रोंका, जिनमे एककी संख्या ज्यादा और दूसरेकी कम हो, जबरदस्ती गठबन्धन करके उन्हें एक ही राज्यके अधीन रखनेका नतीजा यही हो सकता है कि सदा असंतोष बढता रहे और अन्तमे ऐसे शासनके लिए जो भी इमारत खड़ी की जाये वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाये।"

जिन्ना साहबका कहना यह नहीं है कि कुछ हिन्दू बुरे हैं, वे तो यह कहते हैं कि हिन्दू-मात्रमे मुसलमानोंसे मिलती-जुलती कोई बात नहीं है। मैं साहसके साथ

कहता हूँ कि वे और उनकेसे विचारवाले इस्लामकी सेवा नहीं कर रहे हैं, वे उस संदेशका अनर्थ कर रहे हैं जो 'इस्लाम' शब्दमें ही निहित है। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि आज जो कुछ मुसलिम-लीगके नामसे हो रहा है उससे मेरे दिलको गहरी चोट पहुंचती है। मुसलमानोंमें आज जिस असत्यका प्रचार किया जा रहा है उससे उन्हें सचेत न करूँ तो मैं अपने धर्मसे चूकता हूँ। यह चेतावनी देना मेरा फर्ज इसलिए है कि मैंने संकटके समय उनकी सच्ची सेवा की है और हिन्दू-मुसलिम-एकता मेरे जीवनका एक विशेष कार्य रहा है और है।

हरिजन सेवक
६ अप्रैल, १९४०

❀

मेरी स्थिति

कायदे-आजम जिन्नाको जो मैंने जवाब दिया था उसकी आलोचना करते हुए नवाबजादा लियाकत अली खांने कुछ सवाल किए हैं जिनका खुशीके साथ मैं जवाब देता हूँ। मुझे अपनी इस बात पर कायम रहना ही चाहिए कि मैंने एक हिंदूकी हैसियतसे साम्प्रदायिक प्रश्नपर किसीसे कभी बात नहीं की है। ऐसा मुझे कोई अधिकार ही नहीं है। जब कभी मैंने किसीसे बात की है, कॉंग्रेसवादीकी, अक्सर केवल एक व्यक्तिकी हैसियतसे मैं नहीं बोल सकता। मुख्तलिफ संस्थाओंके लोगोंने मिलजुलकर और अप्रतिनिधिके हैसियतसे आपसी बात-चीत करके इस संसारमें हमेशा बड़े बड़े काम किए हैं। मुझे भय है कि यह उत्तर भी जो मैं देने जा रहा हूं और किसीका नहीं, मेरा ही प्रतिनिधित्व करता हुआ समझा जाना चाहिए। मौजूदा घडीमें तो मुझे यह कहने का कारण है कि शायद कार्य-समितिके किसी एक भी सदस्यका मैं प्रतिनिधित्व नहीं करता। जवाब मैं शान्त करनेवाले और मुसलमानोंके दोस्त (और यह भी कहूँ कि भाई) की हैसियतसे दे रहा हूँ। अगर भारतके मुसलमान वास्तवमें प्रस्तावित बंटवारेके लिए आग्रह करते हैं, तो एक अहिंसकके नाते मैं जबरदस्ती उसका प्रतिरोध नहीं कर सकता। लेकिन इस विभाजनका मैं खुशीसे कभी साथी नहीं हो सकता। उसे रोकने के लिए मैं हरेक अहिंसक उपाय काममें लाऊंगा। क्योंकि बंटवारेका अर्थ है—असंख्य हिन्दू-मुसलमानोंके मिल-जुलकर सदियों साथ रहनेके फलको नष्ट कर देना। बटवारा एक साफ झूठ है। मेरा सम्पूर्ण आत्मा उस विचारके विरुद्ध विद्रोह करती है कि हिन्दू-धर्म और इस्लाम दो विरोधी संस्कृतियों और सिद्धान्तोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। ऐसी बातका दावा करना मेरे लिए ईश्वरका

इनकार करना है। क्योंकि अपनी सम्पूर्ण आत्मासे मैं विश्वास करता हूँ कि कुरान-का खुदा गीताका ईश्वर भी है और हम सब—इससे कुछ नहीं होता कि नाम कुछ भी रखा गया हो—उसी ईश्वरकी संतान हैं। इस विचारके विरुद्ध मुझे विद्रोह करना चाहिए कि उन भारतीयोंकी, जो पिछले दिन हिन्दू थे, इस्लामको अपना धर्म इख्तियार कर लेने पर, राष्ट्रीयता बदल गई है।

लेकिन यह मेरा विश्वास है। इसे मैं उन मुसलमानोके गले नहीं उतार सकता जो सोचते है कि वे मुख्तलिफ राष्ट्रके हैं। मैं यह विश्वास करनेसे इन्कार करता हूँ कि आठ करोड़ मुसलमान कहेंगे कि उनके हिन्दू तथा दूसरे भाइयो और उनके बीच सामान्यता कुछ भी नही है। उस साफ सवाल पर उनकी बाकायदा राय ली जाय तभी उनके मनकी बात जानी जा सकती है। राष्ट्रीय पंचायत आसानीसे इस सवालको तय कर सकती है। स्वाभाविक है कि इस जैसे मामलेपर ऊपरसे कोई फैसला नहीं हो सकता। यह तो साफ तौर पर आत्मनिर्णयका मामला है। मैं तो और कोई अन्तिम तरीका नहीं जानता जिससे आठ करोड़ मुसलमानोके विचारोंका पता लगाया जा सके।

लेकिन प्रस्तावित राष्ट्रीय पंचायतका मुख्य काम विधान तैयार करना होगा। वह ऐसा तबतक नहीं कर सकती जबतक कि साम्प्रदायिक प्रश्न तय नहीं हो जाता।

मै अब भी विश्वास करता हूँ कि अहिंसात्मक तरीकोंसे स्वराज, बिना साम्प्रदायिक-एकताके, नहीं हो सकता। और आठ करोड़ मुसलमान निश्चय ही शांति-पूर्ण स्वतंत्रताके मार्गको रोक सकते हैं।

इतने पर भी अगर मै सविनय-अवज्ञाकी बात करता हूँ तो वजह यह है कि मैं विश्वास करता हूँ कि मुसलिम जनता भी आजादी उतनी ही चाहती है जितनी कि इस देशकी बाकी जन संख्या। और मान भी लिया जाय कि वे नहीं चाहते तो सविनय-अवज्ञा आन्दोलन जन मतको चाहे वे मुसलमान हो या हिन्दू या और कोई, शिक्षित करने का एक शक्तिशाली साधन होगा। विश्वमत भी उससे शिक्षित किया जा सकेगा। लेकिन सविनय-अवज्ञा मै शुरू नहीं करूँगा, जब तक मानवी रूपसे जहाँ तक सम्भव है, मुझे इस बातका विश्वास न हो जायेगा कि तत्वतः और अक्षरशः दोनो तरहसे अहिंसाका पूरा पालन किया जायेगा। मुझे आशा है कि नवाबजादाको यह विश्वास करनेमे कोई कठिनाई नहीं है कि सविनय-अवज्ञासे जो कुछ मिलेगा, वह सबके लिए होगा। जब भारतको अपना विधान बनानेका अधिकार मिलता है तो मुसलमानोको निश्चय ही अपने भविष्यकी रूप-रेखा बनाने का अन्तिम अधिकार होगा। बहुमतके वोट द्वारा वह तय नहीं होगा, न हो हो सकेगा।

अंतमे, नवाबजादा से मै कहूँगा कि कांग्रेसके अध्यक्षके बारेमें जो पंक्तियाँ उन्होंने लिखी हैं, वे उतावलीमे लिखी हैं। क्योंकि हमारे कालके इतिहासके वे विपरीत

हैं। और उतनी ही जल्दी उन्होंने यह कहनेमें की है कि "मि० गांधीके लालन-पालनमे कांग्रेसका एकमात्र ध्येय हिन्दू-धर्मका पुनरावर्त्तन और हिन्दू-संस्कृतिका सबपर और एक-एकपर थोपना रहा है।" इस भयंकर दोषारोपणमें मेरे अपने ध्येयका सवाल नहीं उठता। कांग्रेसका ध्येय तो पूर्णतया राजनीतिक है। ऐसी बातोंके कहनेसे कुछ भी हाथ नहीं आता, जिनका सबूत हो ही नहीं सकता। जहाँ तक मेरे ध्येयका सम्बन्ध है, मेरा जीवन तो एक खुली पुस्तक है। मैं तो सब संस्कृतियोंके प्रतिनिधित्वका दावा करता हूँ, क्योंकि मेरे धर्ममें, उसे चाहे फिर जिस नामसे कहिए, सब संस्कृतियोंकी सिद्धि है। जहां मैं जाता हूँ वहीं मुझे अपना-सा मालूम होता है, क्योंकि सब धर्मोंका मैं उतना ही आदर करता हूँ जितना कि अपने धर्मका।

हरिजन-सेवक
१३ अप्रैल, १९४०



कसौटीपर

मैं नीचे एक प्रसिद्ध पंजाबीके पत्रमेसे कुछ उद्धरण दे रहा हूँ—

"आपको मैं यह पत्र केवल इसलिए ही लिख रहा हूँ कि आपका ध्यान खाकसारोंकी हरकतोंकी ओर खींचूँ। लाहौरमें जो कुछ हुआ है वह सब आपको अच्छी तरह मालूम है। खाकसार-आन्दोलन गैर-कानूनी करार दे दिया गया है। मैं आपको अल्लामा मशरकीके लेखों और भाषणोंका साराश भेज रहा हूँ। शायद अबसे पहले भी आपका उनकी तरफ ध्यान दिलाया गया हो। मैंने उन भागोंपर निशान लगा दिए हैं जिनसे यह जाहिर होता है कि यह आन्दोलन आप द्वारा प्रचारित अहिंसाके बिल्कुल खिलाफ है। डर है कि पाबन्दी हटा दी जायगी। यदि ऐसा हुआ तो हम यही कहेंगे कि यह कांग्रेसके उस असम्भव रुखका परिणाम है जो उसने ११मेसे ७ प्रान्तोंमे अड़ंगा पैदा करनेके लिए ग्रहण किया है। निस्सन्देह, अंग्रेजोंने शुरूसे ही बन्दर-बाँटकी नीति अख्तियार की हुई है, लेकिन कांग्रेसने जो नीति ग्रहण की है वह अंग्रेजोंके लिए कम सहायक नहीं है, क्योंकि वह निरी मुसलमानोंके समर्थनपर टिकी हुई है। खाकसार जैसे हिंसात्मक आन्दोलनके दबानेका मामला धारा ५२ (१) (ए) के अधीन गवर्नरके विशेषाधिकारोंमें आ गया है। लेकिन शायद गवर्नर ऐसी कार्रवाई करनेसे परहेज करेगा, ताकि यही वर्तमान मन्त्रि-मंडल त्यागपत्र न दे दे और कहीं उन पहले ७ प्रान्तोंमें यह आठवाँ भी न मिल जाय, जहाँ विधान स्थगित हो रहा है। यदि यह पाबन्दी हटा दी गयी, तो फिर हिन्दू और सिक्ख संस्थाएँ भी उसी तरह संगठित की जायेंगी जिस तरह कि खाकसार। अभी उस दिन

अटारी (अमृतसर) में अकालियोंकी सभा हुई थी और उसमें यह निश्चय हुआ कि अकाल सेनामें १ लाख सिक्ख भरती किए जायं। इस प्रस्तावको क्रियात्मक रूप प्राप्त हो गया तो फिर देशमें खूनकी नदियाँ बह जायेंगी। क्या आप इन उपद्रवोंको, जो आन्दोलनोंके आवश्यक-परिणाम हैं, चुपचाप उदासीन रहकर देखते रह सकते हैं? आप इस संकटसे बचनेके लिए क्या सुझाव पेश करते हैं?"

यह अटकल लगाना सही है कि मुझे खाकसार-साहित्य भी प्राप्त हुआ होगा। इन संवाददाताने मुझे जो कुछ भेजा है मैं उसे प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। मैं उन कागजोंको पढ़ रहा हूं। इसमें सन्देह नहीं कि खाकसार एक सैनिक और लड़ाकू संस्था है। कोई सरकार सार्वजनिक शान्तिको खतरेमें डाले बगैर खानगी सैनिक संस्थाओंको काम करनेकी इजाजत नहीं दे सकती। मुझे निश्चय है कि पंजाब-सरकार खाकसारोंको अपने असली रूपमें फिरसे काम करनेकी आज्ञा नहीं देगी। मैं अपने संवाददाताके साथ इस बातपर सहमत हूं कि अगर खाकसारोंको पहलेकी तरह काम करनेकी इजाजत दे दी गई तो फिर सिक्खों आदिके साथ भी वैसा ही व्यवहार करना होगा। इसका झगड़ेके सिवाय और कोई परिणाम हो ही नहीं सकता।

इन सम्वाददाताने लिखा है कि यदि यह पाबन्दी हटा दी गयी तो "हम यही कहेंगे कि यह कांग्रेसके उस असम्भव रुखका परिणाम है जो उसने ११मेंसे ७ प्रान्तोंमें अडंगा पैदा करनेके लिए ग्रहण किया है।" मैं उसके इस विचारका समर्थन नहीं कर सकता। कांग्रेसके इस्तिफोंका साम्प्रदायिक तनातनीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कदम तो ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतको लड़ाकू देश घोषित कर दिये जानेके खिलाफ एक सम्मानपूर्ण विरोध था, क्योंकि अपने इन ग्यारह प्रान्तोंमें जिम्मेदार प्रधानोंसे पूछा तक नहीं गया था, हालाँकि उन्हें स्वतन्त्र समझा जाता है। युद्धके बारेमें ब्रिटिश सरकारने जो और भी मनमानी कार्रवाइयाँ की हैं यह उनके खिलाफ भी एक प्रतिवाद था। ये इस्तीफे तो वह कम-से-कम और नरम से-नरम कार्रवाई थे जो कांग्रेस कर सकती थी। लेकिन घटनाओंने उसे और तरहसे भी उचित कर दिया है। यदि कांग्रेसी मन्त्रि-मंडल और जारी रहते तो साम्प्रदायिक तनातनी शायद और बढ़ती। जबतक कांग्रेस अहिंसात्मक नीतिपर आरूढ़ है वह भारी बहुमतकी इच्छाके खिलाफ शासन नहीं कर सकती। परिचयों द्वारा ही बहुमत मिल जाना काफी नहीं है। कांग्रेसमें मेरी चलती, तो मैं उसे अंग्रेजी संगीनोंकी छायामें सत्ता कभी न लेने देता। जब कभी कांग्रेसी मंत्रियोंको सार्वजनिक हिंसाका दमन करनेके लिए पुलिस या फौजकी मदद लेनी पड़ी, मैंने खुले तौरपर उससे असम्मति जाहिर करनेमें कभी हिचकिचाहट नहीं की। अपने पदोंपर रहनेके लिए वे ऐसा करनेके लिए मजबूर भी थे। मेरा दलील यह थी कि हिंसाका दमन करनेमें कांग्रेस यह स्पष्ट घोषणा कर देती कि अभी उसे जनतापर अहिंसात्मक नियन्त्रण प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए अपनी नीतिके अनुसार उसे पद-त्याग कर देना चाहिए।

लेकिन मुझे डर है कि इस विचारवाला मैं ही एक हूँ। मेरी अहिंसा ब्रिटिश सरकारको बदलनेकी चेष्टामे ही खत्म नहीं हो जाती। ऐसी अहिंसा तो किसी कामकी नहीं। अहिंसाका नाम भी उसे नहीं देना चाहिए। इसलिए यदि मैं उसकी कुछ सहायता कर सका तो किसी ठीक-ठीक साम्प्रदायिक समझौते के बगैर कांग्रेसी मन्त्रि-मडल बनेगे ही नहीं। मेरा स्पष्ट मत है कि वास्तविक स्वतन्त्रता ऐसी अहिसाके बगैर असम्भव है जिसमें कहीं किसी तरहका विरोध न हो। इसी तरह मेरा यह भी विश्वास है कि भारत तभी सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है जब कांग्रेस इस विषयपर समझौता करनेसे इन्कार कर दे और अपनी बातपर डट जाय और यदि ऐसा करनेमें उसे कष्ट भी सहने पड़े तो उसमे यह भी साहस होना चाहिए।

खाकसारोंका खटका या खौफ स्वतः कोई खौफ नहीं है। यह तो एक गहरी बीमारीके लक्षण होनेका एक अपशकुन है। मुकाबलेमें दूसरी संख्या खड़ा कर देना आसान है, लेकिन वह कोई इलाज तो नही है। हॉ, उससे तकलीफ जरूर बढ़ जाती है। मेरा कहना चले, तो मै लोगोंसे यहीं कहूँ कि वे खाकसारोकी हिंसासे मुकाबिला करे। लेकिन अखबारो और इस पत्रसे मै यही देख रहा हूं कि लोग खतरेसे, चाहे वह वास्तविक हो या काल्पनिक, बचनेके लिए बाहरी रक्षा ढूँढ़ते हैं। इसका अर्थ यह है कि वर्त्तमान सत्ताको, शायद निजी रक्षात्मक तैयारियोसे बल मिलता है।

खाकसारोने मौतके रूपमे जो भयानक हानि उठाई है मैंने यहाँ उसका विचार नहीं किया। पीड़ित परिवारोंसे मेरी पूरी सहानुभूति है। मैं गोली-काण्डके बारेमे कुछ नहीं कहता। एक विशेष अदालत इन सारे मामलेकी जॉच कर रही है। अगर यह दुर्घटना अपने-अपने दिल टटोलनेके लिए प्रेरित करे, तो अदालतका चाहे जो भी निर्णय हो, यह बेकार नहीं जायगी।

हरिजन—सेवक
१३ अप्रैल, १९४०

❀

गो-मांस

प्रश्न-एक बहुत जरूरी सवाल है, जिसके बारेमें आपको मुसलिम जनताके दिलको सतोष दिलाना चाहिए। वह यह है कि क्या हिन्दू बहुमतके राज्यमें मुसलमानोंको गो-मास खानेकी इजाजत होगी? गो मास तो मुसलमानोंकी मांगी खुराक है। अगर इस सवालका आप सतोषजनक जवाब दे सकें, तो काफी गांठें खुल जायेंगी।

उत्तर—मुझे मालूम नहीं कि यह सवाल क्यों उठा, क्योंकि जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसने हुकूमत की है वहां उसने मुसलमानोके गो-मांस खानेमे कोई रुकावट नहीं डाली। यह सवाल गलतफहमीसे भी भरा हुआ है। हिन्दू बहुमतका राज्य तो हो ही नहीं

सकता। यदि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानमे हमलोग एक दूसरेके साथ अमनसे रहना चाहते हैं, तो जो विभाग होगे वे राजनीतिक विभाग होंगे, धार्मिक नहीं, क्योंकि उनके पैदा होनेका कारण मजहब नहीं होगा। आज भी काफी मत-भेद होते हुए, हमारी राजनीतिक "पार्टियो" के सदस्य अक्सर भिन्न-भिन्न धर्मके होते है। फिर यह कहना भी ठीक नहीं है कि गो-मांस मुसलमानोका राष्ट्रीय आहार या कौमी खुराक है। पहली बात तो यह है कि वे हिन्दुस्तानी हैं, कोई जुदी कौम नहीं। दूसरी यह कि गो-मांस उनका मामूली खाना नहीं है, उनकी खुराक तो सबकी खुराक है। अलबत्ता मुसलमानोंमे ऐसे बहुत कम है, जिन्होने मांस खाना मजहबके लिहाजसे छोड़ दिया है। इसलिए वह जब मिले तो हरेक किस्मका मांस खा लेते हैं और इसमें गो-मांस भी शामिल है। लेकिन असल बात तो यह है कि गरीबीके कारण सालमें ज्यादातर तो जनताको मांस मिलता ही नहीं।

अगर यह काल्पनिक प्रश्न है तो भी उत्तर देना आवश्यक है। मैं हिन्दू हूँ, पक्का निरामिषभोजी हूँ और गायको पूजता हूँ, जैसे मैं अपनी माता—अफसोस कि वह आज इस जगत्में नहीं—को पूजता हूँ। साथही, यह पक्की राय है कि अगर वह चाहें तो मुसलमानोको गाय मारनेका अधिकार होना चाहिए। उन्हें सफाईके नियमका पालन करना होगा जिससे हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस न पहुँचे। यह अधिकार मुसलमानोंके लिए आवश्यक है, अगर हम आपसमे मित्रताके साथ रहना चाहते हैं। अन्तमें, मैं समझता हूँ कि इस तरहसे हम गायको बचायेंगे भी, सन् १९२१ में खुद मुसलमान भाइयोंकी कोशिशसे हजारों गौओकी जानें बच गईं थीं।

आज तो आकाश काले बादलोंसे घिरा हुआ है। पर मैं उम्मीद नहीं छोड़ूंगा कि यह बादल तितर-बितर हो जायेंगे और हमारे अभागे देशमें सांप्रदायिक ऐक्य जरूर पैदा होगा। यदि मुझसे कोई पूछे कि मैं इसका कोई सबूत दूँ, तो मेरा जवाब यह होगा कि मेरी आशाकी बुनियाद तो श्रद्धा है और श्रद्धाको सबूतकी कोई जरूरत नहीं।

हरिजन-सेवक
२७ अप्रैल, १९४०

❀

एक अंग्रेजकी सूचना

एक अंग्रेज मित्र लिखते है—

"इस वक्त हम यह समझकर आगे बढ सकते है कि मुसलमान 'पाकिस्तान' से बहुत कुछ कम कबूल कर लेंगे। लेकिन मुश्किल तो यह है कि जितना भी समय बिना समझौतेके बीता जायगा पाकिस्तानकी पुकार उतनी ही जोर और जिद्दके साथ बढेगी, और अन्तमें या तो आपसकी लडाई होगी या बॅटवारा। मेरी रायमें आज लोगोंका यह ख्याल नाशकारी है कि बिना कुछ किए होनेवाली बातों पर इन्तजार करें। अब यह अंग्रेजोंका फर्ज है कि वे अपने समझाने और राजनीतिज्ञताका पूरा उपयोग करें और विविध दलोको समझौता करनेके लिये मजबूर करें।

"समस्याकी जड़ तो यह है कि केन्द्रीय सत्ता किसके हाथमें हो, हिन्दुओंके या मुसलमानोंके? इस बारेमें कांग्रेसको बहुत रियायत करनेको तैयार होना चाहिये। पार्लमेंटरी लोकशाही और बहुमत शासनके उसूलोंको नजर अन्दाज करना होगा। जब दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियोंको एक साथ रहना पड़ता है, तब इन उसूलोंमे काम नहीं चल सकता। मुसलमानोंकी दृष्टिसे बहुमत-शासनके तो यही माने होंगे, या कम-से-कम उन्हें इस बातका भय रहेगा कि एक संस्कृति दूसरीको दबा लेगी। अगर कांग्रेस इस बातको जल्दी ही नहीं पहचानेगी तो मुझे डर है कि बटवारा एकमात्र नही तो सबसे बेहतर उपाय होगा, जिसमे आप समझ सकेंगे कि दूसरे उपाय किस कदर खराब हैं!

"अगर कांग्रेस इस मसलेमें रियायतोंकी आवश्यकता समझ सके, तो मुझे यकीन है कि रास्ता निकल सकता है। मेरी रायमें यह आवश्यकता बहुत महत्वकी है।'

इसमें शक नहीं कि अंग्रेजी हुकूमत बहुत कुछ कर सकती है। उसने जबर्दस्तीसे बहुत कुछ किया भी। दोनों पक्षोंमे वह समझौता भी जबर्दस्तीसे करवा सकती है। लेकिन उसे इस हद तक जाने की जरूरत नहीं है। आजतक तो वह उचित समझौतेके रास्तेमे रुकावट ही डालती आयी है। अपनी इस दलीलके सबूतमें मैं माननीय लेखकसे सिफारिश करूँगा कि वह 'हरिजन' के लेखोंको पढ़ें। ब्रिटिश-सरकारको एक ही काम करना है, कि वह अपना रुख बदल दे। क्या वह ऐसा करेगी? हिन्दुस्तानपर वह अपना कब्जा केवल भेद-नीतिसे कायम रख सकती है। हिन्दू-मुसलमानोंका जीवित ऐक्य उसकी हुकूमतके लिए खतरनाक है। उसमें तो उसकी हुकूमतका खात्मा ही है। इसलिए मुझे यह प्रतीत होता है कि इस समस्याका सही हल इस हुकूमतके खात्मेपर ही हो सकता है। भले ही खात्मा अमलमें आज न हो, लेकिन उसकी भावना जरूर है। पाकिस्तानकी धमकीके मुकाबलेमें क्या किया जा सकता है? अगर यह धमकी नहीं किन्तु एक वांछनीय मकसद है तो फिर भी

उसे रोका भी क्यों जाये ? अगर वांछनीय है और उसकी आड़में मुसलमानोंके लिए अधिकसे अधिक हासिल करनेकी नीयत छिपी है, तो कोई भी हल न्यायसंगत नहीं हो सकता। वह तो हल न होनेसे भी बदतर होगा। इसलिए मैं तो जबतक यह धमकी दूर न हो जाय इन्तजार करना ही पसन्द करूँगा। हिन्दुस्तानकी आजादी एक जिन्दा चीज है। बनावटी चीजसे काम नहीं चलेगा। सारी दुनियाँ आज प्रसव-वेदनाका अनुभव कर रही है। चन्दरोजा फायदेके लिए जो भी किया जायगा वह भ्रूण-हत्याके समान होगा।

मैं हिन्दू-धर्म या इस्लामको संकुचित मानीमें नहीं देख सकता। मुझे ऐसे-वैसे समझौतेमें जरा भी दिलचस्पी नहीं है। हिन्दुस्तान एक बड़ा देश है—एक ऐसा देश जिनमें भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ हैं, जिनका झुकाव एक दूसरेसे मिलनेकी तरफ हो रहा है और जिनमेंसे हरेक संस्कृति एक दूसरीको पूरक है। अगर इस विधिके पूरा होने तक मुझे इन्तजार करना जरूरी है, तो मुझे करना होगा। मेरी जिन्दगीमें शायद यह काम पूरा न भी हो। लेकिन इस विश्वासमें कि उसे यथासमय पूरा होना ही है, मैं खुशीसे मरूँगा। मुझे इस विचारसे संतोष होगा कि मुझसे इस विधिमें रुकावट डालनेवाला कोई काम नहीं हुआ। इस शर्तपर ऐक्य कायम करनेके लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूं। मेरी जिन्दगी समझौतेसे बनी हुई है, लेकिन यह समझौते ऐसे हैं, जिन्होंने मुझे अपने ध्येयके नजदीक पहुंचाया है। पाकिस्तान विदेशी हुकूमतसे बदतर तो नहीं हो सकता। मैं तो विदेशी शासनके भी मातहत रह चुका हूं, अपनी इच्छाके खिलाफ ही चाहे ऐसा किया। अगर ईश्वरकी ऐसी ही मर्जी हो तो, मुमकीन है, अपने स्वप्नको मजबूरन मुझे ही असफल देखना पड़े। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि मुसलमान सचमुच हिन्दुस्तानका बंटवारा करना चाहते हैं।

हरिजन-सेवक
४ मई, १९४०



हिन्दू-मुस्लिम-उलझन

बँटवारेकी योजनाने हिन्दू-मुस्लिम-मसलेका रूप ही बदल दिया है। मैंने इसको असत्य कहा है। इसके साथ कोई समझौता हो नहीं सकता लेकिन साथ ही-साथ मैंने यह भी कहा है कि अगर आठ करोड़ मुसलमान बँटवारा चाहते हैं तो बावजूद हिंसक या अहिंसक विरोधके, दुनियाँकी कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती। सम्मानपूर्ण इकरारनामेसे यह बँटवारा नहीं हो सकता।

यह तो उसका सियासी रूप हुआ। लेकिन धार्मिक और नैतिक रूप क्या है ? यह तो राजनीतिकसे बढ़कर है। बॅटवारेकी आवाजकी तहमें तो यह मन्तव्य है कि इस्लामी भ्रातृभावना मुसलमानों तक ही महदूद है और हिन्दू-विरोधी है। आया वह दूसरे धर्मोंके खिलाफ भी है यह नहीं कहा गया है। अखबारोंकी जिन कतरनोंमें बँटवारेका समर्थन किया गया है उनमें हिन्दुओंको करीब-करीब अछूत बतलाया गया है। हिन्दुओं और हिन्दू-धर्ममें कोई अच्छाई निकल ही नहीं सकती। हिन्दू-शासनके मातहत रहना एक पाप है। हिन्दू-मुसलमानोंके संयुक्त शासनकी भी शक्यता नहीं है। मजकूर कतरनोंसे यह पता चलता है कि हिन्दू और मुसलमानोमे अभीसे लड़ाई जारी है, और उन्हें एक आखिरी फैसलेके लिए तैयार हो जाना है।

एक समय था जब हिन्दू समझते थे कि मुसलमान उनके स्वाभाविक दुश्मन हैं। लेकिन जैसा हिन्दू-धर्ममे हमेशा होता आया है अन्तमें वह अपने दुश्मनके साथ समझौता करके मित्रता कायम कर लेता है। यह विधि शुरू हुई थी, अभी पूरी नहीं हो पायी थी। लेकिन पापोंने मानो हिन्दू-धर्मको घेर लिया। लीगने वही खेल खेलना शुरू किया। लीग सिखलाती है कि इन दोनों संस्कृतियोंका मेल होना असम्भव है। इस सिलसिलेमे मैंने श्री अतुलानन्द चक्रवर्तीकी एक पुस्तिका अभी पढ़ी है, जिसमें यह दिखाया है कि जबसे इस्लामका ताल्लुक हिन्दू-धर्मसे हुआ है तबसे दोनों धर्मोंके उत्तम विचारके लोगोने एक दूसरेकी अच्छाइयाँ देखनेकी कोशिश की है। दिखलावेकी असमानतओंकी बनिस्वत उन्होंने भीतरी समानताओंपर जोर दिया। लेखकने भारतके इस्लामी इतिहासका चित्र इस्लामकी तारीखसे खींचा है। उन्होंने जो लिखा है वह अगर बिल्कुल सच है, तो यह पुस्तिका एक नयी प्रकाश डालनेवाली है और हरेक हिन्दू-मुसलमान इसे पढ़कर लाभ उठा सकता है। लेखकने सर शफात अहमद खॉं साहिबसे अपने पक्षमें एक दलीलसे भरी हुई भूमिका प्राप्त की है। बहुत-से और मुसलमानोंने भी उन्हें प्रमाण-पत्र दिये हैं। अगर उसमे इकट्ठी की गयी शहादत हिन्दुस्तानमे इस्लामके विकासपर सही रोशनी डालती है, तो यह बॅटवारेका प्रचार इस्लाम-विरोधी है।

मजहब तो इन्सानको ईश्वरके साथ बाँधता है, और इन्सानको इन्सानके साथ। क्या इस्लाम फक्त मुसलमानको मुसलमान ही के साथ बाँधता है और हिन्दूके साथ दुश्मनी पैदा कराता है ? क्या पैगम्बर साहबका शान्तिका पैगाम केवल मुसलमानो तक ही महदूद था और हिन्दुओं और गैर-मुसलमानोंके खिलाफ क्या ८ करोड़ मुसलमानोको यही खुराक देती है, जिसे मैं केवल जहर ही कह सकता हूं ? जो लोग यह जहर मुसलमानोंके दिलोमे भर रहे हैं वे इस्लामकी बड़ी भारी कुसेवा कर रहे हैं। मै जानता हूं यह इस्लाम नहीं है। मैं मुसलमानोके साथ रहा हू, एक दो दिनके लिए नहीं, करीब-करीब पूरे २० साल तक। एक भी मुसल-मानने मुझे यह नहीं सिखलाया कि इस्लाम हिन्दू विरोधी-मजहब है।

हरिजन-सेवक

४ मई, १९४०

हरिजन-सेवा और कौमी एकता

प्रश्न—आप हरिजन-सेवाका काम कर सकते हैं, खादी और ग्राम-उद्योगके कामके लिए संगठन कर सकते हैं मगर जब हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यका प्रश्न आता है, तो उसे टालनेके लिए आप अनेक बहाने गढ लेते हैं, क्योंकि दरअसल आप यह काम करना नहीं चाहते।

उत्तर—यह इल्जाम मुझपर कई अपरिचित पत्र लिखनेवालोंने लगाया है। मगर हालमें यह इल्जाम मेरे साथ गाढ़ा परिचय रखनेवाले एक मुसलमान सज्जनने उग्रतासे दोहराया है और इस प्रश्नका हल 'हरिजन' में करनेका तकाजा किया है। हरिजनों और मुसल्मानोंकी तुलना की ही नहीं जा सकती। हरिजनोंकी तो जो भी मदद की जा सके उसकी उनको जरूरत है। हरिजन-कार्य को परोपकारकी जरूरत नहीं। वह एक ताकतवर कौम है। अगर कोई हरिजनोंकी तरह उनकी सेवा करने लगे, तो उसे वह अपना अपमान समझेंगे। खादी और ग्राम-उद्योगकी मिसाल मेरे विरोधमें खड़ी करनेमें तो विचार-शून्यता जाहिर होती है। यह प्रवृत्तियाँ तो, जो कोई भी उससे फायदा उठाना चाहें उन सबकी मददके लिए संगठित की गयी हैं और सचमुच तो हिन्दू, मुसलिम और दूसरे लोग भी इनसे फायदा उठा रहे हैं। कौमी ऐक्यके बारेमें मैंने यथा-शक्ति प्रयत्न किया है, और कर रहा हूँ। भले ही, मुझे सफलता न भी मिली हो, मगर मेरे मनमें जरा भी शक नहीं कि मेरा प्रयत्न ठीक दिशामें चल रहा है, और अन्तमें यह हमे मंजिल पर जरूर पहुंचाएगा।

प्रश्न—आपको बीदरकी घटनासे बहुत दर्द हुआ है। जिनका नुकसान हुआ है उनके लिए आप न्यायकी माग करते हैं। और चाहते हैं कि हैदराबादसे बाहर रहनेवाले मुसलमान उन्हें न्याय दिलायें। अगर मुसलमानोंके साथ बुरा सलूक हो, जैसा कि बिहारमें हुआ तब भी आपको इतना दर्द होगा?

उत्तर—मैं नहीं जानता कि यहाँ बिहारकी कौन सी घटनाकी तरफ इशारा है। मै यहाँ इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे पास मुसलमानोंपर हिन्दुओंकी ज्यादतीका एक भी ऐसा किस्सा नहीं आया, जिसकी मैंने पूरी तरह जाँच पड़ताल न करवाई हो। खिलाफतके दिनोंसे मैं हमेशा ऐसा करता आया हूँ। मुझे हमेशा सत्यको ढूंढ निकालनेमें, या जिनपर ज्यादती हुई हो उन लोगोंको संतोष देनेमें भले ही सफलता न हुई हो, पर मैंने इसीके लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। बिहारके विषयमें जो इल्जाम लगाया गया है, उसके बारेमें इससे ज्यादा खुलासा मैं नहीं दे सकता। अगर कोई खास मिसाल मेरे सामने रखी जाये, तो मैं कह सकूँगा कि उसके बारेमें मैंने क्या किया था। मगर घड़ी-भरके लिए मान लिया जाये कि मैंने न्याय देनेके

अपने धर्म-पालनमें चूक की, या मुझे मुसलमानोंपर हिन्दुओंके अन्याय करनेसे उतना दर्द नहीं होता जितना कि हिन्दुओंपर मुसलमानोके अन्याय करनेसे, तो क्या इस बिना पर बीदरके बारेमें रियासत बेदरकारी बता सकती है ? मैं तो कह चुका हूँ कि आजतक जितने भी हिन्दू-मुसलिम फसाद हुए हैं उन सबमे बीदरसे टक्कर खानेकी एक भी मिसाल मुझे तो नहीं मिलती है। मेरी मांग तो इतनी ही है कि एक ऐसी अदालतके द्वारा पूरा न्याय दिया जाये, जिसकी तटस्थताको सब लोग स्वीकार करते हो। जिन लोगोंका नुकसान हुआ है उन्हें हरजाना मिले। बीदरके बारेमें मै जो माँगता हूँ वह ऐसी सब घटनाओंके लिए भी है।

हरिजन-सेवक
११ मई, १९४०



मुस्लिम शासन देशी शासन है

प्रश्न—क्या आप मुस्लिम शासनको अंग्रेजी-शासनसे बेहतर समझेंगे ?

उत्तर—सवाल यह अच्छी तरह नहीं पूछा गया है। चूँकि आप अंग्रेज है, इसीलिए आप अपने इस ख्यालको छोड़ नहीं सकते कि हिन्दुस्तानको तो किसी-न-किसीके मातहत ही रहना है। मुस्लिम-शासन तो देशी-शासनके बराबर है। आप यह भी पूछ सकते है कि आया मैं अंग्रेजी-शासनके मुकाबिलेमे बंगाली या मरहठोंका शासन पसन्द करूँगा ? बंगाली, सिक्ख, द्राविड़, पारसी, ईसाई (हिन्दुस्तान), मुसलिम सब हिन्दुस्तानी होंगे। मुझपर इसका कोई असर नहीं होता कि बाज मुसलमान अपनेको एक अलग मुल्कका समझते हैं। मेरे लिए यह काफी है कि मैं उन्हें ऐसा नहीं समझता। वह इसी भूमिकी सन्तान हैं। मुसलमानोंको अगर अलग समझा जाय तो उन्हें देशमें फैले हुए ८ करोड़ निःशस्त्र मुसलमानोंकी ओर देखना होगा। लेकिन आपको तो सारे अंग्रेजी मुल्क और आपकी यहाँकी गोरी फौजकी ओर देखना है। आप राज्यकर्त्ता जातिके है। ३५ करोड़ जनता जिनपर आप राज करते हैं उसके बीच आप एक लाखसे कम हैं। आपके और हमारे दोनोंके लिए यह लज्जाकी बात है। किसके लिए ज्यादा, इसे तौलनेकी जरूरत नहीं। जितनी जल्दी हम उससे मुक्त हो उतना ही हम दोनोंके लिए अच्छा है।

अब आप मेरा जवाब समझ सकेंगे कि क्यो मैं हर हालतमे मुसलिम-शासनको अंगरेजी-शासनकी बनिस्बत पसंद करूँगा। मुझे जरा भी शक नहीं कि अगर अंग्रेजी राज्य, जो अपनी सुविधाके अनुसार एक या दूसरेके साथ पक्षपात करके हमें जुदा करता रहता है, आज हट जाय, तो हिन्दू और मुसलमान अपने झगड़े भूल जायेंगे

और भाई-भाईकी तरह रहने लग जायेंगे। भाई-भाई तो वह हैं ही। लेकिन मान लिया जाय कि परिणाम बुरा ही आये और गृह-युद्ध शुरू हो जाय, तो यह हालत चन्द रोज या कुछ महीने ही रहेगी। उसके बाद हमलोग आपसमें फैसला कर लेंगे। हमारा दर्जा बराबरीका है। आपके साथ दूसरा है। आपने हमें निहत्था बना दिया है। हममेंसे वह, जिन्होंने आपसे ट्रेनिंग पायी है, जितने आपके हैं उतने हमारे यहाँ नहीं। फौजी ताकतमें तो हम आपका मुकाबिला कर नहीं सकते। आप नहीं जानते कि आपके राज्यने हमारे मुल्कको आगे बढ़नेसे कितना रोका है। जिस वक्त अंग्रेजी हुकूमतका सही खात्मा होगा, हम ऐसे बढ़ेंगे कि जैसे पहले कभी नहीं बढ़े। और यह सब होगा बावजूद तमाम आशंकाओंके।

हरिजन-सेवक
११ मई, १९४०



आत्म-निर्णय

प्रश्न—*क्या आपके लिए यह उचित है कि आप हिन्दुस्तानके दो टुकड़े करने जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नके बारेमें मुसलमानोंके आत्मनिर्णयके अधिकारको स्वीकार करें? इस प्रश्नका निर्णय दूसरी कौमोंके लिए, जैसे कि हिन्दुओं और सिक्खोंके लिए जिन्दगी और मौतका सा है। मान लिया जाय कि मुसलमान जनता बहुमतसे मुसलिमलीगके प्रस्तावके अनुसार हिन्दुस्तानके दो हिस्से करनेके हकमें फैसला करे, तो हिन्दू और मुसलमान राज्यमें हमेशाके लिए लघुतममें परिणत हो जायेंगे। उनके आत्मनिर्णयके अधिकारका क्या होगा? अगर आप इस तरह हरेक कौमका आत्म-निर्णयका अधिकार स्वीकार करते जायंगे तो आखिर मामला खत्म कहा जाकर होगा?*

उत्तर—इसमें शक नहीं कि हिन्दुओं और सिक्खोंको भी आत्म-निर्णयका अधिकार होगा। मैंने तो इतना ही कहा है कि अहिंसाके द्वारा इस प्रश्नको हल करने का दूसरा तरीका मेरे सामने नहीं है। यदि भारतकी जनताका एक एक भाग अपने लिए आत्म निर्णयका अधिकार मागने लगे, तो एक भारतीय राष्ट्र जैसी चीज नहीं रह जाती, और फिर उसे स्वतंत्रता तो मिल ही कहासे सकती है? मैं तो कह चुका हूं कि पाकिस्तान एक ऐसा असत्य है जो कि टिक ही नहीं सकता। ज्यों ही इस योजनाके बनानेवाले इसे अमलमें लाने बैठेंगे, उन्हें पता चल जायगा कि यह अमलमें लाने जैसी चीज ही नहीं है। मगर कुछ भी हो मेरा मत तो केवल व्यक्तिगत मत है। मैं नहीं जानता कि करोड़ों हिन्दू और दूसरे लोग क्या कहेंगे। मेरे जीवनका ध्येय तो सबके समान हितकी खातिर, सबकी एकताके लिए प्रयत्न करना है।

हरिजन-सेवक
१८ मई, १९४०

पाकिस्तान और गैर-मुस्लिम कौमें

प्रश्न—आपने 'हरिजन' मे कहा है कि अगर आठ करोड मुसलमान हिन्दुस्तानके टुकड़े करना चाहते हैं, तो दुनियामे कोई ताकत इसे रोक नहीं सकती। आपको यह क्यो नहीं सूझता कि २५ करोड गैर-मुस्लिम कौमोकी राय भी इस बारेमे महत्व रखती है? आपका ऐसी बात कहनेका क्या यह मतलब नही हो जाता कि आप मुसलमानोंकी रायको तो खूब बढाकर महत्व देते हैं और गैर-मुसलमानोंकी रायकी आपके पास कुछ कीमत ही नहीं है?

उत्तर—मैंने तो अपनी राय जाहिर की है। अगर हिन्दू, ईसाई, सिक्ख या छोटी सी पारसी कौमका बहुमत भी आठ करोड़ मुसलमानोके बाकायदा चुने हुए प्रतिनिधियोंकी इच्छाका सख्त विरोध करे, तो उन्हें गृह-युद्धका खतरा उठाकर ऐसा करना होगा। अगर हमें अपने मसलेको हिसाके द्वारा हल करना है, तो हमारे सामने दूसरा कोई रास्ता नहीं है। मै यह इसलिए नहीं कहता कि आठ करोड़ मुसलमानोकी बात है। अगर यह आठ करोड़ किसी दूसरी कौमके होते, तो भी मेरा यही मत होता।

हरिजन-सेवक
२५ मई, १९४०



बीदर

हैदराबाद दक्षिणसे पांच सज्जनोंने मुझे एक 'आफर' भेजा है, जिसके साथ मेरे खिलाफ सब तरहके व्यंगोंसे भरी एक लम्बी भूमिका लगी हुई है। उनकी भूमिकासे इन पृष्ठोंको भरनेकी जरूरत मैं नहीं समझता। अगर मेरे विरुद्ध प्रयुक्त विशेषण योग्य है, तो मैं उनका विज्ञापन करूँ या न करूँ वे बने रहेंगे। यदि वे लेखकोके अज्ञानके परिणाम हैं, जैसा कि मैं जानता हूं वे हैं, तो मेरे लिए उनपर ध्यान न देना ही उचित है। 'आफर' यह है—

"क्या गाधीजी मंजूर करेंगे कि सम्पूर्ण समाजी आन्दोलनकी जांच, जिसके कारण यह तथा और बहुतेरी घटनाएँ हुई हैं, पूरे तौर पर एक ऐसे कमीशनके द्वारा कराई जाय जिसका अध्यक्ष कोई पारसी या ईसाई और जिसमें बराबर तादादमें हिन्दू और मुसलमान सदस्य हों? अगर गाधीजी खुद पंच बननेको राजी हों तो भी हम तैयार हैं, क्योंकि

हमें विश्वास है कि जो प्रमाण हमारे पास हैं उनसे यह मामला साबित हो जायगा। ऐसी जांचकी प्राथमिक शर्तके रूपमें सिर्फ अनुकूल वातावरणकी आवश्यकता है इसलिए हम सुझाव पेश करते हैं कि गांधीजी बिना किसी हिचकिचाहटके मांग करें कि बीदरके अग्नि-काण्डके सम्बन्धमें जितने भी मामले अदालतमें चल रहे हैं उठा लिए जायें। यकीनन ही हम यह नहीं कहते कि खून जैसे भयकर अग्नि-काण्डसे सम्बन्ध न रखनेवाले मामले भी इस मांगमें शामिल किये जायें।

"गांधीजीकी यह भी राय है कि जिन लोगोंका नुकसान हुआ है, उनकी क्षतिपूर्ति की जाय। इसके पीछे जो दलील है उसे समझनेमें हम असमर्थ हैं। अगर साम्प्रदायिक घटनाओंपर क्षतिपूर्ति की जाने लगे, तो खजानेपर बोझ कितना बढ़ जायगा ? यह प्रतिकार है या उत्तेजन ? यह निश्चय ही एक विचित्र मांग है। हमें उम्मीद है कि गांधीजी हमारे इस 'आफर' को मंजूर करेंगे।"

इस 'आफर' को खुले हृदयसे स्वीकार कर लेनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं है। अगर ये लेखक इसी तरह हिज-एक्जाल्टेड-हाईनेस (निजाम) की सरकारसे भी यह 'आफर' स्वीकृत करा लेनेमें सफलता प्राप्त करें, तो वे एक ऐसा उदाहरण कायम करेंगे जिसका ऐसे सब मामलोंमें भली-भांति अनुसरण किया जा सकता है। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मेरे पत्र लेखकोंने जिस तरहकी अदालतका सुझाव पेश किया है वह यदि बन सका तो उसकी बनावट और अधिकार-सीमा राजीनामेसे ही तय होगी।

जिन लोगोंपर दंगेमें शिरकत करनेके शुबहेपर मामले चलाये गये हैं उनपरसे मामला हटा लेनेकी मांग करनेका अनुरोध मुझसे किया गया है। यह मामले मेरे कहनेसे नहीं चलाये गये, और मैं समझता हूं कि मेरी मांगपर वे हटाये भी नहीं जायेंगे। लेकिन अगर जांच-मंडलकी नियुक्ति हो जाय, तो मुझे सारे मामलोंको उठा लेनेकी स्वीकृति देनेमें कोई हिचकिचाहट न होगी। मैं अपने इन मित्रोंको विश्वास दिलाता हूँ कि अपराधीको दण्ड देनेमें नहीं बल्कि सत्यको जाननेमें मेरी दिलचस्पी है।

लेकिन मुझे अफसोस है कि क्षतिपूर्तिके प्रस्तावको मैं नहीं छोड़ सकता। क्षतिपूर्तिकी मांग इसलिए की गयी है कि लोगोंका कहना है कि अधिकारी अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें असमर्थ रहे। क्षतिपूर्तिका सवाल भी स्वभावतः प्रस्तावित जांच-मंडलके पास भेजा जायगा। मेरे पत्र-लेखकोंने मुझे अपने प्रस्तावके विषयमें अपनी सचाईका विश्वास दिलाया है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं राज्य द्वारा 'आफर' मंजूर करानेके उनके प्रयत्नोंके परिणामकी प्रतीक्षा करूँगा। मैं हर तरहसे उनकी सफलता चाहता हूँ।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९४०

हिन्दू-मुसलमान

दिल्लीसे एक खां बहादुर लिखते हैं—

"६ अप्रैलके 'हरिजन' के अपने लेखमें आपने लिखा है—"मुसलमानोंमे आज जिस असत्यका प्रचार किया जा रहा है उससे उन्हे सचेत न करूँ, तो मैं अपने धर्मसे चूकता हूँ। यह चेतावनी देना मेरा फर्ज इसलिए है कि मैंने सकटके समय उनकी सच्ची सेवा की है और हिन्दू-मुस्लिम-एकता मेरे जीवनका एक विशेष कार्य रहा है और है।" मैं आपसे दरख्वास्त करूँगा कि आप हिन्दू मुस्लिम मसलेपर हमारे नुक्ते-निगाहसे गौर करे। कम्यूनल सवालके निपटारेके लिए होनेवाली समझौतेकी बातोमे खास रुकावट यही रही है कि काग्रेसने आल-इण्डिया मुसलिम-लीगको हिन्दुस्तानके मुसलमानोंकी मुखबर और उनकी वकालत करनेवाली सिर्फ एक ही अंजुमन माननेसे इन्कार कर दिया है। काग्रेसका दावा है कि वह सारे हिन्दुस्तानके लिए आवाज उठाती है और इसके अन्दर मुसलमान काफी तादादमे हैं। लेकिन काग्रेसने मिस्टर जिन्नासे कई बार समझौता करनेकी कोशिश की, इसी बातसे यह जाहिर होता है कि जहा तक मुसलमानोका ताल्लुक है उसे अपने उनके नुमाइन्दा होनेमे पूरा यकीन नहीं है। पर क्या ईमानदारीके साथ आप यह नहीं महसूस करते कि काग्रेसी मुसलमान ही हिन्दू-मुस्लिम-मेलके रास्तेमें असली रोडे हैं और उन्हीकी खातिर काग्रेस इस मसलेको हल करनेके लिए सजीदा कोशिश नहीं कर रही है? मुझपर यकीन कीजिये, ये काहिल लोग हैं जो सिर्फ काग्रेसमें होनेकी वजहसे अपनी मौजूदा स्थितिका फायदा उठा रहे हैं।

"आपको यह तो मालूम ही है कि कलकत्ताके मुसलमानोंने आपके प्रेसिडेन्ट (राष्ट्रपति) के साथ क्या वर्ताव किया, जहा वह कितने सालोंसे ईदकी नमाज पढाते आ रहे थे। आप यह भी जानते हैं कि मुसलमानोको अपने नुक्ते-निगाहका बनानेके लिए किसी मुस्लिम जलसेके सामने बोलनेकी हिम्मत इन काग्रेसी-मुसलमानोंमे नहीं है। आप अंग्रेजोंको दोष देते हैं कि उन्होंने रजवाड़े, लिबरल और मेरे जैसे खा बहादुर पैदा किये। आप अगरेजोंपर इल्जाम लगाते हैं कि वे हिन्दुस्तानमे दूसरा 'अल्सटर' बनानेकी कोशिश कर रहे है पर क्या काग्रेसने आजाद, आसफ अली और किदवई जैसोंकी शक्लमे नरमों और खां बहादुरोंके हम वजन आदमी पैदा नहीं किये? क्या काग्रेसका काम एक 'मुस्लिम-अल्सटर' बनानेके बराबर नहीं है?

"आप दिल्लीके म्युनिस्पल चुनावमें मि० आसफ अलीकी कामयाबीका हवाला दे सकते हैं। मैं आपको बता सकता हूँ कि अगर सूबेकी लीगमे ना-इत्तफाकी न होती और स्थितिको बिगाड़ा न गया होता, तो मि० आसफ अली चुनावमे हर्गिज न जीत सकते। मैं आपको यह भी बता दूँ कि उस हालतमे भी जब दिल्लीकी काग्रेसने एक पार्टीकी हैसियत से म्युनिस्पल चुनाव लड़नेका फैसला किया तब मि० आसफ अलीने, जो इस वक्त काग्रेस-

वर्किंग-कमेटीके एक मेम्बर है, काग्रस टिकटपर खड़ा होनेसे इन्कार कर दिया था। इसलि
मि० आसफ अलीके चुनावको कसौटी नहीं माना जा सकता, और आप मुझे ऐसा कहने
लिए माफ करें तो मै कहूँगा कि अब भी मि० आसफ अली काग्रेस टिकटपर फिर
चुनावके लिए खड़े हों तो मुझे यकीन है कि लीगका कोई भी उम्मीदवार उन्हे हरा देगा
इस तरह आपको समझ लेना चाहिये कि जब हिन्दू-मुसलिम-एकाके बारेमे आपके जिन्दगी
'मिशन' में मुसलमानोंको विश्वास नही रह गया है तब लीगके लाहौरवाले रेजूलेशनसे
आपका परेशान होना वाजिब नही है। बल्कि दूसरी तरफ मुसलमानोंको पक्का यकीन हो
गया है कि काग्रेसका एक ही मकसद, कम-से-कम पिछले दस सालोमें फूट डालना और
उनपर हुकूमत करना रहा है। मैं आपसे दर्ख्वास्त करूँगा कि लीगकी तरफ आपका ज
रुख है उसपर फिरसे गौर कीजिये। मेहरबानी करके काग्रेसी मुसलमानोंपर भरोसा न
कीजिये, क्योंकि वे न सिर्फ हमलोगोंके बीचके 'मीरजाफर' हैं, बल्कि हिन्दू-मुसलमानोंके
मेल-मिलाप और हिन्दुस्तानकी आजादीके दुश्मन है।"

इस वक्त तो मुझपर मुसलमान भाइयोंके विरोध-भरे पत्रोंकी बाढ़ आ गयी है। इनमेंसे ज्यादातर दलीलसे काम नहीं लेते। सिर्फ गाली देकर ही अपना संतोष कर लेते है। प्यारेलाल, जो रोजकी डाक खोलते और उसका भुगतान करते हैं मुझे सिर्फ वही पत्र देते हैं जिन्हें वह समझते है कि मुझे देखना चाहिये। इन पत्रोंमेंसे मै उनपर तवज्जह करता हूँ जिनके बारेमे समझता हूँ कि मुझे ध्यान देना ही चाहिये। कुछका जवाब मैं खानगी तौरपर दे देता हूँ। इसलिए जिन पत्र-लेखकोंको 'हरिजन' के जरिये या डाकके द्वारा जवाब न मिले, उन्हें उसका कारण समझ लेना चाहिये।

मुसलमानोंके कुछ पत्र हमदर्दीसे भरे हुए होते हैं। जैसे इनमेसे एकमे लिखा है कि 'अपने मकानमे मुझे आपकी ऊल-जलूल निन्दा सुननी पड़ती है, कोई विशेषण इतना बुरा नहीं समझा जाता कि उसका इस्तेमाल न किया जा सके। मैं जानता हूं, इनमेसे ज्यादतर बातें झूठी होती हैं।' वह पूछते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिये? उन्हें मकान छोड़ देना चाहिये या कभी खत्म न होनेवाले मुबाहसोंमें शामिल होकर अपने मकानको रीछोंके बाड़ोंमें तबदील कर लेना चाहिये? मैंने इन पत्र-लेखकको सलाह दी है कि न तो वह मकान छोड़ें, न मुबाहसेमें शरीक हों। हां, जब वह देख रहे हों कि एक बिल्कुल झूठी बात कही जा रही है और लोग उसपर यकीन कर रहे है तो उस हालतमें, अगर वह कर सकते हों तो उन्हें एक-दो मुलायम शब्दोंमे सच्ची बात कह देनी चाहिये।

मेरे पास जो खत रखे हुए हैं, उनको तथा उर्दू अखबारों बल्कि मुसलमानोंके अंग्रेजी पत्रोंकी कतरनोंसे भी यही जाहिर होता है कि वे मुझे इस्लाम और हिन्दुस्तानके मुसलमानोंका प्रधान शत्रु समझते हैं। अगर एक जमानेमें उनके सबसे बड़े दोस्तके रूपमें मेरी वाहवाही हुई थी और मैंने उस प्रशंसाका उपभोग किया; तब मुझे दुश्मन कहलानेकी बात भी बर्दाश्त करनी चाहिये। सत्यकी जानकारी तो

सिर्फ ईश्वरकों है। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं जो कुछ करता, कहता या सोचता हूं अर्थात् कर्मसे, बचनसे और मनसे मै उनका शत्रु नहीं हूं। वे मेरे सगे भाई हैं और वैसे ही बने रहेंगे, चाहे वे मुझे कितना ही त्याज्य समझें।

अब मैं खाँ बहादुर साहबके खतको लेता हूँ।

मैं कभी समझ नहीं पाया कि ऑल इन्डिया मुसलिम-लीगकी इस मांगकी क्या वजह है कि कांग्रेस उसे मुसलमानोंकी एकमात्र प्रामाणिक संस्था मान ले। क्यों इस तरहकी मंजूरी मांगी जानी या इसकी उम्मीदकी जानी चाहिये? सुलह और समझौतेकी सच्ची आकांक्षाके साथ इस तरहकी मांगका मेल कैसे बैठता है?

कांग्रेस सबकी नुमाइन्दगी करने की कोशिश करती है। लेकिन उसने इस रूपमें अपनेको स्वीकार करानेकी किसीसे कभी मांग नहीं की है। 'अखिल-भारतीय' दर्जेके लिए उसके अनुरूप योग्यता होनी चाहिये, लेकिन उसकी योग्यता हो या न हो उसकी स्वीकृति एक फालतू चीज है। कांग्रेसने कभी दावा नहीं किया कि वह सारे हिन्दुस्तानी मुसलमानोंकी नुमाइन्दगी करती है। उसने किसी भी एक कौमका पूरा प्रतिनिधित्व करनेका दावा नहीं किया है। लेकिन बगैर वर्ग, जाति, रंग या धर्मका ख्याल किये वह हरेक राष्ट्रीय हितके प्रतिनिधित्वका दावा करती है। जो लोग कांग्रेससे किसी तरहका व्यवहार रखना चाहते हैं उनके लिए इस दावेको मंजूर करनेकी भी जरूरत नहीं है। प्रत्येक पक्षको इसमें काफी सान्त्वना मिल जानी चाहिये कि दूसरा पक्ष उसे इतना महत्वपूर्ण समझता है कि उससे दोस्ती पैदा करनेकी कोशिश करता है।

कांग्रेसने तो सदा ही इसे साफ-साफ मंजूर किया है कि उसके रजिस्टरपर मुसल्मानोंकी उतनी ज्यादा तादाद नहीं है जितना वह चाहती है। लेकिन उसे इसका फख्र है कि अनेक प्रतिष्ठित मुसल्मानोंकी मदद उसे मिलती रही है। हकीम अजमल खाँ साहब इनमे सबसे ऊँचे थे। कायदे-आजम खुद एक प्रधान कांग्रेसमैन थे। असहयोगके बाद ही, कई जातियोंके बहुतेरे और कांग्रेसवादियोंके साथ, वह भी इससे अलग हो गये। पर कांग्रेससे उनका अलग होना बिलकुल राजनीतिक था। सीधी लड़ाई उन्हें पसन्द नहीं थी।

राष्ट्रीय मुसलमानोको केवल इसलिए बुरा करार देना कि वे कांग्रेसमें शामिल है, गलत है। अगर वे लीगके सदस्य हो जायें तो लायक मुसलमान बन जायेंगे। मेरे पत्र-लेखकको जानकारी नहीं है कि कांग्रेसी मुसलमान एकता कायम करनेके लिए कितनी कोशिश कर रहे हैं। मुझे सन्देह नहीं कि जब एकता फिरसे स्थापित हो जायगी और होगी तो वह जरूर, तो राष्ट्रीय मुसलमानोंको हिन्दुओं और मुसल्मानों दोनोंके द्वारा उचित श्रेय दिया जायगा।

यह कहना कि वे सब 'मीरजाफर' हैं, सत्यका खून करना है। वे न तो इस्लामको और न हिन्दुस्तानको ही धोखा दे रहे हैं। अपने विवेकके अनुसार वे उनने

ही सच्चे मुसलमान हैं जितना लीगके सदस्य अपने लिए दावा करते हैं। यह कहना भी सत्यका वैसा ही दलन करना है कि कांग्रेस फूट डालकर शासन करनेके ब्रिटिश मार्गका अनुसरण कर रही है। कांग्रेस तो एक ही लक्ष्य सामने रखनेवाला राजनीतिक पक्ष है। हिन्दुस्तानके लिए वह दिन बुरा होगा जब यह साबित किया जा सकेगा कि कांग्रेस की नियत बद है। क्या कल्पनामें आ सकनेवाले बहुत साफ-सुथरे तरीकोंसे मुसलमान लोकमतको आकर्षित करना नीचता है? सही या गलत, कांग्रेस साम्प्रदायिक आधारपर स्थापित संकुचित खाने-बन्दीमें विश्वास नहीं करती। अगर धर्मको जैसा कि उसका तात्पर्य है, मनुष्यके निजी विषय, और ईश्वर तथा मनुष्यके बीचकी चीजके रूपमें रहने दिया जाय तो दोनों जातियोंमें ऐसे बहुतसे समानतत्व हैं जो हमें एक तरहकी जिन्दगी बिताने और एक-से कर्म करनेके लिए मजबूर करेंगे। धर्म इन्सानको एक-दूसरेसे अलहदा करनेके लिए नहीं हैं। वे उनको जोड़नेके लिए हैं। यह एक बदकिस्मतीकी बात है कि आज उनका रूप कुछ ऐसा बिगाड़ दिया गया है कि वे रगड़े-झगड़े और आपसके विनाशके प्रबल कारण बन गये हैं।

शायद अब यह बात साफ हो जायगी कि आसफ अली साहबके मामलेसे मेरा कोई ताल्लुक नहीं हो सकता। मैं यह भी मान लूँगा कि अगर उनमें और किसी लीगवाले आदमीमें मुकाबिला हुआ तो वह हार जायेंगे। इतना और भी मान लेना चाहिये कि ऐसे मुकाबिलोंमें ज्यादातर नतीजा इसी तरहका होगा। पर इससे मेरी स्थितिमें कोई कमजोरी नहीं आती। इससे लीगकी ऊँची संगठन करनेवाली योग्यता और मुसलमानोंमें उसकी लोक-प्रियता सिद्ध होगी। इन दोनों बातोंमेंसे किसीपर मैंने सन्देह नहीं किया। मेरा मामला तो अत्यन्त सरल है। लीगके जरिये एकता कायम करनेके पहले लीगके दर्जेके बारेमें कोई बात कबूल करनेकी मांग मुझसे नहीं की जानी चाहिये। मैं मुसलमान राष्ट्रवादियोंके प्रति बेवफा नहीं हो सकता, फिर चाहे उन्हें कितना ही नाचीज समझा जाय। मैं चर्चाके विषयमें, इस पत्रके लेखक खां बहादुर साहबसे निवेदन करता हूँ कि वह दोनों जातियोंको नजदीक लानेमें अपने प्रभावको काममें लायें।

हरिजन-सेवक

८ जून, १९४०

❀

दो दल

खानगी और सार्वजनिक रूपसे मुझसे अपील की जाती है कि मैं सब दलोंको एक जगह बुलाऊँ और सबके साथ मिल-जुलकर एक मान्य समझौता कर लूँ। उनका कहना है कि तब जो कुछ हम ब्रिटेनसे चाहते हैं, वह हमे मिल जायगा। पर ये भले मित्र एक केन्द्रीय तथ्यको भूल जाते हैं। कांग्रेस, जो हिन्दुस्तानके नामपर बोलनेका दम भरती है और विशुद्ध स्वतन्त्रता चाहती है, उन लोगोके साथ कोई सम्मान्य समझौता नहीं कर सकती, जो ऐसी स्वतन्त्रता नही चाहते। उसका वैसा करना अपनी धरोहर (ट्रस्ट) के साथ विश्वासघात करना होगा। इसलिए जबतक सबका एक ही अभिप्राय न हो, स्वभावतः कोई 'सर्वदल-सम्मेलन' नहीं हो सकता।

अगर ब्रिटिश सरकार समझती है कि कोई एक दल स्वतन्त्रता ले लेनेकी ताकत रखता है, तो वह कभी सबके समझौतेकी माँग न करती। यह कबूल कर लेना चाहिये कि आज कांग्रेसमे वह ताकत नहीं है। अपनी मौजूदा स्थितिमे भी वह मुखालिफतका सामना करके ही पहुंची है। अगर वह अपनेको कमजोर नहीं कर लेगी और काफी धीरजसे काम लेगी, तो आजादी ले लेने लायक वह काफी ताकत अपने अन्दर बढ़ा लेगी। यह प्रवंचना हमी लोगोकी पैदा की हुई है कि किसी तरहकी प्रगति करनेके पहले सब दलोंके साथ कोई इकरारनामा कर लेना हमारे लिए जरूरी है।

इस मुल्कमे प्रजासत्तात्मक विधिसे चुना हुआ सिर्फ एक ही राजनीतिक संगठन है—कांग्रेस। दूसरे सब या तो खुद बन बैठे हैं, या आंशिक आधारपर चुने गये है। मुस्लिम-लीगका संगठन जरूर ऐसा है जो कांग्रेसकी तरह लोक-निर्वाचित है। लेकिन वह साफ ही साम्प्रदायिक है और हिन्दुस्तानको हिन्दू और मुस्लिम दो हिस्सोंमे बाँट देना चाहता है। मैंने एक मुसलमान नेताकी अपील पढ़ी, जिसमें सुझाया गया है कि ब्रिटिश सरकारको मुसलमानोंके साथ समझौता कर लेना चाहिये और उनकी मददपर भरोसा रखना चाहिये। यह सवाल हल करनेका, पर साथ ही ब्रिटिश हुकूमतको कायम करनेका भी एक तरीका होगा। इसमे क्या शक है कि हिन्दू-महासभा भी हिन्दुओके साथ, जिनमें हिन्दू-राज्य भी शामिल होंगे, रिआयती वर्तावकी इच्छा करेगी। इस प्रकार इस मकसदके लिए तो सिर्फ दो ही दल हैं—एक कांग्रेस और उसके पक्षमे खड़े होनेवालोका और दूसरा इन सब पक्षोका जो कांग्रेसके साथ नहीं हैं। इन दोनोंके बीच मेलकी कोई गुंजाइश नहीं है जबतक कि एक या दूसरा अपने मकसदको छोड़ न दे। यह मान लेना चाहिये कि दूसरे पक्षोंका भी अपने मकसदके प्रति वैसा ही आग्रह है जैसा कि कांग्रेस

अपने मकसदके प्रति रखनेका दावा करती है। इसलिए यह जिच—रुकावट—है। लेकिन यह केवल ऊपरी है। सर्वमान्य मॉगको छोड़कर और तरहसे समझौतेकी कोशिश कांग्रेसको जरूर करनी चाहिये और उसने सदा इस तरहकी कोशिश की भी है। यह मत-परिवर्त्तनका क्रम है। कांग्रेसकी अहिंसा उसे अलग खड़ी रहने और जैसा कि विरोधी कहते है, ऊँचे घोड़ेपर चढ़े रहनेका निषेध करती है। इसके विरुद्ध, कांग्रेसको तो सब पक्षोंके प्रति प्रेम ही प्रदर्शित करना है, उनके सन्देहोंको हटाना है और अपनी सच्चाईके प्रति उनको विश्वास पैदा कराना है। पर यह वह तभी कर सकती है जब वह अपने घरकी सफाई कर ले। इसमें वक्त लगेगा, और यह वक्त उसे देना ही चाहिये। यह समयकी बर्बादी नहीं होगी। लेकिन अगर कांग्रेस अपनी आशा और विश्वासको छोड़कर इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि एक सामान्य राजीनामेपर पहुंचनेके लिए उसे अपनी मूल स्थितिको छोड़ देना चाहिये, तो आज उसका जो बल है वह न रह जायगा। आज तो वह हिन्दुस्तानकी आशा और विश्वासका प्रधान लंगर—आश्रय—है। चाहे वह अल्पमतमे हो या बहुमतमे, पर अगर वह अपने आश्रय-स्थानसे हटनेसे इन्कार करती है तो उसके लिए यह अच्छा होगा।

हरिजन-सेवक
१५ जून, १६४०



पाकिस्तान और विधान-पंचायत

प्रश्न—हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र है, यह कल्पना कांग्रेसकी विधान-पंचायतकी मांगका जवाब है। यह दोनो ही मागे बेहूदी-सी हैं। मेरी समझमे विधान-पंचायतकी मांगसे वस्तु-स्थितिका अज्ञान जाहिर होता है। हमारी ६५ फी सदी जनता निरक्षर है। धार्मिक राग-द्वेपका आधिपत्य तो सभी पर है। इसके अलावा बेईमानी और घूसखोरीकी गन्दगी तो है ही। मगर सबसे भयानक एतराज विधान-पंचायतके खिलाफ यह है कि जबतक बहुमतके मनमें अल्पमतके संरक्षणकी शर्तोंको पूरा करनेकी सच्ची इच्छा न हो, तबतक अच्छी-से अच्छी संरक्षणकी शर्तें भी हवाई ही सिद्ध होनेवाली है।

उत्तर—पाकिस्तान और विधान-पंचायतको एक साथ हरगिज नहीं रखा जा सकता। पाकिस्तानकी बात मेरी समझमें हर तरहसे गलत है। पर विधान-पंचायतकी कल्पनामें कोई भूल नहीं है। इसका भारी-से-भारी दोष यह हो सकता है कि उसकी रचनाका सवाल खतरेसे भरा हुआ है। मगर खतरे तो हरेक महान प्रयोगमें रहते हैं। खतरोंको कम करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। मगर हम

सबके ध्येयको प्राप्त करनेके लिए मुझे विधान-पंचायत जैसा कोई दूसरा दिखायी नहीं देता। पर बालिग-मताधिकार तो राष्ट्रवादी मुसलमानोंके कहनेपर दाखिल किया गया था। इनमें अली भाई भी थे। गंदगीका खतरा भी है। मगर संस्था जितनी बड़ी होती है, उतना ही गंदगीका असर कम होता है, क्योंकि वह बहुतोंमें बंट जाती है जैसे कि कांग्रेसमें काफी गन्दगी और हसद पाया जाता है, पर वह चन्द कर्त्ता-धर्त्ताओंतक ही परिमित है। जनताको इन दोषोंने छुआ तक नहीं है, हालांकि कांग्रेसके भले कामोंसे जनताको फायदा अवश्य होता है। संरक्षणोंके बारेमे जिस खतरेका आप जिक्र करते हैं वह खतरा नहीं-सा हो जायगा, बशर्ते कि संरक्षण विधान-पंचायत द्वारा बनाये जायें तो। क्योकि जो संरक्षण बालिग-मताधिकारसे चुने हुए मुसलमान प्रतिनिधियो द्वारा बनाये जायेंगे, उनके पालनका आधार बहुमतकी ईमानदारी या नेकनीयतीपर नहीं, बल्कि जागृत मुसलमान जनताकी शक्तिपर रहेगा। दोप विधान-पंचायतमें नहीं आपकी बहुमतकी गलत कल्पनामे है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओंका बहुमत है, मगर हम देखते है कि सार्वजनिक राजनीतिक संस्थाओंमे दल धर्मके अनुसार नहीं बनते, राजनीतिक और दूसरे मतोंके अनुसार बनते हैं। अलग निर्वाचन-पद्धति जारी होनेसे साम्प्रदायिकताका रोग और भी बढ़ा है। हिन्दुस्तानके टुकड़े करनेकी पुकार अलग निर्वाचन-पद्धतिका लाजिमी नतीजा तो है ही, साथ ही यह उस पद्धति की बुराईका सबसे प्रबल प्रमाण भी है। जब हममें समझ आयेगी तो हम अलग निर्वाचन और दो राष्ट्रोंकी बात भी नहीं करेंगे। मनुष्यकी स्वाभाविक भलाईमें मेरा विश्वास है। जहांतक मुसलमानोंके खास हकोंका वास्ता है, उनका फैसला मुसलमानोंकी रायसे होगा। इसलिए साम्प्रदायिक दृष्टिसे दलील की जाय, तो प्रतिनिधि-पंचायतके बारेमे अगर किसीको डर हो सकता है तो हिन्दुओंको हो सकता है, क्योंकि अगर मुसलमान-मत हिन्दुस्तानके टुकड़े करनेका फैसला करता है, तो हिन्दुओंको या तो हिन्दुस्तानके एक नहीं, अनेक टुकड़े होने देना है, या गृह-युद्धका सामना करना है। मगर आज वस्तु-स्थिति यह है कि सब लोग प्रस्ताव पास करके और अपना नाम अखबारोंमें देखकर ही संतोष कर लेते हैं। असलमे तो हम जहां थे वहीं हैं, यानी गुलामीकी जंजीरोंमे जकड़े हुए है। प्रतिनिधि-पंचायत असल चीज है। यह खाली बहस करनेवाली या कानून बनानेवाली गैर-जिम्मेदार संस्था नहीं होगी। उसके अंतिम निर्णयसे करोड़ोंकी किस्मतका फैसला होगा। आप उसका विरोध करना चाहते हैं तो भले करें। आपका विरोध सफल हुआ, तो हमारे सामने व्यवस्थित गृह-युद्धका नहीं बल्कि अराजकताका भयानक खतरा खडा होगा। इस दर्दनाक गुत्थीको हल करनेका रास्ता मुझे सिवाय प्रतिनिधि-पंचायतके और कोई दिखायी नहीं देता।

हरिजन-सेवक
२६ जून, १६४०

क्या इस्लाम ईश्वर-प्रणीत धर्म है ?

एक मुस्लिम अखबारमें एक लेखकने यह सूचना दी थी कि यदि मैं यह मानता हूँ कि इस्लाम ईश्वर प्रणीत-धर्म है और मुहम्मद साहब खुदाके पैगम्बर हैं, तो मुझे खुले तौरपर ऐसा कहना चाहिये। इससे मुसलमानोंका शक दूर हो जायगा, और शायद हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य भी आसानीसे हो सकेगा। यह लेख मैंने करीब एक महीना पहले पढ़ा था। इसका जवाब देनेसे कुछ फायदा होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। परन्तु हालमें मुसलमानोंकी मनोवृत्ति समझनेके लिए जितना हो सकता है उतने मुस्लिम अखबार मैं पढ़ता हूँ। उनमें इतना जहर उगला जाता है, और जानबूझकर या अनजानमें इस कदर झूठ लिखा जाता है कि यद्यपि इस्लामके बारेमें मेरी मान्यताको सारा जगत् जानता है, तो भी उसे यहाँ प्रगट करना मैं आवश्यक समझता हूँ।

मैं इस्लामको अवश्य एक ईश्वर-प्रणीत धर्म मानता हूं, इसलिए कुरान-शरीफ, ईसाई-धर्म और पारसी-धर्मके बारेमें भी मेरी यही मान्यता है। पैगम्बर अनेक हो चुके हैं और उन्होंने अनेक धर्म चलाये हैं। उनमेंसे बहुतोंका नामोंनिशान भी आज नहीं रह गया। क्योंकि वह सब धर्म और वह पैगम्बर अपने-अपने समयके लिए थे। कितने ही मुख्य धर्म आज मौजूद हैं। जितना सम्भव था उतना विविध धर्मोंका एकीकरण करना यदि उचित और आवश्यक है, तो उन सबकी एक महा-चाभी होनी चाहिये। यह चाभी सत्य और अहिंसा है। इस चाभीसे जब मैं किसी धर्मकी पेटी खोलता हूं, तो मुझे एक धर्मका ऐक्य दूसरे धर्मोंके साथ करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं आती। यद्यपि वृक्षके पत्तोंकी तरह सब धर्म अलग-अलग नजर आते हैं, मगर जड़को देखा जाय तो सब एक ही दिखायी देते हैं। इतना यदि हम समझ सके, तो धर्मके नामपर जो लड़ाइयाँ होती रही हैं और हो रही हैं, वह बन्द हो जायँ। ऐसी लड़ाइयाँ हिन्दू-मुसलमानके बीच ही होती हैं, ऐसा थोड़ा-ही है। हिन्दू धर्ममें क्या, ईसाई-धर्ममें क्या और इस्लाममें क्या, ऐसी लड़ाइयोंके वर्णनसे इतिहासके पन्नेके-पन्ने भरे पड़े हैं। धर्मकी रक्षा धर्मके अनुयायियोंकी पवित्रता और उनके सत्कर्मोंसे होती है, विधर्मियोंके साथ झगड़ा करनेसे नहीं।

हरिजन-सेवक
१३ जुलाई, १९४०

❀

बिसवा केस

बंगाल प्रान्तके प्रधान-मन्त्री मौलवी साहब फजल-उल-हकने एक खुला पत्र मेरे नाम प्रकाशित किया है। एक समय था जब कि वह एक उत्साही कांग्रेसी थे, परन्तु अब उनकी राय है कि जो कुछ भी कांग्रेसने किया है वह मुसलमानोंके दिलोंको चोट पहुंचानेके लिए किया है।

मौलवी साहब लिखते हैं !—

"मैं कई बार अखबारोंमें ऐसी घटनाएँ प्रकाशित कर चुका हूँ जिसमें कांग्रेसने अपनी प्रजातंत्रकी गाड़ी बेरहमी और लापरवाहीसे मुसलमानोंकी छातीपर चलायी है, जिससे उनको काफी दुःख पहुचा है। और कई बार यह काम आपकी रजामंदी और सलाहसे हुए हैं।"

जो इल्जाम मौलवी साहबने मेरे ऊपर लगाया है वह हरगिज सही नहीं है। मैं दावेसे कह सकता हूँ कि जब कभी मुसलमानोंपर अन्यायका मामला सुननेमें आया है तब मैंने हमेशा उसकी तहकीकात की है जहाँ-कहीं भी कांग्रेस गलतीपर थी मैंने निःसंकोच कांग्रेसको गलत ठहराया है।

बंगालके प्रधान-मंत्री साहब अपनी दलीलको साबित करनेके लिए 'बिसवा-केस' का उदाहरण देते हैं और उसपर मेरी राय भी चाहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने मेरा लेख इस मामलेपर जो ता० ११-५ ४० के 'हरिजन' में प्रकाशित हुआ था, नहीं पढ़ा। उस लेखका मैं एक शब्द भी वापस नहीं लेता।

अगर मुसलमानोंपर अन्यायके दूसरे उदाहरण, जिनका जिक्र मौलवी साहबने किया है, बिसवा-केसके समान हैं तो मैं कहता हूँ कि उनके इल्जाम बे-बुनियाद साबित होंगे। इस केसमें जो अन्याय हुआ है उसमें कांग्रेस-मन्त्री उतने ही निर्दोष हैं जितने मौलवी साहब खुद। किसी जजने यह नहीं कहा है कि इस मामलेमें पुलिस कांग्रेस-मंत्रियोंके प्रभावमें थी, या मंत्रियोंने अन्याय करवानेके लिए किसीपर दबाव डाला। अगर हाईकोर्टके फैसलेसे यह नतीजा निकाला जाय कि अन्याय हुआ है तो क्या मौलवी साहब यह कहना चाहते हैं कि मंत्रियोंने शहादतमें ऐसी गड़बड़ी कर दी जिससे मुलजिमोंको छोड़ना पड़ा ?

असल बात तो यह है कि पुलिसके आचरणके लिए और फौजदारीकी कार्रवाईके लिए मंत्री लोग किसी हालतमें भी जिम्मेवार नहीं थे। जैसा अन्याय इन मामलेमें हुआ है वैसा हिन्दुस्तानमें पहले भी कई बार हो चुका है, जब कांग्रेसके हाथमें सत्ता कहीं भी न थी। लेकिन हरेक मामलेमें पुलिस कसूरवार ठहरायी गयी थी, न कि सरकार; सिवा कि सरकारका कसूर किसी मौकेपर साफ-साफ साबित हुआ हो।

मौलवी साहबने कहा तो है कि मंत्रियोंने फौजदारी कार्रवाईमें दखल दिया, परन्तु वह अपने बयानके पक्षमें कोई सबूत नहीं पेश कर सके।

मध्यप्रान्त असेम्बलीमें जो भाषण पंडित शुक्लाने दिया था उसपर कोर्टकी टीकाका हवाला मौलवी साहबने दिया है, मगर इससे तो केवल इतना ही साबित होता है कि इस तरहका भाषण देना, जिससे किसी मामलेपर पहलेसे राय कायम हो, राजनीतिक बुद्धिमत्ता नहीं है। कोर्टकी टीका यह नहीं बतलाती कि पंडितजीका कोई भी सम्बन्ध इस मामलेमें पुलिस या फौजदारी कार्रवाईसे था। दर-असल तो जजकी इस टीकाका केसके साथ सम्बन्ध नहीं था। उसकी कोई कानूनी कीमत नहीं है। ऐसे भी कहा जा सकता है कि पण्डितजीको अपनी सफाई पेश करनेका अवसर दिये बगैर कोर्टके लिए इनके भाषणकी टीका करना अयोग्य था। लेकिन पण्डितजीने तो अपनी सफाई कांग्रेस सदरको एक पत्रमें दे दी है।

जो बात बहुत साफ थी वह तो मौलवी साहबकी नजरमें ही नहीं आई। वह यह है कि कोर्टने फैसला किया है कि श्री जगदेवरावकी कत्ल हुई। कोर्टने यह भी कहा कि बहुतोंको सख्त चोट लगी और उनको अफसोस तो इस बातका रहा कि ऐसा होते हुए भी अपराधी बच गए और इस कारण न्यायका भी कत्ल हुआ। मुसलमान तो इसके लिए मंत्रियोंको दोष नहीं दे सकते। अगर शिकायतका कारण किसीको है तो वह हिन्दुओंको है। जहाँतक मुझे मालूम है किसी हिन्दूपर मुकदमा नहीं चलाया गया, और न किसी मुसलमानको कोई भारी चोट आयी। यह तो स्पष्ट ही है कि अगर जिनको सजा मिली थी वह निर्दोष थे तो कोई दूसरे मुसलमान अपराधी होंगे। अदालत-अपील यह तो नहीं कहती कि कोई भी अपराधी नहीं थे। कोर्टने यह जरूर पाया कि पुलिसने मामलेको इस बुरी तरह बिगाड़ दिया कि अपराधी बच निकले। क्या यह मंत्रियोंका कसूर कहा जा सकता है? मुझे दुःख हुआ है कि मौलवी साहबने अपने खुले-पत्रमें एक हिन्दू नेताके मारे जानेपर या बहुतसे हिन्दुओंको सख्त चोटें लगनेपर या इन बुरे कामोंको करनेवालोंका सजासे बच जानेपर जरा भी अफसोस जाहिर नहीं किया है। पण्डित शुक्ला भी तो एक प्रधान-मंत्री थे। क्या यह उचित न था कि मौलवी साहब उनपर दोष लगानेके पहले उनसे मशविरा कर लेते।

हरिजन-सेवक
७ सितम्बर, १९४०



मुझे आश्चर्य होता है

"कुछ समयसे आपने अहिंसाकी दलीलोंके समर्थनमें बारम्बार कुरान शरीफ और इस्लामके उपदेशोंका हवाला देनेका तरीका इख्तियार किया है, और आपके वे हवाले भी स्पष्ट और अनिश्चित होते हैं। यह साफ जाहिर है कि इसमें आपका हेतु मुसलमानोंके दिलोंपर अपना असर डालनेका ही है। इसमें कोई शक नहीं कि आपको अपने प्रिय सिद्धान्तोंपर उपदेश देनेका अधिकार है। इसी तरह हम यह भी समझ सकते हैं कि आप खान साहब अब्दुल गफ्फार खाँ और मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे मुसल्मानी वेषमें छुपे तौरपर इस्लामके दुश्मनका काम करनेवाले मुस्लिमोंकी पीठ ठोंके। मगर आप क्यों नहीं यह समझ सकते कि मुसल्मानोंकी धर्मभावनाको कोई दूसरी चीज इतना आघात नहीं पहुंचा सकती जितनी कि एक गैर-मुस्लिमका अपना उल्लू सीधा करनेके लिए इस्लामकी धर्म पुस्तकका हवाला देना। खैर! मुसलमानोंके लिए उनका तेरह-सौ सालका इतिहास इस्लामके सही माने और उसका सही अमल उन्हें बतानेके लिए काफी है। मुसलमानोंको उनके कुरान शरीफके अर्थ बतानेके लिए एक महात्माकी जरूरत नहीं। सचमुच बेहतर होगा कि आप भी कुरान शरीफके अपने मनमाने और मन-गढ़त अर्थ लगानेकी बजाय मुसलमानोंसे जो अर्थ वे तेरह सौ सालसे समझते चले आ रहे हैं उसे ग्रहण करें। मैं आशा करता हूँ कि आप इतना तो समझते ही होंगे कि आप और आपके सूर्यमण्डलमें नक्षत्रोंकी तरह चक्कर लगानेवाले मुसलमान साहबान इस्लामी दुनियाँका बिल्कुल विश्वास खो चुके हैं। आपका कुरानका हवाला देना बिल्कुल निकम्मा और बेईमानी है। सिर्फ वह मुसलमानोंकी धर्म-भावनाओंको चोट पहुँचाकर उन्हें भड़का जरूर सकता है। मुसलमानोंमें इतना स्वाभिमान अवश्य रहा है कि अपने कुरान मुकद्दसको गैर-मुस्लिमोंके हाथमें कुल्हाड़ीके हत्थेकी तरह न इस्तेमाल होने दें। इस्लामके बारेमें आपके चापलूसीके शब्द व्यर्थ हैं! क्योंकि इतनी बात तो साफ और उभरी हुई है कि खुद आपने इस्लाम कबूल नहीं किया, इसलिए आपके विचार और आदर्शोंका मूलाधार कुरान शरीफ नहीं। परन्तु केवल उनका प्रचार मुसलमानोंमें करने के लिए आप कुरानको बीचमें घसीटकर लाते हैं। मेरी आपको मित्रभावसे सलाह है कि आगेके लिए आप कुरानका हवाला देनेसे बाज आवें और, मौलाना अबुल कलामके वे लेख पढ़ें जो कि उन्होंने मुस्लिम-हिन्दुस्तानके दोस्त नुमा दुश्मन बनना मंजूर करनेके पहले लिखे थे।"

यह पत्र अलीगढ़के एक एम० ए० पास नवयुवककी ओरसे मुझे मिला है। मुस्लिम युनिवर्सिटीमें वे संशोधनका कार्य करते हैं, और इसके लिए उन्हें छात्र वृत्ति भी युनिवर्सिटीसे मिलती है। मुझे खत मिले कुछ अर्सा हुआ है। मैंने उसे इतनी देर अपनी फाइलमें रख छोड़ा था, क्योंकि मैं इस बातका फैसला अपने मनमें अबतक नहीं कर सका था कि इसके छपनेसे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके ध्येयको

कुछ सेवा होगी या नहीं। मगर इतनेमें इन्हीं मित्रकी तरफसे इससे भी अधिक असंयत एक और पत्र मुझे मिला, और परिणामरूप मैंने इस पत्रको छापनेका फैसला कर लिया, ताकि अलीगढ़के तथा अन्य मुसलमान भाइयोंको जो कि इस लेखक जैसे विचार रखते हैं अपने दिलकी दो बातें सुना सकूँ।

अलीगढ़के मीठे स्मरण मेरे मनमें हैं। मैं कई बार इस बड़ी युनिवर्सिटीको जाकर देख चुका हूँ। अब भी मेरा इसके साथ सम्बन्ध है। मेरा ख्याल है कि अब भी मैं उनके क्लबका सामान्य सदस्य हूँ। जब स्व० डाक्टर सर रोस मासूद युनिवर्सिटीके उप-कुलपति थे, तब उनके हाथों यह पद मिलनेका गौरव मुझे प्राप्त हुआ था।

रही कुरान शरीफकी बात। सो उसका अध्ययन मैंने दक्षिण-अफ्रीकामें मेरे मुसल्मान असीलों और मित्रोंके कहनेसे किया था। उन्होंने मुझे इस्लामी-साहित्य भी पढ़नेको दिया था। हिन्दुस्तान लौटनेपर मुस्लिम-मित्रोंने कुरान-मुकद्दसके कई अनुवाद मुझे भेजे थे। इन भेजनेवालोंमें डाक्टर महम्मदअली साहब भी थे, जिन्होंने अपने किये हुए अनुवादकी एक प्रति मुझे भेंट की थी। और एक प्रति मरहूम मार्मड्यूक पिकथाल साहबने अपने अनुवादकी भेजी थी। मौलाना शिब्लीके अनुवादकी नकल मुझे मरहूम हकीम अजमलखाँ साहबकी तरफसे मिली थी। अगर आज मेरे जैसे गैर-मुस्लिमके लिए कुरान शरीफका अध्ययन करना या इसका भाष्य करना जुर्म करार दिया जाता है तो इसका कारण क्या है कि मैं बदल गया हूँ? या कि जमाना ही बदल गया है? कई पारसादिल मुसल्मानोंने मुझे कहा है कि बहुत मुसल्मानोंकी अपेक्षा अधिक इस्लामियत मुझमें है और मैं कुरान-शरीफके गूढ़ आदेशोंकी आम मुसल्मानोंसे ज्यादा अच्छी तरह पाबन्दी करता हूँ, तथा मेरा पैगम्बर साहबके जीवनसे अधिक गाढ़ परिचय है। मुझे आश्चर्य होता है कि किस मतको मैं स्वीकार करूँ,—इन मुसल्मान मित्रोंकी मतको, या अलीगढ़के इन मित्र और उनके जैसे विचार रखनेवाले उनके साथियोंके मतको?

अलीगढ़के इन मित्रका यह कहना ठीक है कि कुराने शरीफका मैं मेरी वृत्तिके अनुसार अर्थ देखना चाहता हूँ। मगर जबतक मैं कुरान शरीफके मूल वाक्योंको किसी तरह तोड़े मरोड़े बगैर प्रामाणिकतासे और ईश्वरकी साक्षी रखकर उद्घाटित मनसे उसके सच्चे अर्थको खोज करूँ तबतक इसमें आपत्ति ही क्या है? और फिर अलीगढ़के इस मित्रको बतौर एक आमिलके मालूम होना चाहिये कि किसी व्यक्तिके जीवन या पुस्तकका जो भावार्थ परम्परासे समझा गया है वह आवश्यक तौरपर सच्चा होना ही चाहिये, ऐसी कोई बात नहीं। इतनी तादातमें इतनी बार इतने वर्षो तक एक भूलको दोहरानेसे वह भूल नहीं मिट जाती; वह भूल ही रहती है। अंजीलकी इबारतमें अभी तक संशोधन किया ही जा रहा है। और कई प्रामाणिक और सच्चे ईसाई यह मानते हैं कि पाश्चात्य ईसाई जनताका आजतकका व्यवहार

ईसाके उपदेशको बट्टा लगाता है। इसलिए यह क्यों न माना जाय कि कुरान शरीफ को पढ़ने और इसका भाष्य करनेके अधिकारके बारेमें उनका अभिप्राय और कुरान शरीफ का वे जो अर्थ लगाते हैं वे गलत हैं, और सचमुच मेरे जैसे ग़ैर-मुस्लिमको कुरान पढ़नेसे और उसका अर्थ लगानेसे धर्म नहीं रोकता? इतना ही नहीं, यह भी हो सकता है कि आखिर मेरा लगाया हुआ अर्थ ही ठीक निकले। अगर एक दिन ऐसा आये कि जब धर्म-पुस्तकोंका अध्ययन और उनके अर्थ करनेकी छूट सिर्फ उन लोगोंको ही हो जो अमुकवाद या धर्मका परवाना पेश कर सके, तो वह जगत के लिए एक अशुभ दिन होगा। मैं अलीगढ़के मेरे इन मित्रसे और उनके साथियोंसे विनय-पूर्वक परन्तु आग्रहके साथ कहना चाहता हूँ कि आपके इस रवैयेमेंसे असहिष्णुताकी बू आती है। आप इसे छोड़ें और अन्य लोगोंको भी वैसे ही प्रामाणिक समझें जैसेकी आप खुद होनेका दावा करते हैं। किसी एक मनुष्यने ही सचाईका सारा ठेका नहीं लिया है। अपूर्ण मनुष्य द्वारा प्रतिपादित सब सत्य सापेक्ष ही होते हैं। जो रोशनी ईश्वरने हमें दी है उसीके अनुसार हम चल सकते हैं। सम्पूर्ण सत्य केवल ईश्वरको ही मालूम है। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए संशोधक महोदयको नम्रता और उदारता सीखनी चाहिये। कट्टरपन और असहिष्णुता सत्यान्वेषणमें बाधक तो होते ही हैं, परन्तु वे जिस पक्षका समर्थन करते हैं उसे भी हानि पहुँचाते हैं।

हरिजन-सेवक
५ अक्तूबर, १९४०



सिन्धके हिन्दू

सिन्धके मौजूदा हालातके बारेमें श्री श्यामलाल गिदवानी यूँ लिखते हैं:—

"अहिंसक मार्गके बारेमें जो सलाह आपने सिन्धके हिन्दुओंको दी थी, वह हमलोग नहीं मान सके हैं। हमारी रायमें यह सलाह श्रीकृष्णजी महाराजकी शिक्षाके बिलकुल विरुद्ध है। आपने यह भी कहा है कि अगर हम अपनी रक्षा न कर सकें तो हमें सिन्ध प्रान्तको छोड़ देना चाहिये। यह सलाह भी हम किस तरहसे मानें? कारण तो स्पष्ट ही है। आप तो इनसे अच्छी तरहसे वाकिफ हैं और 'हरिजन' में जो आपने इनके बारेमें लिखा था उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। आपको मालूम होगा कि यद्यपि सिंधमें हिन्दुओंकी संख्या तो केवल २७ फी-सदी है, फिर भी वे ५० फी सदी जमीनके मालिक हैं। हमारी संख्या सारे प्रान्तमें बिखरी हुई है, चन्द गाँवोंमें सिर्फ दो या दस फी सदी होगी। प्रान्तकी 'इन्कम टैक्स', मालगुजारी और चुंगीकी आमदनी तो करीब-करीब सब हिन्दुओंसे ही वसूल

होती हैं। अगर हम आपकी सलाहपर अमल करे तो न सिर्फ कायर कहलाये जायेगे, घर वे जमीन और वे घर भी हो जायेगे। दुनियाँ तो यह भी कह सकेगी कि हिन्दू एक जालिम कौमका सामना करने लायक न थे। और इससे तो लोकतन्त्रकी नाकामयावी भी जाहिर होगी। मगर हम तो यह महसूस करते हैं कि यदि आप—सिन्धके लोगों और खासकर वहोके हिन्दुओंको यह सलाह देने कि उन्हे अपनी रक्षा हथियारोंसे करनी चाहिये और फौजी-शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये; तो जो हालमे कतलपर कतल होते आये हैं वे हरगिज न होते।"

जिस रोज यह खत मेरे पास आया उसी रोज मैंने अखबारोंमें पढा कि पाँच हिन्दुओंका—और यह लोग उस समय अपना मामूली कार्य कर रहे थे—खुल्लमखुल्लेमें कतल हो गया। और जैसा आजकल हो रहा है खूनियोंका अभीतक कुछ पता नहीं चला। क्या ये घटनायें जानबूझकर कराई जा रही ह ताकि हिन्दू सिन्धसे भाग जायें? या कोई दूसरा कारण है? सिन्धमें किसी-न-किसीको तो इसका जवाब देना चाहिये।

श्री गिदवानी अहिंसामे श्रद्धा नही रखते। उनकी रायमें मेरी सलाह श्रीकृष्णजी महाराजकी शिक्षाके विरुद्ध है। अपनी इस रायके मुताविक वे अच्छे वजूहात पेश करते हैं जिससे कि वे साबित करते हैं कि हिन्दुओंके लिए अहिंसाका मार्ग स्वीकार करना असम्भव है। और उनकी दृष्टिसे उनकी यह भी दलील ठीक है कि हिन्दू सिन्धको छोड़ भी नहीं सकते। फिर मेरेसे यह चाहते हैं कि मैं हिन्दुओंको सलाह दूँ कि वे अपनी रक्षा हथियारों द्वारा करें। यह तो वही बात हुई कि जैसे कोई वैद्यसे कहे कि वह हकीमी इलाज करे। क्या वह ठीक दवाई देनेके योग्य हो सकता है? फिर जब मै खुद हथियार चलाना नहीं जानता तो मेरी सलाह किस कामकी हो सकती है? श्री गिदवानीको एक ऐसे हकीमके पास जाना चाहिये जो हथियारकी कलासे खूब वाकिफ हो और जो जरूरतके वक्त उनके पास जा सके और फौजी शिक्षा भी दे। मै कई बार कह चुका हूँ कि जो लोग अहिंसामें श्रद्धा नहीं रखते उन्हें अपनी रक्षा हथियारसे ही करना होगा, लेकिन अगर वे मेरेसे पूछें कि यह किस प्रकार करें तो मैं एक ही जवाव देनेके योग्य हूँ कि 'मै नहीं जानता।'

मेरी रायमें श्री गिदवानी इस भयानक घटनाके साथ खेल ही रहे हैं जब वे मेरी रहनुमाईकी इच्छा रखते हैं। मेरे लिए जो सहायता वे चाहते हैं उन्हें देना असम्भव है। यदि उनका पूरा विश्वास हथियारोंमे हो तो उन्हें खुद तुरन्त इस कलामे शिक्षा लेनी चाहिये ताकि वे दूसरे डरे हुए हिन्दुओंको भी वह मार्ग बतायें। सिंधके नेताओंको बाहरी मददकी ओर ताकना एक भारी गलती है। लिखनेसे भी कुछ नहीं बन सकेगा। उन्हें गम्भीर विचारके बाद एक योजना बनानी उचित होगी—चाहे वह योजना अहिंसक या हिंसक हो—और उसपर बहादुरी और दृढ़तासे अमल करना चाहिये।

उत्तरदायी मुसलमानोंसे मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि उनकी शोहरत खतरेमें है। यदि वे बेगुनाह लोगोंकी बेईमानी और बेरहम कतल रोकेंगे नही तो इतिहास उन्हें निःसंदेह गुनहगार ठहरायेगा। यह तो मानने लायक बात नहीं कि वे इस बुराईको रोकनेकी शक्ति नहीं रखते हैं। ऐसी घटनायें तो असम्भव हों अगर अत्याचार करनेवालोंको उनके समाजसे कमसे-कम चुपचाप सहानुभूति न मिलती हो।

हरिजन-सेवक
५ अक्तूबर, १६४०



कौमी-ऐक्य

पार्लियेन्टरी प्रवृत्ति द्वारा आजादी नहीं आवेगी। इसलिए कौमी कारनामें हो सके तो ठीक ही है। परन्तु उनके पीछे हृदयकी एकता न रही तो वे निकम्मे होंगे। इसके बिना मुल्कमें शान्ति नहीं हो सकती। अगर दिल एक न हुए तो पाकिस्तान भी शान्ति पैदा करनेमे असफल रहेगा। यह एकता एक दूसरेकी सेवा और एक-दूसरेके साथ मिलजुलकर काम करनेसे ही आ सकती है।

'जुदा वोट' की पद्धतिने हमारे दिलोंमें जुदाई पैदा कर दी है, क्योंकि उसका आधार ही आपसमे अविश्वास और एक दूसरेके हितोंके विरोधकी भावनापन है। 'जुदा वोट' की पद्धतिने हमारे बीच भेदको स्थायी बना दिया है और अविश्वासको और गहरा और मजबूत कर दिया है।

तो इस उलझनसेसे कैसे निकला जाय? मैं यहाँ चार मुस्लिम प्रान्तोंके सवालको ही लेना चाहता हूँ। वहाँ कुदरती पाकिस्तान आज मौजूद है। इस अर्थमे कि वहाँ मुस्लिम बहुमतका स्थायी शासन हिन्दू अल्पमतपर है। मेरे नजदीक धर्मके आधारपर आदमी-आदमीके बीच इस तरहकी दीवार खड़ी कर देना एक बड़ी भूल है, क्योंकि खुद धर्म तो बदला भी जाता है। भला हिन्दू और मुसलमानमे जमीन-महसूल, शहर सफाई, पुलिस-न्याय और सार्वजनिक सुभीतोंके उपयोगके बारेमे हितोंके विरोधका सवाल ही कहाँ उठता है? भेद तो धार्मिक रिवाज और विधिमे ही हो सकता है। और उसका हुकूमतके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। कांग्रेसी हिन्दू अगर दूसरे हिन्दुओंसे मिलकर अलग ही नहीं बन जाना चाहते तो उन्हें चाहिये कि जिन धारा सभाओं और स्थानिक संस्थाओंमे 'जुदा वोट' की पद्धति लागू होती है, उनसे अलग रहे। इन प्रान्तोंके बारेमे हमे मान लेना चाहिये कि 'जुदा मत' की पद्धति वहांके हिन्दुओंके मांगनेसे उनके तथाकथित हितकी रक्षाके लिए आयी है। लेकिन कांग्रेसी हिन्दूका तो अपने मुसलमान भाईसे जुदा ऐसा अपना कोई हित हो ही नहीं सकता। इसलिए वह मतदारोंकी किसी ऐसी संस्थामें जिसमे हिन्दू और मुस्लिम हितोंके झूठमूठ अलग ही नहीं, बल्कि परस्पर विरोधी

भी माना जाता है, कभी नहीं जायगा। क्योंकि अगर वह इन संस्थाओंमें जायगा तो वहाँ एक या दूसरे मुस्लिम दलके साथ मिलकर बहुमत पक्षमें फूट ही डालनेको जायगा। अगर मैं सब हिन्दुओंको कॉंग्रेसी वृत्तिका बना सकूं तो मैं इन संस्थाओंमेंसे हरेक हिन्दू सदस्यको निकाल लूँगा और मुसलमानोंको उनकी शराफतपर छोड़ दूँगा। मै इन-संस्थाओंसे बाहर रहकर उनसे दोस्ती करूँगा और उनकी निःस्वार्थ सेवा करके उनपर असर डालनेकी कोशिश करूँगा। अगर सबकी सब सरकारी नौकरियाँ उन्हें मिल जायें तो मुझे उसकी भी जरा परवाह न होगी। आखिर एक अल्प मात्रा ही उनमें हिस्सा ले सकती है। यह मान लेना कि इस तरह सरकारी नौकर एक ऐसी जनतापर, जिसे अपनी मानवता और मानवी अधिकारोंका ज्ञान है और जिसे यह भी मालूम है कि उनकी रक्षा कैसे की जाती है, जुल्म बरसायेंगे, सिर्फ एक वहम ही है। क्योंकि उन चारमेंसे तीन प्रान्तोंमें जिनमें मुसलमानोंका बहुमत है, कॉंग्रेसियोंमें अधिक संख्या हिन्दुओंकी ही है, उनके लिए यह एक सुवर्ण अवसर है कि अपना अहिंसक बल, अपनी निःस्वार्थता और साम्प्रदायिकतासे सर्वथा मुक्तिका सबूत दें और यह भी बता दें कि अपने मुस्लिम देश भाइयोंकी हुकूमतके नीचे रहनेकी भी उनमें शक्ति है। वह यह सब जले-दिलसे नहीं करेंगे, परन्तु इसलिए कि वे शुद्ध राष्ट्रप्रेमी और मुसलमानोंके मित्र होनेका दावा करते हैं। उनके बाहर रहनेका एक परिणाम यह भी हो सकता है कि वे हिन्दुओंके वाजिब शहरी हकोंकी ज्यादा अच्छी तरह रक्षा कर सकेंगे। क्योंकि कॉंग्रेसी-हिन्दू इस वजहसे कोई कम हिन्दू नहीं हो जाता कि वह अपने धर्मके उपरान्त दूसरे सब धर्मोंका भी प्रतिनिधि बनकर रहता है, जैसा कि उसे रहना चाहिये। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, राजसत्ता धर्मसे दखल देने तक नहीं जा सकती। और जहाँतक वह सत्ता जाती है वह सब धर्मियोंकी रक्षा समान भावसे करती है। इसलिए कॉंग्रेसियोंको इन प्रान्तोंमें अपनी विशुद्ध राष्ट्रीयता बतानेका यह एक अच्छा मौका मिला है। इसके साथ-साथ वे दूसरे अल्पमतोंको यह भी दिखा सकते है कि अगर उन्हे सच्चा तरीका आता है तो उन्हें बहुमतसे डर रखनेका कुछ भी कारण नहीं। हमे साम्प्रदायिक बहुमत और अल्पमतकी उपाधिमेंसे निकल जाना चाहिये। जहाँतक राजसत्ताका सम्बन्ध है, एक हिन्दूका हित एक मुस्लिमके हितसे कैसे जुदा हो सकता है? क्या अपनी जिन्दगीमें दादाभाई और फिरोजशाह कॉंग्रेसपर राज्य नहीं करते थे? और सो भी रियायतके तौरपर या किसीकी मेहरबानीसे नहीं, परन्तु अपनी सेवा और योग्यताके अधिकारसे। क्या उनके शासनने किसी हिन्दू या मुसलमानके हितोंको नुकसान पहुचाये? कॉंग्रेसके प्लेटफार्मपर इन हितोंके बीच कभी झगड़ा पैदा हुआ था? और कमिश्न भी तो एक स्वयं-निर्मित सत्ता ही थी न?

हरिजन-सेवक

२५ जनवरी, १९४१

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

प्र०—हिन्दू-मुस्लिम गुत्थीको सुलझानेको जो रास्ता आपने सुझाया है, उसके मुताबिक क्या आप यह चाहते हैं कि सभी हिन्दू धारासभाओंसे हट जायें, या कुछ ही हटें? अगर थोड़े लोग हटेंगे, तो क्या उनकी जगह प्रतिक्रियावादी, कट्टर हिन्दू न ले लेंगे, और वे परिस्थितिको बदसे बदतर न बना देंगे? और, अगर आप कांग्रेसजनोंसे यह उम्मीद रखते हैं कि वे बाहर रहकर मुसलमानोंके दिल जीतें, तो क्या वजह है कि वे इसी कामको अन्दर रहकर न कर सकेंगे? शायद ज्यादा अच्छी तरह करें।

उ०—मैं नहीं मानता कि सभी हिन्दू बाहर रहना पसन्द करेंगे। लेकिन मैं जानता हूँ कि तमाम कांग्रेसी हिन्दू सदस्योंकी जगहोंपर गैर-कांग्रेसी हिन्दू कब्जा कर लेंगे। अगर कांग्रेसी हिन्दू अन्दर जायेंगे भी, तो वे साम्प्रदायिक चक्कीके दो पाटोंके बीच पिस जायेंगे, और किसीको कोई लाभ न पहुँचा सकेंगे। मगर मैं इस सवालका विचार हिन्दूके नाते नहीं करता। मैं तो एक ऐसे कांग्रेस-जनके नाते इसका विचार करता हूं, जो सभी जातियोंका समान रूपसे प्रतिनिधित्व करना चाहता है। अगर हमारी धारासभाओंकी रचनामें पृथक निर्वाचनकी कृत्रिम पद्धति दाखिल न की गयी होती, तो तमाम सदस्य जुदा-जुदा साम्प्रदायिक दलोंके प्रतिनिधि नहीं, बल्कि जुदा-जुदा राजनैतिक दलोंके प्रतिनिधि बनकर आते। चूँकि मैं अपनेको सभी कौमोंका प्रतिनिधि मानता हूँ, इसलिए मैं न सिर्फ हिन्दुओंको, बल्कि कांग्रेसी दृष्टि रखनेवाले मुसल्मानोंको और दूसरोंको भी सलाह दूँगा कि वे धारा-सभाओंसे और दूसरी चुनाववाली संस्थाओंसे बाहर रहें। ये बाहर रहनेवाले लोग सब कौमोंके बीच इन्साफकी तराजूको तौले रखनेका काम करेंगे और बाहरसे धारासभाओंको प्रभावित करते रहेंगे। इन लोगोंकी तादाद कम हो या ज्यादा, ये देशमें सयाने और दाने आदमियोंका काम करेंगे। अगर सब मेरी सुनें, तो देशमें कौमी झगड़ोंका नाम भी न रहे। इसके खिलाफ, अगर कांग्रेसी हिन्दू धारासभाओंमें जायेंगे, तो वे वहाँ नाहक दखल देंगे और इस या उस दलको नाराज न करनेके ख्यालसे हमेशा दबकर या डरकर काम करेंगे। कुछ भी हो, मैं यह जानता हूँ कि आज तो ये धारासभायें युद्ध तन्त्रका अंग ही हैं; और अगर नहीं हैं, तो उन्हें बनना होगा। दूसरा कोई चारा नहीं। अगर वे युद्ध-प्रयत्नमें रुकावट डालेंगी, तो फौरन बन्द कर दी जायेंगी। जिस हुकूमतका एक मात्र उद्देश्य युद्ध संचालन ही है, उससे दूसरी कोई आशा की भी क्या जा सकती है?

हरिजन-सेवक
८ फरवरी, १९४२



कायदे-आजमसे अपील

मुस्लिम लीगकी बाजूको पेश करनेवाले जो अंग्रेजी साप्ताहिक मेरे पास आते हैं, उन्हें मैं दुःखके साथ, लेकिन नियमित रूपसे पढ़ता रहा हूँ। मुस्लिम लीग द्वारा प्रभावित मुसलमानोंके विचारोंसे अपनेको परचित रखनेके लिए ही मैं इन पत्रोंको पढ़ा करता हूँ। एक भी हफ्ता ऐसा नही जाता जब इन पत्रोंमें कांग्रेसकी, कांग्रेसजनोंकी और हिन्दुओंकी निन्दामें कुछ न लिखा जाता हो, और सत्यको तोड़ा-मरोड़ा न जाता हो। इन पत्रोंमेंसे एकमें हिन्दू-धर्मपर जैसा विषैला प्रहार किया गया है, उसके कारण ही मुझे ये सतरें लिखनी पड़ रही हैं। पत्रके लेखका कुछ हिस्सा यों है—

"हिन्दू-धर्म हिन्दुस्तानका सबसे बड़ा शाप है। उसका निर्माण असहिष्णुता और असमानताकी नीवपर हुआ है। अगर कोई अपनेको 'हिन्दू' कहता है, तो समझ लीजिये कि वह प्रतिक्रियावादी और तंगदिल होना कबूल करता है। कोई भी सभ्य, सुसंस्कृत, प्रामाणिक और शुद्ध हृदय मनुष्य, जो हिन्दू-धर्मको और उसके ध्येयको जानता है, न तो कभी हिन्दू कहलाना पसन्द करेगा और न आदिम जंगलियोंके इस धर्ममें शामिल होना चाहेगा। क्योंकि यह नामधारी धर्म बर्बरताकी बुनियादपर ही टिका हुआ है। ६७ फीसदी हिन्दुओंकी हालतको दूसरे किसी शब्द द्वारा प्रकट ही नहीं किया जा सकता। इस अनमोल धर्मके देवी-देवताओंने ६७ फीसदी हिन्दुओंको अपवित्र और अस्वच्छ मानकर बाकीके ३ फीसदीकी चाकरीका काम सौंप रक्खा है. इसलिए विद्यार्थियोंको हमारी यह सलाह है कि वे अपने दिमागकी प्रयोगशालामें ऐसे घातक बान तैयार करें, जो हिन्दू-धर्मको पूरी तरह नष्ट भ्रष्ट और चूर-चूर कर सकें। क्योंकि हिन्दुस्तानके हित और कल्याणके मार्गमें यही सबसे बड़ा विघ्न है।"

आशा है, मुझसे कोई यह न कहेगा कि ऊपरका लेख किसी दूसरे अखबारसे लेकर इस अखबारमें दिया गया है। हिन्दू-धर्मके प्रति घृणा फैलानेके लिए ही यह छापा गया है। गोकि कायदे आजम इस पत्रके संस्थापक है, और लीगके अवैतनिक मंत्री नवाबजादा लियाकत अली खांकी देख-रेखमें यह पत्र निकलता है, तो भी मैं मानता हूँ कि शायद यह लेख उन्होंने देखा नहीं है।

पाकिस्तानमें हिन्दुओंकी क्या दशा होगी ? क्या वे जंगली कहकर कुचल दिये जायेंगे ? इन साप्ताहिकोंमें दूसरी बाजूको देखनेकी कोई कोशिश नहीं की जाती। पत्रोंने जो नीति अपनायी है, उसका एक ही नतीजा हो सकता है—यह कि दोनों कौमोंके बीच कड़ुवाहट और झगड़ा बढ़े। अगर जोर-जबरदस्ती और लड़ाई-झगड़ेसे ही ध्येय प्राप्त करनेकी बात हो, और उसमें समझाने-बुझानेकी व दलीलकी

कोई गुंजाइश ही न हो, तब तो मुझे कुछ कहना नहीं है। लेकिन कायदे-आजमके भाषणोंसे तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि उन्हें हिन्दुओंसे कोई झगड़ा नहीं है। वे उनके साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं। इसलिए मेरी प्रार्थना यह है कि मुस्लिम-लीगकी नीति और कार्यक्रमका प्रचार करनेवाले ये साप्ताहिक लोगों और संस्थाओंके बारेमें अपनी राय जरा तौलकर—इन्साफके साथ—बनायें और छापें।

हरिजन-सेवक
८ मार्च, १९४२



उत्तेजना नहीं

स०— आपने लिखा है कि "अगर मुसल्मानोंकी बड़ी तादाद अपने आपको एक अलग कौम मानती है, जिसका हिन्दुओंसे या औरोंसे कुछ भी मेल नहीं हो सकता, तो दुनियाँकी कोई भी ताकत उन्हें अपना विचार बदलनेपर मजबूर नहीं कर सकती, और अगर इस आधारपर वे हिन्दुस्तानके टुकड़े करने चाहें, तो वे करेंगे, सिवा इसके कि हिन्दू इस विभाजनके विरोधके लिए लड़ना चाहें। जहाँ तक मैं देखता हूँ इस किस्मकी तैयारी दोनों तरफसे चुपचाप हो रही है।"

जहाँ तक मुसल्मानोंका सम्बन्ध है, मैं स्थितिको आपसे ज्यादा जानता हूँ और कह सकता हूँ कि उनकी तरफसे इस किस्मकी कोई तैयारी नहीं हो रही है। जब दुनियामें ऐसा महाभारत-सा युद्ध चल रहा है, ऐसी कोशिश करना मूर्खता होगी। मगर आपकी बातसे यह जाहिर है कि हिन्दुओंकी तरफसे लड़ाईकी जो तैयारियाँ हो रही हैं, उनका आपको इल्म है। तो क्या अपने सहधर्मियोंको इस आत्मघातक कार्रवाईसे रोकनेके लिए आपका कोई कोशिश न करना, एक जुर्म नहीं है? आपका लेख बुजदिली और शरारतसे भरा हुआ है, और सचमुच उसका हेतु हिन्दुओंको मुसल्मानोंके खिलाफ भड़कानेका है।

ज०—अनेक आक्षेपपूर्ण पत्रोंमेंसे एक बहुत ही सौम्य भाषामें लिखा हुआ यह पत्र मैंने चुना है और इसका भी बहुत कुछ जहर निकाल डाला है। मुझपर जो टीकायें की जाती हैं, उनमेंसे कुछपर ध्यान देना कभी-कभी उचित हो जाता है। मुझे उनकी परवाह न करनी चाहिये। अपने सार्वजनिक जीवनमें मुझे सदा ही ऐसी टीकायें सुननी पड़ी हैं। मेरा ख्याल है कि हरेक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताके नसीबमें यह लिखा ही होता है। लेकिन जब ऐसी टीका इन टीकाओंकी तरह अज्ञान-पूर्ण होती है, तब इससे टीका करनेवालेकी और जिसकी हिमायतमें वह टीका करता है, उसकी भी हानि होती है। मैं इसपर इसी आशासे ध्यान दे रहा हूँ कि गम्भीर वृत्तिके सज्जन ऐसी अज्ञानपूर्ण टीकाओंको रोकनेमें अपने प्रभावका उपयोग

करेंगे। मुझे इस बातकी कोई खास जानकारी नहीं है कि हिन्दू किसी तरहकी तैयारी कर रहे हैं। जो कुछ मैं जानता हूँ, सो दोनों ओरके नेताओंके भाषणोंसे और पत्र लेखकोंकी ओरसे मिलनेवाली अखबारी कतरनोंसे ही जानता हूँ। जिन तैयारियोंका मैंने जिक्र किया है, उसके प्रबल प्रमाण इनमें मौजूद हैं। लेकिन मुस्लिम अखबारोंमें छपनेवाले लेखोंके रहते, अगर आपकी बात सच हो, तो मैं कहूँगा कि एक तरफकी तैयारीसे कभी झगड़ा खड़ा हो ही नहीं सकता। मसल मशहूर है कि एक हाथसे ताली नहीं बजती जैसा कि आप लिखते हैं, अगर मैं अपने 'सहधर्मियोंको इस आत्मघातक कार्रवाईसे' न रोकूं, तो जरूर मैं गुनहगार माना जाऊंगा। आप 'मेरे सहधर्मियों' की बात करते हैं। लेकिन इस मामलेमें मैं किसीको अपना सहधर्मी नहीं मानता। वे भी मुझे वैसा नहीं समझते। क्योंकि वे मानें चाहे न मानें, मगर मैं तो धर्मके भेदको भूलकर सभी हिन्दुस्तानियोंको अपना भाई ही मानता हूँ। इसलिए मैं हर एकको लड़नेसे रोकना चाहता हूँ। इन पत्रोंमें मैं जो कुछ लिखता हूँ, सो भी जुदा-जुदा प्रतिस्पर्द्धी दलके लोगोंको यह समझानेके लिए ही लिखता हूँ कि वे तलवार के बदले अपनी सारा-सार बुद्धिको पंच बनावें। आपने मेरे लेखसे जो हिस्सा लिया है, उसकी भी यही ध्वनि है। मेरा निवेदन यह है कि शान्ति-स्थापनाके इस जीवन-कार्यमें आप मेरी मदद करें। मुझे और मेरे लेखोंको ठीक-ठीक समझकर आप यह मदद शुरू कर सकते हैं।

हरिजन-सेवक
३ मई, १९४२



कांग्रेस और लीग

स०—मेरी रायमें मौलाना साहबने यह बड़ी अक्लमन्दी और देश प्रेमसे युक्त सूचना की है कि मुस्लिम लीगकी जभी इच्छा होगी, कांग्रेसकी वर्किंग-कमेटी उसके प्रतिनिधियोंके साथ परामर्श करनेके लिए तुरन्त अपने पांच प्रतिनिधि नियुक्त कर देगी। मुझे आशा है कि मौलाना साहबका यह सुझाव आपको अच्छा लगेगा। और अगर आपको यह पसन्द हो, तो मैं चाहूँगा कि आप इसका सार्वजनिक रूपसे समर्थन करें। हिन्दुओं और मुसल्मानोंको मिलनेमें यह चीज बहुत काम देगी।

ज०—मुझे मौलाना साहबकी सूचनाका समर्थन करनेमें जरा भी आपत्ति नहीं। अगर मेरे समर्थनसे या उसके बिना भी ये दोनों पक्ष मिल सकें, तो मुझसे बढ़कर खुशी और किसको न होगी। मुझे हमेशा ऐसा लगा करता है कि हम दोनोंमें जरूर कहीं कोई सख्त नुक्श है कि जिससे इतनी सीधी-सी बात भी हम अबतक नहीं कर सके, अर्थात् वर्तमान गति-अवरोधको मिटानेका दृढ़ निश्चय लेकर दोनों पक्षके सयाने लोग आपसमें नहीं मिल सके।

हरिजन-सेवक
१७ मई, १९४२

बशर्ते कि वे चले जायँ

अभी उस दिन 'हिन्दू' के नागपुर-स्थित संवाददाताने यह सवाल पूछा था।

प्र०—"अभी कलतक तो आप कहते थे कि बिना हिन्दू-मुस्लिम एकताके स्वराज्य मिल नहीं सकता। तो फिर अब आप यह क्यों कहते हैं कि जबतक हिन्दुस्तान आजाद नहीं होता, एकता नहीं होगी?"

उ०—"समय जहाँ निर्दय शत्रु है, तहाँ वह दयालु मित्र और कुशल चिकित्सक भी है। मैं अपनेको हिन्दू-मुस्लिम एकताका एक पुरानेसे पुराना प्रेमी मानता हूं, और आज भी मैं उसका प्रेमी हूँ। मैं बराबर अपने आपसे यह सवाल पूछता रहा हूँ, कि एकताके लिए किये गये अब तकके सारे सच्चे प्रयत्न, जिनमें और सबके साथ मेरे प्रयत्न भी शामिल हैं, असफल क्यों हुए? ये प्रयत्न इस बुरी तरह असफल हुए हैं कि लोगोंका मुझपर कोई एतबार ही नहीं रह गया है और कुछ मुस्लिम पत्रोंने तो मुझे हिन्दुस्तानमें इस्लामका बड़ेसे बड़ा दुश्मन कहा है। यह एक ऐसी अजीब बात है, जिसका एक ही हल मेरी समझमें आता है, और वह यह कि जबतक देशमें एक तीसरी ताकत मौजूद है, वह सच्ची एकता कभी पैदा होने ही न देगी—फिर भले ही वह जान-बूझकर ऐसा करना न चाहती हो। इसलिए मैं बड़ी अनिच्छाके साथ इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश हुकूमतके उठते ही दोनों कौमें प्रायः तुरन्त ही एक दूसरीके नजदीक आ जायँगी। अगर स्वतन्त्रता ही कांग्रेस और लीग दोनोंका तात्कालिक ध्येय है, तब तो बिना किसी प्रकारके समझौतेके भी सब मिलकर गुलामीसे छूटनेके लिए लड़ेंगे। एक बार गुलामीका अन्त हो जानेपर तो न सिर्फ कांग्रेस और मुस्लिमलीग ही, बल्कि दूसरे सब दल भी, मिलकर काम करनेमें ही अपना हित समझेंगे, और भारतीय प्रतिभाके अनुरूप एक राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना करनेमें, प्राप्त स्वतन्त्रताका पूरा-पूरा उपयोग करेंगे। मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि वह किस नामसे पुकारी जायगी। नाम जो भी हो, पर उसे स्थायी बनानेके लिए यह जरूरी होगा कि वह सच्चे अर्थोंमें जनताकी वास्तविक प्रतिनिधि हो। और अगर व्यापक लोकमत ही उसका मुख्य आधार रहा, तो उसका प्रधानरूपसे अहिंसक होना जरूरी है। सो कुछ भी क्यों न हो मैं तो अपने अन्तिम क्षणतक इसी ध्येयकी पूर्तिके लिए काम करता रहूंगा; क्योंकि जबतक अहिंसाका स्वीकार नहीं किया जाता, मुझे मानव-जातिके उद्धारकी कोई आशा नजर नहीं आती। हिंसाका दिवालियापन तो हम रोज ही अपनी आँखों देख रहे हैं। अगर आपसका यह निरर्थक और भीषण नरसंहार इसी तरह होता रहा, तो मानवताके लिए कोई आशा नहीं रह जाती।"

हरिजन-सेवक

२१ जून, १९४२

मुसल्मान पत्र-लेखकोंसे

"मुसल्मानोंके साथ समझौता करनेसे पहले ही आप आजादीके लिए देशव्यापी आन्दोलन शुरू करनेकी बात कैसे सोच सकते है?" मुसल्मान पत्र-लेखकोंके लिए जो ढेरों पत्र मेरे पास आते है, उनमें मुझसे यही सवाल पूछा जाता है। एक समय था, जब मैं भी अपने इन पत्र-लेखकोंकी तरह सोचा करता था। लेकिन आज तो मैं देखता हूँ, कि मुसल्मानोंके दिलतक पहुँचना मेरे बसकी बात नहीं रही। मुस्लिमलीग मेरी राहमें खड़ी हुई है। मै लीगी अखबारोंको पढ़नेकी कोशिश करता हूँ। जिस हदतक ये अखबार लीगके विचारोंके प्रतिनिधि हैं, उस हदतक मुझे उनमें उसकी मनोवृत्तिके कुछ दर्शन हो जाते हैं। उनकी रायमे अब मेरा जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। आज खिलाफतके दिनोंकी मेरी सेवायें भी उनकी नजरमें मेरी बदनीयतकी सूचक बन गयी है। मुझे इसमे शक नहीं कि यह सब क्षण स्थायी है। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी किसी मुसल्मानकी या मुस्लिमलीग की कोई असेवा की हो। भगवान्‌की दयासे आज भी मै अनेकानेक मुस्लिमोंकी मित्रताका दावा कर सकता हूँ।

इस अविश्वासको मिटानेका कोई उपाय मुझे सूझ नहीं रहा है। मेरे आलोचक कहते हैं; "पाकिस्तान दे दो।" मै कहता हू "वह मेरे बसकी बात नहीं है।" अगर मुझे इस माँगके औचित्यका विश्वास हो जाय, तो मै निश्चय ही लीगके साथ मिलकर उसके लिए मेहनत करूँ। लेकिन यही तो हो नहीं रहा है। मै चाहता हूँ कि कोई मुझे विश्वास करा दे। अभीतक किसीने मुझे उसके स्वरूपका संपूर्ण परिचय नहीं कराया है। पाकिस्तान-विरोधी पत्रोंमे उसके स्वरूपका जो वर्णन दिया जाता है उसकी तो कल्पना करते भी डर लगता है। लेकिन मैं उसे उसके विरोधियोंसे नहीं समझाना चाहता। उसके हिमायती ही बता सकते हैं कि वे क्या चाहते हैं और क्यों चाहते हैं। मै चाहता हूँ कि पाकिस्तानके स्वरूपका ऐसा विवेचन कोई करे। मैं मानता हूँ कि पाकिस्तानके हिमायती अपने विरोधियोंका हृदय-परिवर्त्तन चाहते है, उनके साथ जबरदस्ती करना नहीं चाहते। क्या यह सच नहीं? क्या कभी विरोधी दलके साथ मित्रता पूर्वक मिलने और उसका हृदय-परिवर्तन करनेकी कोशिश की गयी है? मेरी तो बात ही छोड़िये, मगर मैं मानता हूँ कि काँग्रेस अपने विचार बदलनेको तैयार है, बशर्ते कि कोई बदलनेका यत्न करे।

लेकिन इस बीच मै क्या करूँ? मैं महसूस करता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजोंकी गुलामीसे मुक्त हो जाय, तो यही समय है, जब वह युद्धके भविष्यको बनानेमें प्रभावशाली ढंगसे हाथ बटा सकता है। मुझे यह भी विश्वास है कि जिस

हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंने तीन सौ वर्षोंतक अपना शिकारगाह बनाये रक्खा है, उसे छोड़ देनेकी ब्रिटिश अनिच्छाके सिवा हिन्दुस्तानकी आजादीके मार्गमें और कोई रुकावट नहीं है। इसपर साम्राज्यवादी यह कहते है कि अगर ब्रिटेन हिन्दुस्तानको छोड़ दे, तो उसे इस लड़ाईसे भी मुंह मोड़ लेना पड़े। अगर यह सच है, तो फिर यह सारी लड़ाई है किस लिए? लड़ाईका सूत्रपात्र ग्रेट-ब्रिटेन और जर्मनीके बीच हुआ है। क्या इन दोनोंके बीच हिन्दुस्तान ही झगड़ेकी छिपी जड़ है? मैं जानता हूं कि यह सब ख्याल ही ख्याल है। हकीकत क्या है, सो तो जल्दी ही मालूम हो जायागा। विचारशील भारतीय अपने समयको यो ही बरबाद होने नही दे सकते। मैं सोचता हूँ, कि अगर हममेंसे एक बड़ी तादादके लोग अपने हिस्से आनेवाली किसी भी कुर्बानीके लिए तैयार हो जायें, तो सबका साथ न मिलनेपर भी, अंग्रेज शासकोंपर उसका यह असर पड़ेगा ही कि वे अब हिन्दुस्तानको अपना गुलाम नही रख सकते। मैं यह भी मानता हूँ कि इतनी तादातमे लोग हमे मिल रहेंगे। यह तो एक मानी हुई बात है कि ऐसे लोगोंका अपना विश्वास कुछ भी क्यों न हो, उन्हे अपना व्यवहार तो अहिंसक ही रखना होगा। फौजी आदमीको भी अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्रायः अपने विश्वासके विरुद्ध बरतना पड़ता है। इस संग्रामकी कल्पना समूचे भारतके हितको ध्यानमे रखकर ही की गयी है। इसमे शामिल होकर लड़नेवालोंको उतना ही लाभ होगा, जितना एक गरीबसे गरीब भारतीयको हो सकता है—उससे ज्यादा नहीं। ये लोग किसी सत्ताको हथियानेके लिए नही, बल्कि विदेशी-राज्यको मिटाने के लिए लड़ेंगे— फिर चाहे उसके लिए उन्हें कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

अगर कभी हम उस स्थितिको पहुँचे, तो उसके बाद जो कुछ होगा, उसका दारोमदार इस बातपर रहेगा कि अंग्रेजोंका सर्व-शक्तिमान, पंजा हट जानेके बाद हम परस्पर कैसा व्यवहार करते है। हो सकता है कि हम आपसमें लड़े, या यह भी हो सकता है कि हम अपने झगड़ोंको तय करके देशमे जनताकी ओरसे सुव्यवस्थित शासन स्थापित करनेको राजी हो जाये। हो सकता है कि हमारा वह शासन प्रजातन्त्रात्मक हो या विशुद्ध एक तन्त्री हो या मुट्ठी भर अल्प-संख्यकोंका ही हो। इसमें ब्रिटिश-सरकारके साथ समझौता करनेकी कोई कल्पना नहीं है। यह तो तभी हो सकता है, जब देशके खास-खास दल आपसमें समझौता कर लें, और इसके लिए पहली जरूरत यह है कि कांग्रेस और लीगमें समझौता हो जाय। लेकिन सो तो मै जहां तक सोच पाता हूं, होगा नहीं।

इसलिए ब्रिटिश सरकारके साथ यही एक समझौता हो सकता है कि वह हिन्दुस्तानको अपने हालपर छोड़कर यहांसे अपनी हुकूमत उठा ले। मान लीजिये कि अंग्रेज चले जायें, तो उस हालतमे देशके अन्दर न कोई सरकार होगी, न कोई विधान होगा, न अंग्रेजोंका न दूसरे किसीका। अतएव कोई सर्वाधिकार सरकार भी न

मुसल्मान पत्र-लेखकोंसे

"मुसल्मानोंके साथ समझौता करनेसे पहले ही आप आजादीके लिए देशव्यापी आन्दोलन शुरू करनेकी बात कैसे सोच सकते है!" मुसल्मान पत्र-लेखकोंके लिए जो ढेरों पत्र मेरे पास आते है, उनमें मुझसे यही सवाल पूछा जाता है। एक समय था, जब मैं भी अपने इन पत्र-लेखकोंकी तरह सोचा करता था। लेकिन आज तो मै देखता हूँ, कि मुसलमानोंके दिलतक पहुँचना मेरे वसकी बात नहीं रही। मुस्लिमलीग मेरी राहमें अड़ी हुई है। मै लीगी अखबारोंको पढ़नेकी कोशिश करता हूँ। जिस हदतक ये अखबार लीगके विचारोंके प्रतिनिधि हैं, उस हदतक मुझे उनमें उसकी मनोवृत्तिके कुछ दर्शन हो जाते हैं। उनकी रायमें अब मेरा जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। आज खिलाफतके दिनोंकी मेरी सेवायें भी उनकी नजरमें मेरी बदनीयतकी सूचक बन गयी है। मुझे इसमें शक नहीं कि यह सब क्षणस्थायी है। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी किसी मुसल्मानकी या मुस्लिमलीग की कोई असेवा की हो। भगवान्की दयासे आज भी मैं अनेकानेक मुस्लिमोंकी मित्रताका दावा कर सकता हूँ।

इस अविश्वासको मिटानेका कोई उपाय मुझे सूझ नहीं रहा है। मेरे आलोचक कहते हैं; "पाकिस्तान दे दो।" मै कहता हू "वह मेरे वसकी बात नहीं है।" अगर मुझे इस माँगके औचित्यका विश्वास हो जाय, तो मैं निश्चय ही लीगके साथ मिलकर उसके लिए मेहनत करूँ। लेकिन यही तो हो नहीं रहा है। मैं चाहता हूँ कि कोई मुझे विश्वास करा दे। अभीतक किसीने मुझे उसके स्वरूपका संपूर्ण परिचय नहीं कराया है। पाकिस्तान-विरोधी पत्रोंमे उसके स्वरूपका जो वर्णन दिया जाता है उसकी तो कल्पना करते भी डर लगता है। लेकिन मैं उसे उसके विरोधियोंसे नहीं समझाना चाहता। उसके हिमायती ही बता सकते हैं कि वे क्या चाहते हैं और क्यों चाहते हैं। मै चाहता हूँ कि पाकिस्तानके स्वरूपका ऐसा विवेचन कोई करे। मैं मानता हूँ कि पाकिस्तानके हिमायती अपने विरोधियोंका हृदय-परिवर्त्तन चाहते है, उनके साथ जबरदस्ती करना नहीं चाहते। क्या यह सच नहीं? क्या कभी विरोधी दलके साथ मित्रतापूर्वक मिलने और उसका हृदय-परिवर्त्तन करनेकी कोशिश की गयी है? मेरी तो बात ही छोड़िये, मगर मैं मानता हूँ कि काँग्रेस अपने विचार बदलनेको तैयार है, बशर्ते कि कोई बदलनेका यत्न करे।

लेकिन इस बीच मै क्या करूँ? मैं महसूस करता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजोंकी गुलामीसे मुक्त हो जाय, तो यही समय है, जब वह युद्धके भविष्यको बनानेमें प्रभावशाली ढंगसे हाथ बटा सकता है। मुझे यह भी विश्वास है कि जिस

मालूम होता है कि कायदे-आजम देशकी शेष जनताको राजी करके यह सब नहीं लेना चाहते। क्योंकि वे कहते हैं "मुस्लिम हिन्दुस्तानके लिए पाकिस्तान धार्मिक श्रद्धाका विषय है, और उस ध्येयकी प्राप्तिके लिए हम सिवा अपने और किसीपर कोई आधार नहीं रखते।" ऐसी हालतमें कोई अपनी सेवायें देना चाहे, तो कैसे दे?

लेकिन-आगे चलकर वे मुझे आशाका एक कारण देते हैं, क्योंकि वे कहते हैं: "एक सम्मानपूर्ण समझौतेके लिए अपनी सचाई और साफगोईका परिचय दीजिए।" इन-दोनो बातोका परिचय देनेके लिए ही तो मैंने वह लेख लिखा था, जिसपर कायदे आजमने एतराज किया है। अपने काम, अपनी जबान या अपनी कलमके सिवाय और किस तरह आदमी अपनी सचाई साफगोईका परिचय दे?

यहाँ मैं अपनी मर्यादायें बता दूँ। मैं महज एक हिन्दूके नाते बोल नही सकता, क्योंकि मेरे हिन्दुत्वमें सभी धर्मोंका समावेश होता है। मै तो सिर्फ एक हिन्दुस्तानी की हैसियतसे ही बोल सकता हूं। अगर ऊपरकी परिभाषावाला पाकिस्तान कायदे आजमका अटल धार्मिक ध्येय है, तो अखण्ड हिन्दुस्तानमें मेरी भी इतना ही अटल श्रद्धा है। और यही इस जिक्रकी वजह है।

लेकिन आज न तो पाकिस्तान है, न हिन्दुस्तान। जो है, सो इंग्लिस्तान है। इसीलिए मैं सारे देशमे कहता हूँ कि आओ, पहले हम सब मिलकर मुल्कको असली हिन्दुस्तान बना ले और फिर जिनके जो अलग-अलग दावे हैं, उन सबको आपसमे निबटा लें। यह एक बिल्कुल साफ बात है। जब राष्ट्रको अपना हिन्दुस्तान वापस मिल जायगा, तो देशमें कोई केन्द्रीय-सरकार न रहेगी। देशके प्रतिनिधियोंको ही उस सरकारका निर्माण करना होगा। उस हालतमें यहाँ एक हिन्दुस्तान भी हो सकता है या कई पाकिस्तान भी।

अगर कायदे आजम सचमुच ही समझौता चाहते हैं, तो मैं तो उसके लिए उधार खाये बैठा हूं. और यही हाल कांग्रेसका है। कायदे आजम मुझे माफ करें, अगर मैं यह कहूं कि उनके जवाबसे दिलपर यह असर रह जाता है कि वे कोई समझौता नहीं चाहते। अगर वे समझौता चाहते हैं, तो कांग्रेसके प्रेसीडेन्टकी उस तजवीजको क्यों नहीं मान लेते, जिसमें यह कहा गया है कि कांग्रेस और लीगके नुमाइन्दे आपसमें मिले, और उस वक्त तक एक-दूसरेसे जुदा न हों, जब तक कि कोई समझौता न हो जाय? क्या इस तजवीजमें कोई खराबी है या सचाईकी कमी है?

हरिजन-सेवक
२६ जुलाई १९४२

होगी। उस दशामें जो दल सैनिक दृष्टिसे सबसे अधिक प्रबल होगा वह अपनी सरकार बनाकर उसे हिन्दुस्तानपर लाद सकता है, बशर्ते कि जनता उसे स्वीकार कर ले। हो सकता है कि मुसलमान पाकिस्तानका ऐलान कर दें और कोई उनका विरोध न करे। इसी तरह हिन्दू भी कुछ कर सकते हैं। सिक्ख भी अपनी आबादी वाले प्रदेशमें अपना राज्य कायम कर सकते हैं। इन सम्भावनाओंका कोई अन्त नहीं है। और इन तमाम हवाई कल्पनाओंके साथमें एक कल्पना और जोड़ देना चाहता हूँ। हो सकता है कि कॉंग्रेस और लीग, जो देशकी सबसे ज्यादा संगठित संस्थायें है, आपसमें समझौता कर लें और एक ऐसी स्थायी सरकार कायम करें, जो सबको मंजूर हो। और हो सकता है, कि इसके बाद विधिवत् निर्वाचित विधान निर्मात्री-सभाका संगठन हो जाय।

नये आन्दोलनका एक ही लक्ष्य है— यह कि देशसे ब्रिटिश हुकूमत उठा दी जाय। अगर वह शुभ अवसर आया, और उसके बाद देशमें स्थायी सरकारकी स्थापना हो सकी, तो इसमें कोई शक नहीं कि वही इस युद्धके भाग्यका निर्णय करेगी, और मैं आशा रक्खूँगा कि वह निर्णय अहिंसक ढंगसे होगा। कमसे कम इस युद्धमें तो हिन्दुस्तान और किसी प्रकारकी शक्तिका परिचय दे ही नहीं सकता। फिर क्या वजह है कि वे मुसलमान भी, जो पाकिस्तानमें माननेके साथ-साथ हिन्दुस्तानकी आजादीमें भी मानते हैं, इस तरहकी किसी लड़ाईमें शरीक न हों? लेकिन अगर इसके विपरीत वे अंग्रेजोंकी मददसे, उनकी छत्रछायामें रहकर पाकिस्तान प्राप्त करनेमें मानते हैं, तो बात ही दूसरी है। उसमे मेरा कोई स्थान नही।

हरिजन-सेवक
१२ जुलाई, १६४२



मुसलमान मित्रोंसे

'हरिजन' में छपे मेरे लेखका कायदे आजमने जो जवाब दिया है, उसे मैं गौरके साथ पढ़ गया हूं। बकौल उनके, "पाकिस्तान तो 'एक वाक्यसे' हिन्दुस्तानके एक हिस्सेको इस तरह अलग कर लेनेकी मांग है, जो पूरी तरह स्वतंत्र और सर्व-सत्ताधारी राज्य माना जाय" इसकी तहमें यह कल्पना मालूम होती है कि यह नया सर्वसत्ताधारी राज्य उस राज्यके खिलाफ लड़ाई ठान सकता है, जिसका कल तक यह खुद ही एक अंग था। साथ ही इसके बारेमें यह भी सोचा जा सकता है कि यह दूसरे राज्योंके साथ सन्धियां कर सकता है। निश्चय ही यह सब कुछ सिद्ध हो सकता है, लेकिन देशके बाकी लोगोंकी राजी-रजामन्दीके साथ हरगिज नहीं।

मालूम होता है कि कायदे-आजम देशकी शेष जनताको राजी करके यह सब नहीं लेना चाहते। क्योंकि वे कहते हैं "मुस्लिम हिन्दुस्तानके लिए पाकिस्तान धार्मिक श्रद्धाका विषय है, और उस ध्येयको प्राप्तिके लिए हम सिवा अपने और किसीपर कोई आधार नहीं रखते।" ऐसी हालतमें कोई अपनी सेवायें देना चाहे, तो कैसे दे ?

लेकिन-आगे चलकर वे मुझे आशाका एक कारण देते हैं, क्योंकि वे कहते हैं: "एक सम्मानपूर्ण समझौतेके लिए अपनी सचाई और साफगोईका परिचय दीजिए।" इन-दोनों बातोंका परिचय देनेके लिए ही तो मैंने वह लेख लिखा था, जिसपर कायदे आजमने एतराज किया है। अपने काम, अपनी जबान या अपनी कलमके सिवाय और किस तरह आदमी अपनी सचाई साफगोईका परिचय दे ?

यहाँ मै अपनी मर्यादायें बता दूँ। मैं महज एक हिन्दूके नाते बोल नही सकता, क्योंकि मेरे हिन्दुत्वमे सभी धर्मोंका समावेश होता है। मै तो सिर्फ एक हिन्दुस्तानी की हैसियतसे ही बोल सकता हूँ। अगर ऊपरकी परिभाषावाला पाकिस्तान कायदे आजमका अटल धार्मिक ध्येय है, तो अखण्ड हिन्दुस्तानमें मेरी भी उतना ही अटल श्रद्धा है। और यही इस जिक्रकी वजह है।

लेकिन आज न तो पाकिस्तान है, न हिन्दुस्तान। जो है, सो इंग्लिस्तान है। इसीलिए मैं सारे देशसे कहता हूँ कि आओ, पहले हम सब मिलकर मुल्कको असली हिन्दुस्तान बना ले. और फिर जिनके जो अलग-अलग दावे हैं, उन सबको आपसमे निबटा लें। यह एक बिल्कुल साफ बात है। जब राष्ट्रको अपना हिन्दुस्तान वापस मिल जायगा, तो देशमें कोई केन्द्रीय-सरकार न रहेगी। देशके प्रतिनिधियोंको ही उस सरकारका निर्माण करना होगा। उस हालतमें यहाँ एक हिन्दुस्तान भी हो सकता है या कई पाकिस्तान भी।

अगर कायदे आजम सचमुच ही समझौता चाहते हैं, तो मै तो उसके लिए उधार खाये बैठा हूं. और यही हाल कांग्रेसका है। कायदे आजम मुझे माफ करें, अगर मै यह कहूं कि उनके जवाबसे दिलपर यह असर रह जाता है कि वे कोई समझौता नहीं चाहते। अगर वे समझौता चाहते है, तो कांग्रेसके प्रेसीडेन्टकी उस तजवीजको क्यों नहीं मान लेते, जिसमे यह कहा गया है कि कांग्रेस और लीगके नुमाइन्दे आपसमे मिलें, और उस वक्त तक एक-दूसरेसे जुदा न हों, जब तक कि कोई समझौता न हो जाय ? क्या इस तजवीजमें कोई खराबी है या सचाईकी कमी है ?

हरिजन-सेवक
२६ जुलाई १९४२

सच हो तो अनुचित है

सूबा दिल्लीकी कांग्रेस-कमेटीके सदर आसफ अली साहब लिखते हैः—

"इस खतके साथ जो शिकायत भेजी जा रही है, वह पहले-पहल दिल्ली सूबा कांग्रेस-कमेटीके सामने पेश की गयी थी। इस शिकायतके लेखकको अब दो समर्थक भी मिल गये हैं। मैं लेखकको निजी तौरसे जानता हूँ। वह एक सच्चे और निष्पक्ष राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता है, और मैं उनकी बातका विश्वास करता हूँ।

मैंने 'राष्ट्रीय-स्वयं-सेवक-संघ' और उसकी हलचलोंके बारेमें सुन रक्खा था। मैं यह भी जानता था कि वह एक साम्प्रदायिक संस्था है। खतमें जिस नारे और तक़रीर (भाषण) की शिकायत की गयी है उनकी तरफ मेरा ध्यान पहली ही दफा खींचा गया है। दूसरी कौमोंपर इस तरहके नारों और तरीकोंका जो असर होता है, उसकी काटका कोई इलाज मैं सोच नहीं पाया हूँ, सिवा इसके कि मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाऊँ। शायद आप 'हरिजन' में इसका जिक्र कर सकेंगे।"

शिकायती खत उर्दूमें है। उसका सार यह है कि आसफअली साहबने अपने खतमें जिस संस्थाका जिक्र किया है, उसके ३,००० सदस्य रोजाना लाठीके साथ कवायद करते हैं। कवायदके बाद वे यह नारा लगाते हैं—"हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओंका है, और किसीका नहीं।" इसके बाद कुछ लोगोंके संक्षिप्त संभाषण होते हैं, जिनमें वे कहते हैं—"पहले अंग्रेजोंको निकाल बाहर करो, उसके बाद हम मुसलमानोंको अपने अधीन कर लेंगे। और अगर वे हमारी न सुनेंगे, तो हम उन्हें मार डालेंगे।" बात जिस ढंगसे कही गयी है, उसे वैसी ही समझकर यह कहा जा सकता है कि यह नारा गलत है और संभाषणकी मुख्य वस्तु तो और भी बुरी है। मैं तो यह उम्मीद कर सकता हूँ कि यह नारा अनधिकृत है, और जिस वक्ताके बारेमें यह कहा जाता है कि उसने अपने संभाषणमें ऊपरके विचार व्यक्त किये हैं, वह कोई जिम्मेदार आदमी न था। नारा गलत और बेइमानी है क्योंकि हिन्दुस्तान उन सब लोगोंका है, जो यहाँ पैदा हुए और पले हैं और जो दूसरे किसी मुल्कका आसरा नहीं ताक सकते। इसलिए वह जितना हिन्दुओंका है उतना ही पारसियों, बेनी इजराइलों, हिन्दुस्तानी-ईसाइयों, मुसलमानों और दीगर गैर-हिन्दुओंका भी है। आजाद हिन्दुस्तानमें राज हिन्दुओंका नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियोंका होगा, और उसका आधार किसी धार्मिक पंथ या सम्प्रदायके बहुमतपर नहीं, बल्कि बिना किसी धार्मिक भेद-भावके समूचे राष्ट्रके प्रतिनिधियोंपर होगा। मैं एक ऐसे मिश्र बहुमतकी कल्पना कर सकता हूँ, जो हिन्दुओंको अल्पमत बना दे। स्वतन्त्र हिन्दुस्तानमें लोग अपनी सेवा और योग्यताके आधारपर ही चुने जायेंगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीतिमें कोई स्थान न होना चाहिये। विदेशी हुकूमतकी वजहसे देशमें जो

अस्वाभाविक परिस्थिति पायी जाती है, उसीकी बदौलत हमारे यहाँ धर्मके अनुसार इतने बनावटी फिरके बन गये हैं। जब देशसे विदेशी हुकूमत उठ जायगी, तो हम इन झूठे नारों और आदेशोंसे चिपके रहनेकी अपनी बेवकूफीपर खुद ही हँसेंगे।

खतमें जिस संभाषणका जिक्र है, वह तो निश्चय ही बेहूदा है। अंग्रेजोंको "निकाल बाहर करने" का कोई सवाल ही नहीं है। जबतक हमारे पास उनसे भी बढ़ी-चढ़ी हिंसक ताकत न हो, हम उन्हें देशसे निकाल नहीं सकते। अगर मुसलमान हिन्दुओंके अधीन रहना मंजूर न करें, तो उन्हें मार डालनेका ख्याल पुराने जमानेमें चाहे सही रहा हो, आज तो वह बिलकुल बेमानी है। अंग्रेजोंको निकाल बाहर करनेकी पुकारमें कोई बल नहीं रह जाता, अगर उनकी जगह देशमे हिन्दुओंकी या दूसरी किसी कौमकी हुकूमत ही कायम होनेवाली हो। वह स्वराज नहीं होगा। स्वराज यानी अपनी हुकूमतका मतलब तो जरूरी तौरपर यही है कि उसमें एक आजाद और अक्लमंन्द मुल्कके लोग अपना राज खुद अपनी मर्जीसे चलायेंगे। मैंने 'अक्लमन्द' शब्दका इस्तेमाल इसलिए किया है कि मुझे उम्मीद है कि आजाद हिन्दुस्तान मुख्यत. अहिंसक होगा। अहिंसापर आश्रित समाजके तमाम सदस्योंको इतनी शिक्षा तो मिलनी ही चाहिये कि जिससे वे खुद अपना काम सोच-समझकर कर सकें। अगर उनके विचार और कार्य एक हुए, तो वे इसलिए एक होंगे कि वे दोनों किसी समान ध्येय और समान फलकी प्राप्तिमे लगाये गये हैं—ठीक उन सौ आदमियोंकी तरह, जिनके विचार और कार्य किसी रस्सीको एक ही दिशामे खींचते समय एकसे ही होते हैं।

मुझे आशा है कि स्वयंसेवक-संघके जिम्मेदार अधिकारी इस शिकायतकी जाँच करके आवश्यक कार्रवाई करेंगे।

हरिजन-सेवक
९ अगस्त, १९४२



हिन्दू और मुसलमान चाय वगैरा

स्टेशनोंपर हिन्दू चाय और मुसलमान चाय वगैरा चीजें अलग-अलग बिकती हैं। बाज दफा खानेकी जगह भी अलग रहती है। कई बार हरिजनोंको जगह ही नहीं मिलती। यह सब हमारी दुर्दशाकी निशानी है और अंग्रेजी सल्तनतपर धब्बा है। सल्तनत धर्मके मामलोंमें दखल न दे, यह मैं समझ सकता हूँ। लेकिन स्टेशनपर अलग-अलग धर्मियोंके लिए अलग-अलग चाय, पानी वगैराका इन्तजाम रखना तो अलगपनपर मुहर लगाने जैसा हुआ। रेलवे और रेलवे स्टेशन तो

लोगोंके ऐब दूर करने, उनमें एकता फैलाने, समाजमें सभ्यताके साथ बरतने और सफाई वगैरा कामोंको सिखानेके सुन्दर साधन बन सकते हैं। उसके बदले वहाँ लापरवाही बरती जाती है और रेलगाड़ी बुरी आदतोंको मजबूत करनेका साधन बन जाती है। पहले और दूसरे दर्जोंमें सफर करनेवालोंको मौज मजा करनेकी आदतमें इजाफा करना सिखाया जाता है। तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंपर रेलवे निर्भर है, मगर उनको सुविधा तो क्या, कष्ट ही रहता है। तिसपर भी जब हिन्दू, मुसलमान वगैराके बीच छूत छातका भेद रखा जाता है, तो रेलके अधिकारी अयोग्यताकी हदतक पहुँच जाते हैं। अगर कोई मुसाफिर भेदभाव रखना चाहे, तो वह भले भूख-प्यासको बरदाश्त करे। रेलवालोंसे भेदभावको टिकानेके प्रबन्धकी कोई आशा न रखे। यह दूसरी बात है कि मांसाहारी और शाकाहारी लोगोंके लिए उनके अनुकूल खाना मिलनेका प्रबन्ध होना चाहिये। वह प्रबन्ध तो आज भी है ही।

हरिजन-सेवक
१७ मार्च, १९४६



क्या करें

स०—आज मुस्लिम लीग जो दोरुखा खेल खेल रही है, क्या आपका यह फर्ज नहीं है कि आप साफ लफ्जोंमें उसे बुरा कहें? एक तरफ तो मुस्लिम लीगके नेता हिन्दुओंके खिलाफ खुल्लमखुल्ला हिंसाका और जिहादका प्रचार करते हैं, और दूसरी तरफ वही लोग वजीरका ओहदा सँभालकर हुकूमतकी तमाम बागडोर अपने हाथमें रखे हुए हैं, यहाँ तक कि पुलिस और इन्साफके महकमे भी उन्हींके जिम्मे हैं।

ज०—जिस दोरुखे कामका जिक्र किया गया है, वह बेशक बहुत बुरी चीज है। हमारे कौमी इतिहासका यह एक अफसोसनाक हिस्सा है। मेरी यह निन्दा सबके लिए है—किसी खास तबकेके लिए ही नहीं। मगर खैर यह है कि यह चीज इतनी ज्यादा बुरी है कि देर तक टिक नहीं सकती।

हरिजन-सेवक
१५ सितम्बर, १९४६



सवाल तथा जवाब

स०—मौजूदा हिन्दू मुस्लिम सवाल कैसे हल किया जाय ?

ज०—मुझे कबूल करना पड़ेगा कि कौमी झगड़ेके इस सवालसे मैं हैरान हो गया हूँ। अगर किसीके पास इस सवालका हल है, तो मेरे पास है। मगर मेरी राय तो आज अरण्यरोदन सी (जंगलोंमें रोना) बन गयी है। किसी एक कौमके लोगोंने कितनी ही गुंडाबाजी क्यों न की हो, मैं यह कभी न कहूँगा कि वह सारीकी सारी कौम बदमाश है। मुस्लिम लीग आज भले कहे कि हिन्दू बुतपरस्त हैं, हिन्दुस्तान दारुलहर्ब (वह जगह जहाँ जिहादका कानून लागू हो) है, और जो मुसलमान कांग्रेसमें शामिल है, वे काफिर हैं और कत्लके लायक हैं। लेकिन यह सुनकर भी मैं सब मुसलमानोंको अपना दोस्त बनाने और अपनी मुहब्बतका कैदी बनानेकी कोशिश न छोड़ूँगा। मुहब्बतके कैदी वे तभी बनेंगे, जब लाखों हिन्दू दिलमें गुस्सा लाये बगैर या बदलेमें अंगुली तक उठाये बगैर एक बड़ी तादादमें कट जानेको तैयार हो जायेंगे। आप कहेंगे कि यह बात उसूलन ठीक है, पर यह चलनेवाली नहीं। मगर इसका मेरे पास यही जवाब है कि अगर हिन्दुओंको जिन्दा रहना है, मुसलमानोंके साथ मिलकर रहना है, और हिन्दुस्तानके दो टुकड़े नहीं होने देना है, तो इसके सिवा दूसरा रास्ता नहीं। कांग्रेसकी अहिंसक लड़ाईके पिछले पचीस सालके इतिहाससे अगर हम इतना भी न सीखे, तो क्या सीखे ?

हरिजन-सेवक
१३ अक्टूबर, १९४६



हिन्दू पानी और मुसलमान पानी

जब कोई परदेसी आदमी हिन्दुस्तानकी रेलगाड़ियोंमें सफर करते वक्त अपनी जिन्दगीमें पहली बार पानी, चाय और ऐसी ही दूसरी चीजोंके साथ हिन्दू या मुसलमानकी हाँक लगानेवाली पुकारें सुनता होगा, तो उसे सहज ही एक दर्द भरा धक्का सा लगता होगा। चूंकि अब केन्द्रमें पूरी-पूरी कौमी सरकार बन गयी है और आसफअली साहब जैसे मशहूर हिन्दुस्तानी, रेलवे और यातायात विभागके वजीर हैं, इस चीजका बना रहना बहुत भद्दा मालूम होगा। हमें उम्मीद करनी चाहिये कि यह शर्मनाक चीज, जो सिर्फ हिन्दुस्तानकी अपनी खासियत है, बहुत जल्द खत्म कर दी जायगी। कोई यह न सोचे कि चूंकि रेलें एक मुसलमानके

मातहत है, इसलिए हिन्दुओंके साथ इन्साफ न होगा। केन्द्रीय (मरकजी) या सूबोंकी सरकारोंमें हिन्दू-मुसलमानका या दूसरा कोई कौमी भेदभाव न होना चाहिये। सभी हिन्दुस्तानी हैं। मजहब तो एक निजी मामला है। इसके सिवा, हमारी कैबिनेटके मेम्बरोंने एक बहुत अच्छा सिलसिला चला दिया है। अपने दिन भरके कामके बाद वे सब रोज शामको मिलते हैं और किसने क्या किया है, इसपर गौर करते हैं। यह एक मिलाजुला काम है, जिसमें सब मेम्बर एक साथ और अलग अलग एक दूसरेके कामके लिए जिम्मेदार हैं। कोई मेम्बर यह नहीं कह सकता कि चूँकि कोई खास चीज उसके महकमेसे ताल्लुक नहीं रखती, इसलिए वह उसके लिए जिम्मेदार नहीं। चुनांचे हमें यह मानकर चलनेका हक है कि रेलवे स्टेशनोंपर हर कौमके लिए हर चीज अलगसे बेचनेका यह नापाक तरीका बन्द कर दिया जायगा। सफाईका पूरा-पूरा खयाल रखनेका उसूल तो सबके लिए जरूरी है। अगर सब तरहकी पनीली या तरल चीजोंके लिए टोटियोंवाले बरतनोंका इंतजाम रहे, तो उनसे अपनी जरूरतकी चीजें खुद ले लेनेमें किसी पुराने खयालके आदमीको भी कोई परहेज न होना चाहिये। जो बहुत परहेजी है, वे अपना प्याला या लोटा अपने साथ रखे, और उसीमें दूध, चाय, काफी या पानी टोटीसे ले लिया करें। इसमें तो किसीका महजब नहीं बिगड़ता। फिर, रेलवेस्टेशनोपर चीजें खरीदना किसीके लिए लाजिमी नहीं। असलमें बहुतसे पुराने खयालके लोग तो सफरमें न पानी पीते हैं, न खाना खाते हैं। उपासे रह लेते हैं। गनीमत है कि हम अभी एक ही हवा खाते हैं, और एक ही धरती मातापर चलते-फिरते हैं।

कमसे कम रेलवे-स्टेशनोंपर तो ये सब कौमी पुकारें गैर कानूनी कर दी जानी चाहिये।

जैसा कि मैंने इन पन्नोंमें कई दफा कहा है, रेलगाड़ियों और जहाजोंके जरिये असली तौरपर लाखों करोड़ों मुसाफिरोंको हद दरजेकी सफाई, सेहत और तन्दुरुस्तीके नियम सिखाये जा सकते हैं, और हिन्दुस्तानकी अलग-अलग जातियोंमें भाईचारा भी पैदा किया जा सकता है। हम उम्मीद करें कि इस बहुत जरूरी सुधारको सफल बनानेमें कैबिनेट या मन्त्रि-मंडल अपने अकीदे (विश्वास) के मुताबिक काम करनेकी हिम्मत दिखायेगा, और उसे रेलवेके कारकुनों और आम जनताकी भी पूरी-पूरी और दिली मदद मिलेगी।

हरिजन-सेवक
२० अक्टूबर, १९४६

❀

यह इस्लामके खिलाफ़ है

कुल हिन्द मजलिस-ए-अहरारके माजी सदर शेख हिसामुद्दीन साहबने अखबारोंको नीचे लिखा बयान दिया है:—

"पूर्वी बंगालसे जो दहशत भरी और वहशियाना वारदातोंकी खबरें आ रही हैं, उनको सुनकर कोई सच्चा मुसलमान खुश न होगा, और न ये कारनामें काबिले तारीफ या इस्लामसे कोई ताल्लुक रखनेवाले कहे जा सकते हैं। इस इलाकेके ज्यादातर मुसलमानोंके कामोंका, पहले खलीफाकी उन हिदायतोंसे मिलान कीजिये जो उन्होंने मदीना छोड़ते वक्त अपने सिपहसालारको दी थी। उनमें बताया गया है कि आम रिआयाकी हिफाजत की जाय, गैर मुसलमान औरतोंकी आबरूका खयाल रखा जाय और इबादतकी जगहोंकी कद्र की जाय। फिर इस तरहकी मार-काट, लूट पाट, तोड़-फोड़, आग लगाना, जवान औरतोंको जबरदस्ती मुसलमान बनाना, और उन्हे जनानखानोंमे बन्द करके रखना तो ऐसे शर्मनाक काम हैं, जिन्हे कोई भी सुधरा हुआ मुल्क बरदास्त नहीं कर सकता। सचमुच मुझे इस बातका दिली अफसोस है कि यह हालत उस सियासी बेईमानी और गड़बड़ीसे पैदा हुई है, जिसने एक खास मकसद पूरा करनेके लिए लोगोंके जजबातको भड़का दिया, और इस जिम्मेवारीसे आँखे मूद लीं कि आखिर इसकी इन्तहा क्या होगी। वाकई कोई भी सरकार इस तरहकी हालतको बरदास्त नहीं कर सकती।

"सवाल यह उठता है कि क्या इसे फौज या पुलिसकी ताकतसे रोका जा सकता है, या एक मुल्कके रहनेवालोंमे आपसी अदब, एक दूसरेपर भरोसा और आपसी सहयोगका होना इसका इलाज है? मेरा खयाल है कि बंगालमें अमन और शान्ति कायम करनेके लिए आम तौरपर हिन्दुस्तानके मुसलमानोंको और खासकर बंगालके मुसलमानोंको आगे आना चाहिये, क्योंकि वहा वे ज्यादा तादादमे है। सूबेके ज्यादा तादादवाले मुसलमानोंका पहला फर्ज यह है कि वे वहा बसनेवाली अल्पसख्यक जातियोंको सन्तुष्ट रखें, और उन्हे ऐसी जिन्दगीके लिए तैयार करें, जिसमें कोई परेशानी और हैरानी न हो।

"बदकिस्मतीसे बंगालके मुसलमानोंकी रहनुमाई एक ऐसे गिरोहके हाथमें पड़ गयी है, जो शराफत और इखलाकसे कत्तई परे हैं। दूसरे मुसलमानोंको चाहिये कि वे दीन-ए-इस्लामके ताकीद किये हुए सुनहरे उसूलोंके मुताबिक आगे आवें और तमाम खतरोंका सामना करते हुए इस हलकेके अपने गुमराह और भड़के हुए भाइयोंको रोकें, ताकि वे भले व हमदर्द पड़ोसी बन सकें। इस बातपर जोर दिया जाता है कि यह काम बन्दूकों और मशीनगनोंके खुले इस्तेमालसे नहीं किया जा सकता, और न अपने बचावके लिए गैर-मुस्लिम मकानोंकी किलेबन्दी करनेसे। आम लोगोंको गुण्डोंके असरसे छुड़ाना चाहिये, और लोगोंके दिलोंको समझाइशसे शान्ति करके उन्हें पुरअमन और भली जिन्दगी बसर करने देनी चाहिये। मुसलमान ही इसे ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हैं।

"इस कामको अंजाम देनेके लिए कुल हिन्द मजलिस-ए-अहरार-ए-इस्लाम, अपने तालीम पाये हुए स्वयंसेवकोंकी टुकड़ियां दंगेवाली जगहोंमें फौरन ही भेजनेके लिए तैयार है, ताकि गुमराह भाई जल्दसे जल्द सही रास्तेपर लाये जाय, और सूबेमें मुस्तकिल अमनकी नींव रखी जा सके।

"मैं जानता हूँ कि इस रास्तेमें तरह-तरहकी मुश्किलोंका सामना करना पड़ेगा। लेकिन सच्चे मुसलमानोंने अपना फर्ज अदा करनेमें मुश्किलों और मुसीबतोंकी कभी परवाह नहीं की, न अब वे किन्हीं रुकावटोंकी परवाह करेंगे। जरूरी इन्तजामोंको अंजाम देनेके लिए मैंने कुल हिन्द मजलिस-ए-अहरारके सदर मौलाना अताउल्लाशाह बुखारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद व जमीयत-उल-उलमाए हिन्दके सदर मौलाना हुसैन अहमद मदनीसे बात-चीत शुरू कर दी है। अल्लाहके कामसे पहला दस्ता जल्द ही दिल्लीसे रवाना होगा।"

"खुद मौलाना साहबने चार दिन पहले यह बयान दिया था—

पूर्वी बंगालमें इस वक्त जो हैबतनाक वाकयात गुजर रहे हैं, उनसे इस उम्मीदपर पानी फिर गया कि बंगाल जल्द ही कलकत्तेके भयंकर मारकाटसे फिर पनप जायगा। जुल्म, लूटमार, कत्ल और आग लगानेकी गैर-सरकारी खबरोंके पढ़नेसे दिल दहल उठता है। सरकारी बयानमें कहा गया है कि कुछ वारदातें जरूर हुई हैं, मगर गैर-सरकारी रिपोर्टकी सब बातें मानने लायक नहीं हैं।

"सरकारी बयानमें भी काफी खराब बातें है। लेकिन अगर ये सारी बातें साबित हो गयीं, तो जो लोग इस जुल्म और ज्यादतीके लिए जिम्मेवार हैं उनपर भयानक अभियोग लगते है। सारा सभ्य समाज अपने मेम्बरोंकी जिन्दगी, जायदाद और ईमानकी हिफाजतपर टिका हुआ है। यह बात औरतोंकी इज्जतकी हिफाजतपर और भी ज्यादा लागू होती है। जो औरतोंकी इज्जतका खयाल नहीं करता, वह अपने माथे पशुताका कलंक लगा लेता है। अकलियत (अल्पसंख्यकों) को तो इन तमाम मामलोंमें एक खास हक हासिल है, और अकसरियत (बहुसंख्यकों) का फर्ज है कि वह अपने कामोंसे अकलियतके सारे खौफ दूर कर दे। अगर ज्यादा तायदादवाले, कम तायदादवालोंपर जुल्म करते हैं, तो उसमें न उनकी कोई बहादुरी है, और न कोई तारीफ।

"सबसे ज्यादा अफसोस तो इस बातका है कि इन जालिमाना कामोंके लिए मजहबका नाम घसीटा गया है। लोगोंको जबरन मुसलमान बनाने और औरतोंसे जबरन शादियाँ करनेकी खबरें आयी है। कोई भी मजहब, ईमानके मामलेमें जोर-जुल्म और हिंसाकी इजाजत कभी नहीं देता—इस्लाम तो हरगिज नहीं। पुराने खलीफा इस्लामकी असली पवित्रताके नुमाइन्दा थे। उनके जमानेमें यहूदियों और ईसाइयों जैसे अल्प मतवालोंके साथ तो सहिष्णुता बरती जाती थी, और उनके जान मालकी हिफाजतकी जैसी गारंटी दी जाती थी, वह एक गौर करने लायक चीज थी। दरअसल मसलन, जब यूरोपके ईसाई मुल्कोंमें यहूदियोंके साथ बहुत ज्यादती की जाती थी, तब स्पेन और आगे चलकर टर्की

मुस्लिम सल्तनतोंमें उनके साथ अच्छा सलूक किया गया था और वे वहाँ आराम और हिफाजतसे रह सके थे।

"मैं उन सब हिन्दुओं और मुसलमानोंसे, जिन्हें अपने मुल्क और कौमसे मुहब्बत है, इस हालतपर ठंडे और निर्विकार मनसे गौर करनेका इसरार करता हूँ। उन्हें इसी मुल्कमें एक साथ रहना है, और कोई सरकार किसी तरहकी गड़बड़ और अंधाधुंधीको ज्यादा दिनों तक बरदाश्त नहीं कर सकती। अगर कौमी दंगे होते रहे, तो सरकारको पुलिसकी, या जरूरत पड़नेपर फौजकी मददसे भी उन्हें आगे पीछे दबाना ही पड़ेगा। मगर इससे तो मर्ज सिर्फ दब जायगा, अच्छा नहीं होगा।

"इस बुराईको जड़से मिटानेका एकमात्र तरीका यह है कि किसी हिस्सेमें ज्यादा तादादमें रहनेवाली कौमके लोग, वहाँकी कम तादादवाली कामको उसकी हिफाजतका भरोसा दिलायें। बजाय इसके कि पुलिस और फौजका रास्ता देखा जाय कि वह झगड़े और दंगोंको जबरदस्ती दबा दे, अगर अकसरियतके कुछ जिम्मेदार आदमी आगे बढ़कर गुण्डोंको रोकें, और अपने हलकेकी अकलियतकी जान-माल और उनकी इज्जतकी हिफाजत करें तो मुल्ककी सारी फिजा ही बदल जाय।"

"पूर्वी बंगालके अपने मुस्लिम भाइयोंसे मैं एक खास अपील करता हूँ इस्लामकी हिदायत है कि पड़ोसीकी हिफाजत करना हमारा मजहबी फर्ज है। पूर्वी बंगालके नोआखाली और दूसरे जिलोंमें मुसलमानोंकी बहुत बड़ी अकसरियत है। इन जिलोंके सब नेकदिल लोगोंको इकट्ठा होकर यह ऐलान कर देना चाहिये कि वे अपनी जान देकर भी अपने पड़ोसीकी हिफाजत करेंगे, और कोई किसी हिन्दूको तबतक नुकसान नहीं पहुचा सकेगा, जबतक वह उनकी लाश न गिरा दे।"

इन बयानोंकी कीमत इसमें नहीं है कि कितने मुसलमान इसकी ताईद करते हैं कि बयान देनेवाले दोनों मुस्लिम नेता इस्लामी दुनियोंमें बहुत मशहूर हैं, और वे बिना किसी झिझकके पूर्वी बंगालके मुसलमानोंकी अत्यन्त क्रूर करतूतोंकी निन्दा करते हैं। इन दंगाइयोंपर गुण्डेपनका कलंक लगाना ठीक नहीं। उन्हें तो कुछ ऐसे लोग गुमराह करते हैं, जिन्हें ज्यादा समझदारीसे काम लेना चाहिये। सीधे सादे मुसलमान भाइयोंके दिमागमें जो जहर भर दिया गया है, उसको ध्यानमें रखनेके बाद, ऐसी जालिमाना हरकतोंका होना कोई ताज्जुबकी बात नहीं मालूम होती। इस बुराईको दूर करनेके लिए समझदार मुसलमानोंको सिर्फ इसके खिलाफ बोलकर ही नहीं रह जाना चाहिये, बल्कि उन्हें फौरन वैसा कुछ करना भी चाहिये। हम यह जानना चाहेंगे कि कुल हिन्द-मजलिस-ए-अहरारके भूतपूर्व प्रेसिडेन्ट इस बुराईको मिटानेके लिए स्वयसेवकोंका जो जत्था भेजना चाहते थे, वह भेजा जा सका है या नहीं।

हरिजन-सेवक
३ नवम्बर १९४६



सिन्धमें सत्यार्थप्रकाशपर रोक

खयाल यह था कि सिन्धमें 'सत्यार्थप्रकाश' पर लगायी गयी रोककी मियाद खतम हो चुकी है; अब फिर कभी उसपर नयी रोक नहीं लगायी जायगी। लेकिन यह उम्मीद धोखा साबित हुई। उसपर फिर यह नयी रोक लगा दी गयी है:—

"'सिन्धकी सरकारको ऐसा लगता है कि सिन्धी जबानमें छपी 'सत्यार्थप्रकाश' नामकी किताबके चौदहवें अध्यायमें ऐसी बातें हैं, जो सम्राटके प्रजाजनोंके अलग अलग फिरको और वर्गोंमें बैर और नफरत पैदा करनेवाली हैं।

"इसलिए अब सन् १८९८ के क्रिमिनल प्रोसिजर कोडकी दफा ९९ अ से हासिल किये गये अधिकारके मुताबिक सिन्ध सरकार यह ऐलान करती है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखी हुई और प्रतिनिधि सभा, सिन्ध, करॉचीकी तरफसे प्रोफेसर ताराचन्द डी० गजरा, एम०ए० द्वारा छापी गयी सिन्धी 'सत्यार्थप्रकाश' की हर कापी जहाँ कहीं भी वह मिले, और उसकी नकलोंवाले दूसरे तमाम दस्तावेज, नये संस्करण या तरजुमे, या उस किताबके चौदहवें अध्यायके उद्धरणोंको सम्राटके लिए इस बिनापर जब्त कर लिया जाय कि यूरपके अध्यायमें लेखक

(अ) मुसलमानोंके कुछ धार्मिक विश्वासोंका मजाक उड़ाता है,
(आ) कुरानके उपदेशको गलत तरीकेसे लोगोंके सामने रखकर उसकी बुराई करता है,
(इ) पैगम्बर महम्मदकी सत्तापर हमला करके उसकी बुराई करता है, और
(ई) आम तौरपर उस अध्यायमें ऐसी बातें पाई जाती हैं जो मुसलमानोंकी धार्मिक भावनाओंको चोट पहुचानेके लिए लिखी गयीं हैं और चोट पहुचाती हैं।"

नयी रोकका दायरा पुरानी से भी बड़ा है। पहली रोकने तो चौदहवें अध्यायवाली किताबको छापना या प्रकाशित करना ही गुनाह माना था। लेकिन नयी रोक तो उस किताबको रखना भी गुनाह मानती है। मैं मानता हूँ कि यह रोक लगाना निरी नासमझी है, और इससे सारी दुनियाँके आर्यसमाजियोंकी धार्मिक भावनाओंको चोट पहुचेगी। चालीस लाख आर्यसमाजियोंकी निगाहमें 'सत्यार्थप्रकाश' की वही इज्जत है, जो मुसलमानोंकी निगाहमें कुरानकी या ईसाइयोंकी निगाहमें बाइबिलकी है। मौजूदा जमानेके किसी बदमतलब साहित्य या अदबपर लगायी गयी रोकको समझा जा सकता है, हालाँकि आजके जमानेमें लोक-प्रिय सरकारें ऐसा होनेपर भी अपनी हुकूमतका इस्तेमाल नहीं करना चाहतीं। लेकिन मजहबी किताबपर रोक लगाना तो दुष्टतापूर्ण मालूम होता है। इसलिए मैं सिन्ध सरकारसे जोर देकर कहूंगा कि वह इस रोकको हटा ले। 'सत्यार्थप्रकाश' का सिन्धी तरजुमा नया प्रकाशन नहीं है। जिस किताबके इतने संस्करण निकल चुके हों, और दुनियाँकी बहुत सी जबानोंमें जिसका तरजुमा हो चुका हो, क्या उस किताबके बारेमें यह

कहना ठीक होगा कि उसमें ऐसी बातें लिखी हैं, "जो सम्राटके प्रजाजनोंके अलग-अलग फिरकोंमें बैर या नफरतकी भावना पैदा करेगी?" सहिष्णुताके गुणकी कमी नहीं होती, खासकर मजहबी बातोंमें, मजहबी खयालोंके फर्क तो कयामत तक चलते ही रहेंगे। इसलिए सहिष्णुताके जरिये ही अलग-अलग मजहबोंको माननेवाले लोग भले पड़ोसी और दोस्त बनकर रह सकते हैं। टीका करनेवालोंकी अच्छी या बुरी टीकासे मजहबका कुछ नहीं बिगड़ता; उसमें बिगाड़ पैदा होता है, उसके माननेवालोंकी ढिलाई और लापरवाहीसे।

हरिजन-सेवक
३ नवम्बर, १९४६



बिहारसे

बिहारने अपने बारेमें मेरे सपनोंको झुठला दिया है। इकतरफा या बढ़ा-चढ़ाकर भेजी गयी खबरोंको सुन पढ़कर या उनपर भरोसा करके मैं यह नहीं कर रहा हूँ। हिन्दुस्तानके वजीरे आजमका और उनके साथियोंका लगातार वहाँ रहना इस बातका बड़ा सबूत है कि वहाँ कैसी दर्दनाक वारदातें हो रही हैं। इसके जवाबमें बहुत आसानीसे यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम लीगी सरकारकी देख-रेखमें बंगालकी हालत इससे बदतर नहीं, तो बेहतर भी न थी। और, यह कि बिहारमें जो कुछ हो रहा है, वह तो बंगालका ही नतीजा है। अगर कोई दल बुरा काम करे, तो उसके मुखालिफ दलको वैसा ही बुरा काम करनेका कोई हक नहीं मिलता, खासकर जब उसे अपने लम्बेसे लम्बे और बड़ेसे बड़े राजनीतिक या सियासी कामका गर्व हो, और वह ठीक ही हो। साथ ही, मुझे यह कबूल करना चाहिये कि अगरचे मुझे कलकत्ते आये करीब एक हफ्ता गुजर चुका है, तो भी बंगालमें कहाँ कितनी बर्बादी हुई है, और लोगोंको क्या-क्या मुसीबतें उठानी पड़ी हैं, सो मैं अभी जान नहीं सका हूँ। अगरचे बिहार मुझे बुला रहा है, तो भी नोआखालीके अपने प्रोग्राममें मुझे कोई गड़बड़ न करनी चाहिये। फिर यह भी तो एक सवाल है कि जिस साम्प्रदायिकताका इलजाम कांग्रेसी लोग मुस्लिम लीगपर लगाते आये हैं, उसका जवाब साम्प्रदायिकतासे देना भी कोई जवाब देना कहलायेगा? क्या बिहारके चौदह फीसदी मुसलमानोंको वहशियाना ढंगसे कुचलनेकी कोशिश करना भी कोई राष्ट्रीयता है।

कोई मुझसे यह न कहे कि कुछ हजार बिहारियोंके पापके लिए मुझे सारे बिहारको दोषी या कसूरवार न ठहराना चाहिये। क्या बिहार एक ब्रजकिशोर प्रसाद

या एक राजेन्द्र प्रसादपर फख्र नहीं करता? क्या उसे इनपर नाज नहीं? मुझे डर है कि अगर बिहारमें यह दुर्व्यवहार होता रहा, तो दुनियाँ हिन्दुस्तानके सभी हिन्दुओंको इसके लिए दोषी ठहरायेगी। दुनियाँका यही तरीका रहा है, और वह कोई बुरा तरीका भी नहीं। बिहारी हिन्दुओंकी ये काली करतूतें कायदे आजम जिन्नाके इस उलाहनेको सही साबित कर सकती है कि कांग्रेस हिन्दुओंकी संस्था है, बावजूद इसके कि कांग्रेसको इस बातका घमण्ड है कि उससे थोड़े सिक्ख, मुसलमान, ईसाई और पारसी वगैरा भी शामिल हैं। बिहारके बहुसंख्यक हिन्दुओंका यह फर्ज है कि वे अपने यहाँ रहनेवाले थोड़े मुसलमानोंको अपना भाई मानें, और उनकी उतनी ही हिफाजत करें, जितनी वे अपनी करते हैं। जिस बिहारने कांग्रेसकी इज्जतको बढ़ानेमें इतना काम किया है, वही उसकी कब्र खोदनेमें सबसे आगे न हो।

मुझे अपनी अहिंसाकी कोई शर्म नहीं। मैं यह देखनेके लिए ही बंगाल आया हूँ कि ऐन आन—बानके मौकेपर मेरी अहिंसा मुझमें किस तरह प्रगट हो सकती है। लेकिन इस खतमें मैं आपसे अहिंसाकी चर्चा नहीं करना चाहता। फिर भी मैं आपसे यह तो कहा ही चाहता हूँ कि आपके कामोंकी जैसी रिपोर्ट आयी है, उनसे वे काम बहादुरीके काम तो हरगिज नहीं माने जायेंगे। इसमें कोई बहादुरी नहीं कि हजारों लोग मिलकर सौ लोगोंको मार डालें, यह तो बुजदिलीसे भी बुरी चीज है। यह न हमारे धर्मको शोभा देती है, न हमारी राष्ट्रीयताको। अगर आपने घूँसेके बदले घूँसा मारा होता, तो किसीको आपके खिलाफ उंगली उठानेकी हिम्मत न पड़ती। अभी तो आपने अपनेको गिराया है, और हिन्दुस्तानको उसकी ऊँची जगहसे नीचे घसीटा है।

आप पण्डित जवाहरलालजीसे, निश्तर साहबसे और डॉक्टर राजेन्द्र प्रसादसे कह दीजिये कि वे अपनी फौजें वापस ले जाँय, और हिन्दुस्तानका कार-बार चलानेके लिए खुद दिल्ली लौट जाँय। वे ऐसा तभी कर सकते हैं, जब आप अपनी हैवानियतके लिए पछतायें और उन्हें यकीन दिलायें कि मुसलमान भी आपकी सार-सँभालके उतने ही हकदार हैं जितने आपके सगे भाई-बहन हैं।

जबतक हर एक हिजरती मुसलमान वापस अपने घर न लौट आये, तब तक आपको चैन न लेना चाहिये। साथ ही आपको चाहिये कि आप उनके उजड़े और बरबाद घरोंको फिरसे बनवा देनेका जिम्मा लें, और अपने मंत्रियोंसे कहें कि वे इसमें आपकी मदद करें। टीकाकारों या नुक्ताचीनियोंने आपके मंत्रियोंके बारेमें मुझसे जो कहा है, सो आप नहीं जानते।

मैं अपनेको आपका ही एक अंग या जुज समझता हूँ। आपकी मुहब्बतने मुझमें यह वफादारी पैदा की है। और चूंकि बिहारी हिन्दुओंके फर्जके बारेमें आप जितना जानते हैं, उससे ज्यादा मैं उसे समझनेका दावा करता हूँ, इसलिए जबतक मैं इसका कुछ प्रायश्चित्त न कर लूं, मुझे चैन नहीं पड़ सकता। खास तौरपर अपनी तन्दुरुस्तीके खयालसे ही कलकत्ते आनेके तुरत बाद मैंने कमसे कम खाना

शुरू कर दिया था। और अब जबसे बिहारकी दर्दनाक कहानी सुनी है, तबसे बतौर प्रायश्चित्तके वह खुराक जारी है। अगर गुमराह बिहारियोंने नया रास्ता अख्तियार न किया, अपना रवैया न बदला, तो यह अल्पाहार आमरण उपवास बन जायगा।

मैं नहीं मानता कि बिहार मेरे इस कामको किसी गलत मानीमें समझेगा, सिवाय इसके कि अपने एक पवित्र कर्त्तव्यके नाते मैं शुद्ध भावसे यह प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।

मित्रोंको मेरी मददके लिए या हमदर्दी दिखानेके लिए मेरे पास न आना चाहिये। मैं यहाँ अपने कई अजीज दोस्तोंके साथ ही रहता हूँ। किसीके लिए मेरी नकल करना बिलकुल गलत और गैरमौजूं होगा। मेरे साथ हमदर्दी दिखानेके लिए किसीको आधा या पूरा फाका करनेकी कोई जरूरत नहीं। इससे तो नुकसान ही होगा। मेरी इस तपस्यासे उन लोगोंकी आत्मिक चेतना जगनी चाहिये, जो मुझे जानते हैं और मेरी प्रामाणिकतामें यकीन करते हैं। कोई मेरे लिए फिक्र न करे। सबकी तरह मैं भी भगवानके हाथमें सलामत हूँ।

जबतक वह मेरे इस शरीरके जरिये मुझसे सेवा लेना चाहेगा, तबतक मुझे कुछ न होगा।

हरिजन-सेवक
१० नवम्बर, १९४६



पहला सबक

नोआखालीके जिला मजिस्ट्रेट मि० मैकइनरनीने दीवान बाड़ी (दत्तपाड़ा) में गांधीजीकी शामकी प्रार्थना-सभामें तकरीर करते हुए एक छोटी मगर बड़े मतलबकी बात कही। उन्होंने कहा—

"भूकम्प, बाढ या महामारी वगैरा कुदरती मुसीबतोंके बाद, जिनमें बड़ी तादादमें लोगोंके जान मालको नुकसान पहुँचता है, मुसीबतके शिकार बने लोगोंको फिरसे बसाने और उन्हें राहत व मदद पहुँचानेके लिए जिस तरह पहली जरूरत खाने, कपड़े, आसरे और आवश्यक दवा दारूकी पड़ती है, उसी तरह दंगोंके बाद भी ये चीजें जरूरी होती हैं। लेकिन इनसे कहीं ज्यादा जरूरी चीज हिम्मत है, जो तमाम खूबियोंकी जड़ है। आजकी इस घड़ीमें गांधीजीके नोआखाली आनेसे बढ़कर नेमतकी बात और क्या हो सकती थी? क्योंकि चावल या राहतकी दूसरी चीजोंकी तरह हिम्मत बांटी नहीं जा सकती। उसे तो दिलके अन्दरसे जगाना पड़ता है, और दूसरा ऐसा कौन है, जो इस कामको गांधीजीसे ज्यादा अच्छी तरह कर सके?"

एक ही रास्ता

मि० मेकूइनरनीको उस वक्त यह खयाल तक आया न होगा कि टिपरा जिलेमें कदम रखनेके पहले ही गांधीजी इस बारेमें अपना काम शुरू कर चुके थे। जब ७ नवम्बरके सुबह 'कीवी' स्टीमरके भोजनालयमें स्व० बाबू हरदयालनागके पुत्रके साथ बीस-पचीस कार्यकर्त्ता और राहत पहुँचानेवाली मुख्तलिफ संस्थाओंके बहुतसे नुमाइन्दे गांधीजीसे मिले, तो वहाँ उन्होंने सबको पहला सबक सिखाया। गांधीजीने उनसे कहा—"मेरी समझमें नहीं आता कि कैसे किसी एक भी आदमीका दीन धरम जबरन् बदला जा सकता है, या कैसे किसी एक भी औरतको जबरदस्ती भगाया या बेइज्जत किया जा सकता है। जबतक हम यह मानते रहेंगे कि हमारी ऐसी बेइज्जती की जा सकती है, तबतक लोग इस तरह हमारी बेइज्जती करते ही रहेंगे। अगर हम यह कहते हैं कि पुलिस या फौजकी हिफाजतके बिना हमारा काम ही नहीं चल सकता, तो हम लड़ाईके शुरू होनेसे पहले ही अपनी हार मान लेते हैं। दुनियाँकी कोई पुलिस या फौज बुजदिल लोगोंकी हिफाजत नहीं कर सकती। आज आप कहते हैं कि जब हजारों लोग मुट्ठी भर लोगोंको बुरी तरह सता रहे हों, तब ये मुट्ठी भर लोग क्या करें? अगर लाखों लोग अपनेको लाचार समझने लगें, तो उन्हें डराने और सतानेके लिए चन्द लोग भी काफी होंगे। आज आप अपनी कम तादादकी वजहसे मुसीबत नहीं उठा रहे हैं, आपकी सारी मुसीबतोंकी जड़ तो आपकी लाचारी और दूसरोंके भरोसे जीनेकी आपकी आदत ही है। इसका इलाज आपके हाथमें है। इसीलिए मैं आपके इस विचारके खिलाफ हूँ कि आप सब पूरबी बंगाल खाली करके चले जायँ, नामरदी या लाचारीका यह कोई इलाज नहीं।"

मुलाकातियोंने कहा—"पूरबी बंगालके हिन्दू भी इसके खिलाफ हैं।"

इसपर गांधीजीने कहा—"हाँ, उन्हें यहाँसे जाना नहीं चाहिये। अगर मैं कहूँ कि आज २० हजार हट्टे-कट्टे अहिंसक तरीकेसे बहादुरोंकी तरह मरनेको तैयार हो सकते हैं, तो मुमकिन है, दुनियाँ इसे एक खयाली चीज समझे। लेकिन अगर २० हजारकी आबादीमेंसे हर एक हट्टा-कट्टा आदमी बहादुर सिपाहियोंकी तरह खुली लड़ाईमें लड़कर मर जाय, तो दुनियाँ उसे खयाली चीज नहीं समझेगी। थर्मापोलीका इतिहास रचनेवाले लिओनिडासके ५०० अमर लड़वैयोंकी तरह वे भी हिन्दुस्तानकी तवारीखमें अमर हो जायँगे।"

यहाँ गांधीजीने थर्मापोलीके वीरोंकी कब्रपर उनकी यादमें लिखी गयी ये शानदार सतरें सुनायीं—

"अय मुसाफिर! स्पार्टासे कहना कि यहाँ उसके सपूत दफनाये गये हैं, यही उसका-कानून था और हमने उस कानूनपर अमल किया था।"

झूठी पुकार

आगे चलकर गांधीजीने कहा—"मैं डंकेकी चोट आपसे कहता रहूँगा कि

इसी एक शर्तपर आप पूरबी बंगालमें रह सकते हैं। आप चाहते हैं कि यहाँ मुस्लिमकी जगह हिन्दू अफसर, हिन्दू पुलिस और हिन्दू फौज रखी जाय, लेकिन यह आपकी झूठी पुकार है। आप इस बातको भूल जाते हैं कि पहले हिन्दू अफसर, हिन्दू पुलिस और हिन्दू फौज भी लूटने, आग लगाने, औरतोंको भगाने और उनको बेइज्जत करनेके काम कर चुकी है। मैं काठियावाड़में पैदा हुआ हूँ। वहाँ अभी छोटी-छोटी रियासतें हैं। मै आपसे बयान नहीं कर सकता कि इन्सान किस हदतक नीचे गिर सकता है। वहाँ कुछ रियासतें ऐसी हैं, जहाँ किसी औरतकी इज्जत सलामत नहीं, और ये राजा या नवाब कोई गुण्डे नहीं, बल्कि बाकायदा राजगद्दीपर बैठाये गये लोग हैं।"

"ये व्यक्तिगत अनीतिकी बातें हुईं। यहाँ यही चीज मजमूई तौरपर और बहुत बड़े पैमानेपर की जा रही है।"

"लेकिन रियासतोंमें भी राजा अकेला नहीं होता। उसके पीछे उसकी छोटीसी रियासतके सारे तंत्रकी ताकत होती है।"

धीरज कैसे बँधे

"व्यभिचारी राजाकी तो उसके दूसरे साथी भी निन्दा करते हैं। लेकिन यहाँके मुसलमान ऐसे कामोकी निन्दा नहीं करते।"

जबसे मैं यहाँ आया हूँ, तबसे शहीद साहब और उनके साथियोंके मुँहसे ऐसे कामोंकी निन्दा ही निन्दा सुन रहा हूँ। मुमकिन है, निन्दाके ये शब्द सुनकर आपको संतोष हो। लेकिन उन बदकिस्मत बहनोंको तो इससे कोई तसल्ली नही हो सकती, जिनके घर उजाड़े जा चुके हैं, जिन्हें भगाया गया है, जबरन् मुसलमान बनाया गया है, या मुसलमानोंसे जिनकी शादियाँ जबरदस्ती करायी गयी हैं।"

फिर गाधीजीने जरा जोशमें आकर कहा—"हिन्दुओंके लिए यह कितनी शर्मकी बात है! इस्लामकी यह कितनी बड़ी तौहीन है। नहीं, मैं आपको चैनसे बैठने नहीं दूँगा। जल्दी ही आप अपने दिलमें यह कहने लगेंगे कि यह आदमी यहाँसे कब टलेगा। लेकिन मैं यों जानेवाला नहीं हूँ। मैं आपके बुलानेसे यहाँ नहीं आया। जिस तरह मैं अपनी इच्छासे यहाँ आया हूँ, उसी तरह जब पूरबी बंगालमें मेरा मिशन पूरा हो जायगा, तो आप सबकी दुआओंके साथ मैं खुद ही चला भी जाऊँगा।"

डेपुटेशनके एक मेम्बरने कहा—"यह उनकी पाकिस्तान-योजनाका एक हिस्सा है।"

"नहीं, यह उनका परले सिरेका पागलपन है, और उन्होंने इसे मालूम भी किया है। वे जल्दी ही इस चीजसे ऊब जायँगे। वे ऊबने भी लगे हैं।"

"तो फिर वे यहाँ आकर बिगड़ीको बनाते क्यों नहीं?"

"वह वक्त भी आयेगा। बिमारी तो नाजुक घड़ीकी निशानी है। इन्सानके तन्दुरुस्त होनेसे पहले मर्ज दूर होना चाहिये।"

आखिरमें गांधीजीने गंभीर भावसे हँसते हुए कहा—"आप जानते हैं न कि मैं कुदरती इलाजमें विश्वास करता हूँ !" और डेपुटेशनके सब मेम्बर भी उनके साथ हँस पड़े।

झूठी दलील

एक दूसरे दोस्तने कहा—"लेकिन यहाँ पूरबी बंगालमें तो हम लोग समन्दरमें बूंदकी तरह हैं।"

गांधीजीने जवाब दिया—"अगर पूरबी बंगालमें एक ही हिन्दू रह जाय, तो भी मैं चाहूँगा कि वह हिम्मतके साथ मुसलमानोंके बीच जाकर रहे, और उसे मरना ही पड़े, तो बहादुरकी तरह मरे। उसे गुलामकी तरह रहने और जीनेसे साफ इनकार कर देना चाहिये। हो सकता है कि बिना लड़े मरनेकी अहिंसक ताकत उसमें न हो, लेकिन अगर वह उनके जुल्मोंके सामने नहीं झुकता और मर्दकी तरह लडता हुआ मर जाता है, तो मुसलमान भी उसकी तारीफ किये बिना नहीं रहेंगे। कोई आदमी कितना ही बेरहम और संगदिल क्यों न हो, फिर भी बहादुर आदमीकी तो वह तारीफ ही करेगा। गुण्डेको हम जितना बुरा समझते हैं, दरअसल वह उतना बुरा नहीं होता। उसमें थोड़ी शराफत तो रहती ही है।"

जो भाई सबके मुखिया बनकर यह बहस चला रहे थे, उनका शक अभीतक दूर नहीं हुआ था। उन्होने कहा—"गुण्डेके सामने कोई दलील काम नहीं करती।"

गांधीजीने जवाब दिया—"मगर वह बहादुरीकी दाद तो देता है। अगर वह आपको अपनेसे ज्यादा बहादुर पायेगा, तो जरूर आपकी इज्जत करेगा।"

हथियारघरके हमलेकी परम्परा

गांधीजीने आगे कहा—"आप देखेंगे कि अपनी इस बहसमें मैंने आपको कभी यह नहीं कहा कि आप हथियारोंका इस्तेमाल करना छोड़ दें। मैं आपके लिए हथियार मुहैया नहीं कर सकता।" और फिर अपने मुलाकातियोंको खिझाते हुए उन्होंने कहा—"चटगांवके हथियारघरपर हमला करनेवाले लोगोंके लिए हथियार मुहैया करना मेरा काम नहीं। उनके निस्बत सबसे ज़्यादा अफसोसकी बात तो यह है कि वे अपनी तायदाद भी नहीं बढ़ा सके। उनकी बहादुरी लँगड़ी थी। वह उन्हीं तक महदूद रही। दूसरोंपर अपना कोई असर न डाल सकी।"

इसपर चटगाँवके हथियारघरपर हमला करनेवाले लोगोंके बारेमें बहस छिड़ी।

डेपुटेशनके एक मेम्बरने जवाब दिया—"जी हाँ, वह दूसरोंपर अपना असर नहीं डाल सकी, क्योंकि उसकी बहुत निन्दा की गयी थी।"

'निन्दा किसने की ?-शायद मैंने की हो——लेकिन वह अलग चीज है।"

"आम लोगोंने उसकी निन्दा की। मैं खुद चटगाँवके उस हमलेमें शामिल था।"

"नहीं, आम लोगोंने उसकी निन्दा नहीं की। शायद आप उन लोगोंमेंसे नहीं हैं, वरना आप यहाँ आकर मुसलमानोंके जुल्मों और हिन्दुओंकी लाचारी और बेबसीकी ये बातें न कहते। मेरे लिए इससे बढ़कर अफसोसकी बात और क्या हो सकती है कि उनमेंसे इतने लोग नोआखालीकी दर्दनाक वारदातोंको जीते जी देखते रहे। चटगाँवके शस्त्रागारपर हमला करते वक्त उन्होंने जो निडरपन और हिम्मत दिखायी थी, अगर वही निडरपन और हिम्मत उन्होंने इस संकटके मौकेपर मौतका सामना करनेमें दिखायी होती, तो अपनी इस बहादुरीके लिए तवारीखमें उनका नाम अमर हो जाता। लेकिन आज तो उन्होंने तवारीखके पन्नेमें छोटेसे फुटनोटकी ही जगह हासिल की है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप अभी अपने हथियारोंका इस्तेमाल करना भूल जायँ या मेरे ढंगकी बहादुरीको अपना लें। अपने मामलेमें भी मैं अभीतक उसका सबूत नहीं दे पाया हूँ। पूरबी बंगालमें उसको कसौटीपर चढ़ानेके लिए ही मैं यहाँ आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप बहादुरीको उसके रूढ़ अर्थमें ही अपनायें। आपको अपने दूसरे भाइयों और बहनोंमें वह हिम्मत और निर्भयता पैदा करनी चाहिये, जिससे अपमान और बेइज्जतीको बरदाश्त कर लेनेके बजाय वे मौतका सामना करनेको तैयार हो सकें। पूरबी बंगालमें हिन्दू तभी रह सकते हैं, और किसी भी हालतमें नहीं। आखिर मुसलमान हमारे ही भाई-बन्द जो हैं।"

"यहाँ हर छः मुसलमानोंके पीछे एक हिन्दू रहता है। इस विषम हालतमें संकटोंका सामना करनेकी उम्मीद आप हमसे कैसे रख सकते हैं?"

"जब हिन्दुस्तानमें अंग्रेजी हुकूमत कायम हुई थी, तब ३२ करोड़ हिन्दुस्तानियोंके खिलाफ यूरोपियन सिपाहियोंकी तादाद सिर्फ ७० हजार थी।"

"हमारे पास हथियार नहीं हैं। और सरकार अपनी संगीनोंसे उनकी मदद करती है।"

"दक्खिनी अफ्रीकामें हिन्दुस्तानियोंकी हालत इससे कहीं खराब थी। वहाँ यूरोपियनों और हब्शियोंकी बहुत बड़ी आबादीके बीच सिर्फ मुट्ठी भर हिन्दुस्तानी रहते थे। यूरोपियनोंके पास हथियार थे। हम बिल्कुल निहत्थे थे। इसलिए हमने सत्याग्रहका हथियार तैयार किया। आज दक्खिनी अफ्रीकाके गोरे वहाँके हिन्दुस्तानियोंकी इज्जत करते हैं। मगर हट्टे-कट्टे जुलूकी आज वहाँ कोई इज्जत नहीं।"

इसपर उन दोस्तने आखीरमें पूछा—"तो क्या हमें हथियारोंसे जैसे बन पड़े वैसे लड़ना चाहिये?"

गांधीजीने जवाब दिया—"जैसे-तैसे नहीं। हिंसाकी भी अपनी नीति होती है। जैसे, लाचार, बूढ़ों, औरतों और बच्चोंको कत्ल करना बहादुरी नहीं, बल्कि बदतर बुजदिली है। बहादुरीका तो यह तकाजा है कि हम अपनी जान देकर भी उनकी हिफाजत करें। इस्लामकी पुरानी तवारीख बहादुरीकी ऐसी मिसालोंसे भरी पड़ी है। और उनकी बदौलत इस्लामकी बाबत घटनेके बजाय बढ़ी ही है।"

बहादुरी या बेरहमी

"क्या आप हिन्दुओंको मुसलमानोंपर हमला करनेकी इजाजत देंगे ?"

"बिहारके लोगोंने हमला करके अपनेको और हिन्दुस्तानको दुनियाँकी नजरोंमें गिराया है। उन्होंने हिन्दुस्तानकी आजादीको पीछे ढकेल दिया है। बिहारके बारेमें यह सब कहनेका मुझे हक है। एक तरहसे मैं बंगालकी बनिस्बत बिहारको ज्यादा अपना महसूस करता हूँ। क्योंकि खुशकिस्मतीसे चम्पारनमे मैं अहिंसक सत्याग्रहके अपने तरीकेको बहुत अच्छी तरहसे कामयाब करके दिखा सका था। मैंने लोगोंको यह कहते सुना है कि बिहारके इस बदलेने मुसलमानोंका सारा जोश ठण्डा कर दिया है। उनके कहनेका मतलब यह है कि उसकी वजहसे मुसलमान अभी दब गये हैं। वे यह भूल जाते हैं कि ताली दो हाथसे बजती है। बिहारने गुलामीकी हमारी जंजीरमे एक कड़ी और जोड़ दी है। अगर बिहारकी वारदातें दोहरायी गयीं, या बिहारकी जहनियत न सुधरी, तो आप मेरे इन लफ्जोंको अपनी डायरीमें नोट कर सकते हैं कि—'जल्दी ही हिन्दुस्तान दुनियाँकी तीन बड़ी ताकतोंके जुएके नीचे चला जायगा और शायद उनमेंसे किसी एकको यहाँका राज-काज चलानेकी सत्ता दे दी जायगी। आज बंगाल और बिहारमे हिन्दुस्तानकी आजादी दावँपर लगी है।' ब्रिटिश सरकारने हिन्दुस्तानकी हुकूमत कांग्रेसको इसलिए नहीं सौंपी कि उसे कांग्रेससे कोई मुहब्बत है; बल्कि इस विश्वाससे सौंपी है कि कांग्रेस उसका ठीक-ठीक और अच्छा इस्तेमाल करेगी—उससे कोई नाजायज काम न लेगी। आज पं० जवाहरलाल नेहरूके पाँव तलेकी मिट्टी खिसक रही है। लेकिन वे ऐसा होने न देंगे। इसीलिए वे आज बिहारमे हैं। उन्होंने कहा है कि जबतक यहाँ मेरी जरूरत रहेगी, मै यहीं रहूँगा।"

फिर बड़े दर्दके साथ उन्होंने आगे कहा—"बिहारियोंने कायरोंका काम किया है। अगर आपको अपने हथियारोंका इस्तेमाल करना ही पड़े, तो उनका वाजिब इस्तेमाल कीजिये। कमजोरोंपर कभी हथियार न उठाइये। बिहारने अपने हथियारोंका सही इस्तेमाल नहीं किया। अगर बिहारी पूरबी बंगालका बदला लेना चाहते थे, तो वे नोआखाली जाकर बहादुरोंकी तरह मर सकते थे। लेकिन एक हजार हिन्दुओंका अपने बीच रहनेवाले मुट्ठी भर मुसलमान मर्दों, औरतों और बच्चोंपर टूट पड़ना, कोई बदला लेना नहीं, बल्कि निरी हैवानियत दिखाना है। बहादुरोंके हथियार कमजोरों और बेबसोंकी हिफाजतके लिए होते हैं। अपने बीच रहनेवाले मुसलमनोंको उनकी पूरी-पूरी सलामतीकी गारण्टी देकर ही बिहारके हिन्दू पूरबी बंगालके हिन्दुओंको अच्छीसे अच्छी मदद पहुँचा सकते थे। उनकी इस मिसालका बंगालके मुसलमानोंपर अच्छा असर पड़ता। और मुझे विश्वास है कि इस मौजूदा पागलपनके दूर हो जानेपर बिहारके लोग अपने कियेपर पछतायेंगे और अपनी जान देकर भी मुसलमानोंकी हिफाजत करेंगे। सो जो भी हो, अगर वे मुझे जिन्दा रखना चाहते हैं, तो उन्हें मेरे प्राणोंकी यही कीमत चुकानी होगी।"

इस तरह यह पहला सबक खत्म हुआ।

हरिजन-सेवक
१ दिसम्बर, १९४६

दिलसे अपील

१० नवम्बरको दत्तपाड़ामें शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने हिन्दुस्तानीमें जो तकरीर की थी, वह नीचे दी जाती है—

"आप लोग मेरी बात मानें चाहे न मानें, मगर मैं आपको यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं हिन्दू-मुसलमान दोनोंका सेवक हूँ। मैं पाकिस्तानकी मुखालिफत करनेके लिए यहाँ नहीं आया। अगर टुकड़े-टुकड़े होना हिन्दुस्तानके भागमें ही बदा है, तो उसे रोकनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं। लेकिन मैं आपसे इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि पाकिस्तान जोर-जबरदस्तीसे कायम नहीं किया जा सकता। जो भजन अभी यहाँ गाया गया था, उसमें कविने ईश्वरको पारस पत्थरके समान बतलाया है। पारस पत्थरके बारेमें कहा जाता है कि वह लोहेको सोना बना देता है। लेकिन ऐसा होना हमेशा इष्ट नहीं। मसलन्, अगर रेलगाड़ीकी सारी पटरियाँ पारस पत्थरके छूनेसे सोना बन जाँय, तो रेलगाड़ियाँ उसपर चल ही न सकेंगी। मगर कविका मतलब यह है कि ईश्वरका स्पर्श हमारी आत्मा या रूहको पाक करता है, इसलिए वह हमेशा ही इष्ट है।

आत्माके मैलको जलाकर उसे कुन्दन बनानेवाला वह पारस पत्थर हम सबके दिलमें मौजूद है। अपने मुसलमान भाइयोंसे मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि चाहे आप हिन्दुस्तानमें एक प्रजा बनकर रहें, चाहे अलग होकर दो जुदी-जुदी प्रजाओंकी तरह रहें, हर हालतमें आपको चाहिये कि आप हिन्दुओंको अपना दोस्त बनाकर रहें। अगर आप ऐसा नहीं करना चाहते, तो आपको यह बात साफ-साफ कह देनी चाहिये। उस हालतमें मैं अपनी हार मंजूर कर लूँगा। ये निराश्रित हिन्दू हमेशा तो निराश्रित बनकर नहीं रह सकते न? और, सरकार उन्हें हमेशा खानेको थोड़े ही दे सकती है? और खाना भी उनको कैसा मिलता है?—एक तन्दुरुस्त आदमीको जिन्दा रखनेके लिए जितनी खूराककी जरूरत है, उसके आधेसे भी कम राशन उनको दिया जाता है, और उसके साथ उन्हें मछली, साग-सब्जी वगैरा कुछ भी नहीं दिया जाता। इस तरह रहकर तो वे ज्यादा दिनों तक जी नहीं सकते। इसलिए अगर मुसलमान भाई उन्हें अपने गाँवोंमें वापस जाने देना नहीं चाहते, तो उन्हें कहीं दूसरी जगह जाकर रहना पड़ेगा।

"लेकिन चाहे पूरबी बंगालका एक-एक हिन्दू बाहर चला जाय, फिर भी मैं तो यहाँके मुसलमानोंके साथ अकेला रहूँगा, और वे मुझे जो खानेको देंगे, और जो मैं खा सकूँगा, वही खाकर मैं अपना काम चलाऊँगा। मैं अपना खाना बाहरसे थोड़े ही लानेवाला हूँ? मुझे मांस या मछलीकी जरूरत नहीं। मुझे तो सिर्फ थोड़े फल, हरी भाजी और थोड़ा बकरीका दूध चाहिये। बकरीका दूध और अनाज न, जब

ईश्वरकी मरजी होगी तभी मैं फिर लेना शुरू करूँगा। हिन्दुओंने विहारमें जो कुछ किया, उसका उन्हें जबतक सच्चा पछतावा नहीं होता, तबतक मैं अनाज और दूध फिरसे लेना शुरू नहीं करूंगा।

"एक हजार हिन्दुओंका सौ मुसलमानोंको घेर लेना या एक हजार मुसलमानोंका सौ हिन्दुओंको घेर लेना और उनपर जुल्म करना, बहादुरी नहीं, बुजदिली है। इंसाफकी लड़ाई तो यह है कि पहलेसे इत्तला कर दी जाय, और दोनों तरफ लड़नेवालोंकी तादाद बराबर रखी जाय। इसका यह मतलब नहीं कि उनकी ऐसी आपसकी लड़ाईकी मैं ताईद करता हूँ। कहा गया है कि हिन्दू और मुसलमान दोस्तोंकी तरह कभी एक साथ नहीं रह सकते, और न वे मिलकर काम ही कर सकते हैं। कोई भी यह बात मेरे गले उतार नहीं सकता। लेकिन अगर आप ऐसा मानते हैं, तो वैसा साफ-साफ कह दीजिये। उस हालतमें मैं हिन्दुओंको वापस लौटनेके लिए नहीं कहूँगा। वे पूरबी बंगाल छोड़कर चले जायेंगे। और यह हिन्दू-मुसलमान दोनोंके लिए शर्मकी बात होगी। अगर इसके बर-अक्स आप लोग यह चाहते हैं कि हिन्दू आपके बीचमें रहें, तो आपको उनसे कहना चाहिये कि वे अपनी हिफाजतके लिए फौजका मुँह ताकनेके बजाय अपने मुसलमान भाइयोंपर भरोसा करें। हिन्दुओंकी लड़कियाँ, बहनें और मातायें आपकी अपनी लड़कियाँ, बहनें और मातायें हैं, और आपको अपनी जानपर खेलकर भी उनकी हिफाजत करनी चाहिये। कल निराश्रितोंकी छावनीमें मैं उनसे दो बात कह आया हूँ। उसी वक्त आपके जिला हाकिम मि० मैकइनरनीने उनसे कहा कि सभी इन्सान आदम और हौवाकी औलाद हैं, इसलिए वे एक ही खानदानके यानी भाई भाई हैं—फिर चाहे वे किसी भी कौम या मजहबके क्यों न हों। इसलिए आपको भाइयोंकी तरह ही भाईचारेसे रहना चाहिये।

"मैंने सुना है कि कल शामको प्रार्थना-सभा खतम होनेपर एक आदमी अपने गाँवको लौटा था। लेकिन वहाँ उसने अपने घरको मुसलमानोंसे घिरा पाया, और उन लोगोंने उसे अपनी जायदादका कब्जा नहीं लेने दिया। अगर यह बात सच है, तो ऐसी हालतमें मैं किसीको अपने घर वापस जानेके लिए कैसे कह सकता हूँ? मैंने जो कुछ कहा है, उसपर आप सब गहराईसे सोचिये और तब मुझसे कहिये कि आपका असली मंशा क्या है। उसके मुताबिक मैं हिन्दुओंको सलाह दूँगा।

"मुझसे कहा गया है, और मैं मानता भी हूँ कि बहुतसे भले मुसलमान हिन्दुओंको अपने गावोंमें वापस बुलानेके लिए उत्सुक हैं, लेकिन गुण्डे उन्हें ऐसा करने नहीं देते। मेरा आपसे यह कहना है, अगर सब भले मुसलमान एक आवाजसे अपनी बात जाहिर करें, और जो कहें वही कर दिखावें, तो इन नामधारी गुण्डोंका कुछ भी न चले, और वे अपनी आदतें भी सुधार लें।

हरिजन-सेवक

१ दिसम्बर, १९४६

*

पैदल यात्रा किस लिए

[पिछली छठी जनवरीको गांधीजीका मौन-दिन था। उस दिन प्रार्थना-सभाके लिए उन्होंने हिन्दुस्तानीमे अपना जो भाषण लिख रखा था, वह पढ़ा गया। श्री निर्मलकुमार बसुने बँगलामे उसका तरजुमा किया था। नीचे उसीका हिन्दुस्तानी दिया जाता है।—सम्पादक]

मेरा आठवें दिनका मौन करीब ७ बजे खतम होगा, इसलिए मैं जो कहना चाहता हूँ, सो लिख डालता हूँ। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि कल जो यात्रा मैंने शुरू की है, वह आखीर तक चले और सफल हो। आप सब भी मेरी इस प्रार्थनामे शरीक होइये। लेकिन प्रार्थना करनेसे पहले आपको यह जान लेना चाहिये कि मैं किस लिए इस यात्रापर निकला हूँ। मेरी इस यात्राका एक ही मकसद है और वह बिलकुल साफ है—ईश्वर हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिलोंको साफ व पाक बनाये, और दोनो फिरकोंके लोग एक दूसरेका अविश्वास और डर छोड़े। इस प्रार्थनामे आप सब भी शरीक होइये और कहिये कि खुदा हमारा मालिक है; वह हमें कामयाबी बख्शे।

हर कोई यह पूछ सकता है कि इस मकसदको पूरा करनेके लिए यात्राकी जरूरत ही क्या? जिसका अपना दिल साफ नहीं है, वह दूसरोंको साफ बननेके लिए कैसे कहेगा? जो खुद डरपोक है, या जिसके दिलमे हिम्मत कम है, वह दूसरोंको किस तरह हिम्मत दिलायेगा? जो खुद हथियारोंसे लैस है, क्या वह दूसरोंको हथियार छोड़नेकी सलाह दे सकता है? ये सब सवाल वाजिब है, और ऐसे सवाल मुझसे पूछे भी गये हैं। अपनी इस यात्रामे अपनी कोशिश भर हर देहातोंसे यह कहना चाहता हूँ कि मेरे मनमे कहीं भी मैल नहीं है, इसका सबूत मै तभी दे सकता हूँ; जब मै उन लोगोंके बीच रहूँ या घूमूँ, जो मुझपर एतबार नहीं करते। तीसरा सवाल टेढ़ा है, क्योंकि मै खुद हथियारोंके आसरेमे रहता हूँ, मेरे साथ पुलिस और फौजके हथियारोंसे लैस लोग रहते है, और वे अदबके साथ, चौकन्ने रहकर, हमेशा मेरी हिफाजत करते हैं। लेकिन यह तो सरकारके हाथकी बात है। हमारी राष्ट्रीय सरकारका यह खयाल है कि यात्राके दिनोंमे मेरे साथ पुलिस और फौज रखना उसका फर्ज है। उसे मै किस तरह रोक सकता हूँ? मैं अपनी जबानसे यह कह सकता हूँ कि ईश्वरको छोड दूसरा कोई मेरा रखवाला नहीं। मै नहीं जानता कि मेरी इस बातको आप सच मानेंगे या नहीं। एक भगवान ही इन्सानके दिलको जानता है दूसरा कोई जान नहीं सकता। खुदापरस्त इन्सानका फर्ज है कि वह अपने दिलकी आवाजपर चले। मेरा दावा है कि मैं इस तरह चलता हूँ। लेकिन सिक्ख भाइयोंको तो सरकारने नहीं रक्खा है न? उन्हें तो मैं अपने साथ घूमनेसे

रोक सकता हूँ न ? आपको जानना चाहिये कि ये भी सरकारकी इजाजत लेकर ही मेरे साथ घूम रहे हैं। ये यहाँ लड़नेके इरादेसे नहीं आये हैं। ये अपने कृपाण भी छोड़ आये हैं। वे बिना पक्षपातके दोनों फिरकोंकी सेवा करनेके लिए ही आये हैं। नेताजीने जो आजाद हिन्द फौज तैयार की थी, उसका पहला सबक यह था कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी वगैरा तमाम फिरकोंके लोगोंको चाहिये कि वे हिन्दुस्तानको अपना मुल्क मानें, और सब मिलकर अपने कामोंसे इस तरहकी एकता पैदा करें। सिक्ख दोनों फिरकोंकी सेवा करना चाहते हैं, और उनकी ख्वाहिश है कि वे मेरे मातहत रहकर काम करें। ऐसे मित्रोंको मैं इनकार कैसे करूँ, और किस लिए करूँ? वे दुनियाँको दिखानेके लिए नहीं, बल्कि सेवाका व्रत लेकर मदद कर रहे हैं। अगर मैं उनकी सेवा लेनेसे इन्कार कर दूँ, तो मैं अपनी ही आँखोंसे गिर जाऊँ; और बुजदिल साबित होऊँ। मेरी गुजारिश है कि आप भी मेरे इन भाइयोंपर एतबार करें, और उन्हें अपना भाई समझकर इनकी मदद लें। ये बहुत मदद कर सकते हैं, इन्हें तजर्बा भी बहुत है। खुदाने इनको तन्दुरुस्ती दी है, ईमान दिया है।

इनके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है, वह सच न हुआ, तो ये यहाँसे चले जायँगे, और अगर मैं किसी बुरी नियतसे इन्हें यहाँ रखता हूँगा, तो मैं मिट जाऊँगा; और जिस प्रयोगके लिए मैं यहाँ आकर बैठा हूँ, वह भी नाकाम होगा।

अपनी इस यात्राके दरमियान मैं आप लोगोंको कुछ जरूरी बातें अच्छी तरह सिखा देना चाहता हूँ। जैसे, गाँवका पानी किस तरह साफ रक्खा जाय, किस तरह खुद साफ-सुथरा रहा जाय, जिस मिट्टीसे हम पैदा हुए हैं, उस मिट्टीका सही-सही इस्तेमाल कैसे किया जाय, हमारे सरपर जो अनन्त आसमान फैला हुआ है, उससे जिन्दगीकी ताकत किस तरह हासिल की जाय, अपने आस-पासकी हवासे प्राण-शक्ति किस तरह ली जाय, और किस तरीकेसे सूरजकी धूपका ठीक-ठीक इस्तेमाल किया जाय। हमारा देश कंगाल बन गया है, मैं आपको वह तालीम देनेकी कोशिश करूँगा, जिससे आप ऊपर कही गयी इन जुदा-जुदा ताकतोंका सही इस्तेमाल करके इस देशको सोनेका देश बना सकें। मैं ईश्वरसे मनाता हूँ कि इस यात्रासे मैं आप लोगोंकी ऐसी सेवा करनेमें सफल होऊँ।

हरिजन-सेवक
२६ जनवरी, १९४७

राष्ट्रसे अपील

[कायदे-आजम और गांधीजीने हिन्दुस्तानी राष्ट्रके मुख्तलिफ फिरकोंसे नीचे दी हुई मिली-जुली अपील की है।—सम्पादक]

हालमें देशमें जो गैरकानूनी और जुल्मके वाकये हुए हैं, उनसे हिन्दुस्तानके अच्छे नामको बट्टा लगा है और बेगुनाह लोगोंको बड़ी तकलीफ पहुँची है। हम

इस बातका लिहाज किये बिना कि इनमें हमला करनेवाले और ज़ुल्म सहनेवाले कौन थे, इनपर बहुत अफ़सोस जाहिर करते हैं।

हम इस बातको बुरा समझते हैं कि सियासी मकसदोंको हासिल करनेके लिए किसी भी वक्त जोर जबरदस्तीसे काम लिया जाय। हम हिन्दुस्तानके सब फ़िरकोंके लोगोंसे, चाहे वे किसी ख्यालके हों; अपील करते हैं कि वे न सिर्फ हिंसा और बलवा फैलानेवाले कामोंसे परहेज करें, बल्कि अपने लेखों और तकरीरोंमें भी ऐसे शब्द काममें न लायें, जिनसे लोग भड़ककर ऐसे वहशियाना काम करने लगें।

हरिजन-सेवक
२७ अप्रैल, १९४७

सवाल-जवाब

हिंसाका मुकाबला कैसे किया जाय ?

सवाल १—लीगके नेता और उसके अनुयायी अपनी मुराद हासिल करनेके लिए अहिंसामें एतबार नहीं करते हैं। इस हालतमें यह किस प्रकार संभव है कि लीगवालोंका हृदय जीता जाय, या उन्हें इस बातका विश्वास दिलाया जाय कि हिंसात्मक साधन बुरा है ?

जवाब १—हिंसाका सही प्रतिकार अहिंसासे ही हो सकता है, यह सनातन सत्य है। जिस भाईने सवाल किया है, उनका एतबार अहिंसापर नहीं हो सकता है। क्योंकि इस अहिंसा रूपी शस्त्रके आगे हिंसक शस्त्र, चाहे वह ऐटम-बम ही क्यों न हो, बेकार होता है। यह बिल्कुल दूसरी बात है कि ऐसे बुलन्द शस्त्र जाननेवाले लोग बहुत कम होते हैं। उस (अहिंसक) शस्त्रके उपयोगमें ज्ञान और दिलकी ताकतकी काफी दरकार रहती है। उसमें मिलिटरी स्कूल-कालेजोंमें बरसों तालीम लेनेकी बात नहीं होती, लेकिन दिल साफ करनेकी जरूरत होती है। जितनी मुसीबत हमको हिंसाका सामना करनेमें आती है, वह सब हमारे दिलकी कमजोरीकी निशानी है। दूसरी बात यह भी है कि अब तो कायदे आजम जिन्नाने ऐसी बुलन्द बात कही है कि अपने हकोंको पानेके लिए यानी पाकिस्तान पानेके लिए हिंसाका इस्तेमाल करना मुनासिब नहीं है। यह बात उन्होंने सरहद्दी सूबेसे जो लोग उन्हें मिलने गये थे, उनसे साफ-साफ लफ्जोंमें कही है. उसे हम न भूलें।

स० २—बहुतसे लोगोंका ऐसा ख्याल होता जा रहा है कि पाकिस्तानके समर्थकोंके साथ संघर्ष—शायद हिंसात्मक ढंगका—होना अनिवार्य है। अगर गांधीजी ऐसा समझें कि जबतक लीग पंजाब और बंगालके बँटवारेके लिए रजामंद नहीं हो जाती, तबतक पाकिस्तानकी माँग ठीक नहीं है, तो कांग्रेसी किस साधनका अवलम्बन करें ?

ज० २—अगर पहले सवालका जवाब ठीक समझमें आ गया है, तो दूसरा

सवाल उठ ही नहीं सकता। फिर भी बात साफ करनेके लिए मैं जवाब दे रहा हूँ। अगर जिन्ना साहबका कहना सब मुसलमान या लोगों मुसलमान मान ले, तब तो हिंसात्मक ढंगका झगडा हो ही नहीं सकता। और, हिन्दू बड़ी तादादमें अहिंसाका सहारा लें, तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करें, वह हिंसा बेकार होगी। एक बात और भी समझ लेनी चाहिये। जो लोग अहिंसाके पुजारी हैं, वे गैरमुनासिब ख्याल तक भी न करें, ऐसा काम तो कर ही नहीं सकते। इसलिए अगर पाकिस्तान ठीक नहीं है, तो बंगाल और पंजाबके टुकड़े भी ठीक नहीं है।

स० ३—अधिकतर समाजवादियोंका यह विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होनेसे हिन्दू मुस्लिम झगड़ा पीछे पड़ जायगा और आर्थिक सवाल सामने आ जायेंगे। क्या आपकी समझमें यह अच्छा होगा कि ऐसी क्रान्ति हो? क्या इससे राम-राज्य कायम होनेमें मदद मिलेगी?

ज० ३—सामाजिक क्रान्तिसे हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा कुछ हदतक तो ढीला पड़ेगा। इतना तो हम सबको साफ होना चाहिये कि झगड़ोंके बहुतसे कारण होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा मिट जानेसे सब झगड़े मिट जाते हैं, ऐसा तो नहीं कह सकते। इतना ही कहा जाय कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेने एक भयंकर रूप ले रखा है। छोटे-मोटे दूसरे झगड़े मिट जानेसे इस भयंकरताका रूप कम हो जायगा, इसमें शक नहीं है।

जब गुलामी मिटकर आजादी आती है, तब समाजकी सारी व्याधियाँ (बुराईयाँ) ऊपर आ जाती हैं। इससे भड़कनेका मैं कोई कारण नहीं पाता। अगर ऐसे मौकेपर हमारा मन स्थिर रहे, तो सब साफ हो जाता है। हर हालतमें आर्थिक सवालको हल होना ही है।

आज आर्थिक असमानता है। समाजवादकी जड़में आर्थिक समानता है। थोड़ोंको करोड़ और बाकी लोगोंको सूखी रोटी भी नहीं, ऐसी भयानक असमानतामें रामराज्यका दर्शन करनेकी आशा कभी न रखी जाय।

इसलिए मैंने दक्षिण-अफ्रीकामें ही समाजवादको स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरोंसे यही विरोध रहा है कि सब सुधारोंके लिए सत्य और अहिंसा ही सर्वोपरि (सबसे अच्छा) साधन है।

सवाल ४—आप कहते हैं कि राजा, जमींदार और पूँजीपति संरक्षक (ट्रस्टी) बनकर रहें। आपके ख्यालसे क्या ऐसे राजा, जमींदार या पूँजीपति अभी मौजूद हैं? या वर्तमान राजा, वगैरामेंसे किन्हींके इस प्रकार बदल जानेकी उम्मीद है?

ज० ४—मेरे ख्यालसे ऐसे राजा, जमींदार और पूंजीपति अभी हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे पूरे-पूरे संरक्षक बन चुके हैं। लेकिन उनकी गति उस ओर है।

मौजूदा राजा वगैराके संरक्षक बननेकी उम्मीद रखी जाती है या नहीं, यह सवाल पूछने लायक है।

मेरी दृष्टिसे यह उम्मीद जरूर रखी जाय। वे लोग अपने आप संरक्षक न बनें तो समय उन्हें बनावेगा अथवा उनका नाश हो जायगा। जब पंचायत राज बनेगा, तब लोकमत सब कुछ करवा लेगा।

जमींदारी, पूँजी अथवा राजसत्ताकी ताकत तबतक ही कायम रह सकती है, जबतक आम लोगोंमें अपनी ताकतकी समझ नहीं होती। लोग रूठे, तो राजा, पूँजीपति या जमींदार क्या कर सकता है? पंचायत-राजमें पंचका ही चलनेवाला है और पंच अपना काम कानूनसे कर लेता है। अगर पंचका कारोबार अहिंसासे चलेगा, तो तीनों मालिक कानूनसे संरक्षक बनेंगे और हिंसासे चलेगा तो उनकी मालिकी बुझ जायगी।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९४७

जिन्दा दफनाया

एक हैदराबादी भाई लिखते हैं:—

"गांधीको जिन्दा दफनाया जा रहा है।

गांधीके माने गांधीके उसूल। इन्हीं उसूलोंसे हम इस दरजेपर पहुँचे हैं। लेकिन जिस सीढ़ीसे हम ऊपर उठे, उसीको तोड़ ताड़कर फेंक दिया जा रहा है। यह काम वे लोग कर रहे हैं, जो गांधीके सबसे बड़े अनुयायी भी कहलाते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता, हिन्दुस्तानी, खद्दर, ग्रामोद्योग—ये सब खतम कर दिये गये हैं। फिर भी जो इनकी बातें करते हैं, वे या तो धोखेमें है, या जानबूझकर धोखा दे रहे हैं।"

मुझे जिन्दा दफनानेका यह तरीका सबसे अच्छा है। 'दफनाया गया' ऐसे तो मैं कैसे कबूल करूँ! मेरे बड़े अनुयायी कौन, और सबसे छोटे कौन? मेरा तो एक ही अनुयायी है—वह मैं या सब हिन्दी। मेरे अनुयायी वे ही है, जो ऊपरकी बातें मानते हैं। मेरी उम्मीद तो अब भी रहती है कि करोड़ों देहाती ये चारों चीजें मानते हैं। फिर भी इस इलजाम (आरोप) में काफी सत्य है। लेकिन अब मैं देख रहा हूँ कि मुस्लिम-लीगी भाई यह कहने लगे हैं कि हम सब भाई-भाई हैं। अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनों हिस्सोंके शहरी हैं। पासपोर्टकी जरूरत आज तो नहीं मानी जायगी। कोई एक हुकूमत शुरू करे, तब ही ऐसा हो सकता है। हम आशा रखें और ऐसा वर्ताव करें जिससे पासपोर्टकी जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रक्खें कि दोनोंमेंसे कोई भी खद्दर नहीं छोड़ेंगे। देहाती उद्योग धन्धोंको नुकसान नहीं पहुँचायेंगे। हिन्दुस्तानीके बारेमें लिख चुका हूँ। उसे कैसे छोड़ा जाय? मुसलमान, जिनकी मादरी-जबान उर्दू है, उर्दू कैसे छोड़ें? उन्हें अपनी उर्दू आसान करनी होगी और हिन्दुओंको, जो उर्दू नहीं जानते, अपनी

हिन्दी आसान करनी होगी। तभी दोनों एक-दूसरेको समझ सकेंगे। सबसे बड़ी बात तो लेखकने छोड़ ही दी है। हिन्दुओंको अस्पृश्यता और जात-पांत छोड़कर साफ होना होगा।

हरिजन-सेवक

१७ अगस्त, १९४७

अल्पसंख्यकोंका सवाल

सवाल—"आप इस बातके लिए राजी क्यों नहीं होते कि अल्पसंख्यक लोग अपने-अपने उपनिवेशोंको छोड़ दें?"

जवाब—इस बातपर राजी होनेके लिए मुझे किसीने नहीं कहा। मगर मुझे ऐसी किसी भी हलचलका विरोध करना चाहिये। किसी भी उपनिवेशके बहुसंख्यकोंपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। और अब तो हर हालतमें जब हिन्दुस्तानमें दो सार्वभौम राज बन गये हैं, तब इनमेंसे हर राजको अपने यहां रहनेवाले दूसरे राजके अल्पसंख्यकोंके प्रति उचित व्यवहारकी गारन्टी देनी होगी। मगर हम उम्मीद करें कि ऐसा मौका कभी नहीं आयेगा। मैं भी मानता हूँ कि हर एक हकके साथ एक फर्ज जुड़ा हुआ है। ऐसा कोई हक नहीं, जो ठीक तरहसे अदा किये हुए फर्जसे न निकलता हो।

हरिजन-सेवक

१७ अगस्त, १९४७

चमत्कार या संयोग

शहीद साहब सुहरावर्दी और मैं बेलियाघाटाके एक मुस्लिम मंजिलमें साथ-साथ रहते हैं। कहा जाता है कि यहां दंगेमें मुसलमानोंको नुकसान पहुँचा है। हम १३ अगस्त, बुधवारको इस घरमें आये और १४ अगस्तको ऐसा मालूम हुआ मानों यहांके हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कभी कोई अदावत या दुश्मनी थी ही नहीं। हजारोंकी तादादमें वे एक दूसरेसे गले मिलने लगे और निडर बनकर उन जगहोंसे गुजरने लगे जिन्हें एक या दूसरी पार्टी खतरनाक समझती थी। सचमुच मुसलमान भाई अपने हिन्दू भाइयोंको मस्जिदोंमें ले गये और हिन्दू अपने मुसलमान भाइयोंको मंदिरोंमें ले गये। दोनोंने एक साथ 'जय-हिन्द' और 'हिन्दू-मुस्लिम एक हों' के नारे लगाये। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, हम एक मुसलमानके घरमें रहते हैं और मुसलमान सेवक और सेविकायें हमारे सुख सुभीतोंका ज्यादा-ज्यादा ध्यान रखते हैं। मुसलमान स्वयंसेवक हमारा खाना बनाते हैं। खादी-प्रतिष्ठानसे बहुतसे लोग मेरी सेवायें लिये आना चाहते थे, लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया। मैंने यह पक्का इरादा कर लिया था कि मुसलमान भाई और बहने जो कुछ भी सुख-सुभीते हमे

दे सकेंगे, उन्हींसे हमें पूरा संतोष मानना चाहिये। और, मुझे यह कहना चाहिये कि अपने इस इरादेसे मुझे जरा भी नुकसान नहीं हुआ। मकानके अहातेमें 'जय-हिन्द' और 'हिन्दू-मुस्लिम एक हो' के नारे लगानेवाले अनगिनत हिन्दू-मुसलमानोंका ताता बंधा रहता है। मैं तो यहाँ तक सुनता हूँ कि भाई चारेका उत्साह घण्टे-घण्टेपर बढ़ता जा रहा है।

इसे चमत्कार कहा जाय या संयोग? इसको किसी भी नामसे क्यों न पुकारा जाय, यह तो साफ है कि चारों तरफसे इसका जो श्रेय मुझे दिया जाता है उसके लायक मैं नहीं हूँ। तब क्या शहीद साहबको इसका श्रेय है? उन्हें भी इसका श्रेय नहीं मिलना चाहिये। एकाएक होनेवाला यह भारी फेरफार एक या दो आदमियोका काम नहीं है। हम तो भगवानके हाथके खिलौने है। वह हमें अपने इशारोंपर नचाता है। इसलिए आदमी ज्यादासे ज्यादा यही कर सकता है कि वह इस नाचमें कोई रुकावट न डाले और अपने भगवानकी इच्छाको अच्छी तरह पूरी करे। इस तरह विचार करनेपर यह कहा जा सकता है कि इस चमत्कारमे भगवानने हम दोनोंको अपना साधन बनाया है। मैं अपने आपसे यही पूछता हूँ कि क्या मेरा बचपनका सपना बुढ़ापेमे पूरा होगा? देखूं, क्या होता है!

जो भगवानमे पूरी श्रद्धा रखते है, उनके लिए न तो यह चमत्कार है और न संयोग। घटनाओंका सिलसिला यह साफ बताता है कि दोनों जातियाँ अनजानमें ही इस भाईचारेके लिए तैयार की जा रही थीं। इस जगह हम दोनोंके पहुंच जानेसे देखनेवालोंको आनन्दसे भरी इस घटनाके लिए हमें श्रेय देनेका मौका मिल जायगा।

सो जो कुछ भी हो, खुशीसे पागल बना देनेवाली ये घटनायें मुझे खिलाफत आन्दोलनके शुरूआतके दिनोकी याद दिलाती है। तब जनतामे भाईचारेकी भावना नये अनुभवके रूपमें फूट पड़ी थी। इसके अलावा, तब हमारे खिलाफत और स्वराजके आदर्श एक दूसरेसे जुड़े हुए थे। आज उस तरहकी कोई बात नहीं है। हमने आपसी नफरतका जहर पी लिया है। इसलिए भाईचारेका यह अमृत हमें बहुत ज्यादा मीठा लगना चाहिये और इसकी मिठास कभी कम न होनी चाहिये।

आजके नारोंमे हिन्दुओं और मुसलमानोंके मुँहसे एक साथ 'हिन्दुस्तान-पाकिस्तान जिन्दाबाद' का स्वर भी सुनायी देता है। मेरे विचारसे यह बिल्कुल ठीक है। पाकिस्तानको मंजूर करनेका कोई भी कारण क्यो न रहा हो, तीन पार्टियोने उसे मान लिया है। तब अगर दो पार्टियाँ एक दूसरीकी दुश्मन हों—और यहाँ तो वे साफ तौरपर एक-दूसरीकी दुश्मन नहीं मालूम होतीं—तो ऊपरका नारा लगानेमे कोई बुराई नहीं है। अगर दोनों जातियाँ सचमुच दोस्त बन जायें, तो दोनों राज्योंकी लम्बी जिन्दगीकी कामना न करना बेवफाई होगी।

हरिजन-सेवक

२४ अगस्त, १९४७

सवाल-जवाब

सवाल—जब आप नोआखाली में थे, तब अक्सर कहा करते थे कि अगर मुझे अपने मिशनमें कामयाबी न मिली, तो वह मेरी अपनी अहिंसाकी नाकामी होगी, खुद अहिंसाकी नहीं। यहां कलकत्तेमें जो कामयाबी हासिल हुई है, उसे देखते हुए क्या आप सोचते हैं कि आपकी अहिंसा कामयाब हुई है या कामयाबीके रास्तेपर है?

जवाब—अहिंसाके बारेमें मेरे विचारोंका यह सही बयान है। अहिंसा हमेशा अचूक होती है। इसलिए जब वह नाकाम हुई दिखायी पड़े, तो वह नाकामी, अहिंसाका उपयोग करनेवालेकी नाकाबलियतकी वजहसे है। मैंने कभी यह महसूस नहीं किया कि नोआखालीमें मेरी अहिंसा असफल रही है, न यही कहा जा सकता है कि वह सफल हुई है। अभी तो उसकी जाँच हो रही है। और जब मैं अपनी अहिंसाके बारेमें बोलता हूँ, तो मैं उसे अपने तक ही सीमित नहीं मानता। उसमें नोआखालीमें मेरे साथ काम करनेवाले भाई भी शामिल हैं। इसलिए वहाँ मिलनेवाली सफलता या असफलताका श्रेय मेरे और मेरे साथियोंके सम्मिलित कामको मिलेगा।

नोआखालीके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है, वह कलकत्तेपर भी लागू होता है। अभी यह नहीं कहा जा सकता कि इस बड़े शहरमें फिरकेवाराना सवालको हल करनेमें जो अहिंसाका उपयोग किया गया है, उसकी सफलतामें कोई सन्देह नहीं है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, कलकत्तेके दो फिरकोंमें दोस्ती कायम होनेकी बातको चमत्कार मानना गलती है। इसके लिए परिस्थिति तो पहलेसे ही तैयार थी। इतनेमें शहीद साहब और मैं इसका श्रेय लेनेके लिए सामने आ गये। जो हो, अहिंसाके प्रयोगकी सफलता या असफलताके बारेमें अभीसे कोई बात कहना जल्दबाजी होगी। सबसे पहली बात तो यह है कि हम दोनों साथियोंके विचार एकसे हों और हम दोनों अहिंसामें विश्वास करें। इसका पूरा भरोसा हो जानेपर मैं कहूँगा कि अगर हम अहिंसाके साइंसको और उसके प्रयोगको जानते हैं, तो हम जरूर कामयाब होंगे।

हरिजन-सेवक
७ सितम्बर, १९४७

भयंकर उपमा

एक भाई, जिनके नामसे जान पड़ता है कि उनकी मादरी-जबान हिन्दी है, अंग्रेजीमें लिखे गये अपने खतमें मुझे इस तरह लिखते हैं—

"आपने जो लगातार इस तरहकी अपीलें की हैं कि मुसलमानोंको अपने भाई समझो और उनकी हिफाजतकी गारण्टी दो, ताकि वे यहांसे पाकिस्तान न चले जायें,

उसके सिलसिलेमे एक उदाहरण देता हूँ—जाड़ेके दिनोंमे एक बार कोई आदमी कहीं जा रहा था। रास्तेमे उसे एक सॉप पड़ा हुआ दिखायी दिया, जो ठंढसे ठिठुर गया था। उस आदमीको दया आयी और सापको गर्मी पहुचानेके इरादेसे उसने उसे उठाकर अपनी जेबमें रख लिया। गर्मी मिलनेसे साप सचेत हुआ और सबसे पहला काम, जो उसने किया वह यह था कि उसने अपने रक्षकके ही शरीरमे अपने जहरीले दॉत गड़ा दिये और उसे मार डाला।"

इन भाईने गुस्सेमें आकर इस भयंकर उपमाका उपयोग किया है। एक इन्सानको चाहे वह जितना गिरा हुआ हो, जहरीले सांपकी उपमा देना और फिर उसके साथ वहशियाना बर्ताव करना यकीनन बुरी बात है। थोड़े या ज्यादा लोगोंकी गलतियोंकी वजहसे उस धर्मके करोड़ों इन्सानोंको जहरीले सॉप समझना मुझे हद दरजेका पागलपन जान पड़ता है। खत लिखनेवाले भाईको याद रखना चाहिये कि ऐसे पागल और कट्टर मुसलमान पड़े हैं, जो हिन्दुओंके बारेमे यही उपमा काममें लाते हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी हिन्दू सॉप कहलाना पसन्द करेगा।

किसी आदमीको भाई समझनेका यह मतलब नहीं है कि जब वह दगाबाज साबित हो, तब भी उसपर भरोसा किया जाय। और इस डरसे किसी आदमीको और उसके परिवारको मार डालना बुजदिलीकी निशानी है कि वह आदमी दगाबाज साबित हो सकता है। जरा ऐसे समाजका चित्र अपने सामने खड़ा कीजिये, जिसमें हर आदमी अपने साथीका इन्साफ करनेवाला (जज) बनता है। मगर हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें हमारी ऐसी ही करुण हालत हो गयी है।

आखिर मैं सॉपोंकी जातिके साथ इन्साफ करनेके लिए लोगोंमें फैले हुए एक मामूली वहमको सुधार लूँ। जानकार लोग कहते हैं कि ८० फी सदी सॉप पूरी तरह निर्दोष होते हैं और कुदरतके उपयोगी जीवोंमे उनकी गिनती की जा सकती है।

हरिजन-सेवक

१२ अक्तूबर, १९४७

एक कड़ुआ खत

एक मुसलमान दोस्त लिखते हैं:—

"मैं राष्ट्रीय विचारोंवाला एक मुसलमान हूँ। जिन्दगी भर—अगर मेरे २१ सालके जीवनको इन शब्दोंमें प्रकट करने दिया जाय तो—मैंने हिन्दू और मुसलमानकी भाषामे कभी नहीं सोचा। मगर मेरे बड़े भाई, वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने इस बातकी बड़ी कोशिश की कि मैं हिन्दू और मुसलमानोंमे फर्क करूँ। अपनी जातिके खिलाफ गद्दारी करनेवाला होनेकी वजहसे जालधरके इस्लामियाँ कालेजमें मुझे भर्ती नहीं किया गया।

"मेरे वालिद और दूसरे रिश्तेदारोंने अगस्तमें जालंधर छोड़ दिया, मगर मैं उनके साथ नहीं गया, क्योंकि पूर्वी पंजाब और उससे भी ज्यादा सारे हिन्दुस्तानको मैं वैसा ही अपना देश मानता था जैसा कि वह दूसरे फिरकेके मेरे दोस्तोंके लिए था। मगर अगस्तकी वहशियाना वारदातोंने मुझे इतना निराश कर दिया है कि मैं बयान नहीं कर सकता। जनवरी सन् १९४६ में जब आजाद-हिन्द-फौजके लोगोंपर मुकदमा चल रहा था, तब जिन लड़कोंने मेरे साथ जुलूस निकाला था, वे भी मेरी जान लेना चाहते थे। आखिरकार मैं उनके लिए एक मुसलमान ही था, जिसकी जान लेनेसे वे अपनी जातिके लोगोंकी वाहवाही हासिल कर सकते थे। इसलिए मुझे अपनी जान बचानेके लिए दिल्ली भागना पड़ा। मेरा ख्याल था कि जो लोग पाकिस्तानके बजाय अखण्ड हिन्दुस्तानमें विश्वास करते हैं, उनके साथ यहाँ ऐसा बरताव नहीं किया जायगा। मगर यहाँकी हालत और भी बुरी है। जिन दोस्तोंके साथ मैं यहाँ ठहरा हूँ, वे भी मुझे शककी निगाहसे देखते हैं।

"समता और आजादीके मेरे प्यारे फरिश्ते, अब मुझे बताओ कि मैं अपने जमीर (विवेक) के खिलाफ अपने मा बापके पास, जिन्दगी भर उनकी हँसीका साधन बननेके लिए पश्चिमी पाकिस्तान चला जाऊँ, या हिन्दुस्तानमें बन्धकके बतौर रहूँ, जहाँके लोग, जानवर बने हुए मेरे धर्म भाइयोंके पापोंका बदला मुझे मारकर लेना चाहते हैं।"

ऊपरके खतको मैंने थोड़ा संक्षेप कर दिया है। उसमें कड़ु आहटको छुआ नहीं गया है। यह मानते हुए कि उस खतकी बातें सही हैं, उसमें कड़ुआहटके लिए काफी गुंजाइश है। बेहद विरोधी परिस्थितियोंमें ही किसी आदमीकी जाँच होती है। भले दिनोंके दोस्त बहुतसे होते हैं। मगर वे किसी कामके नहीं होते। 'जो जरूरतपर काम आये, वही सच्चा दोस्त है।' क्या एक ही मजहबको माननेवाले लोग आपसमें ठीक उसी तरह नहीं लड़े हैं, जिस तरह आज हिन्दू और मुसलमान लड़ रहे हैं? जब आम-जनताको इतने दिनोंसे नफरतका पाठ पढ़ाया जाता रहा हो, तब उससे इसके सिवा और क्या उम्मीद की जा सकती है कि वह आपसमें कट मरे। अगर खत लिखनेवाले भाई अपनी राष्ट्रीयताको ठीक समझते हैं, तो उन्हें इस टेढ़े वक्तका सामना करना चाहिये। हमें उन लोगोंकी नकल कभी नहीं करनी चाहिये जो कसौटीके वक्त अपनी श्रद्धा छोड़ देते हैं। इसलिए इन खत लिखनेवाले भाईको यह सलाह देते हुए मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती कि वे अपने पुराने दोस्तोंके द्वारा टुकड़े टुकड़े कर दिये जानेका खतरा उठाकर भी अपने घर जालंधर लौट जॉय। ऐसे शहीदोंसे ही हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम होगी। अगर वे भाई अपने शब्दोंको सच साबित करते हैं, तो मैं पहलेसे कह रखता हूँ कि उनके माँ-बाप खुले दिलसे उनका स्वागत करेंगे। हम इन्सानोंकी किस्मतमें यही बदा है कि कसूरवारोंके पापोंका फल बेकसूरवारोंको भोगना पड़े। यही ठीक भी है। बेकसूरोंके

मुसीबतें सहनेकी वजहसे ही दुनियाँ ऊपर उठती और बेहतर बनती है। इस खुले सत्यको बराबर दोहरानेके लिए मेरा आजादी और समताका फरिश्ता होना जरूरी नहीं है।

हरिजन-सेवक

१९ अक्तूबर, १९४७

एक पहेली

एक भाई लिखते हैं—

"मजाकमें भी दो उपनिवेशोंके बीच लड़ाई होनेकी चर्चा न उठे, तो अच्छा। मगर जब आपने इसका जिक्र करते हुए यहाँतक कहा है कि इन दो राज्योंके बीच अगर लड़ाई हो, तो यहाँके मुसलमानोंको पाकिस्तानके खिलाफ लड़ाईके लिए तैयार रहना चाहिये, तब सवाल यह उठता है कि उस हालतमें पाकिस्तानके हिन्दुओं और सिक्खोंका भी अपने राज्यकी तरफ यही फर्ज होगा या नहीं? अगर फिरकेवाराना सवालोंपर ही लड़ाई हो, तो फर्जको समझानेकी चाहे जितनी कोशिशकी जाय, वफादारीका टिकना नामुमकिन मालूम होता है। मगर फिरकेवाराना सवालोंको छोड़कर और किसी कारणसे लड़ाई हो, तो यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि यहाँके मुसलमानों और पाकिस्तानके गैर-मुसलमानोंको पाकिस्तानका ही विरोध करना चाहिये।"

हमारे दो राज्योंके बीच लड़ाईकी सम्भावनाकी चर्चा मजाकमें भी तो उठायी ही नहीं जा सकती। 'भी' क्रिया-विशेषण यहाँ बेमौजूँ है। क्योंकि ऐसी सम्भावना सचमुच मालूम पड़े, तभी इसपर चर्चा करना फर्ज हो जाता है। और तब भी चर्चा न करना बेवकूफी कहा जायगा।

जो नियम हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके लिए है, वही पाकिस्तानके गैर-मुस्लिमों-पर भी लागू होगा। मैं तो अपने भाषणोंमें और यहाँ होनेवाली चर्चाओंमें अपनी यह राय जाहिर कर चुका हूँ।

बेशक, यह राय काफी सोच विचारके बाद कायम हुई है। वफादारी गैर-कुदरती तरीकेसे खड़ी नहीं की जा सकती। अगर परिस्थितियोंसे वह पैदा नहीं होती, तो वह कभी भी पैदा नहीं होगी, ऐसा कहा जा सकता है। ऐसे बहुतसे लोग हैं, जो मानते हैं कि ऐसी वफादारी मुमकिन ही नहीं है और इसलिए वे मेरी रायको हँसीसे उड़ा देते हैं। मेरी समझमें इसमें हँसने लायक कुछ भी नहीं है। हिन्दुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोंके खिलाफ तभी लड़ सकेंगे, जब वे ऐसा करना अपना फर्ज समझेंगे। यानी जब उनको यह साफ महसूस होगा कि उनके साथ तो हिन्दुस्तानमें इन्साफका बरताव होता है और पाकिस्तानमें हिन्दू वगैरा अल्पसंख्यकोंके साथ गैर-इन्साफी हो रही है। ऐसी हालत मेरी कल्पनासे बाहर नहीं है।

इसी तरह अगर पाकिस्तानके हिन्दू वगैरा गैर-मुस्लिमोंको साफ तौरपर मालूम पड़े कि उनके साथ इन्साफ हो रहा है, वे सुखसे और बेफिकरीसे वहाँ रहते हैं और हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके साथ गैर-इन्साफी होती है, तो पाकिस्तानकी हिन्दू वगैरा अल्पसंख्यक जातियाँ कुदरतन हिन्दुस्तानके हिन्दुओंसे लड़ेंगी और ऐसा करनेके लिए किसीको उन्हें समझानेकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

हमारे देशकी बदकिस्मतीसे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान नामसे उसके जो दो टुकड़े हुए, उसमें मजहबको ही कारण बनाया गया है। उसके पीछे आर्थिक और दूसरे कारण भले-रहे हों, उनकी वजहसे यह बँटवारा नहीं हुआ होता। आज हवामें जो जहर फैला हुआ है, वह भी उन्हीं फिरकेवाराना कारणोंसे ही पैदा हुआ है। धर्मके नामपर लूट-मार होती है, अधर्म होता है। ऐसा न हुआ होता, तो अच्छा होता, ऐसा कहना अच्छा तो लगता है, मगर इससे हकीकतको बदला नहीं जा सकता।

यह सवाल कई बार पूछा गया है कि दोनोंके बीच लड़ाई होनेपर क्या पाकिस्तानके हिन्दू, हिन्दुस्तानके हिन्दुओंके साथ और हिन्दुस्तानके मुसलमान पाकिस्तानके मुसलमानोंके साथ लड़ेंगे? मैं मानता हूँ कि ऊपर बतायी हुई हालतमें वे जरूर लड़ेंगे। मुसलमानोंकी वफादारीके वचनोंपर भरोसा करनेमें जितना जोखिम है, उसके बजाय भरोसा न करनेमें ज्यादा है। भरोसा करनेमें भूल हो और खतरेका सामना करना पड़े, तो बहादुरीके लिए यह एक मामूली बात होगी।

मौजूँ ढंगपर इस सवालको दूसरी तरहसे यों रखा जा सकता है कि क्या सत्य और न्यायके खातिर हिन्दू-हिन्दूके खिलाफ और मुसलमान-मुसलमानके खिलाफ लड़ेगा? इसका जवाब एक उलटा सवाल पूछकर दिया जा सकता है कि क्या इतिहासमें ऐसे उदाहरण नहीं मिलते?

फिरकेवाराना सवालोंके सिवा दूसरे सवालोंको लेकर भी दो राज्योंके बीच लड़ाई हो सकती है, मगर यहाँ इसपर विचार करना फजूल है। हिन्दुस्तानके मुसलमान और पाकिस्तानके गैर-मुस्लिम पाकिस्तानके खिलाफ लड़ें, यह बात मेरी कल्पनासे बाहर है।

इस सवालको हल करनेमें सबसे बड़ी उलझन यह है कि सत्यकी दोनों ही राज्योंमें उपेक्षा की गयी है। मानो सत्यकी कोई कीमत ही न हो। ऐसी विषम स्थितिमें भी हम उम्मीद करें कि सत्यपर अटल श्रद्धा रखनेवाले कुछ लोग हमारे देशमें जरूर हैं।

हरिजन-सेवक
२६ अक्तूबर, १९४७

सिर्फ मुसलमानोंके लिए

एक खत लिखनेवाले भाईने इस बातकी तरफ मेरा ध्यान खींचा है कि पहले मैंने रेलवे-स्टेशनोंपर हिन्दुओं और मुसलमानोंके पानीके लिए अलग-अलग बरतनोंके इस्तेमालको बुरा बताया था, लेकिन आज तो सिर्फ मुसलमानोंके लिए और गैर-मुसलमानों या हिन्दुओंके लिए अलग डिब्बे रिजर्व किये जाते हैं। मैं नहीं जानता कि यह बुराई कहाँ तक फैली है, लेकिन मैं यह जरूर जानता हूँ कि यह भेद-भाव हिन्दुओं और सिक्खोंके लिए बड़ी शर्मकी बात है। मेरे ख्यालसे सिर्फ मुसलमानोंकी जानकी हिफाज़त करनेके लिए ही रेलवेवालोंको यह फर्क करना जरूरी मालूम हुआ है। अगर हिन्दू और सिक्ख लोग मुसलमान मुसाफिरोंके साथ बेजान माल असवाबकी तरह कभी सलूक न करनेका इरादा कर लें और रेलवे अधिकारियोंको इस बातका यकीन भी दिला दें ऐसा गुनाह वे फिर कभी न करेंगे, तो यह फर्क किसी भी दिन (जितना जल्दी हो उतना अच्छा) बन्द किया जा सकता है। यह तभी हो सकता है, जब लोग अपने पापोंको खुले आम मंजूर करें और समझदार बन जायँ। यह बात मैं इस बातका विचार किये बिना कहता हूँ कि पाकिस्तानमें आजतक क्या हुआ है या आगे क्या हो सकता है।

हरिजन-सेवक

१६ नवम्बर, १९४७

नेशनल गार्ड

पूर्वी बंगालसे एक भाईने खत लिखकर मुझसे पूछा है—

"पाकिस्तानकी सरकार नेशनल-गार्ड या किसी दूसरे नामसे एक स्वयंसेवक-सेना जरूर खड़ी करेगी। अगर हिन्दुओंसे उसमें शामिल होनेके लिए कहा गया, तो वे क्या करें? अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिये जावें, तो हिन्दू क्या करें?"

मौजूदा परिस्थितिमें इस सवालका जवाब देना मुश्किल है। क़रीब-करीब हर मुसलमानपर यूनियनमें शक किया जाता है। इसी तरह चाहे पूर्वी पाकिस्तान हो, चाहे पश्चिमी, दोनोंमें हिन्दुओं और सिक्खोंको शककी नजरसे देखा जाता है। अगर उस फौजमें भर्ती होनेके लिए दिलसे बुलाया जाता है, तो मेरी सलाह है कि हिन्दू भर्ती हो जायँ। बेशक, भर्तीकी शर्तें सबके लिए एक सी हों और किसीके धर्मके साथ कोई दस्तंदाजी न हो और अगर उस फौजमें सिर्फ मुसलमान ही लिये गये और हिन्दुओंको नहीं बुलाया गया, तो आजकी परिस्थितिमें हिन्दू चुपचाप बैठ जायँ। कोई आन्दोलन न करें और ऐसा करते हुए दिलमें भी गुस्सा न रखें।

हरिजन-सेवक

३० नवम्बर, १९४७

विश्वास नहीं होता

बड़ी बंगाली भाई लिखते हैं :—

"पूर्वी बंगालकी सरकारने अपने गजेटमें यह हुक्म निकाला है कि जो लोग अखण्ड बंगालकी नीतिकी हिमायत करेंगे, उन्हें मौतकी सजा दी जायगी।"

इस बातपर विश्वास कर सकनेके पहले मैं सरकारी हुक्मकी नकल देखना चाहूँगा। मुझे विश्वास है कि अगर इस तरहका कोई हुक्म होगा भी, तो उसके ठीक-ठीक शब्दोंका अर्थ दूसरा ही होगा। मैं पूर्वी बंगालमें अखण्ड बंगालकी हिमायत करनेके अपराधको समझ सकता हूँ। लगभग सारे हिन्दू बहुतसे मुसलमान ऐसे मिलते है जो बँटवारेके खिलाफ राय रखते हैं। फिर भी, कोई पागल आदमी ही एक बार हो चुके बँटवारेके सामने लड़नेकी हिम्मत करेगा। बँटा हुआ बंगाल सिर्फ दोनो पार्टियोंकी मरजीसे ही अखण्ड बन सकेगा। लेकिन अगर किसीको जनताकी रायको एकताकी तरफ बदलनेकी इजाजत न दी जाय, तब तो दोनो पार्टियोंकी वह मंजूरी नामुमकिन हो जायगी। ऐसा पागलपन भरा हुक्म कोई सरकार न निकालेगी।

हरिजन-सेवक
३० नवम्बर, १९४७

कभी खतरा नहीं

सच्ची बात, चाहे कितनी भी कड़वी हो, मौकेपर कहनी ही चाहिये। जो बात मौकेकी नहीं, वह कभी सच नहीं हो सकती, और नहीं कहनी चाहिये। पाकिस्तानके मुसलमानोंके गुनाहोंको रोकना या बन्द कराना है, तो हिन्दुस्तानी यूनियनके हिन्दुओंके गुनाहोंका ऐलान करना ही चाहिये। अपने गुनाहोंका स्वीकार करनेसे आदमी पाक बनता है और ऊँचा उठता है। अपने गुनाहोंको छिपानेसे आदमी गिरता है। इससे हमेशा बचना चाहिये।

हरिजन–सेवक
२१ दिसम्बर, १९४७

विचारने लायक

एक नौजवान भाई लिखते हैं—

आज दोपहरको मुझे मालूम हुआ कि आपने उपवास शुरू किया है। उपवासके बीच आपको तकलीफ देनेकी इच्छा नहीं हो सकती, लेकिन आज तो लिखे बिना रहा नहीं जाता।

"१ आपके उपवासके पाँच-सात दिनमें हिन्दू-मुसलमानोंके बीच दिली एकता

कायम होना असम्भव है। हाँ ऐसी एकता पैदा हुई है, यह बतानेवाले जुलूसों और सभाओंका प्रदर्शन खूब होगा। ऐसा होना ठीक भी है। लेकिन यह सब दिली एकताका सबूत नहीं होगा। इसलिए अगर आपका उपवास छूटे, तो आप इस भुलावेमें न रहें कि हिन्दू-मुसलमानोंके बीच दिली एकता पैदा हो गयी है। कलकत्तेकी शान्तिको मैं दिली एकता नहीं मानता। लेकिन आपके उपवाससे यह हो सकता है कि हिन्दू अपने गुस्सेको जरा काबूमें रखकर निर्दोष मुसलमानोंको कतल न करें। मैं मानता हूँ कि आपका उपवास छूटनेके लिए इतना काफी होगा।

"२. आपने अपनी तपस्यासे लोगोंके दिलोंमें अनोखा स्थान पा लिया है। लेकिन दूसरी तरफ लोगोंमें यह ज्ञान प्रकट नहीं हुआ है कि शरीर मरे तो कोई चिन्ता नहीं, आत्मा तो अमर है। इस कारणसे लोग आपके शरीरको बचानेके लिए अपना गुस्सा और नफरत दबा देंगे। लेकिन दबा हुआ गुस्सा मौका मिलते ही फूट पड़नेवाला है। मुझे लगता है कि इसी विचारके बाद आपने देशके सामने हिन्दके टुकड़े करनेके बजाय सिविल-वार (घरेलू-लड़ाई) पसन्द करनेकी सूचना रखी होगी।

"३. मैं यह अपने अनुभवसे कहता हूँ कि हिन्दके मुसलमान आपको जितने निर्दोष दिखते हैं, उतने वे सचमुच हैं नहीं। और दिल्लीके मुसलमान आपको अपनी करुणाजनक हालत बतावें, तो उससे आप यह न समझें कि हिन्दके सारे मुसलमान या उनका बड़ा हिस्सा भी निर्दोष है और करुणाजनक हालतमें जीता है। इससे उलटे, मुसलमानोंका बहुत बड़ा हिस्सा यह आशा करके बैठा है कि कब पाकिस्तान हिन्दपर चढ़ाई करे और हम उसमें हिस्सा लें। ऐसे आदमियोंमें मैं गावोंके अज्ञान आदमियोंकी कल्पना नहीं करता। फिर भी ये लोग आगमें सूखी लकड़ीका काम जरूर करेंगे। इसलिए मैं तो यह मानता हूँ कि पाकिस्तान आज जो अपनी मर्यादा नहीं समझता, इसका कारण यह है कि उसे पूरा विश्वास है कि हिन्दके मुसलमान उसीके हैं और वे आपकी हस्तीका पूरा लाभ उठायेंगे और इसके पीछे भी स्वार्थी राष्ट्रोंकी मदद है, यह तो मै मानता ही हूँ।

"४. इन सब विचारोंको देखते हुए मैं यह मानता हूँ कि आपका उपवास हिन्दुओंसे थोड़ा संयम रखनेकी ही अपेक्षा रखता है।

"५. मैं मानता हूँ कि हिन्दू-मुसलमानोंका झगड़ा दो तरहसे ही शान्त हो सकता है। एक तो हिन्दू अगर शुद्ध हृदयके बन जायँ तो—इस आशाको तो कबसे ही निष्फल गयी समझना चाहिये। आपने ही कहा है कि आजतककी कांग्रेसकी लड़ाई कमजोरोंकी अहिंसा थी। यानी जब सत्ता हाथमें आ गयी है, तब यह संस्था दूने जोरसे हिंसाके रास्ते ही जायगी। मौजूदा कांग्रेसी सरकारोंके लक्षण देखते हुए यह बात साबित हो सकती है। दूसरा रास्ता यही है कि हिन्द-सरकार दृढ़तासे काम ले। मुझे लगता है कि अभी वह ऐसा नहीं करती। और जिस हदतक आपके असरके परिणाम-स्वरूप इसमें ढिलाई है, उस हदतक देशका नुकसान है।"

ऊपरका खत विचारने लायक होनेके कारण यहाँ दिया गया है। क्षण भरमें हृदय-परिवर्तन होनेके उदाहरण मिल सकते हैं। यह कहना ज्यादा मौजूँ है कि ऐसे परिवर्तन टिक नहीं सकते। उपवास छूट गया, अब यह देखना बाकी है कि इसका टिकाऊ परिणाम क्या आता है। इतना कहकर मैं ऊपरके खतमें लिखी बातोंकी कीमत कम करना नहीं चाहता। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सब उसमेंसे सबक ले सकते हैं। फिरकेवाराना मेल-जोल कोई नयी बात नहीं है। इसकी कोशिश हमेशा चलती रही है। हिन्दुस्तानकी आजादीका यह एक स्तम्भ है। यह न हो, तो आजादी टिक नहीं सकती। इसे स्वयं-सिद्ध बात मानना चाहिये। बीचका जो समय बीता

(अगर बीत गया हो तो) वह हमारी बेहोशीका समय माना जा सकता है। इसलिए यह आशा रखी जा सकती है कि दिल्लीमें हुई एकता टिकेगी और पक्की साबित होगी।

यह बात याद रखने लायक है कि एकता टिकनेका आधार रचनात्मक कामके ऊपर रहता है। यह किस तरह हो सकता है। इसकी खोज करनी है, इस बातको माननेवाले हरेक सेवकको इसे अपने जीवनमें उतारना चाहिये और अपने पड़ोसियोंको समझाना चाहिये। रचनात्मक कामका शास्त्र समझनेसे उसे रुचिकर बनाया जा सकता है। हम रोजाना यह अनुभव करते हैं कि मशीनकी तरह बिना समझे-बूझे नकल करनेसे यह काम आगे नहीं बढ़ाया जा सकता।

मैं यह नहीं मानता कि हिन्दुस्तानके सारे मुसलमान निर्दोष हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि पाकिस्तान बन जानेसे वे यहाँ ऐसी मुश्किल स्थितिमें पड़ गये हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं थी। बहुसंख्यकोंको उनके प्रति शुद्ध इन्साफ करना चाहिये। अगर बहुसंख्यक जाति अपनी सत्ताके नशेमें यह माने कि अल्पसंख्यकोंको कुचला जा सकता है और वह केवल हिन्दू-राज कायम करनेकी बात सोचे, तो इसमें मैं बहुसंख्यकोंका और हिन्दू-धर्मका नाश देखता हूँ। यह वक्त ऐसा है कि जब शुभ और लगातार कोशिश करनेसे दोनोंके दिलमेंसे मैल और अज्ञान दूर हो सकते हैं।

चौथे पैरेकी गुजराती अगर बराबर पढ़नेमें आयी हो, तो वह कुछ अस्पष्ट मालूम होता है। चाहे जो हो, मेरा उपवास सबकी शुद्धिके लिए था। वह हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान और दूसरे सब लोगोंसे शुद्धिकी अपेक्षा रखता था और रखता है।

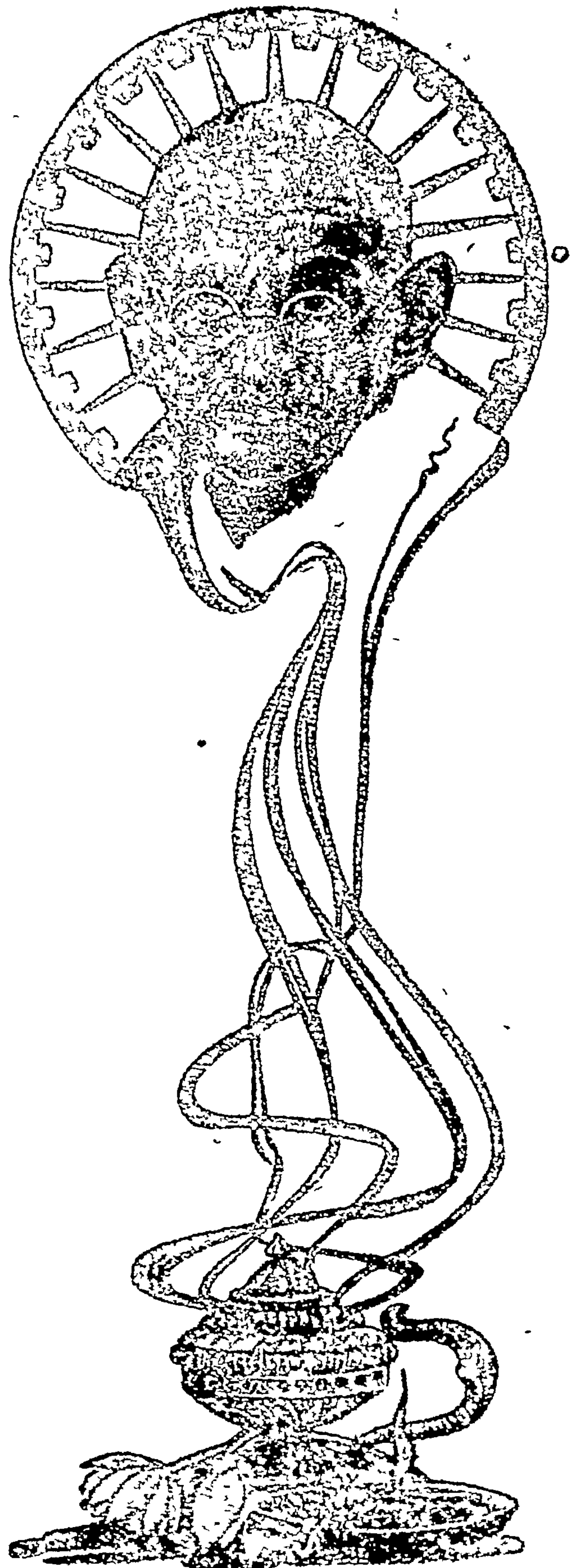
पांचवें पैरेमें सिर्फ बुद्धिवाद है। उसमें हृदयको जगह नहीं दी गयी है। जो बात आजादीकी लड़ाईके दरमियान नहीं हुई, वह अब हो ही नहीं सकती, ऐसा कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। अहिंसाका समाज बनानेका आज सच्चा मौका है। यह सच है कि लोग आम जनताको हथियारबन्द करनेके भँवरमें फँस गये हैं। इस भँवरमेंसे थोड़े भी बच जायँ, तो माना जायगा कि वे बहादुरकी अहिंसाके जोरसे बचे हैं। और वे हिन्दके सबसे श्रेष्ठ सेवक माने जायँगे। यह बात बुद्धिसे साबित करके नहीं बतायी जा सकती।—इसलिए जबतक अनुभव न हो, तबतक श्रद्धाका ही आसरा लेना होगा। श्रद्धा न हो, तो अनुभव कहांसे आवे।

स्वराजकी सरकारके लिए दृढ़तासे और हिम्मतसे काम लेनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जो सरकार कमजोर है या किसीसे भी प्रेरित होकर बिना समझे काम करती है, वह सरकार हुकूमत करनेके काबिल नहीं है। उसे हटकर दूसरोंके लिए जगह खाली करनी चाहिये। मेरे असरके कारण पण्डित नेहरू या सरदारमें ढिलाई आती है, ऐसा कहनेमें और माननेमें, उनके बारेमें अज्ञान दिखायी पड़ता है। मेरे स्पर्शका अगर यह असर हो, तो यह मेरे लिए शर्मकी बात है, और देशके लिए यह नुकसानदेह है।

हरिजन-सेवक
१ फरवरी, १९४८



गांधी जी



खंड

बारह

अछूतोद्धार

द्वितीय भाग

सम्पादक-मण्डल

मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र
(प्रथम संस्करण : मार्च, १९५१)

मुद्रक तथा प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
तथा
विद्यापीठ मुद्रणालय
बनारस छावनी

सूची

प्रकाशकका वक्तव्य

छुआ छूतकी समस्या हिन्दू-समाजके समुज्वल मस्तकपर कलंककी टीकाके समान है। इस कलंकको मिटाने के लिए पूज्य बापू आजीवन निरन्तर प्रयास करते रहे। इस समस्यापर अपनी लेखनी द्वारा जो कुछ उन्होंने लिखा है उसका कुछ संग्रह 'अछूतोद्धार' के इस द्वितीय अंकमे पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है। गाधीजी ग्रन्थमालाका यह बारहवा प्रकाशन ग्रंथमालाके बारहवें खण्डका द्वितीय भाग है। 'अछूतोद्धार'का तृतीय और सम्भवतः अन्तिम भागकी सामग्री हमें उपलब्ध हो गयी है। निकट भविष्यमे ही हम उसे आपके सम्मुख उपस्थित करने में समर्थ हो सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

काशीके प्रसिद्ध काग्रेस कार्यकर्त्ता तथा गाधी-भक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केड़िया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल शास्त्री तथा कारमाइकल पुस्तकालयके सग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। हम इनके आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति दे कर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई, व्यवस्थापक ट्रस्टी, 'नवजीवन ट्रस्ट', अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

गाधीजी ग्रंथमालामे अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धाजलिया दो भाग, कवियोंकी श्रद्धाजलिया, अहिंसा सम्बन्धी लेखोंके चार भाग, साम्प्रदायिक समस्याके तीन भाग, अछूतोद्धारके दो भाग—कुल बारह अंक प्रकाशित हो चुके हैं। सामग्री उपलब्ध होते ही हम सम्बन्धित अक अविलब प्रकाशित कर देते हैं। इस कार्यमें समय तो कुछ विशेष लग ही जाता है साथ ही पूर्व-क्रममें व्यतिक्रम भी हो जाता है, किन्तु खण्डोंकी क्रमसख्या वही रखी जाती है जो पहले निश्चय हो चुकी है। सभी खण्ड क्रमशः प्रकाशित किये जायंगे।

ग्रन्थमालाके अबतकके प्रकाशन और उनके वितरणसे हमें पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। हर्षका विषय है कि प्राप्य सग्रहोंके प्रकाशित सभी भागोका प्रथम सस्करण समाप्त हो चुका है। उनके द्वितीय एव नवीन संशोधित संस्करणका प्रबन्ध किया जा रहा है। इस आशातीत प्रचार से हमें जो बल, उत्साह तथा सहायता प्राप्त हो रहा है, उससे पूर्ण विश्वास है कि गाधी-साहित्यके प्रचार-प्रसारके शुभ अनुष्ठानमें हम अवश्य सफल होंगे।

हजाम या नाई* ?

पालितानासे एक भाई लिखते है—

"आप 'नाई' के बदले 'हजाम' शब्दका प्रयोग करते हैं। श्री काका कालेलकरने श्री धर्मानन्द कोसाम्बीकी 'आपबीती' नामक मराठी पुस्तकके अनुवादमें 'नाई' शब्दका प्रयोग किया और अन्य अवसरोंपर भी वह इसी शब्दका प्रयोग करते हैं; इसी तरह आम तौरपर गुजराती भाषामें 'वालद'—नाई शब्द ही प्रयुक्त होता है।"

"हजाम कहनेसे समाज 'नाई' के प्रति तिरस्कारकी दृष्टिसे देखता है, और इसके कारण कई भाइयोंकी ओरसे उन्हें अपमान भी सहना पड़ता है। दूसरे लेखक भी आपका बहुत कुछ अनुकरण करते ही हैं। इसलिए भविष्यकी दृष्टिसे भी इसमें सुधार होना जरूरी है। अतः अगर हो सके तो कृपाकर 'नवजीवन' द्वारा इस सम्बन्धमें अपना संशोधन प्रकट करें, जिससे गरीब कौमका भला हो।"

सच पूछा जाय तो हजाम शब्दके प्रयोगमें तिरस्कारकी भावना उस धन्धेके कारण है। हजाम शब्दका इस्तेमाल पेशेदार बाल काटनेवालों या हजामत बनानेवालोंके लिए किया जाता है। अगर वह पसन्द न हो तो मैं 'नवजीवन' में 'नाई' शब्द ही लिखा करूँगा। लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि इससे खास शिकायत दूर न होगी। जो धन्धे जरूरी होते हुए भी सफाईसे गन्दगीको मिटानेसे सम्बन्ध रखते हैं, उन धन्धोंके खिलाफ फैले हुए बुरे भावोंको दूर करना ही इसका सच्चा इलाज है। फिर तो नाम चाहे जो रहे, हमे उसकी चिन्ता न होगी। 'नाम हो हर और बचपनमे जाय मर', तो हम उसका क्या करेंगे? सिर्फ इसलिए हम हर शब्दका तिरस्कार न करें। मनुष्यकी प्रतिष्ठाकी भाँति ही संसारमें, शब्दोंकी प्रतिष्ठा भी घटती-बढ़ती रहती है, और रहा करेगी।

इस सुधार-युगमें तो सब अपनी-अपनी हजामत आप बनाना सीख रहे है, जिससे सहज ही नाईके पेशेकी कटुता दूर हो जायगी; बहुत कुछ दूर हो ही गयी है। मेरे मनमे तो नाई, भंगी, चमार, ढेड वगैरा शब्दोंके लिए कोई बुरे भाव—नफरत रह ही नहीं गयी है। मैं खुद ये सारे काम करता हूँ, और दूसरोंसे भी करनेको कहता हूँ। इससे मुझे आनन्द होता है। इन धन्धेवाले भाइयोंसे मैं कहना चाहता हूँ कि वे यह भूल ही जायँ कि समाजको इन धन्धोंसे नफरत है। वे अपने-अपने धन्धेमे होशियार बनें, अपने आचार-विचार शुद्ध बनायें और अपने धन्धेकी प्रतिष्ठा बढ़ावें। इसी हेतुसे, जो भी मैं अपनी हजामत अच्छी तरह बना लेना जानता हूँ, जहाँ मुमकिन होता है खादीधारी नाईको कष्ट देता हूँ और उसे

* गुजरातीमे नाईको 'वालद' कहते हैं। मूल लेखमे नाईके स्थानपर 'वालद' ही प्रयुक्त हुआ है।

देश-सेवा करनेकी प्रेरणा करता हूँ। हमें शुद्ध स्वराज्य हासिल करना है और इसीलिए ऐसे तमाम पेशेदारोंकी मददकी हमें आवश्यकता है, उन्हें सुधारनेकी हमें जरूरत है। जब पहले हमारे यहाँ चमार, जुलाहा, मोची, ढेड वगैरा कौमोंके ज्ञानी भक्त हो चुके हैं, तो अब उन्हींमेंसे कोई अपनी सेवाके बलसे राष्ट्रपति बन जाय तो आश्चर्य ही क्या ? ऐसे धन्धे करनेवाले अपना आचरण खूब शुद्ध रख सकते है और अपनी बुद्धिको भी तेजस्विनी बना सकते हैं। दुःख तो यह है कि ऐसे धंधेवाले जब बुद्धिमान बन जाते हैं तो उन्हें अपना धन्धा करते हुए शर्म आती है, और उसे वे छोड़ देते हैं। मैं तो एक ऐसे राष्ट्रपतिकी कल्पना करता हूँ, जो नाई या मोचीका धन्धा करके अपना निर्वाह करता हो और साथ हो राष्ट्रकी बागडोर भी अपने हाथोंमें थामे हुए हो। यह हो सकता है कि राष्ट्रके कामकी बढ़ती हुई जिम्मेदारीके कारण वह पूरी तरह अपना धन्धा न कर सके, लेकिन यह एक जुदा सवाल है।

हिन्दी नवजीवन
२ जनवरी, १९३०



नये मन्दिर खुले

बम्बईमें हिन्दुस्तानके भिन्न-भिन्न भागोंके लोग अच्छी संख्या में बसते हैं और इसीलिए बम्बई पँचरंगी शहर माना जाता है। इनमें तिलंगके तेलुगु, मुनुरवार भाई-बहन भी शामिल हैं। वे पिछले डेढ़ सौ वर्षोंसे बम्बईमें बसे हुए हैं। पहलेसे खूब विचार करके, लोकमतको अनुकूल बनाकर और आखिर पिछले रविवारको सभा करके उन्होने अपने आठ मन्दिर अंत्यजोंके लिए खोल दिये। इस सभामें सिर्फ एक ही आदमीने विरोधमें हाथ उठाया था। इस शुभ परिणामका श्रेय मुनुरवार जातिके वकील और बम्बई कारपोरेशनके सदस्य श्री सयाजी लक्ष्मणसीलमको है। उन्होंने लोकमतको जाग्रत करनेके लिए बहुत मेहनतकी और अपना बहुत-सा समय इस काममें खर्च किया। इस कामके लिए मुनुरवार भाई-बहन और सयाजी लक्ष्मण-सीलम धन्यवादके पात्र हैं। अगर अंत्यज भाई थोड़ा धैर्य रखेंगे तो हम जितने समयकी कल्पना कर सकते हैं, उससे भी कम समयमें एक-एक मन्दिर उनके लिए खुल जायगा। अखबारोंसे पता चलता है कि तेलुगु अंत्यज भाइयोंका मन्दिरमें स्वागत करते समय उनसे यह प्रार्थना भी की गयी है कि वे ठीक तरह आत्मशुद्धि करें, और शराबखोरी गोमांसभक्षण वगैरा बुराइयोंको छोड़कर सफाई तथा स्वच्छताके नियमोका पालन करने लगें। आशा है, इसके विरोधमें कोई यह नहीं

कहेगा कि मन्दिरमें जानेवाले सब हिन्दुओंका ऐसा आचरण नहीं होता। दूसरे अच्छा काम न करते हों, इसलिए हम भी न करें, यह कोई न्याय नहीं है। जिनके साथ सदियोंसे इन्साफ नहीं किया गया है, उन्हें तो इन्साफ कराते वक्त शुद्ध होकर ही न्याय मॉंगना चाहिये। और वास्तवमे तो अस्पृश्यता-निवारणके आन्दोलनमें ही दोनोंकी—अस्पृश्य भाई-बहनों और दूसरे हिन्दुओंकी आत्मशुद्धिका प्रश्न समाया हुआ है।

हिन्दी नवजीवन
१३ फरवरी, १९३०



अस्पृश्यता

हिन्दू-मुस्लिम एकताकी भॉंति ही अस्पृश्यता-निवारणके बारेमें भी गलत-फहमी फैली हुई जान पड़ती है। मेरे सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि मैं स्वराज्यके सामने 'अस्पृश्यों'के हितको डुबो रहा हूॅं। मुझे विश्वास है कि लाखों अछूत मेरे बारेमें ऐसी किसी बातपर भरोसा नहीं करेंगे। मेरे मन तो जैसे कौमी एकताके, वैसे ही अस्पृश्यता-निवारणके बिना भी स्वराज्य नहीं मिल सकता। लेकिन मेरा यह निश्चित विश्वास है कि बगैर स्वराज्यके न कौमी एकता सिद्ध हो सकती है और न अस्पृश्यता निवारण ही। ऑंखोंवाले देख सकते हैं कि शासकोंका स्वार्थ हममे फूट फैलाने मे ही है। जैसे हिन्दू-मुसलिम एकताके लिए उनके हृदय तड़पते नहीं वैसे ही अस्पृश्यता-निवारणके लिए भी उनमें ऐसी कोई कलम नहीं पायी जाती।

सरकारी महसूलके साधनोंकी जॉंच करते हुए पिछले सप्ताह मैं बता चुका हूॅं कि इस सरकारकी नींव अनीतिपर कायम है। पर यही सरकार इस तरह हमारी बुराइयोंपर फूली-फली है।

नासिककी शर्मनाक घटनाको ही लीजिये। सरकार जानती है कि सनातनियोंका पक्ष झूठा है। तो भी उसने क्या किया? चूॅंकि सनातनियोंका हित दलगत हित है, सरकारने उसे उत्तेजना देकर अछूतोंको मरने दिया है। सरकारी कर्मचारी सनातनियोंको बुला सकते थे, उनके साथ बातचीत कर सकते थे। अछूतोंको भी वे समझा सकते थे और उन्हें इस झगड़ेसे बचा सकते थे। लेकिन इसके लिए निष्पक्ष मन और निःस्वार्थताकी जरूरत होती। पर सरकार निःस्वार्थ नहीं, वह तो दल-बन्दीके झगड़ोंपर खुशी मनाती है और आखिरमें जिसका पक्ष मजबूत होता है,

उसका साथ देती है। मैं जानता हूँ कि बहुतेरे भले परन्तु अज्ञानी अंग्रेज मेरे इस कथनका मजाक उड़ायँगे, लेकिन मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि मेरा यह कथन रात दिनके अनुभवका परिणाम है। इसका यह मतलब नहीं कि हर वक्त सरकार इरादातन ऐसा पक्षपात किया करती है। परन्तु 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और भेद-नीति तो नौकरशाही दुनियाकी मामूली काररवाई हो पड़ी है।

अपने इस निश्चित विश्वासके कारण, यदि मैं हाथ पर हाथ धरे बैठा रहूँ और स्वराज्य-साधनाकी गतिको अटकाऊँ, तो अपनी रायमें मै अल्पमतवालों और 'अछूतों'-का गुनहगार ठहरूँगा। मुझे पक्का विश्वास है कि जिस घड़ी हममेंसे हर एक को अपनेमे छिपी हुई शक्तिका ज्ञान होगा उसी क्षण हम स्वतंत्र बनेंगे, हममें सची एकताकी ज्योति प्रकटेगी और अछूत भी अनुभव करेंगे कि उन्होने काफी आगेको कदम बढ़ा लिया है।

हम याद रखे कि सत्याग्रहियोके जत्थोंमें मुसलमान भी हैं, दूसरे धर्मोवाले भी है, और अछूत भी हैं; हो सकता है कि उनकी तादाद बहुत कम हो। हकीकत तो यह है कि आज उन्हीं लोगोंके हाथों स्वराज्य-मन्दिरकी नींव डाली जा रही है, जो कौमी एकताको, बराबरीके हकको और अस्पृश्यता-निवारणको अपने धर्मका अङ्ग मानते है।

अंग्रेजोंके आनेसे हिन्दुओमें विचार-जागृति हुई और 'अस्पृश्यों'को अपने अधिकारोका भान हुआ, इस मोहक विचारमें पड़कर 'अछूत' भाई राष्ट्रिय आदर्शसे अलग न हों। वस्तुतः बात ठीक है। लेकिन अंग्रेज लोग ऐसे परोपकारके लिए हिन्दोस्तानमें नहीं आये थे। उनकी ही नहीं बल्कि तमाम पश्चिमी देशोंकी संस्कृतिमें, आजकलके सनातनी हिन्दू धर्मकी भाँति जातपातका कोई भेदभाव नहीं है। अंग्रेजोंकी दासता स्वीकार न करते हुए भी हम उनकी इस अच्छाईसे लाभ उठा सकते थे। मैं अग्रेज जनताका विरोधी नहीं हूँ, मेरा विरोध अंग्रेजोंकी शासन-पद्धितिसे है। मनुष्यके नाते तो वे हमारे ही जैसे अच्छे हैं। कुछ बातोंमे वे हमसे बढ़कर भी हैं, तो कुछमें हम उनसे भी बढ़कर हैं। लेकिन शासनके नाते तो वे बिलकुल ही नीच है, निकृष्ट हैं। बहैसियत एक शासकके वे हमारा जरा भी भला नहीं कर रहे हैं, और न उन्होंने कभी भला किया है। हमारे दुर्गुणोको उन्होंने बढ़ने दिया है, हमें पथ-भ्रष्ट किया है। उन्होने हमारे सिर गुलामीका काला कलंक लगाया है। इसी कारण उनकी संगतिसे हमारा पतन होता है। मैंने देखा है कि हम उनके मुँहपर एक बात कहते हैं और पीठ पीछे कुछ दूसरी ही। यह मनुष्यता नहीं, नामर्दीका चिन्ह है और अस्वाभाविक है। गोखले कहा करते थे कि, 'हममेंसे बड़ेसे बड़े राजाको भी उनके सामने नाक घसीटनी पड़ती है।' पर जब सचमुच अंग्रेजोकी आँखे खुलेगी तब उन्हें पता चलेगा कि हमें गिरानेमें वे खुद भी उतने ही गिरे हैं।

दो शब्द 'अस्पृश्य' भाइयोसे भी कह दूँ। मैंने उन्हें पहले सलाह दी है और फिर भी कहता हूँ कि सत्याग्रह करके भी सनातनी मन्दिरोमे जानेकी बिलकुल

आवश्यकता नहीं है। मन्दिरोंमें जानेका 'अस्पृश्यों' को हक है, उसे उन्हें दिलानेका कर्त्तव्य 'स्पृश्यों' का है। इसके लिए शुभ मुहूर्त्तके आनेपर 'स्पृश्य' सत्याग्रह भी करें। अछूत भाई जानते हैं कि महासभाने इसी हेतुसे जमनालालजीके सभापतित्वमें एक समिति कायमकी थी। वे यह भी जानते हैं कि अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमे बहुत-कुछ अच्छा काम हुआ है और आज सारे देशमे ऐसे हजारों हिन्दू मिल सकते हैं जो अस्पृश्यताको मिटानेके लिए अपने प्राणों तककी बाजी लगानेको तैयार हैं। सुधारक लोग हिन्दू-समाजके इस कलंकको धोना अपना धर्म समझते हैं, इसे अपने लिए प्रायश्चित मानते हैं। 'अछूत' भाई यह जान लें कि ऐसे हिन्दुओंमेसे बहुतेरे आज अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर मैदाने जंगमें कूद पड़े हैं। अगर उन्हें मेरी इस बातपर विश्वास आ जाय तो अपने और भाइयोंकी तरह, जो इस लड़ाईमें शामिल हुए है, यदि वे इसमें प्रत्यक्ष रूपसे हाथ बॅटाना न चाहें तो भी तब तकके लिए सत्याग्रह करना स्थगित कर दें जबतक कि इस लड़ाईका आखिरी फैसला नहीं हो जाता है। हिन्दू सुधारकोंने इस कामका जो बीड़ा झड़पा है, सो न अपने आपको दानवीर सिद्ध करनेके लिए है, न 'अछूत' भाइयोंकी झोलीमे भीखके दो-चार टुकड़े फेंक देनेको है, और न ही राजनैतिक क्षेत्रमें शतरंजी चाल चलनेके लिए उनका पासोंके रूपमें उपयोग करनेको है; उन्होंने यह बीड़ा तो हिन्दू धर्मके शुद्ध आदर्शका पालन करनेके लिए ही झड़पा है। सुधारकोंकी अपने इस प्रयत्नमें या तो हिन्दू धर्म छोड़ना पड़ेगा, या अपना दावा साबितकर बताना होगा कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग नहीं है, बल्कि मैल है, और इस मैलको धोना ही पड़ेगा।

हिन्दी नवजीवन
२४ अप्रैल, १९३०



उपनगरोंमें अस्पृश्यता

वीलेपारलाकी सभामे स्वामी आनन्दने अपने विवरणमें एक वाक्य खास तौरपर मेरा ध्यान आकर्षित करनेको रखा था। वहॉकी राष्ट्रिय कही जानेवाली शालाओंमें आज भी 'अस्पृश्य' को स्थान नहीं है। बारह महीनोंकी लड़ाईके बाद भी अभी यह दोष बाकी है, यह कितने दुःख और शर्मकी बात है! उपनगरके 'उच्च' वर्गने लगभग अपना सब कलंक धो बहाया है। वे धन देते हैं, जेल जाते हैं, दूसरे जोखिम उठाते हैं, फिर भी यदि वे अस्पृश्यता रूपी मैल नहीं धो बहावेंगे, तो मुमकिन है कि उनका सब किया कराया व्यर्थ जाय। स्वराज्यमें

सार्वजनिक मन्दिरों, सार्वजनिक पाठशालाओं और सार्वजनिक कुओंका उपयोग ब्राह्मण और भंगी बराबरीसे करेंगे। यदि ऐसा न हो सका तो वह स्वराज्य नहीं होगा। नाम-मात्रका स्वराज्य मिलनेकी अपेक्षा तो जबतक अस्पृश्यता रहे, तबतक स्वराज्यका न मिलना ही ठीक है। सत्याग्रहके मार्गसे लड़ाई लडनेवालेकी जीत तो लड़नेमें ही है; इसलिए स्वराज्य-रूपी फलको देखनेकी उतावलमे वे 'अस्पृश्य' के अधिकारोंको कभी उपेक्षा न करें।

हिन्दी नवजीवन
२६ मार्च, १६३१



नये नामकी जरूरत

एक अन्त्यज भाई लिखते हैं—

"यह पत्र 'ढेड, भगी, अन्त्यज, दलित', वगैरा शब्दोंसे पुकारी जानेवाली कौमके एक व्यक्तिके नाते आपको लिखता हूँ।

म्युनिसिपैलिटियोंमें, सरकारी दफ्तरोंमें, और काग्रेसमें भी हम इन्हीं नामोंसे पहचाने जाते हैं।

सरकार भले जाति-जातिमें आपसी फूट डालनेकी नीतिके अनुसार ऐसा करे, लेकिन काग्रेस भी हमारे लिए हैन्डबिलों और सार्वजनिक मौकोंपर इन्हीं शब्दोंका प्रयोग करती है, हम इसे अपना भयकर अपमान समझते हैं। हममें कुछ राजपूतोंके-से नाम रखनेवाले हैं और, कुछ मेयावत, मेघवाल आदि नामोसे पहचाने जाते हैं। हमें हिन्दूके नाते मेयावत राजपूत कहा जाय या अन्त्यज मानी जानेवाली समस्त कौमके लिए उक्त अपमान-सूचक शब्दोंको निकालकर एक सम्मान-सूचक शब्दकी योजनाकी जाय तो कितना अच्छा हो? जिस प्रकार आपने 'सत्याग्रह' शब्दकी योजनाके लिए सम्मतियाँ माँगी थी, उसी प्रकार इस पहेलीको सुलझानेके लिए भी सम्मत्ति माँगें, तो हमारी कौमपर आपका बड़ा आभार होगा।"

जागृति के इस युगमे ये भाव स्वाभाविक है। मनुष्यको वह नाम अच्छा नहीं लगता, जिससे उसकी निन्दा होती है, फिर उसकी उत्पत्ति निर्दोष ही क्यों न हो? एक समय था, जब अन्त्यज नाममें किसी भी प्रकारकी निन्दा नहीं मानी जाती थी। ढेड, भंगी नाम बुरे लगते थे। जहाँतक मेरा खयाल है, दलित

नाम स्वामी श्रद्धानन्दजीका दिया हुआ है। पर अब यह नाम भी नापसन्द होने लगा है। सच बात तो यह है कि जबतक समाजमें अस्पृश्यताका जहर मौजूद है, तबतक कैसा ही नाम क्यों न हो, कुछ समय बाद उसके बुरा लगनेकी सम्भावना है। इसलिए सच्चा सवाल तो जहरको निकाल फेकनेका है। इसके लिए अस्पृश्य भाई-बहनोंकी मदद आवश्यक है। हिन्दू समाजके चाहे जितना प्रयत्न करनेपर भी, उस समाजके पापके कारण अन्त्यज भाइयोंमें जो बुराइयाँ जड़ जमा बैठी हैं वे तो खासकर उनके अपने प्रयत्नसे ही दूर होंगी। इस प्रगतिमे अन्त्यजेतर हिन्दूकी मददकी आवश्यकता रहेगी। वह धीरे-धीरे मिल रही है, उसका वेग बढ़ना चाहिये। इस सबका विचार करते हुए भी अन्तिम पुरुषार्थ अन्त्यजजनोंका होना चाहिये। इस प्रकार मूल वस्तुके सुधारकी आवश्यकता होते हुए भी यदि किसीको अन्त्यज अथवा दलित विशेषणकी अपेक्षा अधिक अच्छा विशेषण सूझे तो वह मुझे लिखें।

हिन्दी नवजीवन,
११ जून, १६३१



हिन्दूकी शरम

ता० २५ मईके दिन डाकोरमें भंगी भाइयोंकी सभा हुई थी, जिसका विवरण ठक्कर बाप्पाने भेजा है। उसका सारांश नीचे देता हूँ—

> लगभग १५० गाँवके करीब १,५०० भगी भाई इकट्ठा हुए थे। उनकी बैठकके लिए और रात में रहनेके लिए कन्तानका मडप बनाया गया था और कन्तानकी ही बिछावन था। यहाँ दिनको सभा होती और रातको सब सो रहते। रसोईके लिए बरतन कौन दे? पानी कहाँसे लाया जाय? गोमतीके तालाबका पानी इतना गन्दला होता है कि वह न पीने की। सूचनाके पटिये म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे जगह-जगह लगाये गये हैं। परन्तु भगी भाई वह पानी पी सकते हैं! इस सम्मेलनमें ऐसा पानी कैसे पीया जाय? एक मुसलमान भाईको दया आयी, उन्होंने अपने बरतन दिये, रसोईमें मददकी और पानी भी दिया।

डाकोर जैसे तीर्थमें किसी हिन्दूको शरम न आयी, और न आई दया कि इतने मेहमानोंके डाकोर आनेपर भी पानी होते हुए, उन्हें पानीकी तंगी रही, बरतनोंके रहते बरतन न मिले, रसोईके होते हुए भी रसोईकी साँसत रही!!! डाकोरकी सेविकाएँ रसोई बना सकती थीं, डाकोरके पंचोंका धर्म इन भाई-बहनोंको पानी देनेका था। वे इस धर्मको भूले, और उन्होंने हिन्दू धर्मका तेज कम किया।

परन्तु ऐसा तो सब जगह होता है, कहीं कोई 'ढेड-भंगी' को परवा नहीं करता। क्या इसी दफा वह डाकोरके हिन्दुओंका विशेष धर्म हो गया था ?' यही बात है। मेरे पुरखा पाप करते आये हैं, इसलिए मुझे पाप करनेका इजारा नहीं मिल जाता। जैसे-जैसे दिन बीत रहे है, अन्त्यजोंमें जागृति बढ़ती जा रही है, हिन्दू-धर्मकी गन्दगी प्रकट होती जा रही है, और अन्त्यजेतर हिन्दूको शर्म आने लगी है। विवरण तैयार करनेवाले हिन्दू हैं, विवरण भेजनेवाले हिन्दू हैं। महासभाने अधिकारोंवाला जो प्रस्ताव पास किया है, हमसबको उसका अमल करना है । अतएव, आजतक चाहे जो हुआ हो, परन्तु भविष्यमें स्वयं हिन्दू ही ऐसे अपमानको न सहें, जैसा डाकोरमें हुआ है। स्वराज्यमें अन्त्यज और अन्त्यजेतरका भेद नहीं रहेगा। इसलिए अब हम सजग हो जायँ।

हिन्दी नवजीवन

११ जून, १९३१



जरा विचारने योग्य

ठासरा तहसीलमें भरथरी नामक एक गाँव है। वहाँ धनाजो भाई नामके एक अन्त्यज भाई अन्त्यजोंमें सुधारका प्रचार करनेके लिए खूब परिश्रम उठा रहे हैं। यह मेहनत करते हुए उन्हें कष्ट सहने पड़ते हैं, पर उन्हें वे चुपचाप सहते हैं। मेरे सामने जो रिपोर्ट मौजूद है, उसमें यही लिखा है। उन भाईके सुधारोंमें एक सुधार यह है—जो मुर्दार मांस खाते हैं, उनसे वह छुड़ाना और साथ ही मरे हुए ढोरोंकी व्यवस्था करनेके धन्धेसे भी उन्हें मुक्त करना। मुर्दार मांस छुड़ाना तो अच्छा है ही, परन्तु मरे हुए ढोरोंकी व्यवस्थाका काम छुड़ाना, मुझे तो भयंकर मालूम होता है। मैं स्वयं इस पेशेको पवित्र मानता हूँ, आवश्यक तो है ही। यह पेशा पवित्र है, क्योंकि इससे आरोग्यकी रक्षा होती है। अगर मरे हुए ढोर योंही जहाँ-तहाँ पड़े रहें, तो हवा खराब होगी, रोग फैलेंगे, और देशका धन नष्ट होगा। जिस प्रकार ढोर जीकर लोगोंकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार मरकर भी करते हैं। चमड़े, हड्डी, चर्बी और आँतका हम बहुत उपयोग करते हैं और, यदि हम जिन्दे ढोरका सदुपयोग करें और मरे हुए ढोरके चमड़े वगैराका शास्त्रीय उपयोग करे, तो ढोरकी कीमत इतनी बढ़ जाय कि उसे कत्ल करनेमें कोई लाभ न रहे।

इसलिए सुधारकोंको तो मैं यह सलाह दूँगा कि वे ढेड, चमार भाइयोंको उनके धन्धेको छोड़नेकी सिखावन न दें, बल्कि उन्हें वह धन्धा भलीभाँति सिखा दें। इसके लिए तालीमकी आवश्यकता है। ढेड, चमारका पेशा हमारे ही देशमें हलका

माना जाता है। पश्चिममें तो करोड़पति इस धन्धेमें लगे पाये जाते हैं। बी. ए. पास करके अध्यापकी करनेकी अपेक्षा अगर नवयुक चमारका धन्धा सीखे, मरे हुए ढोरोंका चमड़ा किस तरह उतारा जाय, उसके और भागोंका कैसा उपयोग किया जाय, वगैरा बातें सीखे, तो जो करोड़ो रुपये इस धन्धेके ज्ञानके अभावमें परदेश चले जाते हैं वे यहीं रह जायँ और चमारका काम करनेवाले भाई अपने धन्धेको हलका समझनेसे बाज आवें। अस्पृश्यताका निवारण चमारादिके धन्धेको छोड़नेसे नहीं होगा, परन्तु जब हिन्दू जनता अपने पापको समझेगी और अन्त्यज भाई अपनेमेंसे उन बुराइयोंको दूर करेंगे, जो उनमें घुस गयी हैं, तभी यह काम होगा।

हिन्दी नवजीवन
११ जून, १९३१



जब स्वराज्य होगा

मथुरासे एक ब्राह्मण पत्रलेखक लिखते हैं—

"श्री सेनगुप्ताने अपनी यात्राके दिनोंमे कहा था कि स्वराज्य सरकार ब्राह्मणोंको कुचल डालनेका कानून बनावेगी। उन्होंने करॉंची महासभाके प्रस्तावोंका भी जिक्र किया था। इसकी वजहसे अल्पसंख्यक ब्राह्मण बहुत ज्यादा अस्थिर बनने लगे हैं और सनातनी हिन्दुओंके मनमे भी भय पैदा हुआ है। इसलिए कृपाकर बताइयेगा कि आप और महासभा नीचे लिखे प्रश्नोंका सही अर्थ क्या करते हैं—

१—अस्पृश्यता विषयक प्रस्तावकी भाषा,

२—उसमे कहा गया है कि स्वराज्यमें सरकार धार्मिक मामलोंमें निष्पक्ष रहेगी, आपकी और महासभाकी दृष्टिमे इसका सही अर्थ क्या है ?

आप स्पष्टतः जानते हैं कि दक्षिण भारतमे हिन्दू लोगोंका बड़ा हिस्सा और ब्राह्मण लोग वेदों और शास्त्रोंमें अनन्य श्रद्धा रखते हैं। इसलिए उसका पालन करनेमें जनताके किसी भी वर्गको कैसी भी रुकावट न होनी चाहिये।

ब्राह्मणोंकी चिरस्थापित धार्मिक प्रथाओंके मार्गमे रोड़े अटकानेवाला कोई भी कानून बना, तो याद रखिये कि हम ब्राह्मण भी सत्याग्रहके आन्दोलनका सबक सीखे हैं और अपनी धार्मिक प्रथाओंको निर्विघ्न स्थापित करनेके लिए हम उसका उपयोग भी कर सकेंगे। निःसन्देह इस बातका किसीको विरोध नहीं होगा कि भावी सरकारमे अन्त्यजोंको नौकरी दी जाय, उन्हे जोतनेको जमीन मिले, या दूसरोंके साथ उन्हें भी बराबरीके या उन्हे अकेले चाहे तो राजनैतिक या आर्थिक हक दिये जायँ। इस बातका खयाल रखकर कि

दूसरोंकी चिरस्थापित धार्मिक प्रथाओंके मार्गमें वे बाधक न हों, उन्हें चाहे जैसे हक देनेमें थोड़ी भी आपत्ति नहीं होगी। आज भी वे सार्वजनिक रास्तों, कुओं और शालाओंका उपयोग करते हैं। इन जगहोंमें उन्हें आने देनेमें कोई आपत्ति नहीं है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप उक्त प्रस्तावका अर्थ एक बार सदाके लिए ठहरा लें, जिससे उसका सीधा सादा मतलब निकले, और उसके बारेमें किसी प्रकारकी गलतफहमी या विपर्यासकी गुंजाइश न रह जाय।"

मैं नहीं मानता कि श्री सेनगुप्ताने यह कहा होगा कि स्वराज्य सरकार ब्राह्मणोंको कुचल डालेगी। यह पत्रलेखक भविष्यकी चिन्ता करके नाहक घबरा उठे हैं। वह भविष्य जितना श्री सेनगुप्ताके या मेरे हाथमें है, उतना ही उनके भी हाथमें है। यह भी याद रहे कि महासभाका प्रस्ताव अभी संघटनका अंग नहीं बना है। जब बनेगा, तब मुझे या किसी और को इसका अर्थ बतानेकी जरूरत न रहेगी। उसका अर्थ तो कानून द्वारा स्थापित अदालतें विधिवत् करेंगी।

परन्तु धार्मिक निष्पक्षता और अस्पृश्यता विषयक महासभाके प्रस्तावका जो अर्थ हो सकता है, उसके बारेमें मैं अपनी राय खुशीसे देता हूं। किसी भी भावी संघटनमें उक्त प्रस्तावको स्थान मिले बिना न रहेगा, क्योंकि उसके बारेमें किसी भी प्रकारका मतभेद नहीं है। सच पूछा जाय तो ऐसा मालूम होता है कि यह पत्र-लेखक भी, महासभा जितना चाहती है, उतना देनेको तैयार हैं। धार्मिक निष्पक्षताका मतलब यह है कि सरकारका कोई भी राजधर्म नहीं होगा, न कोई विशेष पक्षपातका तरीका ही होगा। अस्पृश्यता मिट जायगी। 'अस्पृश्यों' को किसी भी दूसरे मनुष्यके बराबर ही हक मिलेंगे। परंतु ब्राह्मण इस बातके लिए मजबूर न किया जायगा, कि वह किसी दूसरेको छुये ही। उसे स्वयं अस्पृश्य बनने, अपने कुए, अपने मन्दिर, अपनी शाला और दूसरी तमाम चीजें जो वह रख सकता हो, तबतक रखनेकी छूट होगी, जबतक वह उनका उपयोग पड़ोसियोंके मार्गमें बाधा डाले बिना करेगा। परन्तु जैसा कि कुछ लोग आजकल करते हैं, अन्त्यजोंको सार्वजनिक रास्तोंपर चलनेकी, सार्वजनिक कुओंका उपयोग करनेकी हिम्मत करनेके लिए वे उनके साथ मारपीट न कर सकेंगे। सार्वजनिक मन्दिरोंमें जानेकी छूट दूसरे सब हिन्दुओंको हो और अन्त्यजोंको न हो, ऐसे अत्याचार स्वराज्यमें नहीं टिक सकेंगे। वेदों और दूसरे शास्त्रोंकी प्रामाणिकता अस्वीकार नहीं की जायगी, परन्तु जिस हद तक इन धर्म ग्रन्थोंका उपयोग जनताके आचार-विचारका नियमन करनेमें होगा, उस हद तक उनका अर्थ करनेका काम व्यक्तियोंके नहीं, बल्कि अदालतोंके जिम्मे रहेगा। धर्मबुद्धिके विधिनिषेधोंकी कद्र की जायगी, परन्तु इसके लिए सार्वजनिक सदाचार या दूसरे अधिकारोंकी हत्या नहीं की जायगी। जिन्हें असाधारण विधिनिषेध होंगे, उन्हें स्वयं अड़चन उठानी पड़ेगी और अपने इस वैभवका दाम चुकाना होगा। रूढ़ि या धर्मके नामपर कोई भी व्यक्ति या वर्ग अपनेको उच्च

मान ले, उसे कानून सहन नहीं करेगा। परन्तु यह सब तो मेरा स्वप्न है। मैं कोई महासभा नहीं। जो महासभासे इसके विपरीत काम करवाना चाहते हों, वे जल्दीसे उसमें शामिल हो जायँ और अपने जैसे मत रखनेवाले दूसरोंको भी उसमें शामिल होनेकी प्रेरणा करें। महासभा लोकमतकी प्रतिनिधि है, या यों कहिये कि उसका संघटन लोकमतकी प्रतिनिधि बनने जितना विशाल है।

हिन्दी नवजीवन
१८ जून, १६३१



अस्पृश्यताका विष

हिन्दू धर्मके सब प्रेमियोंको नीचे लिखा पत्र पढ़कर हर्षके साथ दुख भी अवश्य ही होगा।

"कुगालुर तामिलनाडके कोयमबटूर जिलेका एक गाँव है। गाँवके सब रहनेवाले किसान हैं। इस गावमें महासभाके एक उत्साही और सच्चे दिलवाले सेवक श्री सुब्बानागवडर रहते हैं, जो इस गाँवकी शोभा हैं। अपने निस्वार्थ खादी प्रचारके कामके कारण लोग उन्हें 'गांधी' सुब्बानागवडर कहते हैं। पिछले छः सालोंसे वह तहसील कांग्रेस कमेटीमें सभापति या मन्त्रीकी हैसियतसे काम करते रहे हैं। इस गाँवके ही नहीं, परन्तु इस सारी तहसीलके लोग खादीका अर्थशास्त्र समझकर जो खादी पहनने लगे है, उसका श्रेय आप ही को है। वह 'यंग इण्डिया' के ग्राहक हैं, और आपके आन्दोलनसे परिचित हैं। गत आन्दोलनमें उन्होंने कुछ स्वयंसेवक खड़े करके गाँवोंमें शराबकी दूकानोंपर पिकेटिंग शुरू करवाकर सफलता प्राप्त की थी। जिलेके अफसरोंने उन्हें दबानेकी बहुतेरी कोशिशें की परन्तु चूँकि वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेको तैयार थे, हाकिमोंकी कोशिशें बेकार हुई। उनके अभावमें सारा तालुका जड़ता छोड़कर जगा न होता। सत्तेपमें वह दक्षिण भारतके सच्चे और निःस्वार्थ सेवकोंमेंसे एक हैं। अब इस गावमें ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी है, जिसकी वजहसे गावके तमाम लोग उनके विरोधी बन गये हैं। ऐसे समय उनके एक साथीकी हैसियतसे मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।

इस परिस्थितिको समझानेके लिए इस गावके सामाजिक रीति रिवाजोंका वर्णन करना आवश्यक है। गाववाले बेहद धर्मचुस्त हैं, और उन्हें रूढ़िपर दृढ़ और अन्धविश्वास है। कैसी ही दलीलें और समझाइश क्यों न की जाय, वे अपने मार्गसे हटाये न हटेंगे। यदि कोई अस्पृश्यता-निवारणकी बात कहता है, तो उसका मजाक उड़ाया जाता है, और हिन्दू-धर्मका द्रोही कहकर उसकी निन्दा की जाती है। इस गावमें 'अस्पृश्य' और 'दलित'

"यह गाँव छुआछूतमें अधिक विश्वास रखनेवाला है। दो धाराला कारीगर इस कुएँका काम करते थे। उनकी जातिने उन्हें रोका, और ढेड़के कुएँमें उतरकर काम करनेका महापाप न करनेकी आज्ञा जातिने उन्हें दी है। दो दिन तक काम करके जो पाप किया, उसके लिए जातिवालोंने उन कारीगरोंपर १०) जुर्माना किया है।

"काम शुरू होनेसे पहले ढेड़ लोगोंने कुएँके काममें स्वयं मदद करनेका वचन दिया था, परन्तु अगर ढेड़ लोग कुएँपर काम करने आते हैं, तो गाँववालोंके भयसे, दूसरे कोई मजदूर कामपर नहीं आते। इसलिए उन्हें तमाम काम पैसे देकर मजदूरोंसे कराना पड़ता है।"

जुल्मकी हद हो गयी! मुझे इसमें धाराला भाइयोंका अधिक दोष नहीं दिखायी देता। उच्चवर्णके माने जानेवाले हिन्दुओंका है। जो वातावरण उन्होंने पैदा किया है, धाराला लोग तदनुसार व्यवहार करते पाये जाते हैं। इस मर्मभेदी बात द्वारा मैं धाराला भाई-बहनोंको सावधान रखनेकी कम ही आशा रखता हूँ। लेकिन महासभाके कार्यकर्त्ताओंको, और 'नवजीवन'के हरएक पाठकको सावधान करनेकी आशा अवश्य रखता हूं। ऐसी दशामें महासभाके कार्यकर्त्ताओंको स्वयं, जिन्हें ऐसी किसी बातका पता चले, कुदाली हाथमें पकड़ लेनी चाहिये। उन्हें धाराला वगैरा लोगोंको, जो जुल्म करते हों, उनका धर्म समझाना चाहिये; अन्त्यज भाई-बहनोंको डरका त्याग करना और स्वावलम्बी बनना सीखना चाहिये। यह सब काम स्वयं मजदूरी करनेको तैयार होनेपर आसानीसे किया जा सकता है। ऐसे जुल्मसे हमें कँपकँपी छूटे, तभी ये काम हो सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन,
२५ जून, १६३१



हरिजन

मैंने 'नवजीवन' के उद्योगी पाठकोंसे अन्त्यज शब्दके बजाय कोई नया शब्द माँगा है। दो-चार सूचनाएँ हैं, जिनमें एक मुझे पसन्द पड़ी है। राजकोटसे भाई जगन्नाथ देसाई लिखते हैं—

"यदि अन्त्यज नाम अप्रिय लगता हो, तो बहुतसे गावोंमें उसके बजाय एक 'हरिजन' शब्दका भी प्रयोग होता है। क्या यह शब्द उपयुक्त न होगा? यह भक्तिमय

शत्रुताके कारण जो मुट्ठीभर लोग सुब्रानागवडरके साथ हैं, उनका बहुत नुकसान हो रहा है। उन्हें सार्वजनिक कुओं या गावके मन्दिरमें भी घुसने नहीं दिया जाता।

मैं सुब्रानागवडरका एक साथी और शुभेच्छु हूं। अपने कार्यको हानि पहुँचाये बिना गाववालोंको शान्त करनेके लिए वह कौन सा मार्ग ग्रहण करें, इस बारेमें आपका एक शब्द इस मौके पर बड़ा सहायक हो पड़ेगा।"

अपनी बहादुरी और दृढ़ताके लिए श्री सुब्रानागवंडर अत्यन्त धन्यवादके पात्र हैं। मैं उन्हें यही सलाह दे सकता हूँ कि वह अपने गॉवके अस्पृश्योकी रक्षा करते हुए अपने सिर हर तरहके जोखिम उठा ले, और फिर भी गॉववालोके लिए दिलमें थोड़ा भी बैर-भाव न रखें। आखिरकार वह देखेंगे कि गॉववाले उन्हें सतानेसे बाज आये हैं। पहले तो लोग उनकी भलाईको कमजोरी मान बैठेंगे, परन्तु बादमे वे उस भलाईकी तहमें छिपी हुई शक्तिके दर्शन कर सकेंगे। क्योकि जब लोग देखेंगे कि वह उनके प्रति नम्र और क्षमाशील हैं, और तो भी अस्पृश्योकी रक्षा करनेमे पहाड़की तरह अटल हैं, तो उन्हें फौरन ही अपनी भूल नजर आने लगेगी। जैसे जैसे समय बीतेगा, गाँववालोंके साथ लोगोंकी हमदर्दी न रह जायगी, और श्री सुब्रानागवंडर प्रजाकी सक्रिय सहानुभूति और सहायता प्राप्त करेंगे। शर्त सिर्फ़ यही है कि उन्हें अपने सर्वस्वकी कुर्बानीके लिए तैयार हो जाना चाहिये, गॉववालोका पापपूर्ण बहिष्कार यदि मजदूरोको भड़कानेमें सफल रहे, तो उन्हें अपने खेत बगैर जुते ही पड़े रहने देनेको तैयार होना चाहिये। उनको साथ देनेवाले उनके चार मित्र हैं, इस समाचारसे कुछ आश्वासन मिलता है। परन्तु इन मित्रोंको खो बैठनेपर भी उन्हें अपने संकल्पको पूरा करनेकी तत्परता रखनी चाहिये, क्योकि मेरा विश्वास है कि वह जो खोवेंगे, सो प्राप्त करनेके लिए ही। ईश्वर जिसे आशीर्वाद देना चाहता है, कभी-कभी उसकी पूरी पूरी परीक्षा करता ही है।

हिन्दी नवजीवन
१८ जून, १९३१



धर्मकी आड़में अधर्म

मतरा तहसीलमें रघवाणज नामक एक गॉव है। गुजरातमें कई जगह ठक्कर बाप्पाकी देखरेखमे अन्त्यजोंके लिए कुएँ खोदे जा रहे हैं; यह बात किसीसे छिपी नहीं है। ऐसा एक कुआँ रघवाणजमे खोदा जा रहा है। उसकी देखभाल करनेवाले कार्यकर्त्ताने ठक्करबाप्पाके पास भेजी है, उसका नीचे लिखा हिस्सा सब हिन्दुओंके लिए मनन करने योग्य है—

"यह गाँव छुआछूतमें अधिक विश्वास रखनेवाला है। दो धाराला कारीगर इस कुऍंका काम करते थे। उनकी जातिने उन्हें रोका, और ढेड़के कुऍंमें उतरकर काम करनेका महापाप न करनेकी आज्ञा जातिने उन्हें दी है। दो दिन तक काम करके जो पाप किया, उसके लिए जातिवालोंने उन कारीगरोंपर १०) जुर्माना किया है।

"काम शुरू होनेसे पहले ढेड़ लोगोंने कुऍंके काममें स्वय मदद करनेका वचन दिया था, परन्तु अगर ढेड़ लोग कुऍंपर काम करने आते हैं, तो गाँववालोंके भयसे, दूसरे कोई मजदूर कामपर नहीं आते। इसलिए उन्हें तमाम काम पैसे देकर मजदूरोंसे कराना पड़ता है।"

जुल्मकी हद हो गयी! मुझे इसमें धाराला भाइयोंका अधिक दोष नहीं दिखायी देता। उच्चवर्णके माने जानेवाले हिन्दुओंका है। जो वातावरण उन्होंने पैदा किया है, धाराला लोग तदनुसार व्यवहार करते पाये जाते है। इस मर्मभेदी बात द्वारा मैं धाराला भाई-बहनोंको सावधान रखनेकी कम ही आशा रखता हूँ। लेकिन महासभाके कार्यकर्त्ताओंको, और 'नवजीवन'के हरएक पाठकको सावधान करनेकी आशा अवश्य रखता हूँ। ऐसी दशामे महासभाके कार्यकर्त्ताओंको स्वयं, जिन्हें ऐसी किसी बातका पता चले, कुदाली हाथमें पकड़ लेनी चाहिये। उन्हें धाराला वगैरा लोगोंको, जो जुल्म करते हो, उनका धर्म समझाना चाहिये; अन्त्यज भाई-बहनोंको डरका त्याग करना और स्वावलम्बी बनना सीखना चाहिये। यह सब काम स्वयं मजदूरी करनेको तैयार होनेपर आसानीसे किया जा सकता है। ऐसे जुल्मसे हमें कँपकँपी छूटे, तभी ये काम हो सकते हैं।

हिन्दी-नवजीवन,
२५ जून, १६३१



हरिजन

मैंने 'नवजीवन' के उद्योगी पाठकोंसे अन्त्यज शब्दके बजाय कोई नया शब्द माँगा है। दो-चार सूचनाएँ हैं, जिनमें एक मुझे पसन्द पड़ी है। राजकोटसे भाई जगन्नाथ देसाई लिखते हैं—

"यदि अन्त्यज नाम अप्रिय लगता हो, तो बहुतसे गावोंमें उसके बजाय एक 'हरिजन' शब्दका भी प्रयोग होता है। क्या यह शब्द उपयुक्त न होगा? यह भक्तिमय

भावनाका सूचक है, इसलिए 'अन्त्यज' इसे खुशीके साथ स्वीकार करेंगे। अलावा इसके जब ढेढ़ोंके घर भजन करनेके लिए नागर जातिने नरसिंह मेहताकी निन्दा की थी, तब अपने भजनमें उन्होंने कहा था।

'हरिजन थी जे अन्तर गणशे तेना फोगट फेरा ठाला रे'

यहा हरिजन अर्थात भक्त और अन्त्यज-दोनों ही हो सकते हैं।

इस प्रकार हरिजन शब्दके पीछे नरसिंह मेहताके समान अनन्य भक्तकी प्रेरणा है, और साथ ही यह शब्द उक्त सारे सुन्दर प्रसगका सूचक भी है।"

यों यह शब्द नया नहीं, बल्कि गुजरातके आदि कवि द्वारा प्रयुक्त सुन्दर शब्द है। साथ ही हरिजनका यह भी अर्थ किया जा सकता है कि हरिजन वे लोग हैं, जिन्हें समाजने त्याग रखा है। इस शब्दमे तीसरा लाभ यह है कि मुमकिन है कि अन्त्यज भाई इस नामको प्रेमपूर्वक धारण करें और इसकी शोभाको बढ़ानेवाले गुण अपनेमे पैदा करें। कालीपरज जिस प्रकार रानीपरज हुए, उसी प्रकार अन्त्यज नाम और गुण दोनोंसे हरिजन बनें।

हिन्दी नवजीवन
६ अगस्त, १९३१



अन्धविश्वास बनाम श्रद्धा

शान्ति निकेतनके कवि मेरे भी उसी प्रकार गुरुदेव हैं, जिस प्रकार वे उस विशाल आश्रमके निवासियोंके हैं। दक्षिण अफ्रीकामें स्वेच्छासे बहुत दिनों तक निर्वासित रहनेके बाद जब हम लोग भारत लौटे, तो शान्ति निकेतनमे ही मुझे और मेरे साथियोंको आश्रय मिला था। किन्तु इस कालमे शीघ्र ही पता चल गया कि गुरुदेव और मेरे बीचमे कुछ विषयोंपर मतभेद है, मगर इस ऊपरी मतभेदसे हम लोगोंके प्रेमके सम्बन्धमें कोई अन्तर नहीं आया। और न गुरुदेवकी उस टीकाके कारण ही उसमें कोई फर्क आ सकता है, जो उन्होंने मेरे विहारके महान संकटके साथ अस्पृश्यता रूपी पापके सम्बन्धपर हालमे की है। जब उनका यह विश्वास है कि मैं गलतीकर रहा हूँ तो उन्हें मेरा विरोध करनेका पूरा अधिकार था। चूंकि गुरुदेवके प्रति मेरी अत्यन्त श्रद्धा है, इसलिए उनको की हुई टीकाको मैंने अन्य आलोचकोंकी अपेक्षा अधिक ध्यानसे देखा। लेकिन तो भी गुरुदेवके वक्तव्यको तीन-तीन बार पढ़नेके बाद भी, मैं तो अपने उसी विश्वासको पकड़े हुए हूँ, जो मैंने 'हरिजन'में व्यक्त किया है।

सबसे पहले त्रिणवलीमें जब मैंने बिहारकी घोर विपदाके साथ अस्पृश्यताका सम्बन्ध जोड़ा, तब मैंने अपने हृदयकी पूरी प्रेरणाके साथ खूब सोच समझकर ही वह उद्गार निकाला था। मैंने तो वहाँ वही कहा था, जिसपर मेरा विश्वास था। आजका नहीं, यह तो सदासे ही मेरा विश्वास है कि प्रकृतिकी किसी घटनाके भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही परिणाम निकलते हैं। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक घटनाका भी असर आत्मा और प्रकृति दोनों ही पर पड़ता है। यह भूकम्प न तो मेरी दृष्टिमे ईश्वरकी लीलाका ही प्रकोप था, और न महज कुछ भौतिक जड़-शक्तियोंके संघर्षका ही परिणाम था। हमे ईश्वरके तमाम नियमोका ज्ञान नहीं है, और न हमें उन नियमोंकी क्रियाओका ही पता है। धुरन्धर वैज्ञानिक या पारंगत दार्शनिकका ज्ञान भी एक 'रेणु-कण' के समान है।" ईश्वर मेरे लिए मेरे लौकिक पिताकी भाँति कोई व्यक्ति नहीं है, पर वह उसकी अपेक्षा अनन्त-गुणाधिक महान है। मेरे जीवनकी छोटी सी छोटी बातोंपर भी वह शासन करता है। इसमे मेरा अक्षरशः विश्वास है, कि बिना उसकी मर्जी के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। प्रत्येक श्वास, जो मैं लेता हूँ, उसी स्वामीके अधीन है।

वह और उसका नियम एक ही है। नियम ही ईश्वर है। भगवानके साथ हमने जो विशेषण लगा रखे हैं, वे केवल विशेषण ही नहीं है। वे विशेषण स्वयं भगवान है। सत्य, प्रेम, नियम और अपनी बुद्धिसे मनुष्य जिन लाखों वस्तुओकी कल्पना कर सकता है, वह सब ईश्वर ही है। मैं गुरुदेवके इस विचारसे पूर्णतया सहमत हूँ, विश्व नियतिके अनुसार जो कार्य चल रहा है, उसमें ईश्वर स्वय कोई दखल नहीं देता; क्योकि ईश्वर ही तो विश्व-नियति है। लेकिन मेरा कहना तो यह है, कि हमलोग इन नियमोको पूरी तरहसे नहीं जानते हैं, और जो हमे संकट प्रतीत होता है, वह केवल हमारे आज्ञानके कारण ही हमे संकटरूप त्रास रहा है।

दुर्भिक्ष, बाढ, भूकम्प और ऐसे ही अन्य उत्पात यद्यपि केवल भौतिक कारणोंसे उत्पन्न जान पड़ते हैं, तो भी इनका मनुष्यके आचरणके साथ भी सम्बन्ध होता है। इसीलिए तो मुझे यह स्फूर्ति हुई, कि यह भूकम्प अस्पृश्यताके पापका दण्ड है। सनातनियोंको यह कहनेका अवश्य पूरा अधिकार है, कि मैं अस्पृश्यताके विरुद्ध जो प्रचार कर रहा हूँ, उस पापके कारण यह भूकम्प हुआ है। मेरे विश्वासमें पश्चात्ताप और आत्मशुद्धिके लिए आमन्त्रण है। प्रकृतिके नियमोंका शासन किस प्रकार चल रहा है, इस विषयका अपना सम्पूर्ण अज्ञान मैं कबूल करता हूँ। लेकिन जैसे किसी नास्तिकके आगे ईश्वरका अस्तित्व साबित न कर सकनेपर भी मैं ईश्वरपरसे अपना विश्वास हटा नहीं सकता, उसी तरह अस्पृश्यता और भूकम्पका सम्बन्ध मेरी आँखोके आगे सहज ही आ जाता है, यद्यपि उसे मैं सिद्ध नहीं कर सकता। अगर मेरा यह विश्वास असत्य ठहरेगा, तो भी इससे मुझे तथा मेरे जैसे श्रद्धालुओको तो लाभ ही होगा। कारण यह है कि यह मानकर कि अस्पृश्यता एक महापाप है, आत्मशुद्धिके इस आन्दोलनमें हम और भी अधिक तत्परतासे प्रयत्नशील बनेंगे।

मुझे यह पूरा पता है, कि ऐसी कल्पना खतरनाक हो सकती है। लेकिन जहाँ मेरे प्रियजनोंके ऊपर कोई विपदा आयी हो; वहाँ मैं सिर्फ इसलिए अपने विश्वासकी घोषणा न करूँ, कि इसपर लोग मेरी हँसी उड़ायँगे, मैं असत्य और कायरताका दोषी बनूँगा। भूकम्पका असर शीघ्र जाता रहेगा और थोड़े बहुत अंशोंमें क्षतिपूर्ति भी हो जायगी, किन्तु यदि यह भूकम्प अस्पृश्यता-जनित पापका ईश्वरी कोप साबित हुआ और उस पापका अगर हमने प्रायश्चित न किया, तो यह बहुत भयंकर बात होगी। गुरुदेवकी तरह मेरा यह विश्वास नहीं है, कि 'हमारे पाप चाहे कितने ही प्रचण्ड हों, वे सृष्टिका विध्वंस नहीं कर सकते।' मेरा तो इसके विपरीत विश्वास है। हमारे पापोंमें तो वह ताकत है, कि वे सृष्टिका उससे भी अधिक विध्वंस कर सकते हैं, जितना कि किसी प्राकृतिक कारणसे हो सकता है। प्रकृति और पुरुषके बीचमें अविछिन्न सम्बन्ध है। इस अभेद्य सम्बन्धके परिणामोका हमें ज्ञान नहीं है, इसीसे वह हमें गूढ़ लगते हैं, और भयभीत कर रहे हैं, पर इससे उस सम्बन्धका विच्छेद नहीं हो सकता। प्रकृति-पुरुषके इस सम्बन्धका जिन लोगोको साक्षात्कार हो गया है, उन्होने ऐसे प्रत्येक भौतिक संकटका उपयोग अपनी नैतिक उन्नतिके लिए किया है।

प्राकृतिक विधान और मनुष्यके आचरणमें जो सम्बन्ध है, उसमे मेरी कुछ ऐसी प्रगाढ़ श्रद्धा है कि उसके सहारे मैं अपने प्रभुके अधिक समीप पहुँच सकता हूँ, नम्र बन सकता हूँ और उसके दरबारमे जानेके लिए अधिक अच्छी तैयारी कर सकता हूँ। अपने अगाध अज्ञानके कारण अगर मैं अपने विरोधियोंपर प्रहार करनेकी नीयतसे अपने इस विश्वासको काममें लाऊँ, तो मेरे लिए यह विश्वास एक नैतिक अन्धविश्वास या वहम समझा जायगा।

हरिजन-सेवक
२३ फरवरी, १९३४



शान्तिके लिए अपील

बंगालसे एक सज्जन लिखते हैं—

"सुधारकों और सनातनियोंके बीचमे आज जो झगड़ा चल रहा है, उससे दोनों ही तरफ कटुता पैदा हो रही है। अच्छा हो कि परस्परका यह वाहियात झगड़ा शीघ्र ही बन्द हो जाय। इसलिए मेरा तो दोनों ही पक्षवालोंसे अनुरोध है, कि वे एक दूसरे प्रति सहिष्णुतासे काम लें। हिन्दुस्तान अनेक जातियों और विविध धर्म-मजहबोंका देश है। इससे देशकी शान्ति और उन्नतिके लिए यह जरूरी है, कि विभिन्न जातियों और धर्ममें सहिष्णुता बनी रहे। भारतवर्षके इतिहासमे सदा ही सहिष्णुताका तत्त्व सबसे सुन्दर तत्त्वोंमें से एक रहा है। जब

सबसे पहले त्रिणवलीमें जब मैंने बिहारकी घोर विपदाके साथ अस्पृश्यताका सम्बन्ध जोड़ा, तब मैंने अपने हृदयकी पूरी प्रेरणाके साथ खूब सोच समझकर ही वह उद्‌गार निकाला था। मैंने तो वहाँ वही कहा था, जिसपर मेरा विश्वास था। आजका नहीं, यह तो सदासे ही मेरा विश्वास है कि प्रकृतिकी किसी घटनाके भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही परिणाम निकलते हैं। ठीक इसी प्रकार आध्यात्मिक घटनाका भी असर आत्मा और प्रकृति दोनों ही पर पड़ता है। यह भूकम्प न तो मेरी दृष्टिमें ईश्वरकी लीलाका ही प्रकोप था, और न महज कुछ भौतिक जड़-शक्तियोंके संघर्षका ही परिणाम था। हमें ईश्वरके तमाम नियमोका ज्ञान नहीं है, और न हमे उन नियमोंकी क्रियाओका ही पता है। धुरन्धर वैज्ञानिक या पारंगत दार्शनिकका ज्ञान भी एक 'रेणु-कण' के समान है। ईश्वर मेरे लिए मेरे लौकिक पिताकी भाँति कोई व्यक्ति नहीं है, पर वह उसकी अपेक्षा अनन्त-गुणाधिक महान है। मेरे जीवनकी छोटी सी छोटी बातोंपर भी वह शासन करता है। इसमे मेरा अक्षरशः विश्वास है, कि बिना उसकी मर्जी के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। प्रत्येक श्वास, जो मैं लेता हूँ, उसी स्वामीके अधीन है।

वह और उसका नियम एक ही है। नियम ही ईश्वर है। भगवानके साथ हमने जो विशेषण लगा रखे हैं, वे केवल विशेषण ही नहीं है। वे विशेषण [illegible] भगवान है। सत्य, प्रेम, नियम और अपनी बुद्धिसे मनुष्य जिन [illegible] कल्पना कर सकता है, वह सब ईश्वर ही है। मैं गुरुदेवके [illegible] सहमत हूँ, विश्व नियतिके अनुसार जो कार्य चल रहा है, [illegible] दखल नहीं देता; क्योंकि ईश्वर ही तो विश्व-नियति है। लेकिन [illegible] है, कि हमलोग इन नियमोको पूरी तरहसे नहीं जानते हैं, अ[illegible] प्रतीत होता है, वह केवल हमारे अज्ञानके कारण ही हमे संकटरूप त्रा[illegible]

दुर्भिक्ष, बाढ, भूकम्प और ऐसे ही अन्य उत्पात यद्यपि केवल भौतिक [illegible] उत्पन्न जान पड़ते हैं, तो भी इनका मनुष्यके आचरणके साथ भी सम्बन्ध होता [illegible] इसीलिए तो मुझे यह स्फूर्ति हुई, कि यह भूकम्प अस्पृश्यताके पापका दण्ड है [illegible] सनातनियोंको यह कहनेका अवश्य पूरा अधिकार है, कि मैं अस्पृश्यताके विरुद्ध जो प्रचार कर रहा हूँ, उस पापके कारण यह भूकम्प हुआ है। मेरे विश्वासमें पश्चात्ताप और आत्मशुद्धिके लिए आमन्त्रण है। प्रकृतिके नियमोंका शासन किस प्रकार चल रहा है, इस विषयका अपना सम्पूर्ण अज्ञान मैं कबूल करता हूँ। लेकिन जैसे किसी नास्तिकके आगे ईश्वरका अस्तित्व साबित न कर सकनेपर भी मैं ईश्वरपरसे अपना विश्वास हटा नहीं सकता, उसी तरह अस्पृश्यता और भूकम्पका सम्बन्ध मेरी आँखोके आगे सहज ही आ जाता है, यद्यपि उसे मैं सिद्ध नहीं कर सकता। अगर मेरा यह विश्वास असत्य ठहरेगा, तो भी इससे मुझे तथा मेरे जैसे श्रद्धालुओंको तो लाभ ही होगा। कारण यह है कि यह मानकर कि अस्पृश्यता एक महापाप है, आत्मशुद्धिके इस आन्दोलनमे हम और भी अधिक तत्परतासे प्रयत्नशील बनेंगे।

मुझे यह पूरा पता है, कि ऐसी कल्पना खतरनाक हो सकती है। लेकिन जहाँ मेरे प्रियजनोंके ऊपर कोई विपदा आयी हो, वहाँ मैं सिर्फ इसलिए अपने विश्वासकी घोषणा न करूँ, कि इसपर लोग मेरी हँसी उड़ायँगे, मैं असत्य और कायरताका दोषी बनूँगा। भूकम्पका असर शीघ्र जाता रहेगा और थोड़े बहुत अंशोंमें क्षतिपूर्ति भी हो जायगी, किन्तु यदि यह भूकम्प अस्पृश्यता-जनित पापका ईश्वरी कोप साबित हुआ और उस पापका अगर हमने प्रायश्चित न किया, तो यह बहुत भयंकर बात होगी। गुरुदेवकी तरह मेरा यह विश्वास नहीं है, कि 'हमारे पाप चाहे कितने ही प्रचण्ड हों, वे सृष्टिका विध्वंस नहीं कर सकते।' मेरा तो इसके विपरीत विश्वास है। हमारे पापोंमे तो वह ताकत है, कि वे सृष्टिका उससे भी अधिक विध्वंस कर सकते हैं, जितना कि किसी प्राकृतिक कारणसे हो सकता है। प्रकृति और पुरुषके बीचमें अविछिन्न सम्बन्ध है। इस अभेद्य सम्बन्धके परिणामोंका हमे ज्ञान नहीं है, इसीसे वह हमें गूढ़ लगते हैं, और भयभीत कर रहे हैं, पर इससे उस सम्बन्धका विच्छेद नहीं हो सकता। प्रकृति-पुरुषके इस सम्बन्धका जिन लोगोंको साक्षात्कार हो गया है, उन्होने ऐसे प्रत्येक भौतिक संकटका उपयोग अपनी नैतिक उन्नतिके लिए किया है।

प्राकृतिक विधान और मनुष्यके आचरणमें जो सम्बन्ध है, उसमे मेरी कुछ ऐसी प्रगाढ़ श्रद्धा है कि उसके सहारे मैं अपने प्रभुके अधिक समीप पहुँच सकता हूँ, नम्र बन सकता हूँ और उसके दरबारमे जानेके लिए अधिक अच्छी तैयारी कर सकता हूँ। अपने अगाध अज्ञानके कारण अगर मैं अपने विरोधियोंपर प्रहार करनेकी नीयतसे अपने इस विश्वासको काममें लाऊँ, तो मेरे लिए यह विश्वास एक नैतिक अन्धविश्वास या वहम समझा जायगा।

हरिजन-सेवक

२३ फरवरी, १९३४



शान्तिके लिए अपील

वंगालसे एक सज्जन लिखते हैं—

"सुधारकों और सनातनियोंके बीचमे आज जो झगड़ा चल रहा है, उससे दोनों ही तरफ कटुता पैदा हो रही है। अच्छा हो कि परस्परका यह वाहियात झगड़ा शीघ्र ही बन्द हो जाय। इसलिए मेरा तो दोनों ही पक्षवालोंसे अनुरोध है, कि वे एक दूसरे प्रति सहिष्णुतासे काम लें। हिन्दुस्तान अनेक जातियों और विविध धर्म-मजहबोंका देश है। इससे देशकी शान्ति और उन्नतिके लिए यह जरूरी है, कि विभिन्न जातियों और धर्ममे सहिष्णुता बनी रहे। भारतवर्षके इतिहासमें सदा ही सहिष्णुताका तत्त्व सबसे सुन्दर तत्त्वोंमें से एक रहा है। जब

कि गाधीजी अस्पृश्यताके विरुद्ध यह सुधारका अन्दोलन चला रहे हैं, तब कलह और कटुता पैदा होनेका तो कोई कारण ही नहीं, किन्तु गाधीजी और उनके अनुयायियोंको यह सुधार-आन्दोलन चलाते समय, कुछ सहिष्णुता अवश्य दिखानी चाहिये। सुधारक भले मानें, कि अस्पृश्यता एक बुरी बात है, लेकिन उन्हें कट्टर सनातनियोंका, अपने निजी मन्दिरोंमें अपनी मर्जी मुताबिक पूजा करनेका, अधिकार नहीं छीनना चाहिये।

"अस्पृस्र्यता निवारण बिल और मन्दिर-प्रवेश बिल अगर पास हो गये, तो सनातनी हिन्दुओंका यह अधिकार क्या मारा न जायगा? मान लीजिये, कोई सनातनी हिन्दू एक मन्दिर बनवाता है और उसमें तमाम सवर्ण हिन्दुओंके लिए जाने व पूजा करनेकी परवानगी दे देता है, पर हरिजनोंको, जिन्हें वह अछूत मानता है, मन्दिरके अन्दर आनेकी मनाही कर देता है, अस्पृश्यता निवारण बिलके अनुसार उसकी वह इच्छा, कि हरिजन मन्दिरमें न आवें, पूरी न होगी; क्योंकि कानून किसी भी मनुष्यको अस्पृश्य नहीं मानेगा। और मन्दिर प्रवेश बिलके अनुसार अगर सवर्ण उच्च हिन्दुओंका बहुमत हरिजनोंको मन्दिरमें ले जाना चाहता है तो, वह मन्दिर निर्माता या दाताकी इच्छाको ठुकरा सकेगा, यह तो प्रत्यक्ष ही उनके प्रति अन्याय होगा।

"मैं मानता हूँ कि सुधारकोंमें ऐसे बहुत-से होंगे, जो सनातनी हिन्दुओंको, उनके धार्मिक कृत्योंकी उचित सुविधाओंसे, वचित कर देना ठीक न समझेंगे। ऐसे उदार हृदय सुधारकोंको इन बिलोंका समर्थन नही करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे, जैसा कि ऊपर कहा है, सनातनियोंके जायज अधिकार मारे जायगे। अगर दोमें से एक पक्ष दूसरेका उचित हक छीन लेनेका प्रयत्न न करे, तो मतभेदके कारण कटुता पैदा होनेका तो कोई कारण ही नहीं।

"जो मन्दिर आज मौजूद हैं उनके विषयमें इन तीन पक्षोंके हितपर विचार करना आवश्यक है—(१) सुधारक, (२) सनातनी और (३) हरिजन। आजकल हरिजनोंको मन्दिरोंमे पूजा करनेका अधिकार नहीं है। सुधारक कहता है, कि उन्हें मन्दिरोंमें देव-दर्शन तथा पूजन करने देना चाहिये। सनातनियोंका विश्वास है कि अगर हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेश कराया गया, तो वे खुद विधिपूर्वक पूजा न कर करेंगे। हो सकता है कि सनातनियोंकी यह मान्यता गलत हो, पर इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि वे ऐसा मानते जरूर हैं। जो अधिकार वे एक जमानेसे भोगते आ रहे हैं, अगर वह उनसे छीन लिया गया, तो स्वभावतः ही उन्हें यह बात खटकेगी। जहाँ सुधारक और हरिजन एक साथ पूजा कर सकें, सुधारककी दृष्टिमें ऐसे नये मन्दिरोंका बनवा देना क्या सबसे अधिक शान्तिपूर्ण न होगा? सुधारक चाहें तो पुराने मन्दिरोंको त्याग दें। अगर, बकौल सुधारकोंके, देशका बहुमत अस्पृश्यताके विरुद्ध है, तो फिर सनातनियोंके पुराने मन्दिर सूने पड़े रहेंगे और इस प्रकार सुधारक दिखा सकेंगे कि अस्पृश्यता देशसे विदा हो गयी है। गाधीजी अपने प्रवासमे लाखों रुपया जमा कर रहे हैं, इसलिए वह चाहे, तो सुधारकों तथा हरिजनोंके लिए नये मन्दिर बनवानेमे उन्हें कोई कठिनाई न पड़ेगी। हिन्दू समाजके अन्दर फूट पैदा होने की जो आशका है वह इस प्रकार पैसा खर्च करनेसे रोकी जा सकती है।"

त्रिचिनापलीमें उस दिन अपनेको उदार सनातनी बतलानेवाले एक वकील सहाब मेरे पास एक लिखित वक्तव्य लाये थे, जिसमें से यहाँ मैं एक अंश नीचे देता हूँ--

"हमारा विश्वास है कि फिलहाल मंदिर-प्रवेशकी बात तो छोड़ ही दी जाय और तमाम हिन्दुओंकी—सनातनियोंकी भी—साधन सम्पत्ति एकत्र करके हिन्दूधर्मकी प्रणालीके अनुसार हरिजनोंके आर्थिक, नैतिक शिक्षा विषयक एव आध्यामिक कल्याणके लिए प्रयत्न किया जाय. जिसमें हरिजन हर तरहसे सवर्णोंकी बराबरीके हो जायँ; और यदि हम उनके साथ अपने बन्धु-बान्धवोंकी तरह बरताव करने लगेंगे तो फिर अस्पृश्यताका अभिशाप दूर हो जायगा। कोई भी निरपेक्ष मनुष्य स्पष्ट देख सकता है कि यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिन सामाजिक रूढ़ियोके बन्धनोंमे हरिजन जकड़े हुए हैं, वह हटा दिये जायँ। इस सुधारकोंको एक क्रमसे धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये। जिस तरह हम अपने घरोंमे यूरोपियनो और मुसलमानोंको आने देते हैं, उसी तरह हमें अपने यहाँ हरिजनोंको आने देना चाहिये। जो रोजगार-धन्धे सवर्णोंके लिए खुले हुए हैं, उन सबके करनेकी हरिजनोंको भी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। उन्हे इस बातोंमें अलग नहीं रखना चाहिये और प्रजाके मौलिक अधिकारियोंपर दृढ़ रहनेकी भी उन्हें शिक्षा मिलनी चाहिये सम्भव है, कि इस तरह पचास बरसके अन्दर हमारे हरिजन भाइयोंको मन्दिरोंमे प्रवेश करनेका हक मिल जाय।"

मैंने बतौर नमूनेके ऊपर ये दो वक्तव्य दिये है। यह तो दोनों ही चाहते हैं कि मन्दिर प्रवेशकी बात मुल्तवी कर दी जाय। पहले पत्रमें 'दोनों पक्षोंसे परस्पर सहिष्णुता दिखानेकी प्रार्थना की गयी है, मगर अन्तमें यह आग्रह रखा गया है कि सिवा एकके और सब लोग यदि हरिजनोंको मन्दिरमें ले जानेके लिए तैयार हो, तो भी वह अकेला सनातनी उनके प्रवेशको रुकवा दे सकता है। स्पष्ट शब्दोमे कहा जाय तो इसका यह अर्थ हुआ कि यह बुरेसे बुरे प्रकारका बलात्कार है; क्योंकि इसमें एक ही मनुष्य बहुमतकी इच्छाको अपनी मर्जीके अनकूल मोड़ना चाहता है। इतिहास तो यही कहता है कि सिवा जालिमोंके, अपनी इच्छाको जबरदस्ती दूसरेसे मनवानेमे, कोई और सफल नहीं हुआ; और वे जालिम भी दूसरोंसे ऐसा करानेमे खुद जड़मूलसे मिट गये। सुधारकोंकी तरफसे कहूँ, तो उनकी स्थिति तो साफ है। जबतक मन्दिरमें जानेवाला खासा अच्छा बहुमत हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके पक्ष न हो, तबतक सुधारक एक भी मन्दिर नहीं खुलवाना चाहते। इसलिए दबाव या बलात्कारका तो कोई सवाल ही नहीं। यह बात जुदी है कि बहुत बड़े बहुमतकी इच्छाके अमलको बलात्कारका नाम दे दिया जाय। बहुमतवाले अल्प मतवालोंके प्रति क्षमाशील रहें—और रहना ही चाहिये—और वे अल्पमतवालोंको सुविधाएँ भी दें। यह कैसे सम्भव है, सो मैं 'हरिजन'मे पहले ही बता चुका हूँ, परन्तु अल्पमतवाले तो जगह देने को तैयार ही नहीं, वे तो किसी तरहकी कोई सुविधा देना ही नहीं चाहते। उनका तो आग्रह है कि आज जो स्थिति हैं, वही अटल रहनी चाहिये। इसका अर्थ तो यही हुआ कि अंधकूपमें पड़े-पड़े मर जाओ। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि या तो हम अस्पृश्यताको नष्ट कर देंगे या फिर अस्पृश्यता हमारा

हनन कर देगी। जितना सत्य इस बात में है कि कल सवेरे सूर्योदय होगा, उतनी ही यह बात अचल या अटल है।

परस्परकी कटुता या कलहका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सनातनियोंके विरोधको देखते हुए सुधारकोंके दिलमें कुछ भी कटुता नहीं है; क्योंकि वे यह मानते हैं, कि स्वयं वे जिस खालिस ईमानदारीका दावा करते हैं, वही शुद्ध ईमानदारी पर-पक्षमे भी है। सुधारक आदर्श सहिष्णुता दिखा रहे हैं। काफी बहुमत सुधारकोंके पक्षमें होते हुए भी जहाँ साफ मतभेद दिखायी पड़ता है; वहाँ वे मन्दिर खुलवानेके कामसे पीछे हट जाते है। इससे सुधारकोंका काम तो लोकमतको अपने पक्षमें करनेका ही है और यदि सनातनी भाई सुधारकोंके इस निर्विवाद अधिकारको कबूल कर लें, तो तनिक भी संघर्षकी सम्भावना न रहे।

जहाँ पहले पत्रका लेखक सनातनियोसे कुछ भी करनेको नहीं कहता, सिर्फ सुधारकोंसे ही हर चीज कराना चाहता है, वहाँ दूसरा लेखक यह कबूल करता है कि एक-न-एक दिन तो हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलने ही पड़ेंगे, पर उसका कहना है कि अभी बाट जोहते रहो, वह दिन अभी दूर है। लेखकका यह प्रस्ताव है कि हरिजनोंके हितकी दूसरी तमाम बातोंमें दोनों पक्षवाले मिलकर काम करें। मैं इसमें इतना ही संशोधन करूँगा, कि मन्दिर-प्रवेशका प्रश्न बिलकुल मुलतवी तो न किया जाय, पर यह आन्दोलन, कट्टर सनातनियोंकी भावनाओंका पूरा-पूरा खयाल रखकर, चलाया जाय, उनका दिल न दुखाया जाय। अगर सनातनी नासमझीके कारण, विरोध करनेके बजाय यह बहुत ही मामूली बात स्वीकार कर लें और दूसरी तमाम बातोंमे सुधारकोंके साथ मिलकर काम करें, तो यह सारा आन्दोलन अत्यन्त विवेक और सभ्यताके साथ बिना किसीका दिल दुखाये चलाया जा सकता है।

अब प्रस्तुत बिलोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि सुधारके मार्गमें आज जो बाधा है उसे हटानेके लिए इन बिलोंकी जरूरत है। जहाँतक यह आग्रह न हो कि चाहें जितने बड़े बहुमतके विरुद्ध एक ही आदमीकी मर्जीके मुताबिक काम हो, वहाँतक इन बिलोंमें किसी तरहका कोई बलात्कार नहीं है और हिन्दू समाजके बहुमतके विरोधके सामने इन बिलोंके पास करानेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं तबतक बाट जोहनेको तैयार हूँ, जबतक मौजूदा बिलपर भविष्यकी किसी भी धारा-सभा अथवा धारा-सभाओंके हिन्दू मेम्बरोंका बहुमत इस सुधारके लिए तैयार न होगा।

हरिजन-सेवक
२ मार्च, १९३४

❀

एक सुन्दर उदाहरण

त्रिचीके नेशनल कालेजके विद्यार्थियोंके आगे मैंने जो भाषण दिया था, उसके जवाबमें जिस दिन मै त्रिचीसे चलने लगा, उस दिन मुझे १३ विद्यार्थियोके हस्ताक्षरका निम्नलिखित पत्र मिला:—

"इस पत्रपर सही करनेवाले हम, नेशनल कालेजके विद्यार्थी, आपके चरणोंमें प्रणाम करके, हरिजन-कार्य एव बाल-सेवा-जैसी किसी योजनामें अपनी सेवा अर्पित करनेकी इच्छा प्रकट करते हैं। मगर, चूँकि हम विद्यार्थी हैं, इससे हमारा सारा समय हमारे हाथमें नहीं है। हम अपना छुट्टीका समय इन सत्कार्योंमें देनेको तैयार हैं।

"पूज्य महात्माजी, आपसे हमारी यही नम्रतापूर्वक प्रार्थना है कि आप हमे कोई ऐसी बात बतलाइये जो भविष्यमें हमारे लिए पथ दर्शक हो और हमें अपना आशीर्वाद भी दीजिये।"

इस पत्रपर सही करनेवाले विद्यार्थियोंको मैं उनके संकल्पपर धन्यवाद देता हूँ। हमें आशा रखनी चाहिये कि उनमें सदा ऐसा ही उत्साह बना रहेगा और वे अपने इस सत्संकल्पको पूरा करके ही रहेंगे। मैं तो उन्हें इतना ही मार्ग दिखा सकता हूँ कि अगर वे खुद अस्पृश्य होते, तो जिस प्रकारका बर्ताव वे अपने प्रति दूसरोसे कराना चाहते उसी प्रकारका बर्ताव वे हरिजनोंके प्रति करें, अर्थात् हरिजनोंको वे अपने सगे भाई-बहनोकी तरह समझें! इस भावनाको लेकर अगर वे हरिजन-बस्तियोमे जायँगे तो उनके लिए सद्वचन और सद्व्यवहारका मार्ग हमेशा निकल आयगा।

हरिजन-सेवक
२ मार्च, १९३४



मेला-अरसूरके हरिजनोंकी व्यथा

ऐसा एक भी स्थान मुझे याद नहीं पड़ता, जहाँ इस प्रवासमें हरिजनोंने मुझे मानपत्र न दिया हो। अधिकांश मानपत्रोंमें तो वही सामान्य कष्टोंकी चर्चा की गयी है, पर दो या तीन ऐसे भी उदाहरण मुझे याद हैं, जहाँ हरिजनोंने सवर्ण हिन्दुओंके अत्याचारोको कुछ खास शिकायतेंकी हैं। लालगुण्डी ताल्लुकामें, त्रिचिनापलीके पास ही, मेला-अरसूर नामका एक गाँव है। वहींकी यह बात है। मेरे प्रति सम्मानसूचक सामान्य वाक्योंके बाद, वहाँके हरिजनोंने अपनी अपीलमें लिखा है:—

"हमारे मेला-अरसूर गाँवमें दो तालाब हैं—एक बड़ा और दूसरा छोटा; लेकिन हमारे लिए दोनों ही तालाब बन्द हैं। सिर्फ सवर्ण ही उनका उपयोग करते हैं। हमें तालाबोंका पानी छूनेकी भी मनाही है। अगर हमारे घड़ेमें दूरसे पानी डाल देनेके लिए कोई ऊंची जातिका आदमी न हो, तो खाली घड़ा लिये ही हमें वापस आना पड़े। सब मिलाकर यहाँ हमारे ८० घर हैं। गाँवकी कुल आबादीमें हमारा ख़ासा अच्छा हिस्सा है। हमने सरकारको अर्जी दी थी। उसका यह नतीजा हुआ कि तालाबोंके ऊपर इस आशयकी नोटिस लगा दी गयी है कि किसीको भी तालाबका उपयोग करनेसे मना नहीं किया जा सकता; लेकिन इसमें हमें सफलता नहीं मिली। कारण यह है कि हमारा यह प्रयत्न सवर्णोंको बहुत अखरा और उन्होंने हमे अपनी खेतीबारीके कामसे हटा देनेकी धमकी दी। यह तो और भी बुरा हुआ। पानीका कष्ट दूर हुआ तो भूख और बेकारीके चगुलमें फस जाना पड़ा। इस तरह नौ महीनेसे हमलोग बड़ी गरीबीमे दिन काट रहे हैं—न तो काफी भोजन ही मिलता है और न कपड़े ही। यहाँके बड़े बड़े जमींदारोंसे भी हमने विनती की, पर वह सब हमारा अरण्यरोदन ही सिद्ध हुआ।

"अब हमलोगोंमें कटुता बहुत बढ गयी है। अच्छा हुआ कि आपको अपनी दशा सुनानेका हमें अवसर तो मिल गया। हम जानते हैं कि आप ही हमें इस महान कष्टसे छुड़ा सकेंगे और हमारे और सवर्णोंके बीचमें जो खटास आ गयी, उसे भी आप ही दूर कर सकेंगे। एक बात और; हमारी आपसे यह विनती है कि कृपाकर आप जिस तरह उचित समझें उस तरह हमारे प्रत्येक परिवारको कुछ दान देकर गरीबी और कष्टसे हमारा उद्धार कर दीजिये; जिससे कम से कम तीन महीने तो हम अपना पेट पाल सकें।"

यह प्रार्थनापत्र मुझे त्रिचिनापलीमें मिला था। वहाँके अपने सार्वजनिक भाषणमें मैंने इसकी चर्चा भी की थी। अगर यह शिकायतें सच है, तो मेला-अरसूरके सवर्ण हिन्दुओंके लिए यह बहुत बुरी बात है। मैं आशा करता हूँ, कि प्रान्तीय-हरिजन-सेवक संघ सवर्ण हिन्दुओंके सर्वथा अधीन इन असहाय हरिजनोंके साथ न्याय करनेमें कुछ उठा नहीं रखेगा। मौकेपर जाकर संघको यह देखना होगा कि उन तालाबोंसे हरिजन स्वच्छ पानी ले सकते है या नहीं। अगर उन्हें किसी तरहकी रुकावट है, तो मनुष्यताका यह तकाजा है कि जो लोग आज उन्हें उन सार्वजनिक तालाबोंका पानी भरनेसे मना करते हैं, जो कानूनन सबके लिए खुले हुए हैं, वे उन हरिजनोंके लिए स्वच्छ पानीका प्रबन्ध कर दें।

अपना हक हासिल करनेकी कोशिश हरिजनोंने की, इस अपराधपर उन बेचारोंका जो बहिष्कार किया गया है, यह तो जलेपर नमक छिड़कना हुआ। मुझे उम्मीद है कि स्थानीय हरिजन सेवक-संघके सच्चे प्रयत्नसे हरिजनोंको अब भी न्याय मिलेगा और एक ही हिन्दू-परिवारके दो भागोंके बीचमें जो कटुता आ गयी है वह दूर होकर पुनः सद्भाव पैदा हो जायगा।

अपीलके अन्तिम वाक्यपर जरूर मै दो शब्द कहूँगा। अगर मेरी ताकतमें

हो भी, तब भी मैं उन लोगोंको कोई ऐसा दान देकर संतुष्ट न करना चाहूँगा, जिससे कि कम-से कम तीन महीने तक उनकी परवरिश हो सके। बात यह है कि ऐसे दानोंसे जनताके पैसेका दुरुपयोग ही होता है। जिन्हें ऐसा दान दिया जाता है वे लोगोंकी निगाहमें गिर जाते हैं और उनका काहिलपन और भी अधिक बढ़ जाता है। जो लोग अच्छी तरह काम कर सकते हैं उन्हें काम माँगना चाहिये, न कि दान। मैं जानता हूँ कि इस कठिन समयमें काम मिलना भी आसान नहीं है और फिर हरिजनोंके लिए तो और भी मुश्किल है, मगर मेरा विश्वास है कि जो आदमी किसी भी इज्जतकी मेहनत-मजदूरीसे जी नहीं चुराता, उसे कोई न कोई काम ढूँढ़ निकालनेमें बहुत कठिनाई नहीं पड़ती। इसलिए मैं हरिजनोंके सब मित्रोंसे अनुरोध करूँगा, कि वे दान या भीख माँगनेके लिए उन्हें हर्गिज प्रोत्साहन न दें और जो काम करनेसे इनकार नहीं करते, उन्हें वे किसी इज्जतके काममें लगा देनेका प्रयत्न करें।

हरिजन-सेवक
२ मार्च, १६३४,



स्वर्गीय गोखले और हरिजन

मेरे इस दक्षिणके प्रवासमें कई नवयुवकोंने मुझे लिखा है कि अस्पृश्यता तथा अन्य कुरीतियोंके लिए, जिनसे हिन्दू समाज पीड़ित हो रहा है, ब्राह्मण ही दोषी है। ये सारी बुराइयाँ इन्हींकी बदौलत विद्यमान है। स्वर्गीय गोखलेके १९वें पुण्यपर्वके दिन मै यह लिख रहा हूँ। इसलिए स्वभावत. ही मुझे उनका हरिजन-प्रेम याद आ रहा है। अस्पृश्यताके कलंकसे सर्वथा मुक्त श्री गोखलेको छोड़कर मुझे कोई अन्य व्यक्ति याद नहीं आता। वह मनुष्य-मनुष्यके बीचमें किसी प्रकारकी असमानताकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उनकी दृष्टिमे तो मनुष्यमात्र समान थे। एक बार दक्षिण अफ्रीकामें एक सज्जन उन्हें एक साम्प्रदायिक सभामे लिवा जानेके लिए उनके पास आये, पर उन्होंने इनकार कर दिया। तब उनके हिन्दू-धर्मके प्रति अपील की गयी। इसपर वह बिगड़ उठे। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और जरा गर्म पड़कर उक्त सज्जनसे बोले—"अगर यही हिन्दू धर्म है तो मै हिन्दू नहीं हूँ।" वे लोग तो यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गये। किसी व्यक्ति या सम्प्रदायकी उच्चताकी कल्पनाको वह सहन नहीं कर सकते थे। विश्व बन्धुत्वकी भावना उन्होंने स्वयं अपने जीवनमें चरितार्थ करके दिखा दी, इस बातको उनके साथी खूब जानते हैं। पारिया (अंत्यज) कहे जानेवाले भाइयोसे यह खूब दिल खोलकर मिलते थे। यह बात उनमें नहीं

थी कि वह किसीपर कृपा या एहसान कर रहे हैं। उनके हृदयमें तो केवल एक सेवाका ही आदर्श था। उनका विश्वास था, कि सार्वजनिक आदमी जनताके नेता नहीं, सेवक हैं। उनकी दृष्टिमें सबसे बड़ा सेवक ही सबसे बड़ा नेता था। स्वर्गीय गोखले हर तरह एक सच्चे जन्मना ब्राह्मण थे। वह जन्मजात अध्यापक भी थे। उनसे कोई जब 'प्रोफेसर' कहता, तो बड़े प्रसन्न होते थे। विनम्रताकी तो वह मूर्ति थे। राष्ट्रको उन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया था। चाहते तो वह मालामाल हो जाते, लेकिन उन्होने तो स्वेच्छासे गरीबीका ही बाना पसन्द किया। गोखले जैसे जन-सेवक-पर क्या इन ब्राह्मण-निन्दकोंको गर्व नहीं होगा ? और यह बात नहीं, कि ऐसे ब्राह्मण एक गोखले ही थे। मनुष्य-मनुष्यके बीचमें समानताको माननेवाले ऐसे ब्राह्मणोंकी एक खासी लम्बी सूची बनायी जा सकती है। ब्राह्मण मात्रको दोषी ठहरानेका तो यह अर्थ हुआ कि जो ब्राह्मण आज खास तौरसे स्वयं निस्स्वार्थ लोक-सेवा करनेको तैयार हैं, उनकी उस सेवाके मधुर फलको हम खुद अस्वीकार कर रहे हैं। उन लोगोंको किसीके प्रशंसा-पत्रकी जरूरत नहीं है। उनकी सेवा ही उनका पुरस्कार है। गोखलेने एक महान अवसरपर लिखा था—'जो सेवा किसी व्यक्तिके कहनेसे हाथमें नहीं ली जाती, वह किसी दूसरेकी आज्ञासे त्यगी भी नहीं जा सकती।' इसलिए सबसे निरापद नियम तो यह है कि मनुष्यको हम उसके वर्तमान रूपमें ही ग्रहण करें—फिर चाहे जिस कुलमें वह पैदा हुआ हो और उसकी जाति, उसका रंग चाहे जो हो। अस्पृश्यता-निवारणके इस आन्दोलनमें हमें किसी भी सेवाकी, चाहे वह कितनी ही छोटी हो, अवगणना नहीं करनी चाहिये, जहाँतक कि उसमें सेवाकी भावना है, न कि उद्धार या कृपाकी।

हरिजन-सेवक
६ मार्च, १६२४



७

हमारे लिए लज्जाजनक

तमिल प्रान्तके आदि हिन्दुओंकी ओरसे कुनूरमें मुझे जो आवेदन-पत्र दिया गया था, उसका उल्लेख 'हरिजन'के गतांकमें हो चुका है। उसपर ३६ प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर थे। सही करनेवालोंमें कुछ तो म्युनिसिपैलिटी या तालुका-बोर्डके मेम्बर थे। जिन कठिनाइयोंका उन्हें सामना करना पड़ रहा है, उनकी सूची संक्षिप्त रूपमें, मैं नीचे देता हूँ। संक्षिप्त करनेमें मैंने उनकी असली भाषाको बदला नहीं है। हाँ, उस बयानके साथ उनकी जो टीका थी, उसे मैंने अनावश्यक समझकर हटा दिया है, यों सूचीमें कोई हेरफेर नहीं किया गया है—

१—"भोजनालय, धोबीकी दूकानें, कहवा और चायके उपाहार-गृह, विश्रान्ति-भवन, धर्म-शालाएँ, अग्रहार, कुएँ, तालाब, नल, झरने आदि सभी स्थान हमारे लिए बन्द हैं। हमारी कहीं भी पहुँच नहीं, और तो और, गाँवके डाकखाने तकमें हम पैर नहीं रख सकते। मन्दिरोंकी तो बात ही न पूछिये।

२—"एक जगह तो यूनियन बोर्डके इलाकेकी एक आम सड़कसे हम अपने मुर्दे तक नहीं ले जा सकते। बात सिर्फ यह है कि उस सड़कके किनारे एक देवताका मन्दिर पड़ता है। धानके एक खेतमें होकर हम अपना मुर्दा ले जानेके लिए बाध्य किये जाते हैं—और उन दिनों भी, जब बरसातमें घुटनों तक कीचड़ ही कीचड़ मच जाता है।

३—"कहीं-कहीं तो न हम छाते लगा सकते हैं, न खड़ाऊँ पहन सकते हैं और न घुटनोंके नीचे तक धोती पहन सकते है। अगर हम ऐसा करें तो बड़ा भारी जुर्म समझा जाता है। हमारी औरतें अगर कभी सोनेके जेवर या साफ कपड़े ही पहनकर आगेसे निकल जायँ, तो सवर्ण हिन्दू इसे अपशकुन समझते हैं।

४—"एक यूनियन बोर्डके इलाकेमें तो अछूतोंके चौधरीको, जब उसे मुखियाका पद दिया जाता है, सवर्ण हिन्दू आम सड़कसे घोड़ेपर नहीं निकलने देते।

५—"कुछ गाँवके हाट बाजारोंमें बजाजोंके यहाँसे अगर हम ब्याह-शादीके लिए नया साफ कपड़ा देखकर खरीदना चाहें, तो नहीं खरीद सकते, क्योंकि खरीदनेके पहले हम उस कपड़ेको छू नहीं सकते।

६—"बाजारोंमें जान या अनजानमें रोटी या खाने पीनेकी दूसरी चीजें हमसे छू न जायं, तो इस गुनाहका हमें भारी दण्ड भरना पड़ता है—दूकानमें खाने-पीनेकी जितनी चीजें होती है, उन सबका हमें पूरा दाम देना पड़ता है।

७—"मद्रास प्रान्तके अधिकाश जिलोंके गाँवोंमे, चूँकि आबादी हमारी काफी बड़ी है, पर मकान हमारी अपनी जमीनपर नहीं है, इसलिए जमींदारोंकी जमीनपर घर बनाकर किसी तरह गुजर-बसर करते हैं। जब हम अपनी मजदूरी बढ़ानेके लिए उन लोगोंसे कहते हैं, तो वे मारे गुस्सेके आपेसे बाहर हो जाते हैं। उनमे दबें नहीं तो रहें कहाँ? मजदूरीमें वे हमें इतने पैसे नहीं देते कि पेट अच्छी तरहसे भर सके और कामका कोई समय भी नहीं बधा है—चाहे जबतक मेहनत मजदूरी कराते हैं। अकसर पुराना सड़ा-घुना अनाज ही सारे दिनकी मजदूरीमें हमलोगोंको दिया जाता है।

८—"ब्याह-बरात या देवी-देवताकी सवारीके अवसरपर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमें अपनी जातिके गाने-बजानेवाले नहीं मिलते, तो उस वक्त सवर्ण गवैये-बजैये हमारे यहाँ गाने-बजाने नहीं आते।

९—"हमारी बिरादरीके नवयुवकोंका साइकिलपर चढ़ना ऊँची जातिवालोंको अखरता है। शहरोंसे बहुत दूरके देहातोंमें हमें बैलगाड़ियों चढनेको नहीं मिलतीं। सवर्ण हिन्दू हमें अपनी गाड़ियोंपर नहीं चढने देते और यही हाल मोटर लारियोंका भी है।

१०—"एक म्युनिसिपैलिटीके इलाकेमें सार्वजनिक पैसेसे बनी हुई आम टट्टियोंमें

जानेसे अस्पृश्योंको रोका जाता है। काफी कोशिश करनेके बाद अब कहीं उनके लिए अलग टट्टिया लगवा दी गयी हैं।

११—"म्युनिसिपैलिटीके कुछ दवाखानोंमें हमलोगोंका ठीक ठीक इलाज नहीं होता। बात यह है कि वहा काम करनेवाले सब सवर्ण हिन्दू हैं।

१२—"गर्मियोंमें सवर्ण हिन्दुओंकी ओरसे जो प्याऊ रखे जाते हैं, उनमें हम आदि-हिन्दुओंके साथ बड़ा बुरा भेद-भाव बरता जाता है। यह अपमान भरा भेद-भाव तो हमें असह्य हो जाता है।

१३—"जब हमारे आदमी म्युनिसिपैलिटी, तालुका, बोर्ड और पचायतोंमे मेम्बर चुन लिये जाते हैं, तब इसके विरोधस्वरूप कट्टर सवर्ण हिन्दू अपनी मेम्बरीसे इस्तीफा दे देते हैं और कहीं-कहीं तो हमारे मेम्बरोंको वहा भी अलग बिठाया जाता है।

१४—"जब कोई आदि-हिन्दू अपने मकानके सामने चारपाईपर बैठा हो और और उस वक्त वहासे कोई सवर्ण हिन्दू निकले, तो उसे उठकर उसके आगे साष्टाग प्रणाम और उचित मान-प्रदर्शन करना पड़ता है। अगर कभी इस स्वागत-पूजामें गफलत हो गयी, तो फिर उस आदि-हिन्दूकी खैर नहीं। सवर्णोंके हाथसे उसकी बाकी मरम्मत कर दी जाती है।

"हमलोगोंसे यह अकसर कहा जाता है कि पहले अपने घरको सुधारो, तब दूसरोंसे अधिकार मागों। यह तो महज बातका टालना हुआ। जात-पात और जन्मकी उच्चता-नीचतापर ही जहा सारे हिन्दू-समाजकी उन्नति और अवनति निर्भर करती हो, वहा अछूत कहे जानेवालोंके माथे यह दोष मढ़ना मुनासिब नहीं कि वे तो खुद ही आपसमें एकता नहीं रखते हैं। ये अछूत कहे जानेवाले भी आखिरकार खुद परिस्थितियोंके वशीभूत हो रहे हैं।

१५—"म्युनिसिपैलिटीके हलकोंमे,जहाँ सवर्ण हिन्दू आपत्ति करते हैं, हमलोगोंके लिए अलग नल लगे हुए हैं।

१६—'देहातकी प्रारम्भिक पाठशालाओंमें हमारे बच्चे दाखिल नहीं हो सकते, गो कि ये पाठशालाए चलायी जाती हैं सार्वजनिक पैसेसे। अगर कभ किसी तरह भरती भी हो गये, तो या तो उन्हे बैठनेको अलग जगह दी जाती है या जमीनपर उन्हें बैठना पड़ता है। अगर ये विद्यार्थी कट्टर सवर्ण शिक्षकके पास जान या अनजानमे कभी कोई सवाल पूछने जाते हैं, तो अपवित्र हो जानेके भयसे वह शिक्षक स्लेट या छड़ीके सहारे उन्हे पीछे ढकेल देता है। कहीं-कहीं तो हमारे बच्चोंको पाठशालाके बाहर ही बारह महीने खड़ा रहना पड़ता है—चाहे पानी बरस रहा हो, चाहे आग। बाहर खडे-खडे खिड़कीसे ही उन्हें सबक लेना पड़ता है और इस तरहसे बेचारोंको स्याह तख्तेका देखना भी कभी नसीब नहीं होता। लोअर प्राइमरीकी पढाई पृथक पाठशालाओंमें जब समाप्त हो जाती है, तब उसी गावकी सार्वजनिक अपर प्राइमरी पाठशाओंमे हमारे बालक दाखिल नहीं हो सकते। आदि-हिन्दू जातिके ट्रेण्ड अध्यापकों तकको ऊपर प्राइमरी स्कूलोंमें नौकरी नहीं दी जाती। हमारे बच्चे आम पाखाने तकमे नहीं जा सकते। यह कितने दुःखकी बात है कि जहा हर तरहसे सवर्ण

हिन्दुओंका बोलबाला है, वहाकी पाठशालाओंका कभी-कभी निरीक्षण करने जिला बोर्डोंके हमारे आदि-हिन्दू प्रतिनिधि भी नहीं जाते—सवर्ण हिन्दुओंके हाथों सताये जाने और दुनियाभर की आफत सिरपर लेनेका उन्हे डर जो बना रहता है। कोयमबतूरके पासके सिंगातेलोर और इकगुर गाव तो इस बातके लिए काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है। देहातोंकी प्रारम्भिक पाठशालाए इन दोषोंसे अभी मुक्त नहीं हैं।

"अब हाई स्कूलोंकी बात सुनिये। वहा हमारे विद्यार्थी उन घड़ोंसे पानी नहीं ले सकते, जो गर्मियोंमें खास तौर पर रखे जाते हैं। हमारे जवान लड़कों और लड़कियोको उन सवर्ण छात्रोंके आसरे खड़ा रहना पड़ता है, जो उन्हें दूरसे पानी डाल देते हैं। पानीपीनेके बर्तन तक हमारे विद्यार्थियोंको नहीं दिये जाते। बेचारोंको चुल्लूसे पानी पीना पड़ता है। चाय-पानीके आम कमरोंमें भी वहा हमारे विद्यार्थियोंको बे-रोक टोक नहीं जाने दिया जाता।

१७—"जिन मुहल्लोंमें हम प्रवेश नहीं कर सकते, वहाके डाकखानोंमे जाकर न तो हम चिट्ठी-पत्री डाल सकते हैं, न रजिस्ट्री या मनीआर्डर वगैरा ही करा सकते हैं। डाकखानेसे हटकर हमें काफी फासले पर खड़ा रहना पड़ता है। पोस्टकार्ड, लिफाफा या टिकट खरीदनेके लिए भी हमे किसी आने-जानेवाले सवर्ण हिन्दूका मुह ताकना पड़ता है। हमारी प्रार्थना सुन ली, तो वह कार्ड या लिफाफा खरीदकर दूरसे फेंक देता है।

१८—"हमे दुःख होता है, कि आप जैसे प्रतापी पुरुषने हम आदि-हिन्दुओंके घरमें जन्म न लिया। हमारे यहा आप जन्मे होते, तभी हमारी इन सारी कठिनाइयोंको आप पूरी तरहसे महसूसकर सकते।"

यह एक भयंकर सूची है। इसमें कहीं कोई अत्युक्ति न मिलेगी। कहीं कहीं तो यह सभी बातें सच है, पर यह बात नहीं है कि एक ही कठिनाई सब जगह हो। कोई-कोई असुविधा तो एकाध ही जगह है और उनके अपने निजके प्रयत्नमे ये कठिनाइयॉ अब कम होती जा रही है। यथेष्ट चित्र अगर देखना है, तो इन बातोंको समझ लेना आवश्यक है; पर इससे सवर्ण हिन्दुओंकी शर्ममे किसी तरह कमी नहीं आ जाती, न सुधारकोंके लिए ही ढील दे देनेका यह कोई बहाना है। धर्मके नामपर जबतक ये असुविधाऍ न्यूनाधिक रूपमे मौजूद रहेंगी, तबतक सवर्ण हिन्दुओंका सिर शर्मसे नीचा ही रहेगा। यह उनका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे कड़े-से-कड़े शब्दोंमे इन तमाम असुविधाओंकी निन्दा करें और धार्मिक प्रथाके नामपर हरिजनोंका आज जो बुरी तरहसे दलन किया जा रहा है, उससे उन्हें बचानेके लिए वे भी सुधारकोंके साथ मिलकर काम करें।

अन्तकी अठारहवीं शिकायतके द्वारा आवेदन-पत्रपर सही करनेवालोंने, मैं समझता हूॅ, मुझे सम्मान ही दिया है। हॉ, यह बिलकुल सम्भव है कि अगर मैंने किसी आदि-हिन्दूके घरमे जन्म लिया होता, तो उनकी इन भयानक व्यथाओंको

कसकको और भी अधिक गहराईसे मैं महसूस करता, पर यह भाग्यमें न होनेसे मैं स्वेच्छासे एक हरिजन बन गया हूँ। जबतक अस्पृश्यता रहेगी, तबतक न मुझे ही चैन है और न हरिजन-सेवक-संघको ही।

हरिजह-सेवक
६ मार्च, १९३४



मन्दिर-प्रवेश बनाम आर्थिक उन्नति

मंदिर-प्रवेशके प्रश्नके सम्बन्धमें कभी-कभी अखबारोंमें टीका-टिप्पणी देखनेको आती है। यह आलोचना द्विमुखी हुआ करती है—एक ओर तो हरिजनोंकी की हुई होती है और दूसरी ओर सनातनियोंकी। कुछ हरिजन कहते हैं—

'हमें मन्दिर-प्रवेशकी जरूरत नहीं, यह हमे न चाहिये। रहने दीजिये यह मन्दिरोंका बनवाना। आप तो इन सारे पैसेको हमारी आर्थिक उन्नतिमे ही लगाइये, और कुछ सनातनियोंका यह कहना है, कि 'मन्दिर-प्रवेशकी बात तो एकदम छोड़ दीजिये। हरिजनोंको मन्दिरोंमें जबरदस्ती लाकर आप हमारी भावनाओंको ठेस पहुँचाते हैं।'

यह दोनो ही आलोचक भ्रममें हैं। मन्दिर बनवानेमें हरिजन-थैली-फण्डकी एक पाई भी खर्च नहीं हुई और न होगी। प्रयत्न तो यही हो रहा है कि सार्वजनिक मंदिर जिस प्रकार दूसरे हिन्दुओंके लिए खुले हुए हैं, उसी प्रकार हरिजनोंके लिए भी खोल दिये जायँ। फिर यह हरिजनोंकी मर्जी पर है कि मन्दिरोंमें वे जायँ या न जायँ। हरिजनोंके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगा हुआ है वह सवर्ण हिन्दुओंको दूर करना है। जो लोग मन्दिरको अध्यात्म-धनका भण्डार समझते हैं, उन करोड़ोंके लिए तो वह प्राणसे भी अधिक प्रिय जीवित-जाग्रत वस्तु है। अस्पृश्यता रूपी पापका यदि हम सच्चा प्रायश्चित करना चाहते हैं, तो हमे अपने इस अध्यात्म-भण्डार मन्दिरोंमें हरिजनोंको अवश्य उचित भाग देना चाहिये। मन्दिरोंका खोल देना हरिजनोंके लिए कितनी बड़ी बात है, यह मैं जानता हूँ। धारवाड़ और बेलगाँवके बीच हरिजनोके लिए मैंने तीन मन्दिर खोले। उन अवसरो पर सवर्ण हिन्दू और हरिजन काफी बड़ी संख्यामे उपस्थित थे। आलोचक अगर वहाँ होते और उन्होंने हरिजनोंका उस समयका हर्ष देखा होता, जो मूर्तिको प्रणाम करने तथा प्रसाद लेनेसे उन्हें उस समय हुआ था, तो ऐसी टीका-टिप्पणी वे कभी न करते। उनकी सारी आलोचना वहीं ठंडी पड़ जाती। आलोचना करनेवाले उन हरिजनोंकी समझमें यह आ जाता कि उनके खुदके अलावा बाकीके अधिकांश हरिजन तो मन्दिर-प्रवेशको अवश्य चाहते हैं और सनातनी आलोचक देखते कि जहाँ भी जो मन्दिर खुलते

हैं, वहाँ वे मन्दिरमें जानेवाले लोगोंकी पूरी सम्मत्तिसे और उनकी खासी अच्छी उपस्थितिमें ही खोले जाते हैं। गुपचुप रीतिसे मन्दिर खोलनेमें कोई सार नहीं। इससे हिन्दू धर्मकी भलाई होने की नहीं। सार तो तभी है, जब कि ठीक प्रसिद्धिके साथ विधिपूर्वक तथा मन्दिरोंमे जानेवाले श्रद्धालु लोगोंको सम्मत्ति से—न कि उन सुधारकोंकी रायसे, जिनकी मन्दिरोंमें श्रद्धा नहीं है और जो मन्दिरोंको वहमरूप समझते हैं—मन्दिर खोले जायँ। मन्दिर-प्रवेशकी प्रवृत्तिमे पैसा तो खर्च होता नहीं। मन्दिरोंमे जिनकी आस्था है और सवर्ण हिन्दुओंपर जिनका प्रभाव पड़ता है, वही लोग इस विषयमे कुछ कर सकते हैं। इसलिए यह प्रश्न बहुत ही नम्रता और साव-धानीसे सुलझानेका है। श्रद्धालु सुधारक ही मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमे काम करें। उनका यह बतलानेका अधिकार और कर्त्तव्य है कि बिना मन्दिर-प्रवेशके यह सुधार अधूरा ही नहीं, बल्कि व्यर्थ है। कारण यह है, अगर मन्दिरोंमे जानेका हरिजनोंको अधिकार नहीं मिला, तो यह नहीं कहा जा सकता कि अस्पृश्यता जड़ मूलसे नष्ट हो गयी है।

रही अब आर्थिक उन्नति की बात। सो यह कहना बिलकुल ही गलत है कि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नसे हरिजनोंकी आर्थिक उन्नतिमें बाधा पहुँच रही है। मन्दिर-प्रवेश आर्थिक उन्नतिका विरोधी कैसे हो जाता है? मन्दिर प्रवेशसे तो आर्थिक उन्नतिको सहारा ही मिलता है। कारण यह है कि हरिजनोंको जब मन्दिरोंमे जानेका अधिकार मिल जायगा, तो आर्थिक उन्नतिके जो मार्ग दूसरोंके लिए खुले हुए हैं, वह हरिजनोंके लिए भी आप-से-आप खुल जायँगे। जहाँतक हरिजन-थैली-फण्डका सम्बन्ध है, वह सब उनकी आर्थिक उन्नति पर ही खर्च किया जायगा—अगर यह मान लिया जाय कि शिक्षाका भी आर्थिक उन्नतिके अन्तर्गत समावेश हो जाता है। उस शिक्षाका यह उद्देश्य होना चाहिये कि पढ़े-लिखे हरिजन जीवनकी दौड़के लिए अधिक योग्य बनें। मुझे मालूम है कि सवर्ण लोग पढ़-लिखकर जितना चाहिये, उतने योग्य तो नहीं बने; पर ऐसा क्यों हुआ? इसलिए कि उनकी शिक्षाके अन्दर शारीरिक परिश्रमके प्रति तिरस्कारका भाव भरा रहता है। हरिजनोंके सामान्य समुदायके लिए कुछ समय तक तो अभी ऐसी किसी आपदाकी आशंका नहीं है और यह भय हमेशाके लिए भी दूर हो सकता है, अगर हमारे हरिजन-सेवक हरिजन-शिक्षाको उस दोषपूर्ण शिक्षा-पद्धतिसे दूर रखनेका खयाल रखें, कि जिसमे अधिकांशमें उद्योगके लिए तो स्थान ही नहीं है।

हरिजन-सेवक
२३ मार्च, १९३४

अस्पृश्यता-निवारणकी समस्याएँ

हुबलीसे एक सज्जन निम्नलिखित प्रश्न पूछते हैं—

"अस्पृश्यता प्राकृतिक है या कृत्रिम ? क्या समाजके लोगोंके नैतिक तथा बौद्धिक विकास,जीवनके ढग या व्यवहार आदिपर अस्पृश्यता निर्भर नहीं करती है ? क्या आप किसी ऐसे समाजका चित्र उतार सकते हैं जिसमें अस्पृयश्ता पूरी तरहसे दूर हो गयी हो ?"

मेरी रायमे तो यह अस्पृश्यता एक कृत्रिम चीज है। लोगोंके नैतिक या बौद्धिक विकाससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसका यही कारण है कि हिन्दू समाजमे अस्पृश्य कहलानेवाले ऐसे आदमी देखनेमें आते हैं, जो ऊँचे-से-ऊँचे सवर्ण हिन्दुओंसे किसी कदर नैतिक और बौद्धिक विकासमें कुछ घटिया नहीं हैं, मगर तो भी उनके साथ अछूतोंकी तरह बर्ताव किया जाता है। अस्पृश्यतासे सर्वथा मुक्त-मानव-समाजका मेरा चित्र वह होगा कि जिसमे कोई अपनेको दूसरेसे उच्च न समझेगा। यह स्पष्ट है कि ऐसे समाजमे किसी तरहकी वाहियात प्रतिस्पर्धा या वैमनस्यके लिए स्थान न होगा।

पत्र-लेखकका दूसरा प्रश्न यह है—

"क्या वह सहभोज और वर्णान्तर-विवाह अस्पृश्यता-निवारणके लिए आवश्यक है ?"

मेरे इस प्रश्नके, 'हाँ' और 'न' दोनों उत्तर हैं। 'न' इसलिए कि हरिजन-सेवक-संघके कार्यक्रममें यह बात नहीं आती है। साधारणतया भी विवाह और भोजन व्यक्तिगत बातें हैं। किसीको यह हक नहीं है कि वह किसी दूसरे आदमीकी इच्छाके विरुद्ध उसकी लड़कीके साथ विवाह करने या उसके साथ खाने-पीनेके लिए कहे। लेकिन साथ ही मेरा इस प्रश्नका उत्तर 'हाँ' भी है। यह इसलिए कि अगर कोई मनुष्य अस्पृश्यता या नीचताकी बात लेकर किसीका छुआ हुआ भोजन करनेसे इनकार करता है, तो कहना चाहिये कि वह अस्पृश्यताको मान रहा है। इसे हम यों भी कह सकते है कि अस्पृश्यता सहभोज या वर्णान्तर-विवाहमे बाधा डालनेका कोई कारण नहीं बन सकती।

लेखकका एक और प्रश्न है। वह पूछते हैं:—

"धार्मिक-प्रथाओंमें परिवर्त्तन करनेका क्या एक अपूर्ण मनुष्य प्रामाणिक अधिकारी हो सकता है ?"

अपूर्णता एक सापेक्ष शब्द है। हम सभी न्यूनाधिक अंशमें अपूर्ण हैं, किन्तु एक अपूर्ण मनुष्य किसी खास परिवर्त्तनके सम्बन्धमें इतना अपूर्ण नहीं हो सकता कि उसे करनेमे वह असमर्थ हो। वह और बातोंमे चाहे जितना अपूर्ण हो, पर

मादक दवाइयों और शराबके उपयोगके विषयमें उसके भी खासे अच्छे निश्चित विचार हो सकते हैं। तब उसे लोगोंकी मदिरा-पानकी आदतोंमें—भले ही वे आदत धर्म विहीन कही जायँ—हेरफेर करने-करानेका पूरा अधिकार है।

हरिजन-सेवक
३० मार्च, १७३४,



एक आदि-द्रविड़की कठिनाई

एक सज्जन लिखते हैं:

(१) "क्या आप वास्तवमें हरिजनोंकी उन्नतिमें रस लेते हैं या आप किसी ऐसी भीतरी मशासे प्रेरित हो रहे हैं, जिससे हिन्दू जनसंख्याकी वृद्धि दिखलायी पड़े?

(२) "यदि आपका सचमुच यही विचार है कि हरिजन हिन्दुओंके ही अग , तो क्या आप हिन्दुओं द्वारा पवित्र मानी जानेवाली मनुस्मृतिके निम्नलिखित श्लोकोंपर कृपाकर प्रकाश डालेंगे:—

'जो व्यक्ति किसी भी शूद्रको शिक्षकका कार्य देगा वह उक्त शूद्रके साथ ही नरकमें जायगा। यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मणको धार्मिक उपदेश देनेका प्रयत्न करे, तो उसके मुख और कानोंमें गरम तेल डालकर सजा दी जानी चाहिये।' (मनुस्मृति १०-७६)

'जोरसे चिल्लाकर यदि कोई शूद्र बात करे तो लोहेके गरम लाल सीखचोंसे उसे दाग दिया जाय। यदि कोई शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यके बराबर बैठे तो, उसे गरम लाल लोहेसे जला दिया जाय।' (मनुस्मृति १४-४६)

'हिन्दुओंको यह आदेश है कि वे इस पुस्तकको पवित्र मानें और उसकी निर्धारित आज्ञाओंपर चलें।' (मनुस्मृति ८-२७६,८-२७१)यदि आप इसे अपवित्र समझते हैं तो आप स्पष्ट ही क्यों नहीं कह देते और उसके स्थानपर अपनी एक नयी स्मृति 'गाधी-स्मृति' के नामसे क्यों नहीं निकाल देते?

(३) "आर्य-समाजी भी अस्पृश्यताको दूर करनेका प्रयत्नकर रहे हैं और यह कार्य करनेवालेके लिए उनका एक अनोखा विधान 'शुद्धि सस्कार' है, जिसके द्वारा व्यक्ति विशेषको वे अपने समाजमें मिला लेते हैं। यदि अस्पृश्य वास्तवमें हिन्दू ही हैं, तो इस विधानकी आवश्यकता ही क्यों जान पड़ी? क्या आप उनसे इस विषयमें सहमत हैं?"

पत्र-लेखक अपनेको आदि-द्रविड कहते हैं, और इसलिए मेरी मंशापर सन्देह करनेका उन्हें पूरा अधिकार है। उनके पहले प्रश्नका इसलिए सबसे अच्छा उत्तर मैं यही दे सकता हूँ कि वे अपने अन्तिम निर्णयके लिए मेरी मृत्युकी प्रतिक्षा करें। हां, यदि इस बीचमें वह मेरी बात स्वीकार करनेको तैयार हों, तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता

हूँ कि मैं हिन्दुओंकी संख्यावृद्धिको जरा भी महत्त्व नहीं देता। किसी भी धर्मके झूठे हिमायती केवल उसकी सेवासे ही वंचित नहीं रहते, बल्कि वे उसे बिलकुल नष्ट भी कर सकते हैं। इसलिए हरिजन-आन्दोलनका कार्य करते समय मेरी मंशा केवल यही रही है कि मैं हिन्दू समाजको अस्पृश्यताके शापसे विमुक्त और शुद्ध देख सकूँ। और यदि यह उद्देश्य केवल एक ही हिन्दू द्वारा प्रकट किया जाता है, तो भी मुझे पश्चात्ताप न होकर सच्ची प्रसन्नता होगी कि वह उद्देश्य आखिर मरा नहीं है।

दूसरा प्रश्न बहुत समझदारीका है। किन्तु यह प्रश्न उक्त सज्जन मुझसे न पूछते, यदि वह 'हरिजन' पत्रको निरन्तर पढ़ते होते और इस तरहसे शास्त्रोंकी की हुई मेरी परिभाषासे परिचित होते। मैं मनुस्मृतिको शास्त्रोंका एक अंश मानता हूँ, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं मनुस्मृतिके छपे हुए प्रत्येक श्लोकको प्रामाणिक समझता हूँ। मुद्रित मनुस्मृतिमे इतनी परस्पर विरोधी बातें है कि यदि उनका एक अंश स्वीकार किया जाय तो अन्य दूसरे अंश, जो उससे संगति नहीं रखते, अवश्य ही अस्वीकृत करने पड़ेंगे। मनुस्मृतिके उच्च विचारोंके कारण मैं उसे एक धार्मिक ग्रंथ मानता हूँ। जिन श्लोकोंको उक्त लेखकने उद्धृत किया है वे मनुस्मृतिकी मूल विषयके उद्देश्योंसे बिलकुल विरोध रखते हैं। लेखकको मालूम होना चाहिये कि मनुस्मृतिकी मूल प्रति इस समय किसीके पास नहीं है। सच तो यह है कि इस बातका कोई प्रमाण नहीं है कि मनु नामक ऋषि कभी हुए भी हैं। किसी-न-किसी तरह महान सत्सिद्धान्तोंके रचयिताओं या प्रकाशकोंको हिन्दू-धर्मकी प्रतिभाने कुछ घिस-सा डाला है। इसलिए सत्य-शोधकोंके लिए तो मेरी यही सलाह है कि जब वे शास्त्रोंका अध्ययन करें तो उन्हें सत्य और अहिंसाके विपरीत जो भी वस्तु शास्त्र ग्रन्थोंमें मिले, उसका वे परित्याग कर दें, क्योंकि सत्य और अहिंसा ही समस्त धर्म-मजहबोंके आधार स्तम्भ हैं।

लेखकको तीसरा प्रश्न तो सीधा आर्य-समाजियोंसे ही पूछना चाहिये। यह मैं नयी बात सुन रहा हूँ, कि आर्य-समाजमें सम्मिलित करनेके पहले हरिजनोका शुद्धि-सस्कार आर्य-समाजी आवश्यक समझते है, परन्तु ऐसा शुद्धि-संस्कार तो मैं जानता हूँ, जिसके द्वारा हरिजनोंमें शक्ति आ सकती है—और उनकी वह शुद्धि है गो-मांस एवं मुर्दार मांस न खाने, तथा दारू-शराब न पीनेकी प्रतिज्ञाका ठीक-ठीक पालन। लेखकका यह कहना बिलकुल ठीक है, कि अगर एक अछूत सचमुच ही हिन्दू है, तो फिर उसके शुद्धि-संस्कारकी कोई जरूरत ही नहीं। अगर किसीकी शुद्धिकी आवश्यकता है, तो वह उस सवर्ण हिन्दूकी है, जिसने कि अस्पृश्यतामे विश्वास करके पाप किया है।

हरिजन-सेवक
६ अप्रैल, १९३४



खोयी हुई जंजीर

एक खोयी हुई जंजीरका किस तरह पता चला, अन्तमे एक हरिजनकी ईमानदारीकी बदौलत वह किस प्रकार हरिजन कार्यमें ही आ गयी, इन सबका नीचे लिखा विवरण पाठकोंको रुचिकर होगा। पल्लाडम (तमिलनाड) के श्रीयुत आर० एम० कुमारस्वामी लिखते है—

"पूज्य महात्माजी, अभी हालमें जब आप तिरुपुरसे कोयमबतूर जा रहे थे, तब रास्तेमें पल्लाडममें आपको ४५.०) एक थैली दी गयी थी, वहा मेरी ४ वर्षकी भाजी आपको अपनी सोनेकी जजीर देना चाहती थी। मगर मेरी चाचीकी इच्छा नहीं थी कि वह बिटिया अपनी जजीर आपको उतार कर दे। इसलिए उसने उसे लेकर अपने पास रख लिया। जब आप पल्लाडम पधारे, तब न जाने कैसे उस भीड़में मेरी चाचीके पाससे जंजीर खो गयी। मैंने उससे कहा कि बेचारी बिटियाकी इच्छामें विघ्न डालनेका ही यह नतीजा है।

वही दो सप्ताहके बाद हमलोगोंको उस जजीरके बारेमे पता चला। दस-एक सालके एक हरिजन लड़केको भाग्यसे वह जजीर पड़ी मिल गयी थी। वह वहीं पासके एक गावका रहनेवाला था। १५ दिन बाद, जब हम उस लड़केके पिताके पास गये—जजीर उसीके पास थी—तो पहले तो उसने कहा कि मैं तुम्हारी जंजीर-वजीरके बारेमे कुछ नहीं जानता। उस बेचारेको यह अपडर था कि कहीं वह धर न लिया जाय। जब मैंने आपके प्रवासका उद्देश्य उसे बताया और यह भी कहा कि भाई, तुम्हारे लड़केको रास्तेमे जो पड़ी हुई चीज मिली, उसे अपने पास रख लेने मे तुमने कोई अपराध नहीं किया, तब कहीं उसे हमारा विश्वास आया और खुशीसे उसने वह जजीर हमें लौटा दी। मैंने उसे बतौर इनामके २५) दिये। उसने कृतज्ञतापूर्वक रुपये ले लिये। दारूखोरीकी अपनी बुरी लत छोड़ देनेका भी उसने मुझे वचन दिया। यहाके हरिजनोंमे वह सच्चा और भरोसेका आदमी समझा जाता है।

अब मेरे तमाम घरवाले बिटियाकी इच्छाके अनुसार यह जंजीर आपके पास भेज देना चाहते हैं। मैं यह भी चाहता हूँ कि आप इस जंजीरसे जो रकम आवे वह कृपा कर हमारे पल्लाडमके हरिजन-कार्यके लिए अलग रख दी जाय। मै खयाल करता हूँ कि इधरसे हरिजन-उद्धार-कार्यका यह एक अच्छा सा शुभारम्भ होगा।"

पत्र-लेखकको मैंने यह विश्वास दिला दिया है कि उनकी इच्छाके अनुसार ही जंजीरकी बिक्रीसे प्राप्त रकम पल्लाडमके हरिजन-कार्यके लिए अलग रख दी जायगी, पर उनका यह विचार वास्तवमे गलत है कि खोयी हुई सम्पत्तिपर उसे पानेवालेका अधिकार होता है। अगर मालिकका पता न लगे तो वह सम्पत्ति राज्यकी हो जाती है। मालिकको उसकी जंजीर लौटा देने के लिए मैं उस हरिजनको धन्यवाद देता हूँ। उस छोटी-सी बच्चीको उसके निश्चयपर तथा उसके घरवालोंको

भी, आखिरकार उसकी इच्छा पूरी कर देनेके लिए, धन्यवाद देता हूँ। फिर भी वह बिटिया यह न जानती हो तो जान ले कि अपनी उम्रकी वही सबसे पहली लड़की नहीं है जिसने हरिजन-कार्यके लिए अपनी प्यारी जंजीर मुझे दी हो।

हरिजन सेवक
१३ अप्रैल, १९३४



आप कैसी प्रार्थना करते हैं ?

ईश्वरके अनुग्रहसे विभिन्न-धर्मावलम्बी मेरे अनेक मित्र हैं। उनमे से मेरे कुछ मित्र हरिजन-आन्दोलनमें मेरी सहायता करने को उत्सुक हैं। यह प्रश्न मूर्तस्वरूप धारण कर रहा है और यह आवश्यक है कि इसका कोई निश्चित उत्तर दिया जाय। मेरी अपनी स्थिति तो बहुत स्पष्ट और निश्चित है। प्रचंड आत्मसुधारकी इस शुद्ध प्रवृत्तिमे मुझे सारे संसारके सहयोगकी आवश्यकता है। इसीसे मैं चाहता हूँ कि समस्त जगत इस प्रवृत्तिके अर्थ प्रार्थना करे, किन्तु कुछ अहिन्दू मित्र अपनी प्रार्थना कार्यरूपमें परिणत करना चाहते हैं और वह भी जहाँतक हो, मेरे साथ सहयोग कर के। मैं तो अधिक-से-अधिक सान्निध्यके रूपमें से उनका सहयोग चाहूँगा, पर उसमे एक मर्यादा है। मान लीजिये, किसी ईसाई या मुसलमान मित्र अथवा संस्थाको मैं कोई हरिजन बालक सौंप दूँ, तो पीछे वे क्या करेंगे? क्या उनका पालन-पोषण वे हिन्दू बालककी तरह करेंगे अथवा उसे अपने धर्ममे मिला लेंगे? मेरे लिए तो संसारके समस्त मुख्य धर्म समान हैं, क्योकि वे सभी सच्चे हैं। मनुष्य जातिकी आध्यात्मिक उन्नतिमें जो कमी अनुभवमे आती है, उसे ये सब धर्म-मजहब पूरी करते हैं। इसलिए मुझे सौंपे हुए मुसलमान, ईसाई और पारसी बालकोंका, उन्हींके अपने-अपने धर्मानुसार पालन करते हुए मुझे कभी कोई कठिनाई नही हुई। जिनके विशिष्ट धर्मशास्त्रोंके अनुसार उन्हें विशेष पूजा-पद्धति सिखलानेको उनके माँ-बापने कहा, इसलिए उनके धर्मका कुछ साहित्य भी मुझे देखना पड़ा। किसी मनुष्यका अभिप्राय जानना हो, तो शायद सरल-से-सरल मार्ग यह है कि उसकी प्रार्थनाका पता लगाया जाय। नीचे प्रार्थनाके मैं दो प्रकार देता हूँ:—

(१) हे प्रभो! तू अपने सिरजे हुए सब लोगोंको सद्बुद्धि दे जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य अपने प्रकाशके अनुसार तेरी उपासना करे और अपने धर्ममें रह कर विकासको प्राप्त हो।

(२) हे प्रभो! तू अपने सिरजे हुए सब लोगोंको सद्बुद्धि दे जिसके द्वारा प्रत्येक

मनुष्य उसीके अनुसार तुझे पूजे और तेरा अनुसरण करे, जिसके अनुसार पूजने और अनुसरण करने का मैं प्रयत्न करता हूँ।

यह स्पष्ट है कि प्रार्थनाका पहला प्रकार ऐसा है जिसे सभी ले सकते हैं। वह सर्वग्राही है। इसलिए इस प्रकारकी प्रार्थना जो व्यक्ति या संस्था स्वीकार करेगी, वह हिन्दू बालकका हिन्दू रूपमें, मुसलमान बालकका मुसलमान रूपमें, ईसाई बालकका ईसाई रूपमें अन्तःकरणपूर्वक पालन पोषण कर सकेगी। परन्तु प्रार्थनाके दूसरे पंथपर चलनेवाला व्यक्ति अन्तःकरणपूर्वक तो केवल अपने सम्प्रदायवालोंको ही ले सकता है—दूसरे सम्प्रदायवालोंको वह अपनी स्पष्ट इच्छा प्रकट कर के, अपने धर्ममें धर्मांतरित किये बिना, नहीं ले सकता।

जो मित्र इन पंक्तियोंको पढ़ने और लिखने का कष्ट उठावें, क्या वे मेरी जानकारीके लिए मुझे लिख भेजेंगे कि वे दोमें से किस प्रार्थनाको मानते और प्रतिदिन करते हैं ?

हरिजन सेवक
१३ अप्रैल, १९३४



यह हालत है !

श्रीयुत परीक्षितलाल मजुमदार लिखते हैं:—

"मैंने सुना था कि बेकारीके कारण भी, सच पूछिये तो, अस्पृश्यताकी वजहसे जिसने उद्योग-धन्धेके द्वार बन्द कर रखे हैं, हरिजनोंको ढोरोंके अनपचे गोबरमें से अनाजके दाने बीन-बीन कर पेट पालना पड़ता है। अभी हालमें, गुजरातमें खुद अपनी आँखों यह घृणित दृश्य देख कर मुझे बड़ी वेदना हुई। भाल जिलेके एक गांवका मैं निरीक्षण कर रहा था। भंगियोंकी बस्तीमे, मैंने देखा कि वहा तमाम सब जगह गोबर पड़ा सूख रहा है। इसका कारण पूछने पर वहाके हरिजनोंने बतलाया कि—"क्या करें, हमलोगोंको कहीं काम ही नहीं मिलता—पेट कैसे पालें ? इस गोबरमें से दाने बीन-बीन कर खाते हैं। पहले गोबर सुखाते हैं, फिर उसमें से अधचबाया-अनपचा अनाज अलग कर लेते हैं और उसे धो-सुखा कर उसका आटा पीस कर रोटियाँ बना लेते हैं।"

सवर्ण हिन्दुओंमें ऐसी बात न मैंने कहीं देखी है, न सुनी है। जब कि श्रीयुत परीक्षितलाल मजुमदारने स्वयं अपनी आँखोंसे यह सब देखा है, तब इस बातकी सचाईमें सन्देह करना व्यर्थ है। सवर्ण हिन्दुओंको समझना चाहिये कि यह अस्पृश्यता हिन्दू-समाजके एक अंगको कैसी दुर्गति कर रही है।

हरिजन सेवक
१३ अप्रैल, १९३४

एक हरिजनके कुछ प्रश्न

एक हरिजन भाईने मेरे पास नीचे लिखे प्रश्न भेजे हैं:—

१—"महात्माजी, आप हमारे उद्धार-कार्यमे क्यों इतनी दिलचस्पी ले रहे हैं?

२—"अगर आपके विचारमे सभी धर्म एक समान हैं, तो क्या खीस्त-धर्मावलम्बी अस्पृश्यताके खिलाफ लड़ने के अधिकारी नहीं है?

३—"अस्पृश्यता अगर दूर हो गयी, तो इससे हमलोगोंको क्या-क्या लाभ होंगे?

४—"हिन्दू-मन्दिरोंमें हम किस लिए जावें?

५—"हिन्दू देवी-देवताओंने क्या हमें सताया नहीं है?

६—"आर्य और अनार्यके–ये दो विभाग हमारे लिए बनाये गये हैं, तो फिर हमारे अलग रहने में हानि ही क्या है?

७—"अछूतोंमें भी अनेक उपजातिया हैं—इस सवालका हल आपने क्या सोचा है?

८—"एक बार आपने कहा था कि जिस दिन अस्पृश्यता दूर हो जायगी, उसी दिन स्वराज्य प्राप्त हो सकेगा, तो क्या यह वर्त्तमान आन्दोलन उसी लक्ष्य-प्राप्तिके लिए चलाया जा रहा है?

९—"अगर यही बात है, तो क्या जो अधिकार अन्य हिन्दुओंको मिलेंगे, वही सब हमारे ७ करोड़ अछूत भाइयोंको भी आप दिला सकेंगे?

१०—"मन्दिर खुलवाने और अस्पृश्यता दूर करने के बजाय यह काफी होगा कि आप हमारी आजीविकाका प्रबन्ध कर-करा दें।"

प्रश्न अच्छे है। इन प्रश्नोंके क्रमशः मेरे उत्तर ये हैं—

१. अस्पृश्यताके कलंकसे अपनेको मुक्त करके आत्मशुद्धिके अर्थ मैं इस हरिजन कार्यमें लगा हुआ हूँ। मैं अस्पृश्यतारूपी पापका प्रायश्चित कर रहा हूँ और जिस धर्मका मैं स्वयं अनुयायी हूँ उसका कीर्तिकामी होने के नाते मैं इस बातके लिए आतुर हो रहा हूँ कि मेरे सहधर्मी भी अस्पृश्यताके इस पाप कलंकसे मुक्त हो जायँ।

२. खीस्त धर्मावलंबी केवल इसके अधिकारी ही नहीं, बल्कि उनका यह भी कर्त्तव्य है कि उनके अपने समाजमे विद्यमान अस्पृश्यताका वे मुकाबिला करें, लेकिन अगर यह प्रश्न हो कि ईसाइयोंको हिन्दूधर्मकी अस्पृश्यताके खिलाफ़ लड़ना चाहिये, तो इसका यह उत्तर है कि ऐसा वे निश्चय ही नहीं कर सकते। कारण यह है कि ईसाइयोंके लिए हिन्दूधर्मके अस्पृश्य, अस्पृश्य नहीं होने चाहिये। अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका अर्थ है हिन्दुओंको उनके पापसे विरक्त कराना। यह कार्य सफलतापूर्वक अहिन्दुओंके द्वारा नहीं हो सकता—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार ईसाई या मुसलमान-समाजके अन्दर हिन्दू कोई धार्मिक सुधार नहीं कर सकते।

अगर इस प्रश्नका यह अभिप्राय हो कि ईसाई धर्ममें अछूतोंको धर्मान्तरित कर के हिन्दुओंमें विद्यमान अस्पृश्यताका मुकाबिला ईसाई करे, तो वे ऐसा कर के किसी भी दशामें हरिजन-कार्यमें सहायक नहीं हो सकते। यह प्रवृत्ति तो हिन्दुओंकी अपने धर्म-संशोधनकी प्रवृत्ति है। सवर्ण हिन्दू जब अपने इस पापका प्रायश्चित्त कर डालेंगे, उसी क्षण अस्पृश्यतासे हरिजनोंका पिण्ड छूट जायगा। धर्म-परिवर्त्तनके द्वारा यह सम्भव नहीं। इससे तो मौजूदा कटुता ही और बढ़ेगी और जो बुरी स्थिति आज है, उसमें और भी बखेड़ा खड़ा हो जायगा। हरिजन सेवक-संघके कार्य तथा हिन्दू धर्मान्तर्गत अन्य आन्तरिक सुधार-आन्दोलनोंकी बदौलत स्थिति धीरे-धीरे सुधर रही है और अस्पृश्यता दिन-ब दिन कुछ-न-कुछ दूर होती जा रही है।

३—कई प्रकारके लाभ होंगे। उनमे से कुछ लाभोंको मैं यहाँ गिनाता हूँ—

(क)—प्रायश्चित कर के सवर्ण हिंदू शुद्ध हो जायँगे।

(ख)—उन्नत्ति-मार्गमे बाधक अस्पृश्यताका कृत्रिम अड़ंगा दूर होते ही उसी क्षण हरिजनोकी आर्थिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अवस्था उन्नत हो जायगी।

(ग)—हरिजनोपर आरोपित अस्पृश्यताका एक ऐसा जहर है कि उसके घेरेमे जो भी आया उसको वह व्याप गया और इसलिए हिंदू, ईसाई, मुसलमान और अन्य सम्प्रदाय एक दूसरेके लिए अस्पृश्य बन गये है। वास्तविक अस्पृश्यता-निवारण हम सबको निश्चय ही एकाकार कर देगी और इस प्रकार भारतके विभिन्न सम्प्रदायोंमें सच्ची एकता स्थापित हो जायगी।

(घ) पूरी तरहसे यदि अस्पृश्यता दूर हो गयी, तो विश्व-बन्धुता बढ़ानेवाला यह एक बहुत बड़ा काम होगा।

४—हरिजन अगर नहीं चाहते तो उन्हें हिन्दू-मन्दिरोंमें जाने की कोई आवश्यकता नहीं, लेकिन अगर उनका मन्दिरोमे विश्वास है तो उन्हें वहाँ अवश्य जाना चाहिये। मंदिर-प्रवेश आन्दोलनका उद्देश्य हरिजनोको हिन्दू-मंदिरमे जाना नहीं, परन्तु देवाराधनकी इच्छासे जानेवाले तमाम हरिजनोंके लिए मंदिरोंके द्वार खुलवा देना है। इसे यों भी कह सकते हैं कि यह आन्दोलन सवर्ण हिन्दुओंके प्रायश्चित और हृदय-परिवर्त्तनका आन्दोलन है।

५—मुझे दुःख होना चाहिये, यदि मुझे यह मालूम हो कि हिन्दू देवी-देवताओंने हरिजनोको सताया था। उन्होंने यदि ऐसा किया तो वे निश्चय ही कल्याणकारी नहीं, किन्तु अपकारी देवी-देवता थे और इसलिए वे त्याज्य हैं।

६—वह साहसी ही व्यक्ति होगा, जो आज कुछ भी सफलताके साथ यह कह सके कि कौन तो आर्य है और कौन अनार्य। इतिहासकार तो हमे यही बतलाते हैं कि इन दोनो जातियोंको घुले-मिले कई शताब्दियाँ गुजर गयीं। अगर अब फिरसे आर्य-अनार्यके अनिष्टकर विभागका कोई प्रयत्न किया गया, तो उससे समस्त भारतको

हानि पहुँचेगी और इतना ही नहीं, बल्कि उसकी लपेटमें सारी मानव-जाति क्षत-विक्षत हो जायगी।

७—जब सवर्ण हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत अस्पृश्यता जड़-मूलसे दूर हो जायगी, तो अछूत समाजमें उसकी जो शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं, वे तो आप ही मुरझा जायँगी।

८—वर्त्तमान आन्दोलन सिर्फ सवर्ण हिन्दुओंकी और इसलिए हिन्दुओंकी ही शुद्धिके लिए चलाया जा रहा है। जब यह शुद्धि हमे प्रत्यक्ष सिद्ध हो जायगी, तब केवल 'स्वराज्य' ही नहीं, बल्कि जिस प्रकार रात्रिका अनुगमन दिन करता है, उसी प्रकार उसके साथ ही अनेक वांछनीय परिणाम हमें प्राप्त होंगे। 'स्वराज्य' शब्दका अर्थ यहाँ महज एक कानूनी विधान नहीं है, बल्कि उससे कुछ अधिक अच्छी और स्थायी चीज है। मैं उसे एक नैसर्गिक अवस्था कहूँगा, जिसका विकास मनुष्यकी अन्तरात्मासे हुआ करता है।

९—'स्वराज्य' शब्दका चाहे जो अर्थ निकाला जाय, पर यदि उसमे हरिजनोको ज्योंकी त्यों वही सब अधिकार हासिल न हुए, जो अन्य हिन्दुओं तथा दूसरे तमाम सम्प्रदायोंको मिले हुए हैं या मिलेंगे, तो अस्पृश्यता-निवारणका यह कार्य एक तरहका दम्भ ही कहा जायगा।

१०—मेरे जैसे एक गरीब मनुष्यके बूतेका यह काम नहीं है कि मैं लाखों-करोड़ों आदमियोंकी आजीविकाका कोई प्रबन्ध कर सकूँ। यह तो उन्हींके अपने पूरे उद्योग और भगवानकी कृपासे हो सकता है; किन्तु यदि हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोल दिये गये और अस्पृश्यता जड़मूलसे नष्ट हो गयी, तो जिस भारी चक्कीमे वे आज पिस रहे है, उससे वे छुटकारा पा जायँगे और दूसरे मनुष्योंकी तरह ईमानदारीसे अपनी रोजी कमाने का उन्हें भी समान अवसर मिल जायगा।

हरिजन सेवक
२० अप्रैल, १९३४

गलत रास्ता

हरिजन कार्यमें रुचि रखनेवाले एक सज्जनने सनातनियोंके लेखोंसे लेकर कुछ-एक कतरनोका एक संग्रह मेरे पास भेजा है। उनमे मेरे लेखोंके कुछ ऐसे भी अंग-भंग अवतरण दिये गये हैं, जिनके द्वारा साधारण जनता मेरे विरुद्ध उभाड़ी जा सकती है। उपर्युक्त सज्जनने इस अभियोगकी सफाई देने के लिए मुझे लिखा है। मेरे लिए यह कोई नयी बात नहीं है। इनमें से कुछ बातोंका जवाब मैं कई बार दे चुका हूँ। मैं कोई भी सफाई दूँ, वे लोग तो सुनेंगे नहीं जो पक्षपातसे काम ले रहे है और जो मेरे अनुकूल हैं, उनके ऊपर खास कर ऐसे वाहियात अभियोगोंका कोई असर नहीं पड़ेगा; लेकिन कायल न होनेवाले आलोचकों और उन समर्थकोंके बीचमें,

जो किसीके फुसलाने में नहीं आते, हमेशा एक ऐसा मध्यम वर्ग रहता है, जो इधर या उधर किसी एक तरफ झुक सकता है। जिन सज्जनने मेरे पास ये कतरनें भेजी है, शायद वह उसी मध्यम वर्गके है इसलिए उनके पत्रका 'हरिजन'में उत्तर देना आवश्यक है। उनकी भेजी हुई कुछ कतरनोंमें लिखा है:—

१—"महाभारत आदिसे लेकर अन्त तक वाहियात कूड़े-कचरेका ढेर है।"

२—"श्रीकृष्णको मैं 'अवतार' नहीं, बल्कि एक मामूली आदमी समझता हूँ।"

३—"हिन्दू-मन्दिर वेश्यालय या चकले हैं।"

४—"सदाचारमें मेरा विश्वास नहीं है। मैं मूर्तिभंजक हूँ।"

५—"हिन्दुओंका धर्म शैतानीसे भरा हुआ है। उनके शास्त्र निरीश्वरतापूर्ण और उनके ऋषि तथा मुनि शैतान है।"

यह चिन्ह सनातनियोंके मौलिक लेखोमें हैं। किसी भी उदाहरणके अन्तमें 'यंग इण्डिया' अथवा 'नव जीवन'का कोई उल्लेख नहीं है। मेरे पास 'यंग इण्डिया' या 'नव जीवन' की फाइल नहीं है। इसलिए यहाँ अपनी स्मृतिसे ही मुझे काम लेना है।

महाभारतके विषयमे, पहले जो मैंने कहा है और आज भी मेरा जो विश्वास है, वह यह है कि यह महान ग्रन्थ बहुमूल्य हीरोंकी खान है। उसे जितना ही गहरा आप खोदेंगे, उतने ही हीरे उसमें आपको मिलेंगे।

श्रीकृष्णके विषयसे जो पहले था, आज भी मेरा वही विश्वास है कि भगवानके अनेक अवतारोंमें श्रीकृष्ण भी एक अवतार हैं।

हिन्दू-मन्दिरोंको मैंने कभी वेश्यालय नहीं कहा, किन्तु मैंने यह अवश्य कहा है और अब भी कहता हूँ कि हिन्दुओंके कुछ मन्दिर वेश्यालयके समान है।

मैं यह कभी नहीं कह सकता कि 'सदाचारमें मेरा विश्वास नहीं है' क्योंकि मेरी दृष्टिमें धर्म और सदाचार ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। मेरे तमाम लेख इस बातका साक्ष्य देते हैं।

वास्तवमें मैं मूर्तिभंजक हूँ यदि मैं मूर्तिपूजक भी हूँ ; झूठे देवताओंके सामने मैं कभी अपना मस्तक नहीं झुकाता।

पाँचवाँ अवतरण तो एक ऐसा कुफ्र है, जिसे मैं कभी मुँहसे निकाल ही नहीं सकता। अगर मैंने हिन्दू धर्मको शैतानीसे भरा धर्म माना होता, तो उसका मैंने बहुत पहले ही परित्याग कर दिया होता।

सनातनियों द्वारा प्रकाशित पत्रोंमें ऐसे अंग-भंग या विकृत लेख छापने से सनातन धर्मका कोई लाभ होने का नहीं।

हरिजन-सेवक

२० अप्रैल, १९३४

❀

बिहार ही क्यों ?

एक विद्यार्थी लिखता है:—

"भूकम्पके विषयका आपका लेख पढ़ा। मैं विज्ञानका विद्यार्थी हूँ, इसलिए मैं यह नहीं मान सकता कि भूकम्पका अस्पृश्यतासे कुछ सम्बन्ध है। आप भूकम्पको हमारे पापका परिणाम मानते हैं। यह तो निरा वहम है, पर मान लीजिये कि ऐसा सम्बन्ध है, तो भूकम्प बिहारमें ही क्यों आया? अस्पृश्यताके पापमें तो सारा ही हिन्दुस्तान सना हुआ है। कृपया इस शंकाका निवारण कीजिये। आपपर मेरा पूरा विश्वास है। मगर आपकी यह बात तो किसी तरह गलेके नीचे नहीं उतरती।"

विज्ञानके विद्यार्थीको जितना समझमें न आवे उतना न मानने का अधिकार नहीं। विज्ञानका विद्यार्थी नम्र होता है। जो बात वह सुने उसे झटसे ठुकरा न दे, उसपर उसे विचार करना चाहिये। इस संसारमें थोड़ी ही चीजोंको हम समझ सकते हैं, अगणित वस्तुओंको नहीं समझ सकते। इसीसे ज्ञानियोंको ज्यों-ज्यों ज्ञान प्राप्त होता जाता है, त्यों-त्यो वे नम्र बनते जाते हैं; क्योंकि ज्ञानीका ज्ञान तो अपने अज्ञानका पहाड़ देखने मे है। 'जितना ही गहरा वह उतरता है, उतना ही वह देखता है कि वह तो कुछ भी नहीं जानता, बल्कि जितना वह जानता है, वह सब उसका अनुमान ही है। ऐसा लिख कर मैं विज्ञानका खंडन नहीं करना चाहता। गल्प ही क्यों न हो, वह ज्ञानका उपयोग तो है ही; किन्तु जितना जानने को है, उसे देखते हुए तो हमारा उपलब्ध ज्ञान समुद्रके बिन्दुसे भी न्यून है।

इस जगतमें जीवमात्रका मूल एक ही है और इसीसे मूलस्वरूपमे सब एक ही है। इसमें वनस्पतिसे लेकर मानव प्राणीतक—सभीका समावेश हो जाता है। जो यह समझता है उसकी दृष्टिमें एक जीवका दुःख उन सब जीवोंका दुःख है, एकका सुख उन सबका सुख है। अतएव, त्यागवृत्तिमें सच्चा सुख माना है और है भी। इसलिए यदि वह विद्यार्थी जीवमात्रका ऐक्य स्वीकार करता है, तो बिहारके दैवी दण्डमे सभी आ जाते हैं। जिन्हें भूकम्पका स्पर्श मालूम नहीं हुआ, वे कुछ अछूते नहीं रहे। प्रत्यक्ष रीतिसे उन्हें अनुभव नहीं हुआ, तो यह उनका अज्ञान समझना चाहिये। बिहार ही क्यों, और दूसरा प्रान्त क्यों नहीं—यह ईश्वरसे पूछनहारे हम कौन है? उसकी कला समझमे नहीं आती। उसकी तो अविगत गति है। इसीसे, जहाँ बुद्धिकी गति नहीं, वहाँ श्रद्धा काम देती है।

यह हम अनेक उदाहरणोसे सिद्ध कर सकते हैं कि भौतिक घटनाओंका अध्यात्मके साथ सम्बन्ध होता है। भौतिक वस्तुकी उत्पत्ति भी एक ही शक्तिसे होती है। अत. भौतिक तथा आध्यात्मिकके बीचमें अनिवार्य भेद नहीं है। वर्षाका होना

एक भौतिक घटना है, पर उसका सम्बन्ध मनुष्यके सुख-दुःखके साथ तो है ही, तो फिर उसके पाप-पुण्यके साथ उसका सम्बन्ध क्यो नहीं ? संसारके इतिहासमें ऐसा समय हमे याद नहीं पड़ता कि जब असंख्य लोगोंने भूकम्प आदि घटनाओंको मनुष्यके पापके साथ न जोड़ा हो। आज भी अनेक स्थानोंमें धार्मिक मनुष्य इस सम्बन्धको मानते है।

हमारे किस पापके कारण ऐसा संकट आता है, यह कोई समझ नहीं सकता। स्वर्ण नियम तो यह है कि इसे सब लोग अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक पापका दण्ड मानें। 'तुम्हारे पापकी बदौलत यह संकट आया है'—ऐसा कहने मे अभिमान है। 'मेरे पापसे यह हुआ है'—ऐसा मानने में नम्रता है, ज्ञान है। जो लोग अस्पृश्यताको पाप नहीं मानते उन्हें यह मनवाने का मेरा प्रयत्न है ही नहीं कि भूकम्प अस्पृश्यता-पापका फल है। वे तो खुशीसे मानें कि वह मेरे पापका परिणाम है। ऐसी घटनाओंमे सत्य-असत्यका अन्तिम निर्णय अपूर्ण मनुष्य कर ही नहीं सकता। हमारे अपने पापकी बदौलत भूकम्प आया—इतना विश्वास यदि मैं अपने पाठकोंको करा सकूँ, तो मैं समझूँगा कि मेरा काम पूरा हो गया। फिर तो अस्पृश्यताको महापाप माननेवाले भूकम्पके साथ उसका सम्बन्ध जोड़ कर समयपर उस पापका यथाशक्ति प्रायश्चित करेंगे ही।

हरिजन-सेवक
२० अप्रैल, १९३४



एक सुधारककी कठिनाई

एक सज्जन लिखते हैं—

"अस्पृश्यता-निवारण कार्यके सिलसिलेमें, मालूम होता है, आप कुछ ऐसे विचार व्यक्त कर रहे हैं जो आपके 'यंग-इण्डिया' में प्रकाशित पहलेके लेखोंसे मेल नहीं खाते। दोनोंमें कुछ असंगति सी मालूम देती है। उदाहरण लीजिये—कुछ वर्ष पहले आपने लिखा था कि अन्तर्भोजके प्रतिबन्धकी आवश्यकता या औचित्यको कबूल करते हैं, तो आप यह कैसे कह सकते हैं, जैसा कि आजकल आप कह रहे हैं कि अस्पृश्यताके आधारपर किसी अस्पृश्यके साथ बैठ कर खानेमें एतराज करना एक पाप है। मैं आपकी इस बातसे तो सहमत हूँ कि अन्तर्भोज-विषयक प्रतिबन्ध वर्णधर्मका कोई अंग नहीं है, पर यह मेरी समझमें नहीं आता कि अन्तर्भोजके कारण आत्म-विकासमें बाधा क्यों पड़ती है ?"

यहाँ दोहरा घुटाला हुआ है। उक्त उदाहरणमें अस्पृश्यताके आधारपर अन्तर्भोज सम्बन्धी प्रतिबन्ध आत्म-विकास विषयक प्रतिबन्धसे सर्वथा भिन्न चीज है। पहले प्रतिबन्धने जहाँ उस समूचे वर्गको ही बाहर कर रखा है, जिसका अस्तित्व तक अस्वीकार किया जा रहा है, वहाँ दूसरे प्रकारका प्रतिबन्ध किसी व्यक्तिको, किसी विशेष जातिमें जन्म लेने के कारण, अन्तर्भोजसे बाहर नहीं रखता। किन्तु हाँ, उन व्यक्तियोंको वह बाहर रख सकता है, जो कुछ खास बुरे व्यसनोंके आदी हों। इस प्रकार अस्पृश्यताके आधारपर जो प्रतिबन्ध माना जाता है वह तो अस्पृश्योंपर ज्यों-का-त्यो लागू रहता है। उनकी बुरी-भली आदतोंसे उसका कोई प्रयोजन नहीं और जो प्रतिबन्ध आत्म-विकासके आधारपर किसी व्यक्तिपर लगाया गया होगा, वह उसी क्षण ढीला पड़ जायगा, जिस क्षण कि वह अपनी आपत्तिजनक आदतोंका परित्याग कर देगा। इसलिए 'यंग-इण्डिया'के उस लेखके तथा मेरी वर्त्तमान स्थितिके दर्म्यान कोई असंगति नहीं है। 'यंग-इंडिया'में मैंने जो मत प्रकट किया था, उसका अगर मैं बचाव न भी कर सकूं, तो भी मेरे इस कथनसे लेखकका सन्देह दूर हो जाता है कि अस्पृश्यताके आधारपर अन्तर्भोज-सम्बन्धी आपत्तिको, जो मैंने निन्दनीय बतलाया है, उसका 'यंग-इंडिया' में उल्लिखित प्रतिबन्धसे कोई वास्ता नहीं।

लेखकने एक और भी प्रश्न पूछा है। वह यह कि, वैष्णव-साहित्यमें, जो निश्चित या अटल मर्यादाएँ बाँध दी गयी है, उनके साथ मेरी इस स्थितिका मेल कैसे बैठेगा ? प्रश्न युक्तिसंगत है। मुझे कबूल कर लेना चाहिये कि मैं इन दो स्थियोंके बीच मेल मिलानेमे असमर्थ हूँ। यद्यपि वैष्णव-धर्मावलम्बी होनेका मुझे गर्व है, तथापि मेरे गर्वको इस बातकी अपेक्षा नहीं है कि मैं वैष्णव-साहित्य द्वारा निर्धारित तमाम विधि-विधानोंकी पाबन्दी ही करूँ। वैष्णव धर्मसे मैं इसलिए चिपटा हुआ हूँ कि वह विश्व-प्रेम अर्थात् विश्व-बन्धुत्वकी शिक्षा देता है, सत्य और अहिंसाके पूर्ण परिपालनपर वह सबसे अधिक जोर देता है और भगवानकी निष्काम भक्तिका आग्रह रखता है। हिन्दुओंके धार्मिक तथा गार्हस्थ्य-साहित्यमें संकुचितता, असहिष्णुता और हठधर्मीकी जो खरी निन्दा वैष्णव संतो तथा अन्य लेखकोने की है, वह अनुपम है और अन्यत्र दुर्लभ है। इसलिए मुझे उन सब विधि-विधानोकी परेशानीमें पड़ने की जरूरत नहीं, जो प्रत्यक्ष ही वैष्णव-तत्त्वके विपरीत है।

अन्तमें वह सज्जन लिखते हैं—

"हम अपनी शंकाओंका स्वयं समाधान नहीं कर सकते। आपके किये बेहतर निर्णयको हम मान लेते हैं; लेकिन जब आपके उपदेशोंपर हम चलते हैं, तो हमे सदा यह खतरा रहता है कि कहीं सारे प्रिय बन्धु-बान्धव् तक हमारा बहिष्कार न कर दें। ऐसी परिस्थियोंमें, कहिये, क्या किया जाय ?"

इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है। इसका निश्चय तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी कष्टसहनकी शक्तिके अनुसार ही कर सकता है। जिन्हें यह महसूस होता हो कि अस्पृश्यता एक प्रकारका पाप है, वह तो उसे किसी भी रूपसे न मान ही सकते हैं न व्यवहारमें ही ला सकते हैं। मुझे हरएक सुधारकसे यह आशा करनी चाहिये कि उसे जो भी सामाजिक दण्ड भोगना पड़े, उसके लिए उसे अपने विश्वासके बलपर साहसपूर्वक तैयार रहना चाहिये। दुनिया भरके सुधारकोंकी यही दशा हुई है।

हरिजन-सेवक
२७ अप्रैल, १९३४

मत किसके लिये जाने चाहिये ?

उस दिन एक सनातनी पंडितने मुझसे यह शिकायत की कि बनारसके मजिस्ट्रेट अस्पृश्यता-निवारण बिलोंके संबन्धमें अहिन्दुओं एवं मंदिर और मूर्ति-पूजामें विश्वास न करनेवाले आर्य समाजियों, सिक्खों तथा दूसरे लोगोंका मत-संग्रह कर रहे हैं। अगर ऐसी बात है, तो वह आश्चर्यजनक है। मेरी तो हमेशा ही यह राय रही है और 'हरिजन' में भी अपना यह विचार मैं प्रकट कर चुका हूँ कि अगर मत लेना ही है, तो न सिर्फ हिन्दुओंकी, बल्कि हिन्दू-हरिजनोंकी भी मतगणना पक्ष या विपक्षमें नहीं की जानी चाहिये। कारण यह है कि अस्पृश्यताका संबन्ध तो सिर्फ सवर्ण हिन्दुओंसे ही है और ये बिल केवल उन्हींके मत प्रकाशनार्थ प्रस्तुत किये गये हैं। अगर यह बात नहीं है, तब तो यह अवर्ण हिन्दुओं तथा दूसरोंके द्वारा सवर्ण हिन्दुओंपर बलात्कार ही हुआ। अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन सवर्ण हिन्दुओंके आंतरिक सुधारका एक आन्दोलन है। यह तो पश्चाताप और आत्मशुद्धिकी प्रवृत्ति है। यह सब आंतरिक सुधार बाहरी सहायतासे होने का नहीं। इसलिए अगर सरकारपर मेरा कोई प्रभाव पड़ता हो और सनातनी पंडितकी दी हुई सूचना सही हो, तो मुझे सरकारको यह सलाह देनी चाहिये कि इन बिलोंके प्रचारित करने के संबन्धमें उसकी तरफसे जो आज्ञाएँ प्रकाशित की गयी हैं, उन्हें फिरसे देखे और उनमें उचित संशोधन कर दे, ताकि बड़ी धारासभामें जो बिल पेश हैं, उनपर सिर्फ सवर्ण हिन्दुओंका ही मत लिया जाय।

मुझे भय इस बातका नहीं है कि अहिन्दुओंके मत पक्षमें आ जानेसे सम्भवतः ये बिल पास हो जायेंगे। मेरी तो यह धारणा है कि सनातनी कहलानेवाली जनताका मत असलमें प्रतिनिधिक मत नहीं है। जहाँ तक मैं जानता हूँ हरिजनोंके लिए मंदिर खोलनेमें सवर्ण हिन्दुओंका काफी बड़ा बहुमत है। मैं देखता हूँ कि इन बिलोंके पास कराने के सम्बन्धमें अपना निर्णय देने में साधारण जनता अयोग्य है।

यह प्रश्न तो खालिस कानूनका है। कानूनके पंडित ही इसे तय कर सकते हैं। अगर सवर्ण हिन्दुओंका काफी बड़ा बहुमत हरिजनोंके लिए मंदिर खोल देने के पक्षमें हो, तो बड़े-बड़े पंडितोंका विरोध रहते हुए भी मन्दिर खोल देने पड़ेंगे। मौजूदा कानून अगर उस बहुमतको सफल बनाने में असमर्थ है—जैसा कि कानूनदाँ कहते हैं कि वह असमर्थ है—तो धारासभाको चाहिये कि मौजूदा चलनमें वह ऐसा सुधार कर दे, जिससे कि सवर्ण हिन्दू अपने मतके अनुसार निर्बाध रीतिसे चल सकें।

सचमुच इस दृष्टिसे स्थिति देख ली जाती तो लोकमतके लिए कदापि बिल प्रचारित नहीं किये जाने चाहिये थे। ये बिल स्वतः तो एक भी मन्दिर हरिजनोंके लिए नहीं खोल सकते। ये बिल तो सहायक मात्र हैं। विरोधियोंका कहना है कि अगर एक अकेला ही सवर्ण हिन्दू मन्दिर खोल देने के विरुद्ध हो और सचमुच कोई भी मंदिर खोलने के विरुद्ध न हो, तो वह मंदिर हरिजनोंके लिए नहीं खुल सकता। यह बात युक्तियुक्त नहीं है, किन्तु सनातन धर्मके नामपर बोलने का जिनका दावा है, उनकी ऐसी कल्पना है और वे यह दलील उपस्थित करते हैं। मेरी रायमें सरकारका यह कर्त्तव्य है कि वह इस सम्बन्धमें यथोचित न्यायसे काम ले और सुधार-मार्गमें निश्चय ही जो कानूनी बाधा है, उसे हटा दे। बिलोंका सिर्फ यही अभिप्राय है और कुछ नहीं। मन्दिरका खुलना तो पूरे तौरसे उन्हीं सवर्ण हिन्दुओंकी इच्छापर निर्भर करता है, जिनका कि मंदिरोंमें देव-पूजा करने का अधिकार है।

हरिजन-सेवक
४ मई, १९३४



तो यह शर्मकी बात है

जिन पण्डितजीने बिलोंपर लोकमत लेने के बारेमें शिकायत की है, उन्होंने मुझसे यह शिकायत की कि सुधारकोंके कहने पर कुछ मन्दिर जबरदस्ती हरिजनोंके लिए खुलवा दिये गये है। अगर ऐसा हुआ है, तो निश्चय ही मेरे जैसे आदमियोंके लिए यह शर्मकी बात है, जो इस आन्दोलनको विशुद्ध धार्मिक दृष्टिसे देखते हैं और उसे एक आत्मशुद्धिका आन्दोलन समझते हैं। अगर तमाम सारे मन्दिर हरिजनोंके लिए जबरन खुलवा दिये जायँ, तो हिन्दू धर्मके हकमें यह बात कुछ अच्छी नहीं समझूँगा। जिस विश्व-बन्धुत्वके लक्ष्यको सामने रख कर यह आन्दोलन आरम्भ किया गया है, उसे ऐसे बलात्कारसे कोई लाभ होने का नहीं। सचमुच एक भी मन्दिर जोर-जबरदस्तीसे हरिजनोंके लिए खुलवाया गया, तो इससे हरिजन-आन्दोलनमें बाधा ही पहुँचेगी। हृदय-परिवर्त्तन तो केवल स्वतन्त्र वातावरणमें ही हो सकता है।

दो मन्दिर उत्तरमें जबरन हरिजनोंके लिए खुलवा दिये गये हैं। इस शिकायतका उक्त पण्डितजीने कोई सबूत नहीं दिया। मैंने उनसे सबूत माँगे है और इस शिकायतकी तसदीक करने के लिए अपने मित्रोंको भी लिखा है। मैंने देखा कि इस विषयकी चर्चा कर देना ही अच्छा है, तसदीककी परीक्षामे रहना ठीक नहीं। अगर यह बात सच निकली, तो जितनी ही जल्दी यह गलती सुधार दी जायगी, हरिजन-कार्यके हकमें उतना ही अच्छा होगा। जबतक अनुकूल समय न आ जाय, तबतकके लिए वे मन्दिर हरिजनोंके लिए बन्द कर देने चाहिये और अगर यह शिकायत असत्य साबित हुए या उसमें अत्युक्ति दिखायी पड़ी, तो भी मेरी इस जरूरतसे ज्यादा दी हुई चेतावनीसे किसीका कुछ बिगड़ेगा नही।

हरिजन-सेवक
४ मई, १६३४

हरिजन क्या करें ?

पाठकोंको यह तो मालूम ही है कि मैंने हरिजनोंको हरिजन-सेवक-संघकी समितियोमें अपने प्रतिनिधित्वका आग्रह न रखने के लिए समझाया है। इसका अत्यन्त सरल और सम्पूर्ण अर्थ यह है कि अस्पृश्यताको पाप माननेवाले तथा भूतकालमे हरिजनोंके प्रति किये गये अन्यायका प्रतिशोध करनेवाले सवर्ण हिन्दुओंके लिए ये समितियाँ बनी हुई है। अतएव, सवर्ण हिन्दू देनदार है और हरिजन लेनदार। जब देनदार यह विचार करते हैं कि देना किस प्रकार चुकाया जाय, तब यह अकेले उन्हींका काम होता है कि वे लेनदारोंके आगे उनकी स्वीकृतिके लिए ऋण परिशोधके प्रस्ताव तैयार करके रखे। लेनदारोंकी भी अपनी समितियाँ हैं। वे या तो उन प्रस्तावोंको स्वीकार कर ले या अस्वीकार कर दे अथवा स्वीकार करने के पहले यह बतलावे कि उनमे कैसे क्या संशोधन होने चाहिये। इससे मेरी यह तजवीज है कि हरिजन-सेवक-संघकी समितियोंको मदद करने के लिए हरिजनोंके परामर्श-दायक-मण्डल बनाये जायँ।

मेरे इस प्रस्तावके सम्बन्धमे एक हरिजन भाईने लिखा है—

"अगर आप कृपा कर एक ऐसे आदर्श हरिजन-दायक-मण्डलका चित्र खींच दें, जिसमे उसके कर्त्तव्य और कार्य विधि तथा उसके अपने अधिकारका निदर्शन हो, तो मुझे उसकी एक स्पष्ट कल्पना हो जायगी। ऐसे मण्डलोंके स्थापित करने की आवश्यकता तो है, यह देखते हुए भी मुझे यह चित्र आवश्यक लगता है।"

प्रश्न ये उचित हैं। मेरी यह तजवीज है कि ऐसे छोटे-छोटे व्यवस्थित प्रतिनिधिक मण्डल बनाये जायँ जो स्थानीय हरिजनोंके मतको ठीक-ठीक व्यक्त कर

सकें। वे अपने काम-काजके नियम बनावें और स्पष्टतया बतलावें कि सवर्ण हिन्दुओंसे वे क्या चाहते हैं। सामान्य रीतिसे हरिजन-सेवक-समितियोंके कामका भी निरीक्षण करें। ऐसे परामर्श-दायक मण्डल जहाँ-जहाँ बनें वहाँ वे हरिजन-सेवक-संघको अपने अस्तित्वका ज्ञान करावें और यह बतलावें कि उन्हें सहायता देने के लिए वे स्वयं तैयार हैं? अगर हरिजन-सेवक-संघकी समितियोंमें अपना ऋण चुकाने अर्थात् हरिजन-सेवा करने की सच्ची आतुरता होगी, तो इन परामर्श-दायक-मण्डलोंके साथ वे प्रगाढ़ मित्रता जोड़ लेंगी और दोनोंके बीच पूरा सहयोग और सामंजस्य रहेगा। पारस्परिक संदेहके कारण प्रारंभमें, संभव है, कुछ संघर्षण हो। हरिजन-सेवक संघ स्वभावतः अधिक सुसंघटित तथा हर तरहसे सम्पन्न है, इसलिए जो माँगे लुटाऊ देख पड़ें, उनपर विचार करते समय उन्हें युक्तिसे काम लेना पड़ेगा। परामर्श-दायक-मण्डल विचार-पूर्वक माँगें पेश करें। ये मण्डल जितना ही अधिक विवेकसे काम लेंगे, उतना ही अधिक कृतकार्य होंगे। सम्मानपूर्वक अपना काम चलाने की उनकी योग्यता, यदि कभी प्रसंग आ जाय, तो उन मण्डलोंको अपने स्वत्व रक्षाकी कला सिखा देगी। उन्हें जानना चाहिये कि बिना हरिजनोंके सहयोगके सवर्ण हिन्दू अपना ऋण कदापि नहीं चुका सकते। किन्तु स्वत्व-रक्षाका प्रश्न अभी हालमें तो उठता नहीं, क्योंकि हरिजनोंका बहुत बड़ा भाग इतना अधिक लाचार बन गया है कि उसमें अन्यायका सामना करने की इच्छा होते हुए भी शक्ति नहीं है। मेरे कहने का क्या आशय है, यह मैं समझता हूँ। हरिजन-सेवक-संघके तीन काम हैं—हरिजनोंका आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक दर्जा बढ़ाना अथवा दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो सदियोंसे सवर्ण हिन्दुओंने हरिजनोंके मार्गमें जो अड़ंगे लगा रखे हैं, जिनके कारण वे जीवनके किसी भी क्षेत्रमें सिर ऊँचा नहीं उठा सकते, उन सबको हटाना। इसलिए जहाँ कहीं आवश्यकता मालूम हो, वहाँ हरिजन-सेवक-संघको चाहिये कि वह कुएँ खुदवा दे, छात्रालय तथा पाठशालाएँ स्थापित करा दे, छात्रवृत्तियाँ लगा दे और अन्य सामाजिक सुविधाएँ हरिजनोंको दिला दे। इन बातोंमें सामान्यतया हरिजनोंको जहाँ सहायता मिलती है वहाँ वे ले लेते है। इसलिए परामर्श-दायक-मण्डल, सेवक-संघोंको उपयोगी तजवीजें बतला कर और जिस जातिके वे स्वयं प्रतिनिधि हैं, उसे यथाशक्ति सहायता देकर, इस कार्यको आगे बढ़ा सकेंगे तथा स्वावलम्बी बना सकेंगे। इसी रीतिसे उन्हें स्वत्व-रक्षाकी शक्ति प्राप्त होगी। थोड़ेमें कहा जाय तो परामर्श-दायक-मण्डलोंके लिए इस कार्यमें सहायता करने का उत्तम मार्ग यह है कि वे आन्तरिक सुधारोंका काम अपने हाथमें ले लें और हरिजनोंके अन्दर ऐसी जागृति पैदा कर दें कि जिससे वे यह मानने लगें कि समाजके दूसरे लोग जो अधिकार भोग रहे हैं, उन्हीं सब अधिकारोंके भोगनेका उन्हें भी हक है।

हरिजन-सेवक
४ मई, १९३४

❀

हरिजनोंके कष्ट

गौहाटीमें हरिजनोंकी ओरसे मुझे जो मानपत्र दिये गये थे, उनमे से एक मानपत्र ऐसा था जिसमें उनके कष्टोंका निम्नलिखित वर्णन किया गया था—

१—"महान हाजी मदिर तथा दूसरे अनेक देवालयोंमें पूजार्चा करने के लिए हमलोग नहीं जा सकते। इसी प्रकार महापुरुषीय अथवा दामोदरीय सम्प्रदायवालोंके नामघरोमें भी हमलोग प्रवेश नहीं कर सकते।

२—"विवाह-शादीके अवसरपर अगर हमलोग हाथियों और डोलियोंका उपयोग करना चाहते हैं, तो सवर्ण हिन्दू हमारे ऊपर बड़ा जुल्म करते हैं।

३—"दीक्षा लेते समय हमें अपने धर्मगुरुओंके चरण-चिह्नोंका स्पर्श कर के ही सतोष मानना पड़ता है, उनका चरण-स्पर्श हमें कभी नहीं करने दिया जाता।

४—"कुछ जगहोंमें सार्वजनिक कुओंसे पानी भरने से सवर्ण हिन्दू हमें मना करते हैं, हालाँ कि स्थानीय अधिकारी खुद ऐसा कोई भेद-भाव हमारे साथ नहीं रखते।

५—"छू जाने के खयालसे कोई ब्राह्मण पुजारी हमारे माथेपर तिलक नहीं लगाता और हमारी बनायी हुई मूर्तियाँ अपवित्र समझी जाती हैं।

६—"बहुधा कोई ब्राह्मण पुरोहित प्राप्य न होने के कारण हम श्राद्ध सस्कार नहीं कर सकते और कुछ ब्राह्मण देवता तो अपने घरमें भी हमारे लिए पूजा-पाठ नहीं करते।

७—"गावोंमे यह हालत है कि सवर्ण हिन्दू स्नान करने के अनन्तर अगर हमें धोखेसे छू लें, तो वे हमारे स्पर्शसे अपवित्र हो जाते हैं।

८—"सिवा गौहाटी कालेजके छात्रालयके और कहीं भी हमे सामान्य रसोड़ेमें भोजन नहीं करने दिया जाता।"

इन उत्तेजक सामाजिक अत्याचारोंके होते हुए भी जिन सज्जनने अन्य लोगोंकी ओरसे मानपत्रपर हस्ताक्षर किया था, उन्होंने मुझसे कहा कि—

"हमने अपने कष्ट जो यहा गिनाये हैं, इसमे आप यह खयाल न करें, कि हम लोगोंने अपने भाग्यवान सवर्ण भाइयोंको चिढाने अथवा उनके प्रति द्वेष भाव प्रकट करने की नीयतसे ऐसा किया है। हमने आपके अहिंसा सिद्धान्तका मर्म समझने का प्रयत्न किया है और हमारा विश्वास है कि कुछ दिनोंके बाद हिन्दू जातिका प्रगतिशील वर्ग हमें अपने बन्धु-बाधवोंकी भाति हृदयसे लगायेगा।"

आसाममे मैंने देखा कि कट्टर कहे जानेवाले लोगोंमे भी अस्पृश्यताके सम्बन्धमें कोई ऐसी दृढ़ धारणा नहीं है। शुद्ध चरित्रवाले सुसंस्कृत स्त्री पुरुष वहाँ थोड़ा भी उद्योग करे तो अस्पृश्यताकी अधार्मिक रूढ़िमे शान्तिके साथ खासा अच्छा परिवर्त्तन हो जाय।

ऊपर जो कष्ट गिनाये गये हैं, उनमे अन्य प्रान्तोंसे आकर बसे हुए 'कुलियोंके'

कष्टोंको जोड़ कर मैं यह सूची पूरी करना चाहता हूँ। आसाममें जो भंगी हैं, वे बहुत कुछ आस-पासके प्रान्तोंसे आकर वहाँ बस गये हैं। उन्हें नरक-जैसी बस्तियोंमें रखा जाता है। उनकी शिकायत है कि वहाँ ठीक तरहसे न तो रोशनी ही है, न आरोग्यता सम्बन्धी पूरी सुविधाएँ ही। मैंने उनकी बस्ती देखी तो इस ऋतुमें भी उसे सब तरहसे खुश्क पाया, पर बरसातमें तो वहाँकी बहुत ही बुरी हालत हो जाती होगी। थोड़ा ध्यान देने से और बहुत ही थोड़े पैसेसे ये कष्टदायक त्रुटियाँ तुरन्त दूर हो सकती है।

हरिजन-सेवक
४ मई, १६३४



तीन दुर्घटनाएँ

२५ अप्रैलको मैंने दक्षिण बिहारका हरिजन-प्रवास आरम्भ किया। प्रवासके कार्यक्रममें पहला स्थान आरा था। रास्तेमें मुझे एक जमींदारका मंदिर देखना था, जो हरिजनोंके लिए खोल दिया गया था और वहाँ थैली भी लेनी थी। चूंकि स्वागत-समितिको काले झण्डेवाले सनातनियोंकी विघ्न-बाधाका भय था, इसलिए यह तजबीज बैठी कि मैं बजाय मोटरके लारीसे जाऊँ, ताकि उन सनातनियोंकी छेड़खानीसे बच जाऊँ—मेरे इस तरह चोरीसे जाने का सनातनियोंको शक न हो; पर स्वागत-समितिके और मेरे दुर्भाग्यसे काले झण्डेवालोंको पहलेसे ही हमारी इस बातका पता चल गया और ज्यों ही उस भारी भीड़में हमारी लारी पहुँची कि वे लोग उसपर टूट पड़े। वे समुद्रमें बूँदके समान थे। हुआ क्या, कि वे लोग लारीके पहियोंसे चिपट गये, पर फौरन ही पकड़-पकड़ कर हटा दिये गये। मैं तो वह दृश्य देख नहीं सका। यह भाग्यकी ही बात थी कि उनमें से किसीको कोई ऐसी गहरी चोट नहीं पहुँची। जन-समूह तो निश्चय ही उन विघ्नकारियोंको किसी भी तरह क्षमा करने को तैयार नहीं था। 'पकड़ो-पकड़ो' की भयकर आवाजें आकाशमण्डलमें गूँजने लगीं; पर उन्हें काबूमें लाना कोई आसान काम नहीं था। काले झण्डेवाले तो आहत होने का निश्चय कर चुके थे। उस दलके नेताने मुझे पहले ही बतला दिया था कि वे क्षत-विक्षत भले ही हो जायँ, पर वहाँसे हटेंगे नहीं। इसलिए जब लोग उनके वदनमें हाथ लगाते, तो वे बाधा देते थे।

इस दुःखदायक दृश्यको मैं लाचार होकर देख रहा था। सिवा इसके कि मैं लौट पड़ूँ, उस स्थितिके संभालने का उस समय मेरे पास कोई और उपाय नहीं था। इसलिए मुझे यही कहना पड़ा कि काले झण्डेवाले उठा कर हटा दिये जायँ। पुलिस वहाँ थी ही और वह भी उन विघ्नकारियोंको बिना किसी तरहकी चोट पहुँचाए,

हटाने की कोशिश कर रही थी। यद्यपि किसीको गहरी चोट नहीं पहुँची, तो भी दु:खद दृश्य मुझे द्रवित कर देने को तो काफी था ही। एक ऐसी संवेदना हुई, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मुझे लगा, कि मैं संज्ञाशून्य हो रहा हूँ। राम-नाम-स्मरण मेरा अलख रीतिसे तो होता ही रहता है, उस समय मैं जान कर रामका नाम जपने लगा। इससे मुझे शान्ति मिली। उस दिनका जो कार्य था वह सब मैंने निपटाया। किसीको यह पता नहीं चला कि उस समय मुझपर कैसी बीती थी या मेरे हृदयमें कैसा मंथन हो रहा था।

हमलोगोंने वह मन्दिर देखा, थैली ली और मोटरसे फिर वापस चले आये। आराकी सार्वजनिक सभामें इतना अधिक कोलाहल और शोर-गुल था कि वहाँ भाषण करना असम्भव था। मानपत्र और थैलीके जवाबमें दो-चार शब्द कह कर ही संतोष माना। आरासे हमलोग रेल द्वारा दोपहरको बक्सर पहुँचे। बक्सरमें भी काले झण्डेवालोंका प्रदर्शन था। मेरी गाड़ी तो सकुशल निकल गयी, पर मीरा बहिनके मोटरके हुडपर एक लाठी पड़ ही गयी। मेरे वहाँ पहुँचनेके १५ मिनटके अन्दर ही मैंने सुना कि स्वागत समितिके स्वयंसेवकों और काले झण्डेवालोंमें धक्कमधक्का हो गया है। उस भारी जन-समूहमें वे काले झण्डेवाले तीससे अधिक नहीं थे। यह खबर मैं सुन ही रहा था कि स्वयंसेवक आ पहुँचे—दोके तो सिर फूट गये थे और तीसरेका हाथ सूजा हुआ था। उन्होंने मुझे बतलाया कि विरोध-प्रदर्शक-सनातनियोंके धक्के-मुक्के बचाते तथा उनके उपद्रवी बरतावके प्रति क्रुध जनताको शांत करते समय उनकी यह दशा हुई है। उन्होंने मुझे यह भी बतलाया कि कुछ सनातनियोंको भी निस्सन्देह चोटें आयी हैं।

सार्वजनिक सभामें जाने का समय नजदीक आ रहा था। मेरा जी अच्छा नहीं था। आराकी उस दुर्घटनाको मैं भूला नहीं था, वह अब भी ज्यों-की-त्यों ताजी थी। ठक्कर बापा और विन्ध्या बाबूके साथ सलाह कर के सभामे पैदल जाने का ही मैंने निश्चय किया। मुझे लगा कि यह मोटर ही भड़कानेवाली चीज होती है और मेरा पैदल जाना, शायद काले झण्डेवालोंका गुस्सा ठंडा कर देगा और इससे हरिजन-कार्यके प्रेमियोंकी भीड़ भी संयत व शान्त हो जायगी। विन्ध्या बाबूको पहले ही रवाना कर दिया। उन्होंने जनताको बतला दिया कि गांधीजीने पैदल ही सभामें आने का निश्चय किया है, इससे न तो कोई जय जयकारके नारे लगावे, न उनके पैर छूने का प्रयत्न करे और न कोई काले झण्डेवालोंको ही छेड़े-छाड़े, अगर वे किसी तरहका विरोध प्रदर्शन करना चाहें। मार्गके दोनो तरफ, जो एक मीलसे कम नहीं था, लोग श्रेणीबद्ध खड़े थे—बीचमें मेरे जाने के लिए काफी चौड़ी जगह छोड़ दी गयी थी। मेरी दृष्टिमे तो वह तीर्थ-यात्रा थी। ठक्कर बापा और विन्ध्या बाबू मेरे साथ थे। सभा बहुत ही सफल रही। जो मैंने सुना और देखा था उन सबका वर्णन किया और कहा कि स्वागत-समितिके स्वयंसेवकों द्वारा अगर मेरे विरोध-प्रदर्शकोंको कोई चोट

पहुँची हो, तो मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने उन्हें यह भी विश्वास दिलाया कि इन दुर्घटनाओंके बारेमें मैं और भी अधिक जाँच करूँगा।

सभा समाप्त हुई और मैं पैदल ही डेरेको वापस आया। मैं पहुँचा ही हूँ कि एक सनातनी स्वयंसेवक आया और उसने अपने सिरकी एक चोट मुझे दिखायी और कहा कि और भी लोग आहत हुए हैं, जिनमें एक तो निश्चय ही मर जायगा। वे सब अस्पतालमें थे। ठक्कर बापाको मैंने अस्पताल भेज दिया। जब कि मैं स्टेशन जानेकी तैयारी कर रहा था, तैयार होकर पीछे-पीछे मैं भी अस्पताल पहुँचा और वहाँ मैंने घायल आदमियोंको देखा। वे कुल चार आदमी थे। जिसके बारेमे यह कहा गया था कि वह मरनेवाला है, उसका निश्चित ही ऐसी हालत नहीं थी। उसके सिरमें चोट आयी थी। वह मुझसे ठीक-ठीक बात कर सका और बिलकुल होश-हवासमें था। मेरे विचारसे उसको चोटें उतनी गहरी या घातक नहीं थीं। डाक्टरने उसकी हालतको खतरनाक नहीं बतलाया। बाकी तीन आदमियोंको अधिक चोट आयी थी। उन सभीने कहा कि वे अपने एक आक्रमणकारीको पहचान सकते हैं, जो स्वागत-समितिका पट्टा लगाये हुए था। उस समय पूरी-पूरी जाँच तो मैं नहीं कर सकता था, इसलिए मैंने उनसे कहा कि आप लोग अपने आक्रमणकारियोंके नाम या उनकी हुलिया और पूरा हाल लिख कर मेरे पास भेज दीजियेगा। आहत स्वयंसेवकोंने जो मुझसे कहा था वह मैंने उन्हें बताया और विश्वास दिलाया कि अगर मैंने यह देखा कि स्वयंसेवकोंने उनपर आक्रमण किया था या दूसरोंको ऐसा करने के लिए उभाड़ा था, तो जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा मैं उसके लिए प्रायश्चित्त करूँगा। मैंने उनसे यह भी कहा कि मेरे लिए वे उतने ही प्रिय है, जितने कि स्वयंसेवक। अस्पताल मैं बहुत जल्दीमे गया था। मुझे उसी वक्त जसीडीह जंकशनकी गाड़ी पकड़नी थी, जहाँ रातको २ बज कर १० मिनटपर पहुँचना था।

पंडित लालनाथ और उनके साथियोंने सारी रात शोर मचाया। हर स्टेशनपर से लोग उतर पड़ते और जोर-जोरसे गाते व अस्पृश्यता निवारणके खिलाफ निन्दात्मक नारे लगाते थे। जहाँ तक मैं जानता हूँ, लोगोंने उनके साथ कहीं छेड़-खानी नहीं की। प्रायः प्रत्येक स्टेशनपर मेरा स्वागत करने के लिए जो जन-समूह आया, वह सचमुच शान्त रहा, जब कि वे सनातनी या तो मुझे यह हरिजन-दौरा बन्द कर देने के लिए ललकारते थे या जनताको उत्तेजित करते थे कि वह पंडित लालनाथ और उनके साथियोंके साथ छेड़खानी करे। खैर, इस तरह हमलोग जसीडीह पहुँचे। लोगोंकी वहाँ भारी भीड़ थी। रोशनी स्टेशनपर मामूली-सी थी, इससे मैं लोगों के चेहरे नहीं देख सका। पुलिस तो वहाँ थी ही। अतः स्वयंसेवकोंके साथ-साथ पुलिसने भी मेरी मार्ग-संरक्षतामें भाग लिया।

स्टेशनके फाटक तक कठिनाईसे हमलोग पहुँचे। इसके आगे तो गजबकी रेल-पेल थी। बीच-बीचमें बहुतसे काली झण्डीवाले विरोध-प्रदर्शक भी खड़े हैं। बड़ी ही मुश्किलसे किसी तरह पुलिस अफसरों और स्वयंसेवकोंने मुझे मोटरमें बिठाया।

ठक्कर बापा मेरे साथ न बैठ सके। ऐसेमें उनके लिए गाड़ीका रोक रखना भयावह समझा गया। इसलिए उस भीड़में से धीरे-धीरे मेरी गाड़ी आगे बढ़ चली। गाड़ीकी छतपर जोरके प्रहार होने लगे। उस क्षण तो मुझे लगा कि अब छत चूर-चूर हुई। इतनेमें पीछेके शीशेपर एक प्रहार पड़ा। टूटे हुए काँचकी किरचें मेरे आगे आ गिरीं। शशि बाबू आगेकी सीटपर बैठे हुए थे। उन्हें निश्चय हो गया कि शीशेको लक्ष्य कर के पत्थर फेंका गया था, पर मेरा ऐसा विश्वास नहीं है; किन्तु मैंने देखा कि मैं बुरी तरह घायल होते-होते बच गया।

ऐसे गँवारूपने और हिंसात्मक साधनोंके द्वारा सनातन धर्मका वह प्रदर्शन देख कर मुझे व्यथा और ग्लानि हुई। वर्णाश्रम-स्वराज-संघके नामसे जो चंद आदमी जहाँ तहाँ यह विरोध-प्रदर्शन करते फिरते हैं, उनके इस बरतावको मैं किसी तरह न्यायसंगत नहीं कह सकता।

हरिजन-सेवक
११ मई, १९३४



हरिजन और कताई-बुनाई

मैंने अपने दौरेमें देखा है कि कताईका उद्योग एक ऐसा उद्योग है जो हजारों हरिजनोंकी पालना कर रहा है और अगर इसका उचित रीतिसे संघटन किया जाय, तो यह और भी अधिक लोगोंको आजीविका दे सकता है। कुछ जगहोंमें तो ऐसे बुनकर मिलते हैं, जो अपने धन्धेकी वजहसे ही अस्पृश्य समझे जाते हैं। ये लोग ज्यादातर सादी और मोटी-से-मोटी खादी बुननेवाले होते हैं। बुनकरोंका यह वर्ग डूबने ही वाला था कि इतनेमें खादीने आकर उसे उबार लिया और उनके बनाये मोटे कपड़ेकी माँग आने लगी। उस समय मालूम हुआ कि देशमे अगणित हरिजन-कुटुम्ब ऐसे पड़े हुए हैं, जो सूत कात कर भी अपनी रोजी चला लेते हैं। इस तरह खादी दो प्रकारसे गरीबोंके जीवनका सहारा है। गरीब-से-गरीब और गरीबोंमे भी सबसे अधिक असहाय हरिजनोंको, वह जीवन-दान दे रही है। हरिजनोंके असहाय होने का कारण यह है कि जिन अनेक धन्धोंको दूसरे लोग कर सकते है, उन धन्धोंको ये बेचारे नहीं कर सकते।

हरिजन-दृष्टिसे तो खादी बहुमूल्य है ही, इसके अलावा भी इस हरिजन-प्रवासमें खादीकी समस्याका मैंने यथासम्भव साद्यान्त अध्ययन किया है और मुझे मालूम हुआ है कि खादी-कार्यकर्त्ताओंके लिए खादीके अर्थशास्त्रके नियमोंका पालन अधिक-एकाग्रतासे करने की जरूरतपर जोर देने की जितनी पहले आवश्यकता थी, उससे आज कहीं अधिक है। खादीके अर्थशास्त्रके कुछ नियम तथा साधारण अर्थशास्त्रके नियमोंके बीचमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। साधारणतया एक जगहकी बनी हुई चीजें दुनियाके हर हिस्सेमें भेजी जाती हैं, या उन्हें भेजवानेका प्रयत्न

किया जाता है। जो लोग उन चीजोंको बनाते हैं, यह जरूरी नहीं कि वे ही उनका उपयोग करें, पर यह बात खादीके विषयमे नहीं है। खादीकी यह विशेषता है कि वह जहाँ तैयार हो वहाँ काममें लायी जाय और सबसे अच्छा तो यह है कि जो लोग उसे कात बुन कर तैयार करें, वे खुद ही उसे काममें लावें। जहाँ खादीका इस प्रकार उद्योग होता हो, वहाँ उसकी माँग तलाशने के लिए कहीं जाना ही न पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि इस आदर्श तक तो हम कभी पहुँचने के नहीं, पर जहाँ तक इस आदर्शकी पूर्ति हो सकेगी उसीके आधारपर हमेशा खादीकी कीमत आँकी जायगी। आज जिस विशेष अर्थमें खादी एक गृह-उद्योग है, उस अर्थमे कोई दूसरा उद्योग नहीं है, या हो नहीं सकता—हाँ, मर्यादित अर्थमे एक खेती अवश्य है यदि, गृह-उद्योगोंमे उसकी गणना की जा सके। इसलिए यह आवश्यक है कि कातने और बुननेवालोंको खादीके इस सरल अर्थशास्त्रके समझने की इतनी शिक्षा तो दी ही जाय। जहाँ कातने व बुननेवाले अपने ही उपयोगके लिए कपड़ा तैयार करेंगे वहाँ स्वभावतः वह उन्हें कम-से-कम दाममे पड़ेगा।

इससे यह परिणाम निकलता है कि खादी जहाँ तैयार होती हो, वहाँसे उसे बेचने के लिए बहुत दूर भेजने का प्रयत्न न करना चाहिये। कातने-बुननेवालोंके उपयोगसे अगर अधिक खादी बच जाय, तो उसे उसी गाँवमे बेच देना चाहिये। फिर भी बच रहे, तो जिस जिलेमे वह तैयार हुई हो उसमें बेच दी जाय। जो बुनकर-कुटुम्ब प्राचीन कालसे खादीके सुन्दर कलामय नमूने तैयार करते आ रहे है, वे अपना विशेष प्रकारकी खादियोका बुनना तो जारी रखेंगे ही। गाँववालोंकी तैयार की हुई खादीका चाहे जो हो, उस किस्मकी सुन्दर कलामय खादी तो जीवित रहेगी ही। गाँववालोंकी खादीको तो उनके लिए मजदूरी और आमदनीके एक बारहमासी साधनके रूपमे माना है।

ऊपर जो मैंने लिखा है, उससे अखिल भारतीय चरखा-संघकी तात्कालिक व्यवस्थामें कोई क्रान्ति होने की नहीं। चरखा-संघके खादी-भण्डार तो सदाकी भाँति चालू रहेंगे ही; किन्तु विचार-जगतमें इससे अवश्य एक क्रान्ति होगी। अच्छे से-अच्छे खादी-सेवक अपनी विचार-शक्तिको एकाग्र कर के गाँवकी खादी ऐसी किस्मकी और टिकाऊ बनायेंगे कि जिससे गाँववालोंकी रुचिको संतोष हो जाय। इस प्रकार एक ओर पींजनेवाले, कातनेवाले तथा बुननेवाले और दूसरी ओर खादी-सेवक सब प्रेमकी डोरीसे बँध जायेंगे। शहरोंमे खादीकी खपत बढ़ानेकी चिन्ता नहीं रहेगी। शहरोंमे खादीकी बिक्रीका आधार शहरवालोंकी माँगके ऊपर तथा ऐसे खादी-प्रेमियोके प्रचार-कार्यपर होगा, जो सीधे ग्रामवासियों तक नहीं पहुँचना चाहते या पहुँच नहीं सकते, फिर भी गरीब कातने व बुननेवालोंके लिए थोड़ी-बहुत खादी बेचे बिना जिन्हें संतोष नहीं होता। इतना हमें ध्यानमे रखना चाहिये कि जब खादीको ग्रामवासी स्थायी रूपमें पहनने लगेंगे, तभी उसे स्थायित्व प्राप्त हो सकेगा।

हरिजन सेवक
११ मई, १९३४

प्रवास क्या पैदल ही ?

मेरी यह भावना दिनंदिन दृढ़ होती जा रही है कि हरिजन-सम्बन्धी अपने शेष प्रवासको मैं यथासंभव पैदल चल कर ही समाप्त करूँ। जब ठक्कर बापा तथा डाक्टर राजन तमिलनाडका यात्राक्रम निश्चित कर रहे थे और जब उतने समयके अन्दर तमाम जगहोंके कार्यक्रमका समावेश करना असम्भव-सा हो रहा था, तब मैंने ठक्कर बापासे कहा था कि अगर आप मेरी बात मानें तो मैं इतनी बड़ी यात्राका कुछ अंश छोड़ दूँ और पैदल चल कर प्रवास पूरा करूँ। पीछे फिर वही भावना मेरे मनमें आयी और देवघरकी दु:खद घटनाके बादसे तो वह बहुत बलवती हो गयी है।

मैं देखता हूँ कि जो लोग हिंसात्मक उपायोंका अवलम्बन करते हैं, उनकी गिनती ऊँगलियोंपर की जा सकती है, किन्तु ऐसे दो-चार आदमी भी सभाओंमें उपद्रव तो मचा सकते ही हैं। मैं उन्हें हर तरहसे दिखा देना चाहता हूँ कि यह हरिजन प्रवृत्ति धार्मिक भावनासे ही प्रवर्तित हुई है और उसी भावनासे चल रही है। जब लक्ष्य धार्मिक है तो उसका परिणाम भी धार्मिक ही होगा। मैं यह दिखा देना चाहता हूँ कि धर्मका प्रचार तेज चलनेवाली सवारियोंपर निर्भर नहीं है। एक भाईकी यह तजवीज थी कि हवाई जहाजपर यात्रा करने की व्यवस्था की जाय तो कैसा हो। मैंने यह बात तुरन्त काट दी। किसीको यह भी समझना चाहिये कि इस प्रवासका उद्देश्य सिर्फ धन-संग्रह करना नहीं है। मेरा विश्वास है कि अगर मैं पैदल यात्रा करूँगा, तो भी इस कार्यके अर्थ यथावश्यक धन और कार्यकर्त्ता तो मिल ही जायँगे। मेरा संदेश अगर अंतरात्मासे निकला हुआ होगा, तो रेल-मोटर द्वारा चलने की अपेक्षा पैदल चलने पर भी उसकी गति अधिक तेज होगी।

एक बात और है, वह यह कि मैं उस शोरगुलसे भी ऊब जाता हूँ जो मुझे देख कर लोग मचाया करते हैं, यद्यपि वह हर्ष-कोलाहल जनताके प्रेम तथा आनन्दका सूचक होता है। अब मेरी नसें कमजोर पड़ गयी हैं। इस तरहका शोरगुल अब मुझसे सहन नहीं हो सकता। भीड़के धक्कोंसे भी मुझे बड़ा कष्ट होता है और ऐसे धक्के मुझे नित्य ही नसीब होते हैं। भारी-भारी भीड़ोंका मेरी ओर उमड़ पड़ना और उनसे स्वयंसेवकोंका मुझे बचानेका प्राणपणसे प्रयत्न करना—यह सब अब इस जर्जर शरीरको सहन नहीं होता। इस शोरगुल और भीड़-भाड़में मुझे तो कोई लाभ दिखायी नहीं देता। मेरे पैर छूने के लिए लोगोंका पालागन तो मेरे शरीरके लिए और भी भयावह साबित होता है। शायद ही ऐसा कोई दिन बीतता हो, जिस दिन मेरे पैर लोगोंके नाखूनोंसे न खुरच जाते हों। मैंने बार-बार यह अनुरोध किया कि लोग शोर न मचावें, धक्कमधक्का न करें और मेरे पैर न छुयें, पर मेरे अनुरोधका कोई स्थायी असर न हुआ। सभाओंमें यदि मेरा भाषण लोग सुन पाते हैं, तो उतने समयके लिए जरूर कुछ शान्ति हो जाती है। मगर ऐसा अवसर मिलना मुश्किल है, क्योंकि मुझे एक-एक दिन तीन-तीन सभाओंमें पहुँचना होता है, वह भी एक दूसरीसे बहुत दूरीपर होती है।

लोगोंपर मेरे संदेशका असर पड़े, इसलिए यह जरूरी है कि शान्त और सुनने की इच्छा रखनेवाले जन-समूहको सन्देश दिया जाय। किसी सत्यमूलक उपदेशके समय वातावरणका शान्त होना आवश्यक है। ऐसी स्थितिमें अपने शेष प्रवासके बारेमें अपने सहकारियोंके सामने मैं यह प्रस्ताव रखता हूँ—

(१) जिस दिन निश्चय कर लिया जाय, उस दिन जहाँ रहूँ वहींसे पैदल यात्रा शुरू कर सकूँ। पटनेमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें सम्मिलित होने को अथवा ऐसे ही किसी अन्य कामके लिए यह यात्राक्रम ही स्थगित रहेगा। जिस जगह यात्रा स्थगित की जाय, उसी जगहसे उसे फिर आरम्भ कर दूँ अथवा, यात्रा स्थगित हो जाने पर फिर नया प्रवासक्रम आरम्भ हो सकता है।

(२) उड़ीसा प्रांतका प्रवास पूरा कर के किसी नये प्रान्तमें यात्रा आरम्भ कर सकूँ और उस प्रान्तकी यात्रा पूरी कर के जितने प्रान्तोंमें पैदल प्रवास कर सकूँ, उतने प्रान्तोंमें करूँ।

(३) नया प्रवासक्रम निश्चित कर के जहाँ तक सम्भव हो विभिन्न प्रांतोंमें पैदल यात्रा कर सकूँ। एक प्रांतसे दूसरे प्रांतमें जाने के लिए ही रेलकी सवारी काममें लाऊँ।

मुझे यकीन है कि अगर कार्यकर्त्ताओंका इस कार्यकी आध्यामिकतामें विश्वास है, तो उक्त प्रस्तावकी पहली बात मान लेने में उन्हें कोई आनाकानी नहीं होगी। एक बारगी तो वे किसी निर्णयपर आप-से-आप पहुँच नहीं सकते। उनका भी अपना कोई निजी विश्वास है। अगर मेरी कोई भी बात उनके मनमें ठीक न बैठे तो वे उसे जाने दें। तब मैं, जिस तरह मुझसे हो सकेगा, अपने शेष प्रवासको पूरा करूँगा।

यह प्रश्न उठ सकता है कि अगर मुझे अपनी बातपर पूरा विश्वास है तो फिर मैं स्वतंत्ररूपसे क्यों न उसी तरह कार्य आरम्भ कर दूँ, जिस तरह बराबर करता आया हूँ। सवाल बिलकुल ठीक है, किन्तु मैं स्वतंत्ररूपसे कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि यह प्रवासक्रम मेरी अपनी प्रेरणासे निश्चित नहीं हुआ है। इसके लिए तो ठक्कर बापा और सेठ घनश्यामदास बिड़लाने मुझे सलाह दी थी। उन्हीं लोगोंने प्रवासक्रम निश्चित भी किया था। घनश्यामदास बिड़लाके आगे मैंने अभी प्रस्ताव नहीं रखा है, किंतु ठक्कर बापा मेरे प्रस्तावके पक्षमें नहीं हैं। उनका कहना है कि पैदल यात्रा करने से तो एक ही प्रांतमें बहुत सारा समय लग जायगा, जो दूसरे प्रांतोंके प्रति वचन-भंगके समान होगा। उनका यह कहना है कि प्रांतीय संघोंसे बिना पूछे मैं कुछ नहीं कर सकता। ठक्कर बापाका कहना उचित ही है।

जिन प्रांतोंमें मुझे जाना है वहाँकी स्वागत-समितियोंके सभापति और मंत्री अपने यहाँके कार्यकर्त्ताओंके साथ सलाह कर के क्या अपनी राय संक्षेपमें तार द्वारा तुरंत मेरे पास भेज देंगे?

हरिजन-सेवक
१८ मई, १९३४

पैदल प्रवासका महत्व

[उपर्युक्त 'प्रवास क्या पैदल ही ?' शीर्षक लेख भेजनेके बाद गाँधीजीने उस दिन असोशिएटेड प्रेसको निम्नलिखित वक्तव्य दिया]

"यह कहते हुए मुझे प्रसन्नता होती है कि जब मैंने आज सवेरे पैदल यात्रा करने के प्रस्तावपर उत्कलके हरिजन-सेवकोंसे बातचीत की, तो उन्होंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और उसके आध्यात्मिक महत्वको भी समझा। हाँ, यह उन्होंने अवश्य कहा कि जो स्थान इस पैदल प्रवासमें छूट जायँगे वहाँके कार्यकर्त्ता बहुत निराश होंगे, मगर मैंने उनको समझाया कि जब वे लोग देखेंगे कि ऐसा करने से हरिजन-सेवाका वास्तविक सन्देश शीघ्र प्रभावकारी होगा, तब उनकी वह निराशा प्रसन्नतामें परिणत हो जायगी। मैं उम्मीद करता हूँ कि हमारे सहकारी भाई इस खबरको गाँव-गाँव फैला देंगे और गाँवोंकी जनताको हमारे इस पैदल प्रवासकी गम्भीरताको समझा देंगे। मेरे पहुँचने पर जो जय जयकारके या दूसरे नारे लगाये जाते हैं, वह सब बन्द कर देने चाहिये। लोग जो तले-ऊपर टूट पड़ते हैं, यह भी बन्द हो जाना चाहिये। जहाँ सभा हो, वहाँ लोगोंको चुपचाप मेरा सन्देश सुनने के लिए तैयार रहना चाहिये। कोई मेरे पैरोंको न छुए। मेरे चलते समय मेरे पैर छूने को दौड़ना बहुत ही बुरा है।

जिन गाँवोंमें मुझे जाना होगा, वहाँके हरिजन कार्यकर्त्ताओंको मैं यह सलाह दूँगा कि अपनी थैलियाँ अपने साथ लाया करें। यदि इस पैदल यात्राकी महत्ता समझमें आ जायगी, तो मुझे आशा है कि उड़ीसाके सभी स्थानोंसे मुझे थैलियाँ मिलेंगी। अगर प्रान्तीय कार्यकर्त्ता इसका महत्व समझ जायँगे, तो वे मुझे अपने प्रान्तोंमें घुमाने से क्षमा कर देंगे। मैं समझता हूँ कि मेरा उत्कल प्रवास सारे भारतवर्षके प्रवासके बराबर रहेगा। बार-बार बाधा पड़ने से प्रवासका प्रभाव जाता रहेगा। मुझे पूरा भरोसा है कि शेष प्रान्तोंमें थोड़े-थोड़े दिन पैदल घूम कर, एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें चले जाने की अपेक्षा लगातार यात्रा करने का अधिक प्रभाव पड़ेगा। कार्यकर्त्ताओंको चाहिये कि मुझे अपने यहाँ बुलाने का विचार छोड़ दें। मैं चाहता हूँ कि प्रान्तोंके कार्यकर्त्ता मेरे इस प्रस्तावपर विचार करें और यथाशीघ्र तार द्वारा मेरे पास अपनी राय भेज दें।"

हरिजन-सेवक
१८ मई, १९३४



मेरा हाथ नहीं है

२ मईके पत्रमें महाराजा साहब गिद्धौरने मुझे लिखा है:—

"देवघरमें हुए आपके भाषणकी जो रिपोर्ट अखबारोंमें प्रकाशित हुई है, उसकी एक प्रति मुझे मिली। मैंने आपको तुरन्त ही यह सूचित करना ठीक समझा कि आपने जो यह सन्देह प्रकट किया है कि किसी पर्चेपर मेरा नाम मेरी आज्ञा लेकर प्रकाशित नहीं किया गया है, वह उचित ही था।

मुझे ऐसे किसी पर्चेका पता नहीं है। सचमुच यह बात बिलकुल ही झूठ है कि मैंने किसी पर्चेपर अपना नाम प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी थी। मैं समझता हूँ कि इस पत्रमें मैंने अपनी स्थिति आपके सामने स्पष्ट कर दी है। मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें मेरी व्यक्तिगत सम्मति चाहे जो कुछ भी हो, पर मैं आपके साथ ही इस बातके लिए खेद प्रकट करता हूँ कि ये झूठी बातें फैलायी जा रही हैं।

देवघरमें जो असभ्य प्रदर्शन हुआ है, उसके लिए मैं भी दुःखी हूँ। अगर आप ठीक समझें तो मेरे इस पत्रको प्रकाशित कर दें।"

मुझे इससे संतोष हुआ है कि महाराजा साहब गिद्धौरका उस पर्चेमें कोई हाथ नहीं था। यह खेदकी बात होती, अगर ऐसे असत्यके प्रचारमें महाराजा साहब अपने नामका उपयोग करने देते।

हरिजन-सेवक
१८ मई, १९३४



साथी कार्यकर्त्ताओंसे निवेदन

जिस दिन मैं यह लेख लिख रहा हूँ, वह मेरी पैदल यात्राका छठा दिन है। रेल और मोटरसे अबतक मैं ७५० मीलकी यात्रा कर लेता और सरसरी तौरसे कम-से-कम १,५०,००० आदमियोंसे मिला होता। पैदल ४० मीलसे अधिक नहीं चला, क्योंकि यह छठा दिन तो मेरा मौनमें निकल गया और करीब २०,००० नर-नारियोंके सम्पर्कमें आ सका हूँ।

मेरे अन्तरका भाव यह है कि कृत्रिम-यात्रा तथा स्वाभाविक-यात्रामें काम उलटे परिमाणमें होता है। आशय यह है कि यात्राकी कृत्रिम-गतिका वेग जहाँ बहुत कम होता है, वहाँ काम वास्तवमें अधिक होता है। इन पिछले पाँच दिनोंमें ग्राम-वासियोंके साथ मेरा खूब समागम रहा है, पर इन अनुभवोंकी चर्चा तो फिर कभी

अन्य प्रसंगपर करूँगा। इस लेखके लिखने का हेतु इतना ही है कि मैं समस्त भारतवर्षके सहयोगकी याचना करूँ। उत्कलके नेताओंके लिए यह कोई मामूली बात नहीं थी, जो उन्होने परिश्रम और सावधानीके साथ निश्चित किये हुए अपने प्रान्तके कार्यक्रमको एक दम उड़ा दिया। भारतके इस अत्यन्त कंगाल प्रान्तसे भी उन लोगोको ३०,०००) एकत्रित कर लेने की आशा थी। मेरी अपनी धारणा तो यह थी कि उत्कलमें ५०,०००) इकट्ठा हो सकता था, पर जब उन्हें सत्यका साक्षात्कार हुआ तो उन्होने अर्थ-लाभकी आशा छोड़ देने और अपने सहयोगियोके रोषका जोखम अपने ऊपर लेने में तनिक भी आनाकानी नहीं की और जब मैंने डाक्टर विधानचन्द्र रायको अपना इरादा सुनाया तो उन्हें भी अपने बंगाल प्रांतके कार्यक्रमका त्याग करते हुए कोई कठिनाई मालूम नहीं पड़ी। मैं तो नहीं समझता कि फिर अन्य प्रांतोंके लिए यह बात कुछ मुशकिल होगी। मै यह विश्वास करने का नहीं कि उनकी समझमे यह बात न आ सकेगी कि रेल और मोटरकी यात्राकी अपेक्षा पैदल-यात्रा कहीं अधिक सुन्दर है।

किंतु कोरे निष्क्रिय सहयोगकी अपेक्षा मैं माँगता अधिक हूँ और आशा भी अधिककी करता हूँ। मैं देश भरसे सक्रिय सहयोगकी याचना करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि देशके तमाम कार्यकर्त्ता एक साथ ही अपने-अपने प्रांतमे इसी प्रकारके पैदल प्रवासका आयोजन करें, जिसमें वे लोगोको हरिजन-सेवाका संदेश सुनावें और अगर उनके यहाँ मैं जाता तो जैसे वे मुझे रुपये-पैसेकी थैलियाँ हरिजन-कार्यके लिए भेंट करते, उसी प्रकार मेरे पास भेज देने के लिए वे जगह-जगह जाकर रुपये व पैसे-पाई इकट्ठा करें। कार्यकर्त्ताओं और हरिजनोके बीचमें खूब घनिष्ट सम्पर्क स्थापित होना चाहिये और सनातनियोंसे भी मित्रतापूर्वक जाकर मिलना-जुलना चाहिये। जिस गाँवमे कार्यकर्त्ता जावें वहाँके हरिजनोके कष्टों और कठिनाइयोका उन्हें पूरा पता लगाना चाहिये। वहाँ अधिक मंदिर खुलने चाहिये और अधिकसे अधिक बालकोको सार्वजनिक पाठशालाओंमे भरती कराना चाहिये। कार्यकर्त्ता तथा ग्रामवासी यह समझें कि मैं उड़ीसाके गाँवोंमें जो यात्रा करता हूँ, वह मानों उनके गाँवोंमें दौरा कर रहा हूँ। यदि मेरा कार्य आध्यात्मिक है, तो उसका यही परिणाम होना चाहिये और हरिजन-कार्यके लिए लोगोंके दिलमें और भी अधिक उत्साह होना चाहिये। इस यात्राके परिणामस्वरूप नये-नये कार्यकर्त्ता मिलने चाहिये और जो कार्यकर्त्ता मौजूद हैं, उन्हें और भी अधिक शुद्धतासे इस कार्यके हेतु अपनेको अर्पित कर देना चाहिये।

हरिजन-सेवक,
२५ मई, १९३४



वे इसे करेंगे ?

जबसे मैने पैदल यात्रा आरम्भ की है, सैकड़ों ग्रामवासी यात्रियोंका अनुगमन करते रहे हैं। कुछ अपनी व्यथाओंकी कहानी भी सुनाते हैं। इस यात्रामें जब मैं साखीगोपालके निकट पहुँच रहा था, एक प्रतिनिधि बुनकरने स्वयं ही मुझसे कहा कि बुनकर बड़े कष्टमें हैं, क्योंकि उनके कपड़ेकी कोई माँग नहीं है। मैंने उससे कहा कि यह भविष्यवाणी तो मैंने पन्द्रह वर्ष पहले ही की थी। जबतक ये लोग मिलके सूतका व्यवहार करेंगे, तबतक मिलोंकी प्रतियोगितामें ठहर नहीं सकते। हाथ-करघेका पोषणकर्त्ता और जीवनदाता तो चरखा ही है। इसके उत्तरमें जहाँ तक मुझे स्मरण है, पहली ही बार मैंने यह सुना—'हमे हाथका कता सूत दीजिये, हम उसे बुनेंगे'। 'अवश्य' यदि तुम, जैसा मैं कहूँ, करोगे ?—मैंने कहा। 'हम करेंगे'—बूढ़ेने जवाब दिया। यह बुनकर बूढ़ा था और इसकी कमर झुक गयी थी। मुझे उसके उत्तरासे अत्यधिक प्रसन्नता हुई और मैंने कहा—'यह बड़ी अच्छी बात है, पर ऐसी हालतमें मै तुम्हें, तुम्हारी पत्नी और बच्चोंको ओटना, धुनना और कातना सिखलाऊँगा, तब तुम्हें काफी सूत मिल जायगा। तुम्हें अच्छा, मजबूत और एक-सा सूत कातना होगा और टूट-फूट एवं खराबीसे बचना होगा; तब मैं उम्मीद करूँगा कि पहली बार कते इस सूतसे तुम अपने निजी उपयोगके लिए खद्दर तैयार करोगे और इसके बाद जो फालतू खादी बचेगी उसे मैं खरीद लूँगा। मैं तुम्हारे कुटुम्बका एक सदस्य बनने का प्रयत्न करूँगा, अपने अनुभवोंका लाभ तुम्हें प्रदान करूँगा। यदि तुम्हें मादक द्रव्योंका व्यसन होगा, तो उसे छोड़ने को कहूँगा। तुम्हारे कुटुम्बकी आय-व्ययकी मैं जाँच करूगा और तुम्हें ऋण लेने से रोकूँगा'।

बूढ़ेका मुख प्रसन्नतासे चमक उठा और वह बोला—'हम निश्चय ही आपकी सलाहके मुताबिक चलेंगे। इस समय तो गरीबी और विनाश हमें घूर रहे हैं'। मैंने उससे कहा कि अपने कुछ साथियोंको लेकर साखीगोपालके गोपबन्धु आश्रममें ३ बजे मुझसे मिलो

वह अपने मित्रोंके साथ आया। मैंने सुबहकी बातचीतमें कही हुई बहुतेरी बातें दुहरानेके बाद कहा—'मैं जानता हूँ कि तुमलोग अपने करघोंको चलाने लायक सूत तुरन्त ही नहीं कात सकते। इसलिए काम आरम्भ करने के लिए होनहार और उत्साही कुटुम्बोंको मै काफी सूत दूँगा। जब तुम उस सूतको बुनोगे तबतक अपने करघोंको आगे चलाने के लिए तुम काफी सूत तैयार कर लोगे, इस दिये हुए सूतसे जो पहली खादी तुम बुनोगे, तुमसे ले ली जायगी। दूसरी बारके लिए भी यदि तुम्हारे पास काफी सूत न होगा तो कुछ मैं फिर दूँगा। इसके बाद तुम्हें स्वावलम्बी हो जाना

पड़ेगा। पहले तुम अपने-अपने कुटुम्बके कपड़ेकी आवश्यकता पूरी करोगे और इससे जो बचेगा उसे बेचोगे।'

मैं इसे अत्यधिक महत्व और शक्तिका प्रयोग समझता हूँ। भारतवर्षमें कदाचित एक करोड़ बुनकर हैं। कोई हजारोंमें भी इन संख्याको ठीक नहीं बता सकता, पर एक करोड़का अनुमान बे-जोखिमका है। यदि ये लोग बुनाईकी कलाके साथ तत्सम्बन्धी अन्य प्राथमिक कार्यों (ओटाई, धुनाई, कताई) को भी ग्रहण कर लेंगे, तो वे न केवल अपने अस्तित्वको सुरक्षित कर लेंगे वरन् खादीको भी संभाव्य सीमा तक सस्ती कर सकेंगे और अबतक जैसी खादी बनती है, उसकी अपेक्षा अधिक टिकाऊ और खूबसूरत खादी तैयार कर सकेंगे।

'हरिजन-सेवक' के पाठक जानते है कि मध्यप्रांतमे कुछ ऐसे हरिजन बुनकर कुटुम्ब हैं जो अपने कामके लिए स्वयँ धुन और कात लेते है। इसके साथ मैं ओटाईको भी जोड़ता हूँ। यदि बुनकर स्वयँ अपने हितकी दृष्टिसे बुनाईके पूर्ववर्त्ती सब उपकरणोको स्वयं ही करने लग जायँ तो खादीका भविष्य सुरक्षित हो सकता है।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९३४



एक सावधान सूत्रकार

एक हरिजन-सेवक, जो एक हरिजन पाठशालामें काम करते हैं और अन्य कई बातोंके अलावा अपने विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकोमे हाथ-कताईका प्रसार करने का प्रयत्न कर रहे हैं, लिखते है—

"राष्ट्रिय-सप्ताहमे मैंने पहलेकी अपेक्षा अधिक परिश्रम और कहीं अधिक सावधानीसे कताईका कार्य किया। मेरी गतिका औसत ३०० गज प्रति घण्टा था। ४० तोले रूईसे मैंने १६ नम्बरका ३७ तोला सूत काता। कुल सूत ६,७०० तार था—एक तार चार फुटके बराबर होता है। रूईको साफ करने और धुनने में मेरे ढाई तोले खराब गये और कातने में आधा तोला। यह खराब भाग मैंने रख छोड़ा है। इसका उपयोग मैं तकिया भरने या और ऐसे ही किसी काममें करना चाहता हूँ। मैंने कई कातनेवालोंको देखा है कि कभी कभी इतना हिस्सा रद्दी कर देते हैं जो कुल रूईकी कताईसे उन्हें मिली मजदूरीके बराबर होता है। आपको यह भी याद रखना चाहिये कि मैं केवल फुर्सतके समय ही कातता हूँ। इतने समयमे ही मैं अपनी निजी आवश्यकतासे कहीं अधिक सूत तैयार कर लेता हूँ। इस बचे हुए सूतको बेच कर उसकी आय अपने निरीक्षणमें चलनेवाली हरिजन पाठशालामें लगाऊँगा। मेरा सूत इतना अच्छा और मजबूत समझा जाता है कि बुनकर उसे दूसरे किसी सूतपर तरजीह देते हैं।"

मैं इस सूत्रकार (कतवैये) को जानता हूँ। आज यह जो कुछ बन सका है, अपनी सचाई और लगनसे ही बना है। वह साधारण सूत्रकारसे कुछ अच्छा नहीं था, किन्तु आज तो स्वेच्छासे कातनेवालोंमे बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो इस हरिजन-सेवक जैसा रेकार्ड दिखा सकें। उत्कलके गाँवोंमें भ्रमण करते हुए, लोगोंसे बात करते और उनके घनिष्ट परिचयमें आते हुए, मैं नित्य ही हाथ-कताईकी असीम सम्भावनाओंका दर्शन करता हूँ। गरीब ग्रामवासियोंमें जो बेकारी और आलस्य आ गया है वह प्रथम श्रेणीकी दुःखात्मक घटना है। मैं देखता हूँ कि सैकड़ों और अक्सर हजारों आदमी बेकार, बिना किसी कामके, सारे दिन मेरे चारों ओर घूमते रहते हैं। जो लोग हमारे चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं, किसी प्रकार अच्छा हालतमें नहीं है। उनका भोजन बहुत ही निम्न-कोटिका है। दूध-घी तो शायद ही उन्हें मिलता हो। उबले चावल, दाल और तेल ही मुख्यतया उनका भोजन है। मुझे ये लोग महत्वाकांक्षासे हीन और आशारहित प्रतीत होते हैं। इतनेपर भी वे अपने जीवनमें एक उच्च संस्कृतिको प्रकाशित करते हैं, जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना हम नहीं रह सकते; किन्तु यदि वे अपने प्रत्येक बेकार घण्टेका लाभदायक उपयोग करना नहीं सीखते, तो इस समय यह संस्कृति किसी काम न आयगी। मैं तो बाध्यतः इसी नतीजेपर पहुँचता हूँ कि इसी लक्ष-लक्ष लोगोंको उनके बेकार घण्टोंमें देने के लिए चरखेके अलावा और कोई चीज नहीं है। निश्चय ही कोई उद्योग, जो लाखोंको काम देता है, लाभदायक धन्धा है।

हरिजन-सेवक
८ जून, १९३४



अस्पृश्यता आज जैसी मौजूद है

'हरिजन' सम्पादकने एक सज्जनका लिखा हुआ एक पत्र मेरे पास भेजा है। पत्रमें लिखा है—

"९ मार्चके हरिजनमें मैंने देखा कि गांधीजीने अपने भाषणमें यह कहा है कि 'अस्पृश्यताके समर्थनमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है'। महात्माजीके इस आन्दोलनका समर्थन करनेवाले पण्डितोंमें एक सबसे धुरन्धर पण्डित हैं काशी विश्वविद्यालयके महामहोपाध्याय श्री प्रथमनाथ तर्कभूषण। गत वर्ष उन्होंने गांधीजीको अस्पृश्यता-निवारणके पक्षमें जो पत्र लिखा था, वह उन्होंने प्रकाशित कर दिया है। तर्कभूषणजीने उस पत्रमें लिखा है कि अस्पृश्यताके समर्थक श्लोक शास्त्रमें मिलते तो हैं, पर ऐसे भी श्लोक मौजूद हैं, जिनमें कहा गया है कि मन्त्र-दीक्षा और भगवद्भक्तिके द्वारा अस्पृश्यजन भी शुद्ध हो सकते हैं।

इस तरह तर्कभूषणजीके कथनानुसार तो जिन चाडालोंको मन्त्र-दीक्षा नहीं दी गयी और जो भगवानके भक्त नहीं हैं, वे शास्त्रीय दृष्टिसे अस्पृश्य हैं । इसलिए गाधीजीके इस मतका समर्थन तर्कभूषणजी नहीं कर रहे है कि 'अस्पृश्यताके समर्थनमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है ।"

"क्या आप कृपा कर बतायेंगे कि किन पण्डितोंने गाधीजीसे यह कह दिया है कि अस्पृश्यताके समर्थनमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं ?

गाधीजीने पहले खुद ही लिखा था कि सनातनियोंने ऐसे अनेक श्लोक उन्हे बताये है, जिनमें अस्पृश्ताका समर्थन होता है, पर उन श्लोकोंको वह प्रामाणिक इसलिए नहीं मानते कि वे सदाचारके मूल सिद्धान्तोंके विपरीत पड़ते हैं ।

अब गाधीजीके इस हालके वक्तव्यका, कि अस्पृश्यताके समर्थनमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है, उनके उस पहले कथनके साथ कोई मेल नहीं बैठता कि अस्पृश्यताके समर्थनमें श्लोक तो है, पर सदाचारके विरोधी होने के कारण वह उनकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते ।

इस प्रत्यक्ष असंगतिके सम्बन्धमें क्या आप कृपा कर 'हरिजन' मे कुछ स्पष्टीकरण करेंगे ?"

यह तो सभी जानते है कि आजकल अस्पृश्यताके विषयमें जब भी मैं बोलता हूँ, तो मेरा मतलब उस अस्पृश्यतासे होता है, जिस रूपमे कि वह आज बरती जाती है अथवा, जिस तरह हम उसे आज समझते हैं । जो यह बात मैंने हजारो सभाओंमें कही है, वही, फिर कहता हूँ कि आज हम जिस अस्पृश्यताका पालन कर रहे है उसके समर्थनमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है । महामहोपाध्याय श्री अमरनाथ तर्कभूषणने मुझे जो पत्र लिखा था, उसका मुझे भली भाँति स्मरण है । इस अदम्य अस्पृश्यता-सिद्धांतके खण्डनमे उन्होने बड़ा ही प्रबल तर्क दिया है । उनका यह पत्र मेरे कथनका इस अर्थमे समर्थन ही करता है कि एक भी अस्पृश्य सदाके लिए अस्पृश्य नहीं बना रह सकता । जब एक बार यह मान लिया गया कि केवल द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मंत्रका उच्चारण करने से कोई भी अस्पृश्य 'स्पृश्य' हो सकता है, तब अस्पृश्यताका गढ़ तो उसी वक्त ढह गया। जैसी अस्पृश्यता आज मानी या बरती जाती है, उसके समर्थनमे सनातनियोंने अबतक एक भी शास्त्रीय वचन उपस्थित नहीं किया।

अब मर्दुमशुमारीका गोरख-धंधा लीजिये । मर्दुमशुमारीके कागजोंमें एक बार जो अनेक जातियाँ अस्पृश्य शुमार कर ली जाती है, दूसरी बार वे ही स्पृश्य मान ली जाती हैं और दूसरी कुछ नयी जातियाँ अस्पृश्य लिख ली जाती हैं। निश्चय ही शास्त्रोंमें कोई ऐसा प्रमाण नहीं है कि जिससे लोगोंपर अस्पृश्यताकी छाप लगा देनेवाले मर्दुमशुमारीके इन आँकड़ोंको हम स्वीकार कर ले और आज हमलोग जिस अस्पृश्यताका पालन कर रहे हैं, उसका सम्बंध तो सिर्फ उन्हीं करोड़ों नर-नारियोंसे है, जो मर्दुमशुमारीके कागजोंमें अस्पृश्य दर्ज कर लिये गये है । इसी प्रकार उन बेचारोंके साथ

उनके प्रांतों या जिलोंमें जैसा बरताव किया जाता है, उसके लिए भी शास्त्रोंमें कोई आधार नहीं है। मैंने यह अवश्य कहा है कि सनातनियोंने जिस अस्पृश्यताका वर्णन किया है, उसके समर्थनमें उपस्थित किये गये शास्त्र-वचन हिन्दू-धर्मके मूल-सिद्धांतोंके विरोधी है। इसलिए खुद शास्त्रोंके ही बताये हुए शास्त्रार्थके नियमोंके अनुसार, ऐसे वचनोंको अप्रामाणिक मान-कर ग्रहण नहीं करना चाहिये। इससे जब मै यह कहता हूॅ कि जो अस्पृश्यता आज बरती जाती है, उसके समर्थनमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं है, तब मेरे किसी लेख या कथनमे कोई असंगति नहीं आती। हाँ, स्वच्छताके लिए एक तरहकी अस्थायी या क्षणिक अस्पृश्यता मानने के प्रमाण शास्त्रोंमें काफी मिलते हैं; पर यह अस्पृश्यता वह अस्पृश्यता नहीं है, जो बुद्धि या सदाचारकी विरोधी हो। मै जिस अस्पृश्यताके खिलाफ लड़ रहा हूॅ, वह तो अंतरकी वह कलंक-कालिमा है, जो जन्मके साथ ही लगी आती है और लाख धोओ, पर छूटती नहीं।

हरिजन सेवक

१५ जून, १९३४



अतिशयोक्तिसे बचो

पंडित लालनाथने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि अस्पृश्यता-निवारणका समर्थन करनेवाले कुछ अखबारोंने देवघरकी दुर्घटनाके बारेमें बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है और मेरी मोटरके हुडपर लाठियाॅ चलानेवाले लोगोंपर यह इलजा़म लगाया है कि उनका इरा़दा मेरी जान लेने का था। विरोध-प्रदर्शन करने-वालोंपर ऐसा कोई दोष नहीं लगाया जा सकता कि उनका इरादा मेरी जान लेने का था। वहींसे बिना दस्तखतका एक पर्चा भी प्रकाशित हुआ है। उसमें सुधा-रकोंके विरुद्ध प्रदर्शन करनेवालोंको मार डालनेकी धमकी दी गयी है। मैं यह नहीं मान सकता कि यह बेनामका पर्चा किसी उत्तरदायी मंडल या व्यक्तिका छपाया हुआ है। जहाॅ तक मैं जानता हूॅ, कलकत्तेके जिन सनातनियोंने मंदिर-प्रवेश बिलके विरोधमें सभा इत्यादि करने का जो दिन नियत किया था, उस दिन उनके विरुद्ध न तो कोई प्रदर्शन ही किया गया और न उन्हें कोई नुकसान ही पहुॅचाया गया। फिर भी इस बातपर मै जितना भी जोर दूॅ, उतना थोड़ा है कि सुधारकोंको मन, वचन और कर्मसे अहिंसक रहना चाहिये। उन्हें इन सनातनियोंके विरोध-प्रदर्शनोंपर कोई ध्यान नहीं देना चाहिये। मैंने जहाॅ तक देखा है, जनता इन सनातनियोंके विरोध-प्रदर्शनोंका तनिक भी समर्थन नहीं कर रही है। कुछ भी हो, उनकी भावनाके प्रति आदर दिखा कर ही हमे उन्हें जीतना है। उनके कार्योंके प्रति हमें ऐसी कोई बात मुॅहसे नहीं निकालनी चाहिये, जिससे वे चिढ़ें या गुस्सा हों।

हरिजन-सेवक

१५ जून, १९३४

हरिजन बनाम अहरिजन

हरिजन कार्यकर्त्ताओंकी एक बैठकमें उस दिन यह भी एक प्रश्न आया था कि—

"हरिजनोंमें रचनात्मक कार्य करने की अपेक्षा क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि उनके अन्दर उनकी मैजूदा अवस्थाके प्रति इतना अधिक असतोष पैदा कर दिया जाय कि वे उसे सुधारने के लिए खुद अपने पैरोंपर खड़े हो सकें? आपकी यह सवर्णोंके हृदय-परिवर्त्तनवाली बात तो व्यर्थ-सी लगती है"।

चूँकि यह महत्वका प्रश्न है, इसलिए इसके उत्तरमें जो मैंने उस बैठकमें कहा था, उसका आशय दे देना मैं उचित समझता हूँ। प्रश्नमे अज्ञान भरा है। हरिजन-आन्दोलनका क्या अभिप्राय है, इसे प्रश्नकर्त्ताने विलकुल ही नहीं समझा। हरिजनोमे असंतोष पैदा कर देने से तत्काल तो उनका कष्ट दूर होने का नहीं। इससे तो हिन्दू-समाजके अन्दर आज जो वाहियात फूट मौजूद है वह और भी स्थायी हो जायगी। इस आन्दोलनका उद्देश्य तो यह है कि हिदू समाजके अन्दर सवर्णों और हरिजनोंका जो यह नितान्त अप्राकृतिक विभाग आज दिखायी दे रहा है, वह निर्मूल कर दिया जाय और जिन न्यायसंगत अधिकारोंके पाने के हरिजन हकदार हैं, वह सब उन्हें सवर्ण लोग दे दें। इस तरह देखा जाय तो यह आन्दोलन प्रायश्चित्त और भूलसुधारका ही एक आन्दोलन है। इसलिए एक ओर तो सुधारकोंको हरिजनोंके अन्दर रचनात्मक-कार्य करना है और दूसरी ओर धीरजसे, दलालसे अपने सबसे अधिक और शुद्ध चरित्र-बलसे सवर्णोंका हृदय पलटना है। सुधारकोंमे यदि नम्रता, सहनशीलता और धैर्य होगा, तो जिस अस्पृश्यता-निवारणकी बातको आज हमारे सनातनी भाई ताना दे-देकर घृणित और अधार्मिक कह रहे हैं, उसीको कल वे 'धर्मका सारतत्व' समझने लगेंगे। मनु महाराजने धर्मकी व्याख्या करते हुए क्या यह नहीं कहा है, कि—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यम द्वेषरागिभि.।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्त निबोधतः॥

"सामान्य रीतिसे जिसका परिपालन विद्वान, सज्जन और रागद्वेषसे रहित मनुष्य करते हैं और जिसका अनुभव हृदयमे होता है, उसीको 'धर्म' समझना चाहिये।"

इसलिए यदि मनु महाराजके बताये ये गुण सुधारकोंमे होंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि सनातनियोंका हृदय पिघलेगा और फिर पिघलेगा, और उनका हृदय-परिवर्त्तन हो या न हो, पर दलित मनुष्योंकी इस प्रकार जो सेवा सुधारकजन करेंगे, उससे मानवोन्नति तो वस्तुतः होगी ही और वह कार्य ही स्वयं उस जन-सेवाका पुरस्कार होगा। ईश्वरकी 'सनातन पुस्तक' मे अवश्य ही उस सेवाका प्रतिष्ठापूर्ण उल्लेख होगा।

एक और प्रश्न था। वह यह कि—

क्या आपका खयाल नहीं है कि भूखसे मरते हुए इन लाखों-करोड़ों किसानोंका सवाल हरिजन-सेवासे कहीं अधिक महत्वका है? इसलिए क्या आप किसानोंके संघ संघटित नहीं करेंगे, जिनमें जहाँ तक उनकी आर्थिक स्थितिका सम्बन्ध है, हरिजन भी आ जायँगे।

ऐसा होता तो अच्छा ही था। किंतु बदकिस्मतीसे यह जरूरी नहीं है कि किसानोंकी आर्थिक स्थितिके सुधारके साथ-साथ हरिजनोंकी आर्थिक-स्थिति भी सुधर जायगी। जो किसान हरिजन नहीं है, वह जितना चाहे या उसे जितना अवसर मिले, उतना ही ऊँचा उठ सकता है, पर बेचारा दलित हरिजन ऐसा नहीं कर सकता। सवर्ण किसानकी तरह न तो भूमिपर ही उसका कोई अधिकार है और न उसे वह छूटके साथ काममें ही ला सकता है। उसे हलवाहे भी मिलने को नहीं। बहुत-सी जगहोंमें तो यह देखा गया है कि वह बेचारा खेती-पातीका आवश्यक बीज तक नहीं खरीद सकता। थोड़ी देरके लिए यह मान भी लिया जाय कि ठीक अहरिजन किसानकी तरह हरिजन किसान भी अपनी आर्थिक अवस्था सुधार सकता है, तब अनगिनती सामाजिक असुविधाओंका शिकार तो वह रहेगा ही, उन सब अत्याचारोंकी चक्कीमें तो वह तब भी वैसा ही पिसता रहेगा। उसकी आर्थिक अवस्थाके सुधरते ही वे सब सामाजिक अत्याचार तब उसे और भी सताने लगेंगे। अत्याचारोंका तभी तक उसे उतना अधिक भान नहीं है, जबतक कि वह कंगाल है। इसी कारण हरिजनोंकी सेवाके लिए एक खास संघ बनाने की जरूरत आ पड़ी, क्योंकि उनके अभाव और कष्ट भी तो खास और निराले ढंगके हैं। समाजके इस निम्नतम वर्गकी यदि यथेष्ट उन्नति हो गयी, तो निश्चय ही उसके परिणामस्वरूप हमारा सारा समाज उन्नत हो जायगा। इसके अलावा साधारण किसानकी कोई उपेक्षा तो की नहीं जा रही है। अखिल भारतीय चर्खा संघ किसानोंके आर्थिक व्यवस्थाको उन्नत करने में पूरी तरहसे लगा ही हुआ है। यह संघ बराबर किसानोंमें यह भाव पैदा कर रहा है कि कताई-बुनाईके गृह-उद्योगसे इनकी खेती-पातीकी साधारण आमदनीमें अवश्य ही थोड़ी वृद्धि हो सकती है और इस दुर्भिक्षके मुखमें पड़ने से वे खुद अपने आपको बचा सकते हैं।

हरिजन-सेवक
२२ जून, १९३४



प्रायश्चितका उपवास

श्री सीताराम शास्त्री आंध्र प्रांतके—एक प्रसिद्ध हरिजन-सेवक हैं। उनके एक मित्रने अपना एक मंदिर हरिजनोंके लिए खोलने का वचन दिया था; पर बादको वह अपने मित्रोंके दबावमें पड़ कर अपने उस वचनसे हट गये। मित्रकी इस कमजोरीपर बतौर प्रायश्चितके श्री सीताराम शास्त्रीने कुछ दिन हुए, विना शर्तका एक उपवास किया था। शास्त्रीजीने इस उपवासकी जब मुझसे चर्चा की, तो मैंने उनसे कहा कि इस सम्बंधमें मेरी जो दलील है उसे मै संक्षेपमे 'हरिजन' में दे दूँगा।

सराहनीय तो वही उपवास है, जो आध्यात्मिक उद्देश्यको लेकर उचित परिस्थितियोमें किया जाता है। उपवास अपना स्वार्थ साधने के लिए नहीं होना चाहिये। उसमें कोई हिंसा जैसी बात न हो; उदाहरणके लिए किसी सनातनीकी धर्म-श्रद्धा मंदिर खोलने के विरुद्ध है—यह जानते हुए भी कि यदि कोई उस सनातनीके खिलाफ अनशन करता है, तो उसका वह अनशन हिंसामे आ जाता है। श्री सीताराम शास्त्रीको जिस प्रसंगके विरुद्ध उपवास करना पड़ा वह जुदा है। उनके सामने तो यह सवाल था कि जब कि उनके एक प्रगाढ़ स्नेहीने अपना वचन भंग कर दिया है, तो उस स्थितिमे उनका क्या कर्त्तव्य है? ऐसा वचन भंग हुआ हो या होने की आशंका हो तो साधारण रीतिसे तो उसका इलाज उपवाससे होता है। जिनका यह विश्वास है कि अस्पृश्यता जैसे सामाजिक या धार्मिक पापके विरुद्ध अहिंसाका युद्ध चलाने में उपवास धर्म-संगत है, उनके लिए उपवास कर्त्तव्यरूप नहीं तो कम-से-कम वांछनीय तो समझी ही जाती है, पर हमें तो भी सही नहीं, बल्कि एक तरफसे निर्वीर्य समाजसे काम लेना है। ऐसे समाजसे काम लेते समय वचन-भंगका भी उपचार हमें शांतिसे धीरे-धीरे करना होगा—खास कर तब, जबकि व्यक्तिगत विषयमे नहीं बल्कि सामाजिक विषयमें वचन दिया गया हो। अंधविश्वास हमारे रोम रोममे पैठ गया है। अस्पृश्यता खुद एक ऐसा बहिष्कार है, जिसमे तेज-से तेज जहर भरा हुआ है। इसने हमारे मनमे काल्पनिक बहिष्कारका काल्पनिक भय भर दिया है। ऐसी भयभीत अवस्थामें सामाजिक बहिष्कारकी महज धमकीसे ही वह मनुष्य अपने वचनसे मुकर सकता है या उसे तोड़ने को तैयार हो सकता है, जो अपनी जातिसे बाहर रहने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसे प्रसंगोंपर उपवास एक बहुत सख्त उपचार सावित होता है। समझदारीका रास्ता तो यह है कि ऐसे आदमियोंसे कोई वचन लेना ही नहीं चाहिये और यदि वे वचन दे चुके हों, तो उसकी कीमत हमे छोटी नहीं आँकनी चाहिये। ऐसे मनुष्योंके साथ नम्रता व मुलामियतसे पेश आना चाहिये। उपवास जैसे तेज उपचारसे उन मनुष्योंकी शक्ति बढ़ने के बजाय शायद वे और ही बलहीन बन जाते हैं और इससे जिस सुधारके लिए उपवास किया जाता है, उस सुधारको ही हानि पहुँचती है।

हरिजन-सेवक
२६ जून, १६३४

पैदल-यात्राकी प्रशंसामें

उड़ीसाकी मेरी वह पैदल-यात्रा कितनी अच्छी थी। गति उसकी धीमी थी सही, पर वह स्थायी और सफल तथा शांत-यात्रा थी। वहाँसे मेरे साथी मुझे फिर रेल और मोटरकी उसी इल्लतमें घसीट लाये हैं। इस बीचमें नीचेका यह अवतरण पढ़ कर मुझे आनंद होता है—

"आपकी पद-यात्रासे मेरा हृदय नाच रहा है। आपका यह यज्ञ उनके योग्य है, जिनके प्रीत्यर्थ इसे आप कर रहे हैं। ढिठाई क्षमा करें, पर इसका ध्यान धरता हूँ, तो मेरा चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। हरिजन-कार्यके लिए आपकी वह मोटर-गाड़ियोंकी दौड़ा-दौड़ मुझे तो कुछ विचित्र और असगत-सी लगती है। मेरी दृष्टिमें तो यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक समस्या है और पैदल चलते हुए एक सच्चे यात्रीकी तरह आप इसकी पूर्ति कर रहे हैं। सर्वाङ्ग सम्पूर्ण सगीतसे अथवा सुन्दर सूर्यास्तकी आभासे जैसी परमतृप्ति होती है, वैसी ही तृप्ति आपकी इस पैदल-यात्रासे मुझे हो रही है। मेरा विश्वास है कि 'दरिद्रनारायण' की उपासना होनी भी इसी प्रकार चाहिये। क्षमा करें, मेरे ये शब्द उस गायकके स्वतःस्फुरित उद्गारोंके समान हैं, जो अपने तंबूरेके बिलकुल ठीक मिले हुए तारोंपर मस्त हो जाता है। लोग कहते हैं, 'लेकिन पैदल चलकर वह कितने गावोंमें पहुच सकते हैं'? मेरा हृदय कहता है, 'हां' पर इस तरह कितनी आत्माओंको वह छू कर द्रवित कर देंगे'। निश्चय ही, गाँवोंकी सख्याकी अपेक्षा आत्माका महत्व अधिक है और आप ऐसा एक यात्री हजार उपदेशकोंसे भी बढ़ कर है"।

क्या ही अच्छा हो, यदि मेरे दूसरे साथी भी महसूस कर लें कि हरिजन-कार्यके लिए पैदल-यात्रा कितनी आवश्यक और सुंदर चीज है। इस पागलपनेकी दौड़ा-दौड़मे इतनी फुरसत ही कहाँ कि जनताके हृदयका स्पर्श किया जा सके। यह तो जनताके शान्त और घनिष्ट सम्पर्कमें आने से ही हो सकता है। मोटर और रेल-गाड़ियोंकी विकट दौड़-धूप और धक्कमधक्केमे मनुष्यकी बुद्धि चौंधिया जाती है और थोड़ी देरके लिए वह स्पष्ट विचार करने की शक्तिको खो बैठता है। मैं जानता हूँ कि मेरे इस मौजूदा कार्यक्रममें कोई ऐसा भारी हेर-फेर नहीं हो सकता; पर आगे कभी कोई कार्यक्रम बनाना हो तो ऊपरके विचारों पर ध्यान रखा जाय। साथ ही, थोड़े-से सप्ताहोंका प्रवास बाकी रहा है, उसका कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिये, कि उसमें दौड़-धूप न करनी पड़े। भेंट-मुलाकातका क्रम कम-से-कम रखा जाय। दूसरे काम चाहे कितने ही सराहनीय हो, तो उनके लिए मेरी उपस्थितिका नाजायज फायदा न उठाया जाय। जहाँ तक हो सके, हरिजन-कार्यके ऊपर ही मेरा मन एकाग्र रहने दें।

हरिजन-सेवक
६ जुलाई, १६३४

"धन्य है ईश्वरको"

यह खुशीकी बात है कि मेरे इस उपवासके औचित्यके बारेमे किसीने शंका नहीं उठायी। यही नहीं, बल्कि जिन्होंने इस उपवासके विषयमें लिखा है, उन्होंने कबूल किया है कि उपवास करना आवश्यक था। उपवासका आध्यात्मिक मूल्य मेरी दृष्टिमें इतना अधिक रहा है कि मै उसे आँक नहीं सकता। मैं नहीं जानता कि क्यों, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि जब मनुष्यपर संकट आता है, तो वह उसी तरह सर्वतोभावेन भगवानसे चिपट जाता है जिस तरह कष्टमें अबोध बच्चा अपनी माँसे चिपट जाता है। मेरा चित्त प्रसन्न हो रहा है, पर यह बात नहीं कि और उपवासोंकी तरह इस उपवासमें शारीरिक कष्ट न हुआ हो। हाँ, अस्वस्थताके कारण किये गये उपवासकी बात दूसरी है।

सैकडों सार्वजनिक सभाओंमें मैंने चीख-चीख कर जो यह कहा है कि जबतक हरिजन सेवकोका चरित्र कुन्दन-सा शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक अस्पृश्यता दूर होने की नहीं, उसमें अन्तर्निहित भावोको इन सात दिनोमे मैं और भी अधिक स्पष्टतासे समझ सका। इसलिए मै आशा करता हूँ कि इस उपवासने मेरी आत्म-शुद्धिका मतलब तो पूरा कर दिया। उपवास-कालमे जिस आदर्शकी मैंने झाँकी देखी है, बहुत सम्भव है कि उस तक पहुँचने में मुझे सफलता न मिले, किंतु मनुष्यसे आगे कोई भूल होगी ही नहीं, इसका भी बीमा तो कोई भी उपवास नहीं ले सकता। आखिर हमलोग ठोकरें खाकर ही तो सफलताको प्राप्त कर सकते हैं। इस उपवासका उद्देश्य कहने के लिए तो अजमेरमें हरिजन-प्रवृत्तिके समर्थको द्वारा स्वामी लालनाथ और उनके साथियोको जो चोट पहुँचायी गयी थी, उसके लिए प्रायश्चित करना था, पर असलमे उसका उद्देश्य इस आन्दोलनसे सहानुभूति रखनेवालों तथा कार्यकर्त्ताओंसे यह अनुरोध करना था कि वे अपने विरोधियोंके साथ चौकस और शुद्ध व्यवहार करें। विरोधियोंके प्रति अधिक-से-अधिक सौजन्य दिखाना आन्दोलनके हकमें सबसे सुन्दर प्रचार-कार्य होगा। कार्यकर्त्ताओंको इस सत्यका ज्ञान कराने के लिए यह उपवास किया गया था कि हम अपने विरोधियोंको प्रेमके बलसे ही जीत सकते हैं, घृणासे कभी नहीं। घृणा हिंसाका ही सूक्ष्मरूप है। घृणाका भाव मनमें रखते हुए हम पूर्ण अहिंसक नहीं बन सकते। यह तो मोटी-से-मोटी बुद्धिवाला भी समझ सकता है कि हिंसाके द्वारा करोड़ों सवर्ण हिन्दुओंके दिलसे अस्पृश्यताकी पाप-भावना, जिसे 'धर्म' समझना उन्हें सिखाया गया है, दूर करना आवश्यक है।

अबतकके आये हुए प्रमाणोंसे तो यही प्रकट होता है कि मेरे इस उपवासने अनेक कार्यकर्त्ताओंकी अंतरात्माको सचेत कर दिया है। उपवासका कितना और कैसा प्रभाव पड़ता है, इसे तो सिर्फ समय ही बतला सकेगा। उपवासके असरका हिसाब लगाना मेरा काम नहीं है। मेरे लिए तो नम्रतापूर्वक अपने स्पष्ट धर्मका आचरण करना ही काफी था। ईश्वरको धन्य है कि उसकी कृपासे मैं यह उपवास सकुशल पूरा कर सका। पाठक भी मेरे साथ प्रार्थना करें कि जो काम ईश्वरने मुझे सौंप रखा है, उसे निभा ले जानेकी पवित्रता और शक्ति वह मुझे और भी अधिक दे।

हरिजन-सेवक

२४ अगस्त, १९३४



वह अभागा बिल

वह अभागा मंदिर-प्रवेश बिल जिस प्रकार उसके प्रस्तावकके हाथों दफना दिया गया है, उससे अधिक अच्छी रीतिसे—अगर ऐसा ही करना था तो—उसे दफनाया जाना चाहिये था। यह बिल ऐसा बिल नहीं था कि जिसे किसी व्यक्ति विशेषने अपने निजी संतोषके लिए पेश किया था। वह तो सुधारकोंकी ओरसे पेश किया गया था। इसलिए प्रस्तावकको सुधारकोंसे सलाह ले लेनी चाहिये थी। बिलके प्रस्तावक श्री रंगा अय्यरने कांग्रेसजनोंके प्रति आवेशमें आकर जो रोष प्रकट किया है, उसके लिए भी जहाँ तक मैं जानता हूँ कोई अवसर उपस्थित नहीं होता। सन् १९३२ के २७ सितम्बरको पंडित मालवीयजीकी अध्यक्षतामें हिंदू प्रतिनिधियोंकी जो सभा हुई थी उसमें खुले तौरपर अस्पृश्यता दूर करनेकी गंभीर प्रतिज्ञा ली गयी थी। मंदिर-प्रवेश बिल उस घोषणाके फलस्वरूप ही पेश किया गया था और उसका संबंध धर्मसे था। इसलिए उस बिलमें हरएक हिंदू—सवर्ण अथवा हरिजनका हित समाया हुआ था। मंदिर-प्रवेश बिल कोई ऐसा बिल तो था नहीं कि जिसमें कांग्रेसी हिंदू अन्य हिंदुओंकी अपेक्षा अधिक दिलचस्पी रखते थे। इसलिए यह बड़े दुर्भाग्यकी बात हुई कि इस प्रसंगमें कांग्रेसका नाम घसीटा गया। बिलके साथ तो इससे अच्छा सौम्य व्यवहार किया जाना चाहिये था।

मुझे तो अङ्ग-अङ्गको ढीला कर देनेवाले और दौड़ा-दौड़के इस दौरेमें दम मारनेकी भी फुरसत नहीं थी; इसलिए मैंने सार्वजनिक सभाओंमें और निजी तौरपर तथा 'हरिजन'के द्वारा सनातनी मित्रोंको जो वचन दिया था, उसके अनुसार श्री राजगोपालाचार्यसे कह दिया कि वे बड़ी धारासभाके हिंदू मेम्बरोंकी रायका वाहमी तौरपर निश्चय पता लगा लें और अगर यह मालूम हो जाय कि उनका

बहुमत बिलके खिलाफ है, तो बिलको वापस ले लेना चाहिये। यह एक ऐसा सीधा-सादा प्रश्न था कि जिसके आधारपर या तो बिलका अन्त कर दिया जा सकता था या उसे आगे बढ़ाया जा सकता था। सनातनी और सुधारक दोनो इस वस्तुस्थितिको समझ सकते थे। इस बिलका भाग्य-निर्णय इस तरह लस्टम-पस्टम रीतिसे नहीं होना चाहिये था। श्री राजगोपालाचार्य या मैने अगर कोई गलती की थी, तो उसका फल हम भोग लेते। मगर बिल तो व्यक्तियोसे ऊपर था। सही हो या गलत, उसने एक महान सिद्धान्त प्रकाशमे ला कर रखा था, इसलिए उसके साथ तो अधिक उपयुक्त सलूक होना चाहिये था।

अब रही सरकारके सम्बन्धकी बात, सो इस पत्रकी नीति ऐसी है कि जहाँ तक हो सरकारकी टीका-टिप्पणीसे इसे अलग ही रखा जाय; पर इतना तो मै कहूँगा कि सरकारने वही किया जो उस परिस्थितिमें वह कर सकती थी; किन्तु जनताको यह जान लेना चाहिये कि सुधारकोकी तरफसे न केवल लोकमत प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं हुआ, बल्कि साफ तौरपर यह तय कर दिया गया था कि बिलके पक्षमे साधारण जनताके हस्ताक्षर प्राप्त करने की कोई चेष्टा न की जाय; हाँ, अगर कानूनदाँ या विशेषज्ञ चाहें तो भले अपनी राय भेज दें। 'हरिजन' मे यह बात स्पष्ट कर दी गयी थी। मेरे साथी और मै इस नतीजेपर पहुँचे, यह बिल जो लोकमत जानने के लिए प्रचारित किया गया है कि उसके अंतर्गत इतने अधिक कानूनी प्रश्न हैं कि साधारण जनता उनका निर्णय नहीं कर सकती। इसलिए सवाल यह नहीं था कि सार्वजनिक हिन्दू-मन्दिरोंमे हरिजन ठीक उन्हीं शर्तोंपर जायँ या नहीं—और अगर कोई कानून हो, तो इस मन्दिर-प्रवेश बिलमें क्या गुण-दोष है। मेरी रायमे ये दोनो प्रश्न इतने अधिक कानूनी और जटिल थे कि सर्वसाधारणके आगे उनका रखना ही गलत था। निश्चय ही ऐसे अवसरोंकी कल्पना करनी असम्भव नहीं है, जब कानूनी सहायता या दस्तन्दाजी धार्मिक मामलों तकमे आवश्यक हो जाती है। ऐसे कानूनी हस्तक्षेपके अनेक उदाहरण मौजूद हैं पर इस बिलपर साधारण जनताका यथेष्ट युक्तिसंगत मत प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था। फिर जनताको यह समझना भी उतना ही कठिन काम था कि मंदिर-प्रवेश बिलमें रत्ती भर भी जोर-जबर्दस्ती नहीं है और मन्दिरोंमे जानेवाले लोगोंके बहुमतकी मरजीके विरुद्ध एक भी मन्दिर नहीं खोला जा सकता। अनुकूल परिस्थितियोंमे लोकमतकी जागृति कोई असंभव चीज नहीं है, किन्तु जब पक्षपातका पूरा बोलबाला हो और सत्यकी अवहेलना की जाती हो, तब तो यह बात असंभव-सी ही है।

लड़ाई तो मन्दिर-प्रवेशका जारी रखना ही है। हरिजनोंको दिया हुआ वचन तो पूरा करना ही है और उनके लिए मन्दिरोको अवश्य खुलवाना है। कानूनी स्वीकृतिके बिना अगर मन्दिर खुल सकें, तो सबसे अधिक प्रसन्नता सुधारकोंको ही होगी। यह बात नहीं है कि जहाँ मन्दिरोमे जानेवाले सवर्ण हिन्दुओंका बहुमत हरिजनोके मन्दिर-प्रवेशके बिरुद्ध हो, वहाँ भी सुधारक लोग मन्दिर खुलवाना चाहते

हैं। कानूनी सहायताकी जरूरत तो इसलिए आ पड़ी है कि कानून-विशारदोंकी रायमें मौजूदा कानून मन्दिरोंके इस तरह खुलनेमें बाधक हो रहा है—और वहाँ भी, जहाँ कि मन्दिरमें जानेवाले लोगोंका बहुत बड़ा बहुमत मन्दिरके खोल देने के पक्षमें हो। अगर ऐसी बात है, तो कानूनका बनना जरूरी है। कानून-कृत स्थितिको कानून ही रद्द कर सकता है, फिर उस स्थितिको चाहे जजने जन्म दिया हो, चाहे व्यवस्थापिका सभाने या किसी रूढ़ि ने; पर इस कानूनके पास होने मे कोई बाधा दे ही न सके, ऐसी स्थितिके आने तक सुधारकोंको राह देखनी चाहिये। किन्तु यह प्रतीक्षा तो जाग्रतके लिए है। उतावलीमें बिलको वापस ले लेना ही हमें यह सबक सिखाता है। निराश होने का कोई कारण नहीं। अब दूने प्रयत्नकी जरूरत है। हरिजन मन्दिर-प्रवेश चाहते हैं या नहीं इसे जानने या साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं। पापका यह निवारण उन सवर्ण हिन्दुओंके आत्मसन्तोषके लिए आवश्यक है, जिन्होंने यह अनुभव कर लिया है कि अस्पृश्यतारूपी घुन हिन्दुस्तान को भीतर-ही-भीतर खोखला कर रहा है और अगर समय रहते उसे दूर न किया, तो निश्चय ही वह हिन्दू-धर्मका अन्त कर के रहेगा।

हरिजन सेवक
७ सितम्बर, १६३४



भयंकर अत्याचार

तलाजाके आसपास हरिजनोंपर जो अत्याचार हो रहे हैं उसकी खबरें मेरे पास चारो तरफसे आ रही हैं। इन समाचारोंमें, सम्भव है, कुछ अतिशयोक्ति भी हो, पर उस अतिशयोक्तिको बाद दे कर बाकीका वर्णन जो बच रहता है, वह भी इतना भयंकर है कि उससे हृदय काँप उठता है। यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि मनुष्य ऐसी निर्दयतासे काम लेता होगा।

और दुःख तो यह है कि हरिजन बेचारे बिलकुल निर्दोष हैं। ढोरोंपर महामारी आवे और उससे वे मरें, पर दोष दिया जाय गरीब हरिजनोंको!! लोग उन्हें देख कर आपेसे बाहर हो जाते हैं और उन्हें इतना पीटते हैं कि बेचारे मरण-तुल्य हो जाते हैं, कोई-कोई तो मर भी जाता है। मारे त्रासके घरबार छोड़-छोड़ कर वे भाग रहे हैं।

इससे और भी दुःख होता है कि ऐसे-ऐसे वाकयात भावनगर जैसे अनुकरणीय राज्यमें हो रहे हैं। मेरे यह कहने का आशय राज्यके दोष काढ़ने का नहीं है। मुझे जो चिट्ठियाँ और तार मिले हैं उनसे मालूम होता है कि राज्यके अधिकारी

बराबर जाग्रत हैं और मुझे आशा है कि इस हत्याकाण्डकी पूरी-पूरी तहकीकात होगी और निर्दोष हरिजनोंके साथ न्याय किया जायगा; साथ ही कोई ऐसी योजना राज्यकी ओरसे बना दी जायगी जिससे फिर कभी निर्दोष हरिजनोंपर ऐसा अत्याचार न होने पाये।

दुःख रोने का कारण तो यह है कि प्रगतिशील राज्यमें भी बहुत-से लोगोंके हृदय हरिजनोंके प्रति पत्थर जैसे ही हैं, उन्हें वे जानवरोंसे भी हेय समझते हैं और किसी हरिजनको मार डालने या मारते-मारते अधमरा कर देने में उन्हें न तो संकोच होता है, न फाँसी या कालेपानीकी सजाका ही भय रहता है। कुत्ते-बिल्लियोंको अगर अधमरा कर डालने या मार डालने में राज्यका अथवा ईश्वरका भय किसीको हो, तो हरिजनोंको भी मारने-पीटने या मार डालनेका भय हो, यह गणित जैसी युक्ति बहुधा देखने-सुनने में आती है।

राज्य इसमें अधिक सहायता करे ही क्या? राज्य तो घटना हो चुकने के बाद ही इन्साफ करेगा, गुनाहगार गाँवसे तो वह तभी बदला लेगा, पर जहाँ लोकमत इस विषयमे दृढ़ न हो वहाँ राज्यके प्रयत्नका कोई बड़ा परिणाम नहीं निकल सकता। तलाजाके हत्याकाण्डके अन्दर एक घोर अज्ञान और वहम समाया हुआ है। इस अज्ञानान्धकारको दूर करने का काम तो हरिजन-सेवकोंका है। लोगोंको उन्हें बताना चाहिये कि यह महामारी तो किसी-किसी साल सारी दुनियामे फैली हुई देखी जाती है, पर ऐसा वाहियात वहम तो हिन्दुस्तान ही में देखने-सुनने में आता है, हिन्दुस्तानके बाहर और किसी देशमे तो ऐसी अजीब बात आजतक सुनने में आयी नही। वहाँ तो लोग ढोरोंके ऐसे रोगको आसमानी मार ही समझते हैं और उसे नेस्तनाबूद करने के लिए उचित उपायोंकी योजना बनाते और ढोरोंको दवा-दारू देते हैं। ऐसे ज्ञान-प्रकाशका प्रसार अज्ञानान्धकारमे डूबे हुए गाँवोंमे अवश्यमेव होना चाहिये।

एक हरिजन भाईका इस विषयका एक हृदय-द्रावक पत्र मेरे पास आया है, जो हर सवर्ण हिन्दूके पढ़ने लायक है। उस पत्रका मुख्य अंश मैं नीचे देता हूँ:—

"इधर कुछ दिनोंसे काठियावाड़मे ढेड़-भंगी भाइयोंपर ऐसा सितम ढाया जा रहा है कि देख कर खून उबलने लगता है और यह जुल्म उनपर हमारे सवर्ण भाइयोंकी ओरसे ढाया जा रहा है! जो काठियावाड़ आपका तथा पूज्य श्री ठक्करबापाका केन्द्र-स्थान समझा जाता है, जो काठियावाड़ कितने ही साधु-सन्तोंकी जन्मभूमि मानी जाती है, उसी काठियावाड़से आज ऐसी-ऐसी दिल दहलानेवाली भयंकर खबरें आ रही हैं। एक तरफ तो हरिजनोंके लिए आप अपने प्राणोंकी बाजी लगाये बैठे हैं और दूसरी तरफ काठिया-वाड़के सवर्ण हिन्दू ऐसे-ऐसे अन्याय कर रहे हैं कि जो न तो मनुष्यताको छाजते हैं न हिन्दू धर्मको ही। काठियावाड़के तमाम गावोंमें तथा आसपासके और कितने ही गावोंमें ढोरोंकी महामारी फैली हुई है और उससे वे मर रहे हैं। इस मौतकी जवाबदेही हरिजनोंके मत्थे

मढ कर सवर्ण हिन्दू उनपर बेरहमीसे लाठिया बरसाते हैं। रोग तो फैला हुआ है कुदरती कारणसे या गन्दगीकी वजहसे और जवाबदार समझे जाते हैं बेचारे निर्दोष हरिजन। क्या आखोंके होते भी यह अन्धे जैसी बात नहीं है? इन अत्याचारोंका वर्णन जो अखबारोंमें आ रहा है, उसे देख कर तो मैं रो पड़ता हूँ और दिल दहल जाता है। चाहे कितने ही कठोर हृदयका मनुष्य हो, इस जुल्मकी खबर सुन कर तो वह भी एक बेर काप जायगा। फिर यह खबरें जब आप तक पहुचेगी, तब आपके दिलपर कितना आघात पहुचेगा, क्योंकि आप तो हमारे तारणहार हैं। सवर्ण हिन्दू भाइयोंको क्या हो गया है। आप शास्त्र इत्यादिके प्रमाण दे-दे कर हरिजनोंके प्रति भाई-चारेका बर्ताव करने के लिए सवर्ण भाइयोंको समझा रहे हैं, किन्तु काठियावाड़के सवर्णोंकी आखपर तो जैसे पर्दा पड़ गया है। लाठियोंकी मारसे बेचारा एक भंगी भाई चल ही बसा। उसकी विधवा स्त्री ढाढ मार-मार कर रो रही है। उसके अनाथ बच्चे विलाप कर रहे हैं। कितने ही हरिजनोंके हाथ-पैर मारे मारके सूज गये हैं, बेचारे दुःखसे कलप रहे हैं। उन असहाय हरिजनोंको मदद दे कर आप इस भयकर अत्याचारसे बचाइये"।

हरिजन-सेवक
१४ सितम्बर, १६३४



एक छोटा-सा प्रायश्चित

"जातिका मैं ब्राह्मण हूँ और एक अग्रेजी पाठशालामें अध्यापकका काम करता हूँ और सनातन धर्मका आचार-विचार पालने का प्रयत्न कर रहा हूँ। गत वर्ष यरवदा-जेलमें आपने आमरण उपवास आरम्भ किया और सरकारने आपको छोड़ दिया। जेलसे छूटने पर आपने पूरे एक वर्ष तक केवल हरिजन-सेवा करने की प्रतिज्ञा की। उस समय मैंने छोटी-सी प्रतिज्ञा यह की कि इस वर्षमें बैंकसे जो ब्याज मुझे मिलेगा वह सब-का-सब सालके अन्तमें आपके पास भेज दूँगा। आज ब्याजके सात रुपये मनीआर्डरसे 'मन्त्री, गुजरात-हरिजन सेवक सघ, अहमदाबाद, के नाम मैं भेज रहा हूँ। मेरी इस छोटी-सी रकमको कृपा कर आप हरिजन-सेवा-कार्यमें लगा दें।

"इस वर्ष पुरुषोत्तम मास पड़ा था। पुरुषोत्तम मासके अन्तमे कितने ही लोग ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। मैंने हरिजनको भोजन कराने की प्रतिज्ञा की थी। छुट्टियोंमें मैं अपने गाव गया। मासके अन्तमें, एक हरिजन बहिनसे नहा-धोकर भोजन लेने के लिए आने को कह दिया। भगवानको नैवेद्य करा कर पहली थाली तुरन्त उस हरिजन बहिनको देने के लिए रसोईसे निकाल कर रख ली। मैंने जूठन न देनेकी प्रतिज्ञा कर रखी थी। उस बहिनको थाली दे कर पीछे मैंने भोजन किया। जब मैं सध्या-पूजा कर के अपने झरोखेके पास खड़ा

होता हूँ तब किसी आते-जाते हरिजनका दर्शन कर के मैं मानता हूँ कि मेरी ब्राह्मण जाति कृतार्थ हो गयी। मेरे गावमें एक सनातनी शास्त्रीजी महाराज रहते हैं। गावमें मेरे पहुचने के पहले उन शास्त्रीजीने एक सभा की थी। शास्त्रीजी मेरे पड़ोसी हैं और मेरे ऊपर उनका स्नेह रहता है। अबतक वह मुझे एक चुस्त सनातनी समझते थे, इसलिए मुझमें यह परिवर्त्तन देख कर उन्हें अचरज लगता है। सुनने में आया कि शास्त्रीजीकी सभामें दस हजारकी जनसख्याके गावमें से सिर्फ चालीस ही आदमी गये थे। मैंने उन शास्त्रीजीके साथ दो-तीन बार हरिजन-कार्यके विषयमे सवर्णोंके सामने बात की है। नम्रता और आदरपूर्वक मैंने उन्हें दलीलें दे-देकर समझाया है। उन्हें मेरे ऊपर क्रोध करने का कोई कारण नहीं मिला। विरोध तो उनका केवल हरिजनोंके मन्दिर प्रवेशके सम्बन्धमें है। आपकी बात मैंने उन्हे सुनायी और समझायी। हमारी बातचीतमें खूब शान्ति और विनय रही। वातावरणको शुद्ध बनाने की ही मेरी इच्छा है।

"अस्पृश्यता-निवारणका यह धर्मयुद्ध आत्म-शुद्धिके लिए है—इस विश्वाससे और भगवान श्रीरामचन्द्र सनातनियोंके हृदयमें वास करें—इसके निमित्त मैंने सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायणका पारायण कर डाला और सच्चे हृदयसे प्रभु रामचन्द्रसे प्रार्थना की कि वे सनातनियोंके हृदयमें वास करें।

"मैं जिस पाठशालामे अध्यापन-कार्य करता हूँ उसमें ऊची जातिके सवर्णोंके बालक पढ़ते हैं। उनसे मैं आपका अंग्रेजी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बन्धु' बचवाया करता हूँ। हरिजन सेवा का रहस्य भी मैं उन्हें समझाता हूँ और इन सबमें मेरा हेतु रहता है केवल हृदय-परिवर्त्तनका।

"हरिजन बस्तीमे एक पुराना कुआ मिट्टीसे पुरा हुआ पड़ा था। विचार आया कि इसे फिरसे खुदवा कर ठीक करा दिया जाय, तो हरिजनोंकी चौमासेमे पानी पीनेकी कठिनाई दूर हो जाय। हमारे यहा ग्रामपचायतके अध्यक्ष एक ब्राह्मण हैं। वह मेरे स्नेही हैं। उनसे मैं मिला और कुआ दिखा कर मैंने उनसे कहा कि पैसेका प्रबन्ध तो मै करा दूँगा, पर पंचायतमें हमारे यहा दो दल हैं, इसलिए हो सकता है कि एक दलका काम दूसरे दलको पसन्द न आये और उस अच्छे कामको भी वह विरोधी पक्ष बिगाड़ दे। इसपर उन्होंने कहा कि तुम विरोधी दलके नेतासे मिलो और अगर वह राजी हो जाय तो यह काम तुरन्त सम्पन्न हो सकता है। विरोधी पक्षके मुखिया भी मुझपर वैसा ही स्नेह रखते हैं। मैं उन्हें आपके धर्म-कार्यका रहस्य समझाता रहा हूँ और वह आपके हरिजन-कार्यमें दिलचस्पी भी रखते हैं। मैंने उनसे कुएंके बारेमें बात की, तो उन्होंने कहा कि इस पवित्र कार्यमें मैं बाधा नहीं दूँगा, इतना ही नहीं बल्कि मैं खुद ही नगरसभा में इस धर्म-कार्य के लिए २००) का प्रस्ताव रख दूँगा। मैंने यह बात अध्यक्षजीसे जाकर कही। सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुए। चौथे ही दिन सभामें इस विषयका प्रस्ताव पेश हुआ और सर्वसम्मतिने वह पास भी हो गया। कुएका काम अध्यक्षकी देखरेखमें आरम्भ हो गया है। अध्यक्ष एक सच्चे सनातनी हैं। जब-जब वे मुझे मिलते हैं. मैं आपके धर्म-कार्यका रहस्य उन्हें समझाता हूँ। आपके प्रेम-मार्गका रहस्य अधिक-से अधिक ऐसे दृष्टान्तसे समझा जा सकता है।

"इस तरह जब-जब और जहा-जहा ईश्वर मुझे अवसर देता है, तहा-तहा और तब-तब मैं सवर्णोंको यथामति और यथाशक्ति इस 'शुद्धि-यज्ञ' का रहस्य समझाने की चेष्टा करता हूँ, क्योंकि शुद्ध वातावरणकी, जिसे आप 'हृदय परिवर्त्तन' कहते हैं, इस कार्यमें खास जरूरत है। हरिजनोंके साथ भी स्वच्छता इत्यादिके विषयमें समय-समय पर बातचीत किया करता हूँ।

"इस तरह मैं यहा अस्पृश्यता-पापका एक छोटा-सा प्रायश्चित कर रहा हूँ"।

इस पत्रके लिखनेवाले भाईने अपना नाम और पता-ठिकाना दिया है; पर नाम-धाम जाहिर कर देने से मूक-सेवाका मूल्य कहीं कम न हो जाय, इसलिए मैं उसे प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। इस प्रकारकी मूक-सेवासे ही अस्पृश्यताका निवारण हो सकता है।

हरिजन-सेवक
१४ सितम्बर, १६३४



ईश्वर है या नहीं ?

दक्षिण भारतमें भ्रमण करते समय मेरी ऐसे हरिजनों तथा दूसरे लोगोंसे भेंट हुई जो यह कहते थे कि हमारा ईश्वरके अस्तित्वमे विश्वास नहीं। एक जगह हरिजनोंकी सभा हो रही थी। सभाके अध्यक्षका अनीश्वरवादपर भाषण हो रहा था—और सो भी उस मन्दिरमें, जिसे हरिजनोने अपने पैसेसे अपने लिए तैयार कराया था! हरिजनोके साथ सवर्णोंकी ओरसे जो दुर्व्यवहार होता है उससे हरिजन सभापतिका दिल इतना दुःखा कि उसे ईश्वरकी हस्तीपर भी सन्देह होने लगा। वह सोचने लगा कि 'करुणा-सिन्धु' कहलानेवाले ईश्वरका अगर अस्तित्व होता तो क्या ऐसी-ऐसी क्रूरताएँ दुनियामें हो सकतीं। इस अविश्वासका कुछ-न-कुछ कारण तो जरूर रहा होगा।

पर एक और ही प्रकारकी नास्तिकता का एक और नमूना मिला है, जो इस प्रश्नके रूपमें है :—

"क्या आपका ऐसा खयाल नहीं है कि ईश्वर, सत्य अथवा वास्तविकताके विषयमे पहलेसे ही कोई विचार स्थिर कर लेने से हमारी सारी अनुसधान-प्रवृत्ति पर ही एक तरहका रंग चढ़ जा सकता है जो हमारे कार्यमें खासतौर पर बाधक हो सकता है और हमारे जीवनके उद्देश्यका ही नष्ट कर दे सकता है। जैसे, आप यह मानते हैं कि कुछ नैतिक विषय ऐसे हैं जो मौलिक सत्य हैं, लेकिन हम तो अभी खोज कर रहे हैं और

जबतक हमें वास्तविकताका पता नहीं लग जाता, तबतक हम यह कैसे मान सकते है कि नैतिकताका कोई खास नियम ही सत्य है और उससे हमें अपनी शोधमें सहायता मिलेगी"।

जबतक किसी विषयके अस्तित्वकी कल्पना पहलेसे स्वीकार नहीं कर ली जाती, तबतक उसकी खोज करना सम्भव नहीं। अगर हम किसीका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, तो हमें कुछ प्राप्त भी नहीं हो सकता। सृष्टिके आदिसे ही यह जगत, जिसमें ज्ञानी और मूढ़ दोनो ही शामिल हैं, यह मानता आया है कि 'अगर हम हैं, तो ईश्वर भी है और ईश्वर नहीं है तो हम भी नहीं हैं'। ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें हरएक मनुष्यके मनमें विश्वास बना हुआ है। इसलिए ईश्वरका अस्तित्व सूर्यके अस्तित्वसे भी अधिक निश्चित माना है। 'ईश्वर है'—इस जीते जागते विश्वासने हमारे जीवनकी अनगिनती पहेलियोंको सुलझाया है। इस विश्वासने हमारी विपदाओंको हलका कर दिया है। हम जीते हैं तो इसी विश्वासके आधारपर, और परलोकमें भी हमारी शान्तिका आधार हमारा यही विश्वास है। ईश्वरके अस्तित्वमे विश्वास करने से ही सत्यके अनुसंधानमें भी मन लगता है। सत्यकी खोज ही ईश्वरकी खोज है। सत्य ही ईश्वर है। ईश्वर है, क्योंकि सत्य है। हम यह मानते हैं कि सत्यका अस्तित्व है और उसकी खोजके सम्बन्धमे सुविज्ञात और अनुभूत नियमोंके परिपालन से उसकी प्राप्ति हो सकती है, इसलिए तो हम सत्यकी खोजमे प्रवृत्त होते हैं। ऐसे शोधकी विफलताका कोई प्रमाण इतिहासमे नहीं मिलता। ईश्वरकी हस्तीमे विश्वास करनेवाले नास्तिक भी सत्य पर विश्वास करते हैं—विशेषता यही है कि उन्होने ईश्वरको दूसरा ही नाम, सत्यका नाम दे दिया है। नाम तो उसके अनन्त है, पर सत्य उसका सिरमौर नाम है।

जो ईश्वरके विषयमे सत्य है, वही कुछ कम मात्रामे, नैतिकताके कतिपय मौलिक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें भी सत्य है। असलमे, ईश्वर अथवा सत्यके अस्तित्वसे ही उनका सम्बन्ध है। इन नैतिक सिद्धान्तोंसे पीठ फेर लेने के ही कारण सत्यसे जी चुरानेवाले लोग इतने अधिक कष्टमे रहते हैं। ईश्वर अथवा सत्यकी प्राप्ति-साधना कठिन है सही, पर इससे यह नहीं कह देना चाहिये, कि 'ईश्वर है ही नहीं'।

हिमालयपर वही चढ़ सकता है जो उसकी चढ़ाईके नियमोंका पालन करे। नियम-पालन करने मे कठिनाई आती है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि हिमालयपर चढ़ना ही असम्भव है। नियम-पालन करने से खोजमे और भी अधिक रस मिलता है और लगन बढ़ती है। ईश्वर या सत्यकी खोज हिमालयपर चढ़ाई करनेवाले अगणित अभियानोंसे कहीं बढ़ कर है और इसीसे यह खोज बहुत अधिक रसदायक भी है। हमें जो उसमे रस नहीं मिलता, उसका कारण है ईश्वरके अस्तित्वमे हमारी श्रद्धाकी शिथिलता। हम जो कुछ अपने चर्म-चक्षुओंसे देख पाते हैं उसीको उस सत्से भी अधिक सत्य मानते हैं, जिसके सिवाय और सब असत् हैं। हम जानते हैं, जो दृष्ट है, जो कुछ दिखायी पड़ता है वह भ्रम है, माया है। तो भी हम

असत्को ही सत्य मानते हैं ! तुच्छ पार्थिव वस्तुओंको माया समझने लग जाने से तत्वानुसंधानमें आधी विजय प्राप्त हो चुकती है । मांयाजाल को तोड़ देने से ईश्वर या सत्यकी खोजका आधा काम हो चुकता है । जबतक हम माया मोहसे मुक्त नहीं होते तबतक उस महान अनुसंधान कार्यके लिए हमें अवकाश ही नहीं मिल सकता ।

हरिजन-सेवाका कार्य करनेवालोंको यह जान रखना चाहिये, अस्पृश्यता-निवारणका आन्दोलन उसी महान अनुसंधानका अंश है—भले ही हम उसे न समझ सकते हों । अस्पृश्यत्व बहुत बड़ा असत् है । इस सत्यको समझे बिना हरिजन-सेवामें हमें हाथ नहीं डालना चाहिये । सफलताके जो नियम समय-समयपर बनाये गये हैं, उन्हें तत्परताके साथ पालन करके ही हम दूसरों को इस सत्यका ज्ञान करा सकते हैं ।

हरिजन-सेवक

५ अक्तूबर, १९३४



कुछ कूट प्रश्न

बिहारके एक सज्जन लिखते हैं—

"मैं मिथिला प्रान्तका मैथिल ब्राह्मण हूँ । हमारा कुल कट्टर सनातनी है, पर मुझपर कट्टरताका कम ही असर पड़ा है । 'हरिजन' में प्रकाशित आपके विचारोंको मैं दूसरोंके आगे रखने का भी साहस करता रहता हूँ । इस प्रयत्नमें मुझे थोड़ी बहुत सफलता भी मिली है । मेरे गाँवमें हम ब्राह्मणोंके कुएँसे तीन-चार बरस पहले हरिजन ही क्या अन्य शूद्र जातिया भी पानी नही भर सकती थीं। पर आज वह बात नहीं रही । अब तो डोम और चमार इन दो जातियों को छोड़ कर शेष सभी हिन्दुओंको पानी भर लेने देते हैं । सिर्फ डोम और चमारोंको ही पानीका कष्ट है । जन्मतः मानी जानेवाली घृणा-भावना तो उनके प्रति भी अब बहुत कुछ कम हो गयी है। जो थोड़ी-सी घिन उनके प्रति शेष रह गयी है, वह उनकी गन्दी आदतोंके ही कारण है । मुर्दार मासका खाना, मरघटका वस्त्र पहनना, सबका जूठन खाना, सूअरका पालना आदि बातोंको ये लोग छोड़ दें, तो उनके प्रति फिर इतनी भी घृणा न रहे ।

"अब आपसे मैं कुछ प्रश्न पूछने की ढिठाई करता हूँ । आशा है, मेरी शंकाओंका समाधान आप कृपा कर 'हरिजन' के द्वारा कर देंगे—

१—"जिस तरह आप उच्चवर्णके कहलानेवाले हिन्दुओंपर हरिजनोंको अपना लेने के लिए जोर देते रहते हैं, उसी तरह आप हमारे हरिजन भाइयोंसे क्यों नहीं कहते कि वे भी अपनी गन्दी आदतोंको छोड़ दें और स्वच्छतापूर्वक रहें ?

२—'सनातन-धर्म' का क्या रहस्य है और क्या लक्षण ? आप अपनेको

सनातनी हिन्दू कहने का दावा करते हैं। क्या सनातनियोंके लिए श्राद्ध, मूर्तिपूजा, अवतार इत्यादिका मानना जरूरी नहीं है?

३—"आपने कहा है कि मनुष्य जब अपने वर्णका परम्परागत धन्धा छोड़ देता है, तब वर्णका संकर हो जाता है। तब सनातनी 'वर्ण-सकर' का जो अर्थ लगाते हैं, वह कहा तक ठीक है? गीताके प्रथम अध्यायमें आये हुए, "स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण-सकरः" इस श्लोककी सगति आप अपने अर्थके साथ कैसे बिठायगे?

४—"प्रायः सभी स्मृतिकारोंका कथन है कि ब्राह्मणी तथा शूद्रके संयोगसे उत्पन्न सन्तान चाण्डाल होती है। ब्राह्मणीके साथ जो शूद्र विवाह करेगा, वह अवश्य ही दुष्ट स्वभावका मनुष्य होगा, क्योंकि शूद्रके लिए तो ब्राह्मणी माताके तुल्य है। इसपर आपकी क्या राय है? यह आपके वर्ण-धर्मके प्रतिकूल है या अनुकूल?

५—"आपके विचारसे न कोई वर्ण किसीसे उच्च, न कोई किसीसे नीच, सभी सर्वथा समान हैं। यद्यपि सिद्धान्त रूपसे यह ठीक मालूम पड़ता है, पर व्यावहारिक दृष्टिसे तो यह असम्भव-सा ही जान पड़ता है। ससारमें बुद्धि द्वारा किये गये कामोंके लिए शरीर द्वारा किये गये कामोंसे अधिक मूल्य दिया जाता है। फिर ब्राह्मणको सतोगुण प्रधान, क्षत्रियको सतो एव रजोगुण प्रधान, वैश्यको रजोगुण प्रधान और शूद्रको तमोगुण प्रधान शास्त्रोंने माना है। भागवतमे लिखा है कि जिस मनुष्यका वर्ण न मालूम हो, उसका वर्णनिर्णय उसके गुणकर्मादिको देखकर कर लेना चाहिये। शूद्रोंके विषयमें स्मृतियोका क्या मत है यह भी तो देखिये। स्मृतियोंके साथ आपके तात्पर्यकी संगति कहाँ तक बैठती है।

६—"आप भी वर्णको प्रायः जन्मना मानते हैं, पर कितने ही मनुष्योंमे, ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेने पर भी ब्राह्मण-स्वभाव या कर्मकी ओर प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। इन्हें आप अपने वर्ण व्यवस्थामें कहा स्थान देंगे? "शास्त्रमें कहा हैः—

ब्राह्मणस्य शरीरं हि क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यनत सुखाय च॥
उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्ति धर्मस्य शास्वती।
सहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्म भूयाय कल्पते॥

इस प्रकारकी तपस्या और धर्मकी ओर प्रवृति यदि किसी शूद्रकुलोत्पन्न मनुष्यकी हो, तो उसे हम ब्राह्मण क्यों न कहे?

७—"मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसी ही बुद्धि उसकी होती है। इसलिए शास्त्रोंने चोर, डाकू, कृपण, वेश्या, कसाई आदि मनुष्योंका अन्न खाने से हमें रोका है। सनातनी पंडित कहते हैं कि दुष्ट स्वभावके मनुष्योंका स्पर्श किया हुआ अन्न-जल ग्रहण करने से हममें उनके ससर्ग-जन्य दुष्ट स्वभावके आ जाने का भय रहता है और आप कहते हैं कि खान पानका प्रतिबन्ध वर्णधर्मका कोई आवश्यक अग नहीं। यह बात कहा तक ठीक है?

८—"जब हमलोग जनताके बीच अस्पृश्यता-निवारणका कुछ काम करने लगते हैं, तो सनातनी पंडित आपके विरुद्ध न जाने कैसी-कैसी बातें कहते हैं और बातें

तो हम उनकी काट देते हैं, पर जब वे आश्रमके उस म्रियमाण बछड़ेके बारेमें दलील देते हैं, तब हम उन्हें कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दे सकते। इस प्रश्नपर क्या आप कुछ प्रकाश डालेंगे" ?

यह पत्र मेरे पास जूनसे पड़ा हुआ है। हरिजन-यात्रामें तो कुछ लिखना अथवा लिखाना असंभव नहीं तो मुश्किल तो था ही। यद्यपि पत्रको आये हुए काफी समय हो गया है, तो भी पत्रमें आये हुए प्रश्न उत्तर देने लायक हैं।

१—हरिजनोंको शौचादिके नियम पालने की शिक्षा तो अवश्य दी जाती है, किन्तु उन्हें ऐसी शिक्षा देना एक बात है और नियम पालन को अस्पृश्यता-निवारणकी एक शर्त बना देना दूसरी बात है। ऐसी शर्त शिक्षा प्रचारमें घातक बन सकती है। उनके दोषोंके जिम्मेदार वे नहीं, हम हैं। जब हम उन्हें प्रेमसे अपना लेंगे, तब वे अपनी दूषित आदतोंको तो अपने आप ही छोड़ देंगे। आज तो उनके ऊपर शिक्षाका असर कम ही पड़ता है। जब अस्पृश्यता हट जायगी, तब वे अपना सुधार शीघ्र कर लेंगे। इसका मतलब यह नहीं है हम मैले-कुचैले गंदे लोगोंको देव-दर्शन करने दें अथवा उनका स्पर्श करें। हमे तो जो कहना और करना है, वह तो इतना ही है कि कोई जन्मसे अस्पृश्य नहीं है। कर्मसे तो हम सभी अस्पृश्य बन जाते हैं। हरिजनोंके तो हम देनदार हैं, लेनदार नहीं। वे जैसे हैं उसी हालतमें हमें उन्हें अपनाना है। हम उन्हें अपनाते हैं, तो इसमें उनके प्रति कोई कृपाकी बात नहीं है। हम अपना प्रायश्चित कर के ही उनकी गंदी आदतोंको दूर करा सकते हैं।

२—सनातनधर्मका विशेष लक्षण वर्णाश्रम है। यो तो मैंने बहुत-सी व्याख्याएँ दी हैं, किन्तु वर्णाश्रमको ही सनातनधर्मका विशेष लक्षण माना जाय। श्राद्धादि न करने से कोई सनातनी मिट नहीं जाता। लाखों देहाती भाई श्राद्ध नहीं करते, तो भी सनातन धर्मी तो वे हैं ही। यही बात मूर्ति-पूजा, अवतारादिके विषयमे भी है। मूर्ति पूजा करोगे, अवतार मानोगे, तभी सनातनी हिन्दू कहे जाओगे, अन्यथा नहीं, ऐसा कोई नियम मेरे देखने मे नहीं आया है। मैं तो अवतारवादको अच्छी तरह मानता हूँ। मूर्ति पूजाको भी मानता हूँ और करता भी हूँ, लेकिन मैं अपनेको जो सनातनी मानता हूँ, उसका कारण तो मेरा वर्णाश्रमको मानना और धर्मशास्त्रोंको जैसा मैं जानता हूँ उसके अनुसार सतत् प्रयत्न करना है।

३—जब मनुष्य अपने वर्णके प्रतिकूल धंधेको अपनी आजीविकाके लिए करने लग जाता है, तब वह वर्णका सॉकर्य करता है। ब्राह्मणने आजीविकाके लिए वकालत की अथवा झाडू लगायी, तो उसने वर्णका सांकर्य किया। इसी तरह धोबी जब आजीविकाके लिए वकालत करता है या झाडू लगाता है, तब वह वर्णसंकरताका भागी होता है। इस अर्थमे आज कल वर्णका लोप हुआ ही मैं मानता हूं। गीतामे वर्णसंकरका सम्बन्ध विवाहके साथ बताया है, पर यह याद रहे कि दुष्टा स्त्रियोंके आचरणके साथ ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ तो मैं यह निकालता हूँ कि जब स्त्री व्यभिचारसे सन्तानोत्पत्ति करती है, तब वर्णसंकर पैदा होते हैं। भले ही वर्णसंकरका यह एक

कारण हो, पर यही एक कारण नहीं है, ऐसा मेरा अभिप्राय है। वर्णके नियत कर्मोंका त्याग स्वयंसिद्ध वर्णसंकरता है।

४—स्मृतियोंके नामसे जो ग्रन्थ आज हम देखते हैं, वे सब-के-सब यथार्थ हैं, ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। स्मृतियोंमें बहुतसे श्लोक प्रक्षिप्त हैं। जो वचन सार्वभौम नैतिकताके विरुद्ध है, उसे धर्म मानना उचित नहीं। महाभारतादिमे हम देखते हैं कि वर्णान्तर विवाह खासी अच्छी संख्यामे होते थे और आज तो वर्ण-धर्मका लोप ही हुआ मै मानता हूँ।

५—ऊपरके कारणोंसे मैं यह मानता हूँ कि ऊँच-नीच भावोंके समर्थनमे जो स्मृति वचन आज दिखायी देते है, वे सब-के-सब प्रक्षिप्त है। वर्णोंकी मान्यताका आधार एक वैदिक ऋचा है। उसमें चार वर्णोंके शरीरके चार मुख्य अंगोंसे उपमा दी गयी है। यह कोई नहीं कहेगा कि शरीरका एक अंग दूसरे अंगसे ऊँचा है अथवा नीचा। सब अंग एक सरीखे ही हैं। वर्णमें समानताका मानना ही धर्म हो सकता है। ऊँच-नीचका भेद-भाव निश्चय ही अभिमानमूलक है, इसलिए अधर्म है।

६—ब्राह्मण हो या शूद्र, जिसने स्वधर्म तज दिया है वह पतित हो गया। पतित दशामें वह किसी भी वर्णका नहीं है। वह पुनः स्वधर्मका पालन—अपने धन्धेका पालन—कर के अपनी भूल सुधार सकता है।

७—सच बात यह है कि मनुष्य जैसा खाता है, वैसा उसका स्वभाव हो जाता है, पर किसीके हाथके छुये हुए खानेका असर उसपर नहीं पड़ता। किसीको अपनेसे अधम अथवा अधिक पापी मानना और ऐसा कह कर उसके हाथका छुआ हुआ अन्न-जल ग्रहण न करना साफ ही ईश्वरका अनादर है। खाद्याखाद्यके नियम अवश्य है। जो वाह्य शौचादिके नियमोंका पालन नहीं करते उनके हाथका स्पर्श किया हुआ अन्न या पानी ग्रहण न करें; किन्तु अमुक मनुष्य अमुक जातिका है इसलिए उसके हाथका न खाना मेरी दृष्टिमें पाप है। रोटी-बेटी व्यवहारका वर्ण-धर्मसे कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।

८—मेरे सम्बन्धमें अनेक दोषारोपण किये जाते हैं। 'हरिजन-सेवक' उनके उत्तर देने का प्रयत्न न करे। मैं कैसा क्या हूँ, इसके साथ अस्पृश्यता-निवारणका कुछ भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। किसी महान वस्तुका निरीक्षण उसके गुण दोषसे ही करना चाहिये। यह सच है, कि महाव्यथामें तड़पते हुए वछड़ेको मैंने धर्म समझ कर ही जहरकी पिचकारी दिलवायी थी। मैं और किसी तरह उसकी सेवा नहीं कर सकता था, न उसके दुःख का निवारण ही कर सकता था। मुझे आज भी विचार करने के बाद भी, उस कार्यके लिए पश्चाताप नहीं है। यदि मैंने अज्ञानके वश हो कर पाप-कर्म किया होगा, तो परमात्मा मुझे क्षमा करेगा।

हरिजन-सेवक
१२ अक्तूबर, १९३४

विजय किसकी ?

हरिजन-सेवकोंको अपनी इस कठिन परीक्षाके समय अधिक-से-अधिक सहनशीलता और धीरज दिखाने की जरूरत है। मन्दिर-प्रवेश बिल वापस ले लिया गया है, इससे सनातनी आज फूले नहीं समाते, पर हमें उनकी हाल–फूलपर ध्यान नहीं देना चाहिये। आज उनकी वही स्थिति है, जो कि कल तक हमारी थी। हमें उनसे द्वेष नहीं करना चाहिये। उनके प्रति तो हमें प्रेम ही व्यक्त करना चाहिये। एक श्रद्धालु बहिनने मेरे पास आयरिश कवि ए० ई० के 'इण्टर प्रेटर' की कुछ सुन्दर पंक्तियाँ भेजी हैं, जिन्हें मैं नीचे देता हूँ। हरिजन-सेवक इन पंक्तियोंको ध्यानसे पढ़ें:–

"प्रेम और द्वेषमें कायाकल्प कर देने की जादू जैसी शक्ति है। हृदयको पलट देनेवाली ये कितनी बड़ी शक्तिया हैं। जो हम ध्यान करते हैं, ठीक वैसा ही हमें ये बना देती हैं। व्यक्तियोंमें ही नहीं, राष्ट्रो तकमें यह बात देखी गयी है। अपने प्रतिपक्षियोंके स्वभावकी राष्ट्र जैसी कल्पना करते हैं, द्वेषकी पराकाष्ठासे वे खुद वैसे ही बन जाते है। इसका अर्थ यह हुआ कि तमाम आवेश-जनित संघर्ष हमारे स्वभाव या चरित्रका रूपान्तर कर सकते हैं। इसमें सन्देह ही क्या कि जो व्यक्ति द्वेष करते हैं, वे अपने हृदय-भवनका द्वार खोल देते हैं और वहा उनके शत्रु चुपके-से आकर अपना डेरा जमा लेते हैं"।

प्रेम ही एक ऐसी ताकत है, जो सनातनियोंके हृदयको पलट सकती है। वे कैसे हैं, क्या हैं इसमे पड़ने का हमें कोई अधिकार नहीं। हम उनके मुंसिफ तो हैं नहीं। उनका हृदय परिवर्त्तन अबतक क्यों नहीं हुआ, इस तरह उनके प्रति अधीर होने का भी हमें कोई अधिकार नहीं। अगर हम खुद सच्चे हैं, निष्कपट सेवक हैं, अर्थात अपने विश्वासके अनुसार हरिजनोंकी सोलह आने सेवा कर रहे है, तो हमारे लिए इतना क़ाफी है।

फिर हमें यह भी देखना चाहिये कि उनकी इस जीतमें ही उनकी हार है और हमारी इस हारमें हमारी जीत। हम अपने मन्दिरोंमे अपनी सामान्य सम्मतिसे यदि हरिजनोको देव-दर्शनार्थ ले जाना चाहते हैं, तो हमारे सनातनी भाई मन्दिर-प्रवेश बिलकी ओटमें अपनी मुखालिफतका कबतक बचाव करते रहेंगे ? सुधारक तो अब मन्दिर-प्रवेशके सवालको और भी दूने जोशके साथ हाथमें ले सकते हैं।

हम सुधारक निश्चय ही पापके भागी होंगे, अगर हमने यह समझ लिया कि बिलके स्थगित हो जाने का अर्थ मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलनका अन्त हो जाना है।

यह बात नहीं है। सनातनियोंकी राजीसे जहाँ हम बिना किसी प्रकारकी कटुता पैदा किये, मन्दिर खोल सकते हों, वहाँ हमें जरूर खोल देना चाहिये और अब तो यह भी सम्भव है कि बिलको आपत्तिजनक समझ कर जिन लोगोंने मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलनसे अपनेको अलग कर रखा था, वे भी अब बिना कानूनी मददके, हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवा देने के इस आन्दोलनमें शरीक हो जायँ। यह याद रहे कि बिलका कुछ हमेशाके लिए खात्मा नहीं हो गया है, वह सिर्फ टाला गया है। मन्दिरोंमे जाने की ठीक उन्हीं शर्तोंपर जो शर्तें कि सवर्ण हिन्दुओंके लिए लागू हैं, हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवा देने में अगर सनातनियोंने सुधारकोंका दिलसे साथ न दिया, तो कानून तो बनेगा ही।

हरिजन-सेवक

१२ अक्तूबर, १९३४



अपनी इच्छासे शूद्र

एक सज्जनने वर्ण-धर्मके विषयमें मुझसे कई प्रश्न पूछे हैं। आज तो मैं उनके एक ही प्रश्नको लेना चाहता हूँ और वह प्रश्न मेरी भाषामें यह है—

"आजकल चूँकि आप वर्ण-धर्मकी उधेड़-बुनमे बहुत पड़े हुए हैं, इसलिए मेरी कुछ गुत्थियोंको आप सुलझा सकें तो सुलझा दें। खेती, गोरक्षा और व्यापार—वैश्यके ये तीन 'स्वभाव' कर्म-गीतामें गिनाये गये हैं। व्यापार अर्थात् एकका तैयार किया हुआ माल दूसरा लेकर तीसरेको बेच दे, अथवा खुद ही तैयार कर के खुद बेचे। खेती और गोरक्षा करनेवालोंकी सख्या तो करोड़ोंकी है। फिर भी गड़ेरिया, मोची, चमार, किसान आज तो शूद्र ही माने जाते है, जब कि ऊपरकी व्याख्याके अनुसार इन सबकी वैश्योंमे गिनती होनी चाहिये। मेरी और आपकी दृष्टिसे तो चारो वर्ण एक सरीखे हैं। नम्रतापूर्वक एक वर्ण दूसरेके साथ रहे, यह नहीं कि एक दूसरेके सिरपर चढ़ कर उसे पैरोंसे कुचला करे। पर समाजकी दृष्टि तो जुदी ही है। ऐसी दशामें गड़ेरिया, चमार, किसान इत्यादि, जो मजूरी कर के गुजर करनेवाले नहीं हैं बल्कि अपने स्वतन्त्र धन्धेसे आजीविका पैदा करनेवाले हैं, वे वैश्य क्यों न माने जायं? खेतिहर तो खेती करता है, गड़ेरिया और चमार गोरक्षा करते हैं, ये किसीकी नौकरी-चाकरी तो करते नहीं। अगर इन्हें हम गोरक्षक न माने तब ये व्यापारी हैं, क्योंकि ये लोग जो पैदा करते हैं उसे खुद ही बेचते हैं। शूद्रकी परिभाषामें तो ये लोग किसी भी तरह नहीं आते। इसके विपरीत जो नौकरी करता है वह शूद्र क्यों न माना जाय—फिर भलें वह मुन्सिफ हो या कलक्टर, सिपाही हो या भगी"?

ये गुत्थियाँ हैं तो सच्ची। इन उलझनोंके पड़ने का कारण यह है कि आज

वर्णव्यवस्थाका अंग-भंग हो गया है; पर इन गुत्थियोंको हम इस तरह नहीं उकेल सकते कि गड़ेरिया, चमार आदिको वैश्य मानने लग जायँ। जो आज शूद्र माना जाता है उसे अभिमानी वैश्य अपने कथिक वर्णमें थोड़े ही दाखिल कर लेंगे? ऊपरकी दलील प्रामाणिक तो है ही, पर अकेली प्रामाणिक दलीलसे ही न्याय नहीं मिल जाता। न्यायके लिए तो मूलका शोध करना पड़ता है और वह अनुभवसे ही प्राप्त होता है। अनुभव यह कहता है कि वर्ण-धर्मका लोप हो गया है। इसलिए वर्णव्यवस्थाका पुनरुद्धार करनेके लिए हम सबको स्वेच्छासे शूद्र बन जाना चाहिये। लाचारीसे तो हम शूद्र हैं ही, मगर लाचारीसे किया हुआ अच्छा काम भी पुण्यमे नहीं गिना जाता। लाचारीसे मैं किसीको दो पैसे दे दूँ, तो इसमें पुण्य नहीं है, पर जो कुछ आजतक मैंने लाचारीसे दिया है उसे अपनी इच्छासे देता तो वह पुण्य-खातेमें आ जाता। यही बात शूद्र वर्गके लिए लागू है। जिसे वह उच्च-वर्ण समझता है उस वर्णका अपनेको कहते हुए भी यदि वह अपनेको शूद्र मानने लगे तो यह कहना चाहिये कि उसने वर्ण-व्यवस्थाके पुनरुद्धारका श्रीगणेश कर दिया।

इस अर्थपर जरा विचार करना चाहिये। यह स्वेच्छासे बना हुआ शूद्र परिचर्याका काम धर्म समझ कर करेगा। आजीविका उसे मिले या न मिले, पर सेवा शुद्ध भावसे, तनमनसे करेगा। रोटी बेटीका व्यवहार ये कथिक शूद्र उन्हींके साथ इच्छापूर्वक रखेंगे जो शौचादिके नियमोंका पालन करते होंगे। खुद शूद्र माने जानेवाले वर्णमें वे ओत-प्रोत हो जायँगे। उनकी गरीबीका अनुकरण यथाशक्ति करेंगे। उनके कष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न करेंगे। ऐसे शूद्र ब्राह्मणका ब्रह्मज्ञान, क्षत्रियका अपलायन और वैश्यकी व्यापार-शक्ति सीखते-सीखते हुए भी अपनी आजीविका केवल परिचर्यासे ही प्राप्त करेंगे। वर्ण-धर्ममें प्रत्येक वर्ण चारों वर्णोंके गुणोंका अनुकरण कर सकते हैं और उन्हें करना चाहिये। स्मृतिमें कहा है:—

> अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
> एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ १ ॥
> अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
> भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २ ॥

अर्थात्, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्रताका पालन करना, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना—चार वर्णोंका यह धर्म मनुने सन्क्षेपमें कहा है ॥ १ ॥ हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, काम, क्रोध, लोभसे दूर रहना और प्राणी मात्रका प्रिय तथा हित-कार्य करना, यह तो सभी वर्णोंका धर्म है ॥ २ ॥

इसलिए प्रत्येक वर्णके विषयमें भेद यह है कि उसके विशेष लक्षण उस-उस वर्णमें विशेषतासे विकसित हुए हैं और उनके द्वारा ही प्रत्येक वर्ण अपनी आजीविका प्राप्त करे।

हरिजन-सेवक
१२ अक्तूबर, १९३४

'दरिद्रनारायण' और 'हरिजन'

'दरिद्रनारायण' और 'हरिजन' के बीच यह झगड़ा चल रहा है कि दोमें किसका किसमें समावेश होता है। बिना विचार किये जवाब देनेवाला तो कहेगा कि 'हरिजनमें ही'; पर क्षण-एक विचार करें, तो मालूम होगा कि दोमें 'दरिद्रनारायण' ही बड़ा रूप है। हरिजन दरिद्रनारायण तो हैं ही, पर समृद्ध लोग उन्हें नीच से-भी-नीच मानते हैं। इसलिए वे भगवानके—हरि या हरके अधिक-से-अधिक समीपवर्ती हैं और उनके प्रियसे भी प्रियजन हैं। भगवानने क्या अपना नाम 'दासानुदास' नहीं रखा है? और जगतने जिसकी अधिक-से-अधिक उपेक्षा कर रखी है, उसकी सेवा भगवान अधिक से-अधिक नहीं करेंगे तो फिर और किसकी करेंगे? पर 'दरिद्र-नारायण' में तो हरिजनोके सहित उन दूसरे अनेक कोटि मनुष्योंका भी समावेश हो जाता है, जिनके भालपर जन्मसे अस्पृश्यताका काला कलंक नहीं लगा हुआ है। अतः हरिजनकी सेवामे तो दरिद्रनारायणकी सेवा आ ही जाती है, पर यह हमेशा सम्भव नही कि दरिद्रनारायणकी सेवामें हरिजनकी भी सेवा हो जाती है। इसलिए 'हरिजन', 'हरिजन-सेवक' और 'हरिजन-बन्धु' के लेखक यह बात हमेशा ध्यानमे रखें; क्योंकि उन्हें यह याद रखना चाहिये कि ये साप्ताहिक पत्र सिर्फ हरिजन-कार्यके लिए निकल रहे हैं और इसीसे जिस चीजका इस कार्यसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है, उसके लिए इन साप्ताहिकोंमे स्थान नही। इस भेदको ध्यानमें रखना आवश्यक है, क्योंकि अबतक जो विषय इन पत्रोंसे वहिष्कृत-से मालूम होते थे, ऐसे अनेक विषयोंको अब मैं इनमें स्वतन्त्रतासे ले रहा हूँ। असल बात है कि रचनात्मक कार्यके अनेक प्रयत्नोंके सम्बन्धमे जितना विचार मै आज कर रहा हूँ उतने विचार करने का दरिजन दौरेकी दौड़-धूपमे मुझे समय ही नहीं मिलता था, फिर इन विषयोंपर कुछ लिखने लिखानेका अवकाश मिलता ही कहाँ से? हरिजनोंकी स्थिति सभी तरफसे सुधारनेके लिए असीम अवकाश है। संख्याकी दृष्टिसे हरिजन मनुष्य जातिका क्या एक बड़ा भाग नहीं है? उपयोगिताके विचारसे तो शायद उनका स्थान समाजमें सबसे ऊँचा होगा। वे कितना उपकारका काम करते हैं, फिर भी उनके भालपर हमने अस्पृश्यताका काला टीका लगा रखा है! अगर वे आज एकाएक यह काम छोड़ दें तो भारतीय समाजके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ।

हरिजन-सेवक

१९ अक्तूबर, १९३४.

*

हरिजनोंके प्रीत्यर्थ

एक सज्जन पूछते हैं—"आप यज्ञार्थ अथवा आत्मार्थ सूत कातनेके विषयमें क्यों इतना जोर दे रहे हैं ? यज्ञार्थ कात कर लोग सूतको दे देते हैं और अपने लिए कात कर उसकी खादी बुनवा कर पहनते हैं। दोनों ही दशाओंमे आप गरीब कतवैयेके मुँहका कौर छीन लेते हैं, जिस कतवैयेको कि आपके ही कहे अनुसार कम-से-कम रोजी मिलती है। यज्ञार्थ कताईसे खादीका दाम घटवाने में सहायता कर के गरीबकी कुछ तो सेवा हो सकती है। पर अपने लिए कतवा कर तो निश्चय ही आप गरीब कातनहारके मुँहकी रोटी छीन लेते हैं"।

कातना अगर सार्वदेशिक हो गया होता, तो पत्र-लेखकका यह कहना थोड़े अंशोंमें अथवा सर्वांशमें सत्य समझा जा सकता था, मगर आज तो कितने ही हरिजन ऐसे हैं जिनकी उपार्जन-शक्ति ५० प्रतिशत घट गयी है; कारण कि उन हरिजन बुनकरोंको बुनने के लिए हाथ कता सूत नहीं मिल रहा है। आज तो वे किसी तरह बड़ी कठिनाईसे अपना उदर भर रहे हैं। देशमें अगर बड़े पैमानेपर यज्ञार्थ कताई चलती होती तो बुनकरोंकी ऐसी दुर्गति कभी न हुई होती। उड़ीसामें हरिजनोंकी ही तरह दुर्दशाग्रस्त दस हजार बुनकरोंके प्रतिनिधि कामके अभावमें, अथवा यों कहिये कि हाथ कता सूत न मिलने के कारण किस प्रकार भूखों मर रहे हैं—यह मैं इस पत्रमें लिख चुका हूँ।

यह कहना निरर्थक है कि लोग मिलके कते सूतके कपड़े बुन सकते हैं। ये दस हजार बुनकर मिलके कते सूतके कपड़े तो बुनते ही थे, पर जापानकी प्रतिस्पर्धाके कारण मिलके कते सूतके हथबुने कपड़ेकी माँग आज बहुत कम हो गयी है। खादी बुननेवालोंको अपनी खादीके लिए स्थानीय बाजारमे खरीदार मिल सकते हैं, पर मिलके सूतके हथबुने गाढ़ेके लिए यह शक्य नहीं है। एक समय ऐसा जरूर था जब हाथका कता सूत चाहे जितना मिल जाता था, क्योंकि यज्ञार्थ कातनेवालोंकी संख्या हजारोंकी नहीं तो सैकड़ोंकी तो थी ही और कमी थी तो बुनकरों की। अब यज्ञार्थ कातनेका रिवाज नष्ट हो गया है और इससे कितने ही बुनकर बेकार हो गये है, जो खुशीसे हथकते सूतकी खादी बुन सकते थे। इसलिए जबतक बाजारमे खादीकी माँग है और जबतक आवश्यकताके अनुसार भारी परिमाणमें हथकता सूत मिलने न लग जाय, तबतक राष्ट्रके जीवनमें 'यज्ञार्थ' तथा 'आत्मार्थ' कातने का निश्चित स्थान है। इसके द्वारा दरिद्रनारायणकी और विशेषकर हरिजनोंकी उपयुक्त और प्रत्यक्ष सेवा हो जाती है।

फिर यह कताई बुद्धिशील, सुशिक्षित स्त्री-पुरुषोंके हाथोसे होगी तो वह कलामयी बनेगी और इससे उसमें एक महान् विकास हो सकेगा। चर्खे और उसके दूसरे साधनोंमें—चर्खी और धुनकीमें—जो अद्भुत सुधार हुआ है वह इस प्रवृत्तिमें मध्यवर्गके

सुशिक्षित स्त्री-पुरुषोंके दिलचस्पी लेनेके कारण ही हुआ है। 'हरिजन'के सब पाठकोंको शायद मालूम न होगा कि अखिल भारतीय चर्खा संघके मन्त्री एम० ए० हैं और बम्बईके एक प्रसिद्ध व्यवसाय-सफल बैंकरके पुत्र हैं और संघके अध्यक्ष भारतके कुशल-से-कुशल व्यापारियोंमें से एक हैं; तमिलनाडमें खादी प्रवृत्तिके संचालक एक ऐसे सज्जन हैं जो वहाँ के किसी समय एक सुप्रख्यात वकील थे; बंगालके खादी-प्रचारके संचालक एक तो सुयोग्य डाक्टर हैं और दूसरे कुशल रसायनशास्त्री और संयुक्त प्रान्तमें खादी-कार्य एक राष्ट्रीय महाविद्यालयके भूतपूर्व आचार्य द्वारा चल रहा है। खादी द्वारा दरिद्रनारायणकी सेवा का व्रत लेनेवाले दूसरे अनेक पुरुषोंका उल्लेख मैं कर सकता हूँ। यहाँ तो मैंने थोड़े ही लोगोंकी चर्चा की है। इधर खादीकी जो सुन्दर उन्नति हुई है, वह इन निष्ठावन्त सेवकोंकी सेवाके बिना असम्भव थी और इतने वर्षोंमें कातनेकी इस प्रवृत्तिमें लगभग ढाई लाख मनुष्योंकी जेबमें दान-पुण्यके रूपमें नहीं किन्तु प्रमाणिक मजदूरीके रूपमें, जो आधा करोड़ रुपया पहुँचा है वह न पहुँचता। चर्खेके अतिरिक्त किसी अन्य या बेहतर तरीकेसे ऐसा शान्त सेवा-कार्य न होता। इस कार्यकी बदौलत रंक-से-रंक मनुष्य देशके कुछ अत्यन्त सुसंस्कृत स्त्री-पुरुषोंके घनिष्ट सम्पर्कमें आये हैं। दरिद्रोंकी अँधेरी काल कोठरियोंमें इसने आशाकी किरण पहुँचायी है। मृतप्राय शरीरोंमें इसके द्वारा पुनः हृदय-स्पन्दन होने लगा है। इसने बिना दूधके तड़पते हुए हजारों बच्चोंको दूध दिया है। अकालके दिनोंमें इस प्रवृत्तिने सहज ही अनेक ग्रामवासियोंकी रक्षा की है। इसने काहिलीको कम किया है और हजारों मनुष्योंसे भीख माँगनेका धन्धा छुड़वा दिया है।

और इस चीजका अभी आरम्भ ही है। काम करनेवालोंकी संख्या बहुत ही कम है। जो कार्यकर्ता आज मौजूद हैं, उन्हें अधिक आत्मत्याग करने और अधिक एकाग्र होने की आवश्यकता है, इस राष्ट्रीय और मानव-सेवाके प्रवृत्ति-क्षेत्रमें अभी हजारों मनुष्योंका समावेश हो सकता है।

इसलिए यह करना असत्य है, कि 'यज्ञार्थ' कातने अथवा 'आत्मार्थ' कातनेसे हम गरीब कतवैयोंकी रोजीमें नुकसान पहुँचाते हैं। जिससे हो सके उनका यह परम धर्म है कि वे नहीं तो भारतके अवर्ण वहिष्कृत हरिजनोंके ही प्रीत्यर्थ कम-से-कम आध घन्टा सूत काता करें।

हरिजन-सेवक

२६ अक्तूबर, १९३४



"अस्पृश्यताके साथ संग्राम एक धार्मिक संग्राम है। यह संग्राम मानव-समाजकी रक्षाके लिए है। यह संग्राम हिन्दूधर्ममें बहुत ही बलवान सुधारके निमित्त है। यह संग्राम सनातनियोंके खाईदार गढ़ोंके विरुद्ध है"।

एक सेवककी कठिनाई

लायलपुरके एक सज्जनके ये प्रश्न ठीक ही हैं—

१—"इधर कई चकोंमें, जहां हरिजन रहते हैं, मुसलमानों या सिक्खोंकी ही आबादी है। सच पूछिये तो हिन्दू तो वहां हैं ही नहीं, या अगर दो-चार हिन्दू दूकानदार हैं—तो वे अपने जमींदार मालिकोंसे इतना अधिक दबते हैं कि वे उनका हुक्म उदूली नहीं कर सकते। उनकी तो 'जिमि दशननि महँ जीभि विचारी' की दशा है। उन्हें वे नाराज कैसे कर सकते हैं? इसलिए वे हिन्दू अपने हरिजन भाइयोंके लिए पानी तक का प्रबन्ध नहीं करा सकते। यह कठिनाई आखिर कैसे दूर हो?

२—"आदि-धर्मी अलग ही उलटा प्रचार-कार्य कर रहे हैं। ये लोग हिन्दुओंके प्रतिपक्षी बनते जा रहे हैं। इन्होंने अपनेको हिन्दू-समाजसे अलग कर रखा है। इन लोगोंके इस घातक प्रचार-कार्यका क्या इलाज है?

३—"फिर अनेक अछूत जातियोंके बीच आपसमे ही छुआछूत मौजूद है"।

पहले प्रश्नके विषयमें, सर्वप्रथम तो मुसलमान और सिख भाइयोंसे अनुनय-विनय करनी चाहिये कि वे हरिजनोंको सार्वजनिक कुओंसे पानी भरने की इजाजत दे दें। उन्हें विनयपूर्वक समझाने के साथ-साथ या इस उपायके कारगर न होने के बाद दूसरा रास्ता यह है कि हरिजनोंको जितने पानीकी जरूरत हो उतना वे खुद ही कुएँसे खींच कर उन्हें दे दिया करें। निस्संदेह अदालतोंसे भी सहायता ली जा सकती है। ठीक सर्वसाधारण की तरह सार्वजनिक कुओं, सड़कों आदिका उपयोग हरिजन भी कानूनन कर सकते है, पर यह अन्तिम इलाज है जो बहुत ही कम अवसरोंपर करना चाहिये।

दूसरे प्रश्नके बारेमें तो इतना ही कहा जा सकता है कि सवर्ण हिन्दुओंके अधिक-से-अधिक प्रयश्चित्त और हृदय-परिवर्त्तनसे ही उनके और हरिजनोंके बीचका यह दिन-दिन बढ़ता हुआ मन-मुटाव दूर हो सकता है। आदि-धर्मी खुद हिन्दू तो हैं ही। उनका यह अलगाव उनपर अत्याचार करनेवाले सवर्ण हिन्दुओंके विरुद्ध विद्रोहका सूचक मात्र है। जब ये आदि-धर्मी देखेंगे कि अस्पृश्यता अब जड़-मूलसे नष्ट हो गयी है, तब वे पुनः हिन्दू-धर्ममें आ मिलेंगे।

रहा अब तीसरा प्रश्न। विभिन्न अस्पृश्य जातियोंमें विद्यमान अस्पृश्यता सर्वांशमें नहीं तो अधिकांशमें उसी परिमाणमें दूर होगी, जिस परिमाणमें कि सवर्ण अस्पृश्यताका निवारण करेंगे; क्योंकि सवर्ण हिन्दुओंकी देखा-सीखी ही तो हरिजन आपसमें छूत-छात मानने लगे हैं। यह सब सवर्णोंके ही पापका प्रत्यक्ष फल है।

हरिजन-सेवक
२६ अक्तूबर, १९३४

द्वेषसे नहीं प्रेमसे

एक नौजवान अंग्रेज,जो मद्रासमें दो साल रह गया है,विलायतसे लिखता है:-

"कल यहा रविवारके अखबारमें हिन्दुस्तानके अछूतोंके बारेमें एक लेख निकला है। उस लेखने ही मुझे आपको यह पत्र लिखने के लिए प्रेरित किया है।

यह पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई कि आपने ब्रिटिश लोगोंकी सत्ताके विरुद्ध लड़ने की नीतिको छोड़ कर अब अछूतोंको उनकी पतनावस्थासे उठाने का काम हाथोंमें ले लिया है।

आपने अब यह बड़ी शूर-वीरताका काम उठाया है। 'नीच जाति' के अथवा बन्धनमें पड़े हुए इन'अवर्णों' को मुक्ति दिलाने के अन्दर निस्सन्देह एक बड़ी ऊँची भावना है। इस कामका यद्यपि सख्त विरोध होगा और शत्रुता भी बढ़ेगी, तो भी मैं जानता हूँ कि इससे आप अपने ध्येयसे विचलित न होंगे। विरोधका मुकाबला किये बिना कोई भी महान कार्य कभी सफल हुआ है ?

साहस और दृढ़ताके बलसे मजबूत-से-मजबूत बन्धन भी एक दिन टूट जायँगे।

मैं मानता हूँ कि हिन्दू समाजमें बहुमत अस्पृश्योंका है। यह बात असत्य भी हो सकती है, पर अगर सत्य है तो अस्पृश्योंके इस महान वर्गके प्रति जो अपमान और अत्याचार आज हो रहे हैं उन्हें दूर करने या रोकने का सबसे अधिक पुरअसर इलाज यह नहीं है कि जुल्म ढानेवालोंके साथ विनय-अनुनयसे काम किया जाय, बल्कि यह है कि खुद अस्पृश्योंमें ही जुल्मका सामना करने की मनोवृत्ति पैदा कर दी जाय। उन लोगोंमें एक ऐसा संघ पैदा हो जाय कि उसका जीवन उन्हें अस्पृश्य माननेवाले लोगोंसे बिलकुल अलग ही विकसित हो, उनका एक जुदा ही वर्ग बन जाय और आज वे जैसे दुर्बल और दीन-हीन पड़े हुए हैं, जिस तरह दब्बू बने हुए हैं, उसके बदले अत्याचारियोंके प्रति द्वेष करने लगें और आज उनपर जो लात-घूसे और चाबुक पड़ रहे हैं उसकी जरा भी पर्वा न करें।

हमदर्दी और भाई-चारेकी गाठसे गठा हुआ उनका एक ऐसा स्वतन्त्र संघ बन जायगा तो लोग अवश्य उसे इज्जतकी निगाहसे देखेंगे और इतना ही नहीं, बल्कि उसे देख कर वे सिहायगे।

गरीबोंकी तरफ इस युगमें हिकारत और घृणकी नजरसे देखनेवाले ब्राह्मण तथा दूसरे लोग जब देखेंगे कि हमारी उस तिरस्कारकी भावनाकी दशा तो पत्थरपर पानी जैसे हो गयी है, तब किसी गरीबका तिरस्कार करने मे, हो नहीं सकता कि उन्हें हिचकिचाहट न हो"।

इस अंग्रेज लेखकको यह मालूम नहीं है कि जो सलाह वह मुझे दे रहा है ठीक उसीके अनुसार प्रयत्न करनेवाला हरिजनोंका एक सम्प्रदाय मौजूद है, पर इन

रास्तेपर चलने से हरिजनोंको मुक्ति मिलने की नहीं—और सवर्णोंको तो निश्चय ही मुक्ति नहीं मिल सकती। यह पत्र-लेखक जो उपदेश देता है उससे तो यही परिणाम निकलता है कि हिन्दू-मुसलिम-प्रश्नकी ही तरह एक दूसरा सवाल और भी भयानक रूपमें खड़ा हो जाय। यह मार्ग द्वेष, अर्थात हिंसाका मार्ग है। मैं जिस मार्गपर चलने की चेष्टा करता हूँ वह प्रेमका, अर्थात अहिंसाका मार्ग है। जुल्म करनेवाले वर्गमें जन्म लेकर और जुल्म भोगनेवालेके साथ स्वेच्छासे ऐक्य-साधनका एक नम्र प्रयत्नवान होने के कारण मैंने तो यही सीखा है कि न्यायका सच्चा रास्ता तो यह है कि आपस में मान और आदरका भाव जाग्रत किया जाय—इसे यों भी कह सकते है कि उच्च-नीच-भावकी जगह समता और भातृ-भावना स्थापित की जाय और 'नीच' कहलानेवाले वर्गको हमें द्वेष करना नहीं सिखाना है; बल्कि यह समझाना है कि नीचपनेकी भावनासे जो भय उत्पन्न होता है उसे वे त्याग दें।

अतः हरिजन सेवक-संघ दुहरा धर्म पाल रहा है। एक ओर तो वह सवर्ण हिन्दुओंसे यह कहता है कि हरिजनोंके साथ उन्होंने जो अन्याय किया है, उसका वे प्रायश्चित्त करें—और दूसरी ओर वह हरिजनोंके अन्दर शिक्षासंस्कृति का प्रचार कर रहा है और साथ ही, सदियों तक अत्याचार भोगनेवाले वर्गमें जो दुर्व्यसन पैदा हो जाते हैं, उनकी तरफ़ भी हरिजनोंका ध्यान खींच रहा है। मनुष्यकी जन्म-सिद्ध स्वतन्त्रता छीन लेना और उसे जीवनकी सामान्य सुविधाएँ तक न देना उसे भूखों मारने से भी बुरी बात है। यह तो आत्माको—देहीको भूखों मारना हुआ। हरिजनोंका प्रश्न इस आत्महननका एक सबसे प्रबल उदाहरण है। चाहे जितनी किताबी-शिक्षा दी जाय, चाहे जितनी आर्थिक स्थिति सुधारी जाय, पर मनुष्यका यह खोया हुआ आत्म-गौरव फिर लौटने का नहीं। यह तो तभी लौटेगा, जब उसे आत्म-साक्षात्कार हो जायगा। जबतक ऊपरका वर्ग अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करता, तबतक हरिजनोंको यह आत्म-साक्षात्कार होने का नहीं। उच्चताका भान और नीचताका भान ये एक ही सिक्के के दो बाजू हैं। दोनों एक-से ही बुरे हैं। दोनोंका ही इलाज होना चाहिये। 'उच्च' कहलानेवाले सवर्ण हिन्दू जो द्वेष करते हैं उसके बदले 'नीच' कहलानेवाले हरिजन अगर उनके प्रति द्वेष करने लग जायँ तो इससे यह रोग दूर होने का नहीं, बल्कि उलटा बढ़ेगा। 'डरो नहीं, दबो नहीं' यह अच्छी सलाह है। पर 'द्वेष करो' यह डरने या दबने की ही तरह बुरा सिखापन है। इसलिए निष्पक्ष निरीक्षक तो यही सलाह दे सकता है कि 'एक दूसरेके साथ प्रेम रखो' और मुझे आशा है कि यह पत्र-लेखक अपने दिये हुए उपदेशसूत्रमे अन्तर्निहित यह दोष देख सकेगा।

हरिजन-सेवक
२ नवम्बर, १९३४

असंगति कैसी ?

'हरिजन' सम्पादकके द्वारा यह निम्नलिखित प्रश्न मेरे पास आया है :—

"६ मार्चके 'हरिजन' में गाधीजीका यह कथन प्रकाशित हुआ था, कि 'शास्त्रोंमे अस्पृश्याके लिए कोई आधार नहीं'। महात्माजीके अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका जिन प्रकाण्ड पडितोंने समर्थन किया है उनमें एक काशी विश्व-विद्यालयके महामहोपाध्याय प्रथमनाथ तर्कभूषण हैं। पार साल उन्होंने गाधीजीको, उनके आन्दोलनके समर्थनमे, जो पत्र लिखा था कि यद्यपि अस्पृश्यताके समर्थकके श्लोक शास्त्रोंमे हैं, तथापि कुछ ऐसे भी श्लोक हैं, जिनमें यह कहा गया है कि मन्त्रदीक्षा और भगवान भक्तिके द्वारा अस्पृश्यकी शुद्धि हो सकती है। इस प्रकार पडितजीके कथनानुसार जिन चाण्डालोंको मन्त्रदीक्षा नहीं दी गयी और जो भगवद्भक्त नहीं है, शास्त्रोंकी दृष्टिसे वे अस्पृश्य है। अतएव पडित तर्कभूषणने गाधीजीकी इस रायका समर्थन नहीं किया है कि शास्त्रोंमें अस्पृश्यताके लिए कोई आधार ही नहीं है।

क्या आप कृपा कर बतलायंगे कि गाधीजीसे किन पंडितोंने यह कह दिया है कि शास्त्रोंमें अस्पृश्यता-प्रतिपादक कोई प्रमाण ही नहीं है ?

गाधीजीने तो पहले यह खुद ही लिखा था कि सनातनियोंने अस्पृश्यता समर्थक अनेक श्लोक मुझे बतलाये हैं, पर मैंने उन श्लोकोंको इसलिए प्रामाणिक नहीं माना, क्योंकि वे सदाचारके मूल सिद्धान्तोंके विरुद्ध पड़ते हैं।

गाधीजीका अब यह वक्तव्य कि शास्त्रमे अस्पृश्यताके लिए कोई आधार नही है, उनके पहलेके उस वक्तव्यसे मेल नहीं खाता कि शास्त्रोंमें अस्पृश्यता-समर्थक श्लोक तो हैं, पर सदाचार विरोधी होने के कारण उनकी दृष्टिमें वे प्रमाण्य नहीं, अतएव अग्राह्य हैं।

क्या कृपा कर 'हरिजन' में आप इस स्पष्ट असंगति पर कुछ प्रकाश डालेगे" ?

संगति या असंगति मेरे लिए कोई भयावनी चीज नहीं है। अगर मैं अपने आपको किसी भी क्षण धोखा नहीं दे रहा हूँ, तो मेरे ऊपर आरोपित ऐसी तमाम असंगतियोंकी मैं कोई पर्वा नहीं करता। मगर उक्त पत्रमे तो असंगति कोई है ही नहीं। अगर मैं शास्त्रोंके कुछ ऐसे श्लोकोंको नहीं मानता, जो प्रक्षिप्त हैं अथवा जो शास्त्र-निर्धारित सत्य हैं, तो निश्चय ही मुझे यह कहने का अधिकार है कि जिस प्रचलित प्रथा या मान्यताको वे आपत्तिजनक श्लोक शास्त्र विहित मान रहे हैं, उनके लिए शास्त्रोंमें कोई आधार नहीं है। जैसी अस्पृश्यता आज बरती जाती है उसका शास्त्रोंसे कोई प्रयोजन नहीं—मेरी इस बातका समर्थन किसी एक ही पंडितने नहीं, बल्कि अनेक विद्वानोंने किया है। निस्सन्देह शास्त्रोंमें जहाँ अस्पृश्यताका जिक्र आया है, वहीं उसे दूर करने के सरल उपायोंका भी उल्लेख मिलता है। जब हम शौचादि

क्रिया करते हैं, तो हम सभी नित्य उतने समयके लिए अस्पृश्य हो जाते हैं; पर हमारी वह अस्पृश्यता स्नानादि करने से दूर हो जाती है। हमारे कुत्सित विचार भी हमें अस्पृश्य बना देते हैं, किन्तु राम, वासुदेव, नारायण अथवा शिवका नाम स्मरण कर के और भगवानके अमोघ शरणका आश्रय लेकर प्रायश्चित और आत्मशुद्धिके द्वारा हमारी वह कुविचार-जन्य अस्पृश्यता भी दूर हो जाती है। यही बात हरिजनके सम्बन्धमें भी है। उसका धन्धा उसे कुछ समयके लिए अस्पृश्य बना देता है, तो यह बात नहीं कि उसके रोगका इलाज ही न हो। स्नानादि स्वच्छतासे उसकी भी स्वच्छता दूर हो जाती है, पर यहाँकी तो बात ही दूसरी है। कुछ सनातनियोंका तो यह दावा है कि हरिजनोंकी अस्पृश्यता तो असाध्य है और वह वंश-परम्परागत है और वह सृष्टिके अन्त तक ऐसी ही बनी रहेगी—और सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि हमारे वे सनातनी भाई ऐसे अमिट अस्पृश्योंकी सख्या लाखोंकी बताते हैं। उनकी इस संख्याका प्रमाण किसी शास्त्रमे तो है नहीं, वह तो मर्दुमसुमारीकी रिपोर्टोंमें है—और वे रिपोर्टें भी कैसी, जिनमें हर दसवें साल कुछ-न-कुछ हेर-फेर होता ही रहता है और जिन्हें ऐसे शुमार कुनिंदा तैयार करते है, जिनको हिन्दू-शास्त्रोंका कुछ भी ज्ञान नहीं होता और अनेक जगह वे शुमार-कुनिदा तो हिन्दू भी नहीं होते। असलमें तो यह अस्पृश्यता एक ऐसा अंधविश्वास है कि जिसके विरुद्ध प्रत्येक हिन्दुत्व प्रेमीको विद्रोहकी आवाज उठानी चाहिये।

हरिजन सेवक
१६ नवम्बर, १९३४



सदस्योंकी योग्यता

अक्सर लोग ये प्रश्न पूछते हैं कि हरिजन बोर्डके सदस्योंकी क्या योग्यता होनी चाहिये और बोर्डमे कितने सदस्य होने चाहिये? उस दिन कानपुरमें संयुक्त प्रान्तीय संघकी बैठकमें इन प्रश्नोंका मैंने काफी विस्तारके साथ उत्तर देने की चेष्टा की थी, फिर भी जबतक कोई निश्चित नीति न बन जाय, तब तक यह आवश्यक है कि समय-समयपर इन प्रश्नोंकी चर्चा होती रहे।

अगर हमें इतना याद रहे कि इन हरिजन-बोर्डोंके सदस्य सेवक हैं, संरक्षक नहीं, तो बहुत-सी कठिनाइयाँ तो आप ही हल हो जायँ। किसीको रिझाने या सिखाने का तब कोई प्रश्न ही न उठे। फिर तो वही लोग बोर्डमें आयँगे, जो हरिजन-सेवा करने के लिए उत्सुक होंगे, बोर्डकी उपयोगिताको जो बढ़ायँगे और बोर्डमें आने से जिनकी सेवा-साधनाकी क्षमता और भी बढ़ जायगी।

अतः बोर्डका सदस्य उसी व्यक्तिको होना चाहिये जो—

(१) अस्पृश्यताके आत्यन्तिक निवारणमें विश्वास रखता हो;

(२) जो अपने सामर्थ्यके अनुसार बोर्डको कुछ देता हो;

(३) जो कुछ-न-कुछ निश्चित हरिजन-सेवा-कार्य करता हो—जैसे अपने घरमें किसी हरिजनको अपने कुटुम्बकी तरह या कम-से-कम घरू नौकरकी तरह रखता हो, अथवा एक या एकाधिक हरिजनोंको पढ़ाता हो, या नियमपूर्वक हरिजन बस्तीमें जाता और सफाई करता हो, अथवा यदि वह वैद्य या डाक्टर है, जो बिना कोई फीस लिए हरिजन रोगियोंका इलाज करता हो, इत्यादि इत्यादि; और

(४) जो अपने बोर्डको हर महीने अपने सेवा-कार्यकी डायरी भर कर भेजता हो।

अगर ऐसी कुछ शर्तोंका पालन किया जाय, तो फिर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि बोर्डमें कितने सदस्य हों। ऐसे सदस्य जितने ही अधिक होंगे उतना ही अच्छा है। समय-समयपर अनुभव-सिद्ध विचारोंका विनिमय करने तथा आपसकी कठिनाइयोंको सुलझाने के लिए ही इन बोर्डोंकी बैठकें हुआ करेंगी। व्यर्थके वाद-विवादोंमें वे अपना समय नष्ट न करेंगे।

हरिजन-बोर्डोंके साथ जो सलाहकारी समितियाँ सम्बद्ध होंगी, वे भी अपने लिए कम-से-कम कुछ योग्यता निश्चित कर लेंगी। सलाह देनेवालोंमें जो योग्यता होनी चाहिये, वह स्वभावतः बोर्डके सदस्योंकी योग्यताकी तरह उतनी कड़ी और नियन्त्रित न होगी। मैंने जिन गुणोंकी ऊपर चर्चा की है अगर वे सब गुण बोर्डके सदस्योंमें न पाये जायँ तब क्या होगा?—इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है। इसका जो उत्तर मैंने अक्सर दिया है उसीको मैं यहाँ दुहराऊँगा। संघका सेन्ट्रल बोर्ड जिन व्यक्तियोंसे उनके प्रान्तोंमें बोर्ड बनाने को कहे, वे जबतक उपयुक्त योग्यतावाले सदस्य न मिले तबतक अन्य योग्य व्यक्तियोंके द्वारा अपने प्रान्तोंमें सेवा-कार्य करावें। "ईमानदारीसे काम करो"—यह प्रत्येक बोर्डका आदर्श होना चाहिये और इस निर्दोष सिद्धान्त-वाक्यकी उसे कदापि अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

हरिजन-सेवक

१६ नवम्बर, १९३४,

❀

" "गीता कहती है कि देवोंको संतुष्ट रखना चाहिये। देवता आसमानपर नहीं है। आपके देव अन्त्यज हैं। आपके देव दूसरे अस्पृश्य हैं। हिन्दुस्तानके देव कंगाल लोग हैं। दया धर्मसे हीन धर्म पाखण्ड है। दया ही धर्मका मूल है और उसका त्याग करनेवाला ईश्वरका त्याग करता है। रंकका त्याग करनेवाला सबका त्याग करता है"।

क्रिया करते हैं, तो हम सभी नित्य उतने समयके लिए अस्पृश्य हो जाते हैं; पर हमारी वह अस्पृश्यता स्नानादि करने से दूर हो जाती है। हमारे कुत्सित विचार भी हमें अस्पृश्य बना देते हैं, किन्तु राम, वासुदेव, नारायण अथवा शिवका नाम स्मरण कर के और भगवानके अमोघ शरणका आश्रय लेकर प्रायश्चित और आत्मशुद्धिके द्वारा हमारी वह कुविचार-जन्य अस्पृश्यता भी दूर हो जाती है। यही बात हरिजनके सम्बन्धमे भी है। उसका धन्धा उसे कुछ समयके लिए अस्पृश्य बना देता है, तो यह बात नहीं कि उसके रोगका इलाज ही न हो। स्नानादि स्वच्छतासे उसकी भी स्वच्छता दूर हो जाती है, पर यहाँकी तो बात ही दूसरी है। कुछ सनातनियोंका तो यह दावा है कि हरिजनोंकी अस्पृश्यता तो असाध्य है और वह वंश-परम्परागत है और वह सृष्टिके अन्त तक ऐसी ही बनी रहेगी—और सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि हमारे वे सनातनी भाई ऐसे अमिट अस्पृश्योंकी संख्या लाखोंकी बताते हैं। उनकी इस संख्याका प्रमाण किसी शास्त्रमे तो है नहीं, वह तो मर्दुमसुमारीकी रिपोर्टोंमें है—और वे रिपोर्टें भी कैसी, जिनमे हर दसवें साल कुछ-न-कुछ हेर-फेर होता ही रहता है और जिन्हें ऐसे शुमार कुनिंदा तैयार करते है, जिनको हिन्दू-शास्त्रोंका कुछ भी ज्ञान नहीं होता और अनेक जगह वे शुमार-कुनिदा तो हिन्दू भी नहीं होते। असलमे तो यह अस्पृश्यता एक ऐसा अंधविश्वास है कि जिसके विरुद्ध प्रत्येक हिन्दुत्व प्रेमीको विद्रोहकी आवाज उठानी चाहिये।

हरिजन-सेवक
१६ नवम्बर, १६३४



सदस्योंकी योग्यता

अक्सर लोग ये प्रश्न पूछते है कि हरिजन बोर्डके सदस्योंकी क्या योग्यता होनी चाहिये और बोर्डमें कितने सदस्य होने चाहिये? उस दिन कानपुरमे संयुक्त प्रान्तीय संघकी बैठकमें इन प्रश्नोंका मैंने काफी विस्तारके साथ उत्तर देने की चेष्टा की थी, फिर भी जबतक कोई निश्चित नीति न बन जाय, तब तक यह आवश्यक है कि समय-समयपर इन प्रश्नोंकी चर्चा होती रहे।

अगर हमें इतना याद रहे कि इन हरिजन बोर्डोंके सदस्य सेवक हैं, संरक्षक नहीं, तो बहुत-सी कठिनाइयाँ तो आप ही हल हो जायँ। किसीको रिझाने या सिखाने का तब कोई प्रश्न ही न उठे। फिर तो वही लोग बोर्डमें आयेंगे, जो हरिजन-सेवा करने के लिए उत्सुक होंगे, बोर्डकी उपयोगिताको जो बढ़ायेंगे और बोर्डमें आने से जिनकी सेवा-साधनाकी क्षमता और भी बढ़ जायगी।

अतः बोर्डका सदस्य उसी व्यक्तिको होना चाहिये जो—

(१) अस्पृश्यताके आत्यन्तिक निवारणमें विश्वास रखता हो;

(२) जो अपने सामर्थ्यके अनुसार बोर्डको कुछ देता हो;

(३) जो कुछ-न-कुछ निश्चित हरिजन-सेवा-कार्य करता हो—जैसे अपने घरमें किसी हरिजनको अपने कुटुम्बकी तरह या कम-से-कम घरू नौकरकी तरह रखता हो, अथवा एक या एकाधिक हरिजनोंको पढ़ाता हो, या नियमपूर्वक हरिजन बस्तीमें जाता और सफाई करता हो, अथवा यदि वह वैद्य या डाक्टर है, जो बिना कोई फीस लिए हरिजन रोगियोंका इलाज करता हो, इत्यादि इत्यादि; और

(४) जो अपने बोर्डको हर महीने अपने सेवा-कार्यकी डायरी भर कर भेजता हो।

अगर ऐसी कुछ शर्तोंका पालन किया जाय, तो फिर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि बोर्डमें कितने सदस्य हों। ऐसे सदस्य जितने ही अधिक होंगे उतना ही अच्छा है। समय-समयपर अनुभव-सिद्ध विचारोंका विनिमय करने तथा आपसकी कठिनाइयोंको सुलझाने के लिए ही इन बोर्डोंकी बैठकें हुआ करेंगी। व्यर्थके वाद-विवादोंमें वे अपना समय नष्ट न करेंगे।

हरिजन-बोर्डोंके साथ जो सलाहकारी समितियाँ सम्बद्ध होंगी, वे भी अपने लिए कम-से-कम कुछ योग्यता निश्चित कर लेंगी। सलाह देनेवालोंमें जो योग्यता होनी चाहिये, वह स्वभावतः बोर्डके सदस्योंकी योग्यताकी तरह उतनी कड़ी और नियन्त्रित न होगी। मैंने जिन गुणोंकी ऊपर चर्चा की है अगर वे सब गुण बोर्डके सदस्योंमें न पाये जायँ तब क्या होगा?—इस प्रश्नका उठना स्वाभाविक है। इसका जो उत्तर मैंने अक्सर दिया है उसीको मैं यहाँ दुहराऊँगा। संघका सेन्ट्रल बोर्ड जिन व्यक्तियोंसे उनके प्रान्तोंमें बोर्ड बनाने को कहे, वे जबतक उपयुक्त योग्यतावाले सदस्य न मिले तबतक अन्य योग्य व्यक्तियोंके द्वारा अपने प्रान्तोंमें सेवा-कार्य करावें। "ईमानदारीसे काम करो"—यह प्रत्येक बोर्डका आदर्श होना चाहिये और इस निर्दोष सिद्धान्त-वाक्यकी उसे कदापि अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

हरिजन-सेवक
१६ नवम्बर, १९३४,



"· गीता कहती है कि देवोंको संतुष्ट रखना चाहिये। ··· देवता आसमानपर नहीं है। आपके देव अन्त्यज हैं। आपके देव दूसरे अस्पृश्य हैं। हिन्दुस्तानके देव कंगाल लोग हैं। दया धर्मसे हीन धर्म पाखण्ड है। दया ही धर्मका मूल है और उसका त्याग करनेवाला ईश्वरका त्याग करता है। रंकका त्याग करनेवाला सबका त्याग करता है"।

अल्पमतका अधिकार

एक सनातनी सज्जन पूछते हैं—

"एक सनातनीकी दृष्टिसे हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें मुझे एक कठिनाई दिखायी देती है। मान लीजिये कि किसी एक खास मन्दिरके ९९ फीसदी दर्शनार्थी हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें हैं और वह मन्दिर खोल दिया जाता है। इस स्थितिमें उस एक दर्शनार्थीका क्या होगा, जिसे ऐसे किसी मन्दिरमें देव-पूजन करने में आपत्ति है, जिसमें कि हरिजन जाते हों? अगर सुधारकों की चल गयी तो क्या सनातनियोंके सनातनसे चले आये पूजनाधिकारमें यह एक अनुचित हस्तक्षेप न होगा?

यहां एक उदाहरण देता हूँ। अंग्रेजोंके एक शहरमें रोमन कैथोलिक ईसाइयोंका भी सार्वजनिक चर्च है। प्रोटेस्टेण्टोंका बहुमत होते हुए भी वे रोमन कैथोलिक चर्चके मामलोंमें कोई दस्तदाजी नहीं करेंगे। तब फिर सुधारक (उनका बहुमत होते हुए भी) क्यों सनातनियोंके किसी सार्वजनिक मन्दिरके मामलेमें हस्तक्षेप करें"?

ऐसा ही एक दूसरा प्रश्न रख कर मैं इस प्रश्नका उत्तर दूँगा। अगर एक अकेले सनातनीको एक ऐसा अधिकार है—तो फिर उस दशामें बहुमतका क्या होगा? बहुमतको क्या कुछ भी अधिकार नहीं? प्रश्नकर्त्ताने जो उदाहरण ऊपर दिया है, वह यहाँ लागू नहीं होता। उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायोंकी दो चर्चोंके पास-पास होने की कल्पना की है। प्रोटेस्टेण्ट अगर रोमन कैथोलिक लोगोंके अधिकारोंमें, और रोमन कैथोलिक प्रोटेस्टेण्टोंके मामलोंमें हस्तक्षेप करें, तो उनकी यह भारी गुस्ताखी ही होगी। मगर मान लीजिये कि सिवा एकके तमाम प्रोटेस्टेण्ट ईसाई उन लोगोंको अपने अर्चना-स्थानमें आने की इजाजत दे दें, जिन्हें कि युगोंसे उन्होंने बहिष्कृत कर रखा था, तो निस्सन्देह उन्हें ऐसा करने का पूरा अधिकार है। यहाँ किसीके धर्म परिवर्त्तनका तो प्रश्न ही नहीं उठता। प्रश्नकर्त्ताकी यह कल्पना निराधार है। मन्दिर-प्रवेशकी प्रवृत्तिमें सुधारक किसीसे यह तो कहते नहीं कि अपना धर्म बदल डालो। किसी मन्दिरमें जानेवाले अगर बहुमतसे क्या सर्वसम्मतिसे भी कम-से-कम सिद्धान्त रूपमें ही ऐसा कोई फैसला कर दें, तो भी उस मन्दिरका उपयोग वे ऐसे किसी काममें नहीं कर सकते, जिसका कि इरादा उसके बनानेवालोंके मनमें न रहा होगा। सुधारकोंका तो यही दावा है कि उनका धर्म—वही धर्म जो सनातनियोंका है—सवर्ण हिन्दुओंकी तरह हरिजन हिन्दुओंको भी मन्दिरमें आने की आज्ञा देता है। इसलिए प्रश्न तो यहाँ व्याख्याका है और ऐसे मामलोंमें बहुमतकी राय जरूर

मानी जायगी। अगर इसकी उपेक्षा की गयी तब तो वह अल्पमतके द्वारा बहुमतपर बलात्कार ही कहा जायगा और तब उस स्थितिमें सब तरहकी प्रगतिका खात्मा ही है। प्रश्नकर्त्ताका उपस्थित किया हुआ उक्त मत अगर मान लिया गया तो समाजका क्षय और मरण ही समझिये। यह स्मरण रहे कि अल्पमतको अपने लिए अलग मन्दिर बनाने की स्वतन्त्रता है और जहाँ तक इस प्रश्नसे मेरा अपना सम्बन्ध है, मैं इस विषयमें अपनी यह राय दे चुका हूँ कि एक व्यक्तिके भी अल्पमतकी भावनाका यहाँ तक आदर किया जाय, ताकि यह सुधारकों या हरिजनोंके आवागमनसे स्वतन्त्र रह कर मन्दिरमें अपने इष्टदेवकी आराधना और अर्चना कर सकें।

हरिजन-सेवक
१६ नवम्बर, १९३४



आसाममें हरिजन-कार्य

आसाम प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघके मन्त्रीने अपने संघकी वार्षिक रिपोट मेरे पास भेजी है, जिसके खास-खास रोचक अंशोंको मैं नीचे उद्धृत करता हूँ :—

संघ कुल ७२ हरिजन-पाठशालएँ चला रहा है, जिनमे बालक-बालिकाएँ सब मिला कर कुल २,३६५ विद्यार्थी पढते है। इनमें २१ तो बालक-बालिकाओंकी संयुक्त पाठशालाएँ हैं और ४ पाठशालाएँ केवल बालिकाओंकी है।

इस वर्ष इन सब हरिजन-पाठशालाओं पर कुल ४,४९५|||=) खर्च हुए। संघने सामान्य सार्वजनिक पाठशालाओंमें ३२८ हरिजन बालक-बालिकाओंको भरती कराया।

अंग्रेजी मिड्ल और हाई स्कूलोंमें पढ़नेवाले हरिजन-विद्यार्थीको कुल ८६४||-) की छात्रवृत्तिया दी गयी।

किताबें, स्लेटें, साबुन और कपड़े इत्यादि कुल २०६=)|| के दिये गये।

२३ नामघर (प्रार्थना गृह) हरिजनोंके लिए खोल दिये गये। जोरहट की हरिजन-सेवक समिति ने सवर्णों और हरिजनों के लिए एक सामान्य नामघर बनवाया, जिसपर १,१९६||-)| खर्च हुए।

संघने ११ हरिजन अध्यापकोंको नियुक्त किया, जिनमे २ अध्यापिकाएँ भी हैं। डिब्रूगढमें भंगियोंके लिए एक सहकारी समिति स्थापित की गयी। ८१ भंगी इस समितिके सदस्य अबतक हो चुके हैं। ६२०) की रकम भंगियोंको अगाऊ दे दी गयी है।

संघने ६ जिला समितियाँ संघटित की और इन समितियोंने हरिजनोंकी २२ उप-समितियां बनायीं।

१६।⸗) की मुफ्त दवा-दारू बांटी गयी।

गरीब हरिजनोंको १० दस मन कपास और ४० चर्खे सूत कातने के लिए दिये गये।

१३२ गावोंमे सघके कार्यकर्त्ताओंने घूम-घूमकर अफीम, शराब आदि मादक वस्तुओंके विरुद्ध प्रचार किया। फलतः १५४ हरिजनोंने शराब न पीने की प्रतिज्ञाए लीं और १५ हरिजनोंने प्रतिज्ञापूर्वक मदक पीना छोड़ दिया।

अपने हरिजन मुलाजिमों, खास कर भगियोंके लिए अच्छे घर बनवा देने, बस्तियोंमें नालिया खुदवा देने और पानीका ठीक-ठीक प्रबन्ध कर देने के लिए प्रान्तकी म्यूनिसिपैलिटियोंसे प्रार्थना की गयी, पर दुःखकी बात है कि अबतक एक भी म्यूनिसिपैलिटीने सघकी प्रार्थनापर कोई खास ध्यान नहीं दिया। गौहाटी और डिब्रूगढकी म्यूनिसिपैलिटिया तो सबसे अधिक दोषी हैं।

यह खुशीकी बात है कि जगह जगह घूम-घूम कर काम करनेवाले सेवकोंकी सेवा-भावनासे प्रेरित हो कर कुछ गावोंने अपनी सड़कें खुद ही बना ली और अपने तालाबोंका कूड़ा-कचरा भी साफ कर डाला।

इस साल २४६ गावोंके हरिजनोकी अवस्थाकी जाच पड़ताल की गयी, जिसमें हरिजन-परिवारोकी अवस्था, उनके धन्धों, उनकी अयोग्यताओं और मद्यपान और अफीमखोरी आदिके आकड़े एकत्र किये गये।

सघके अध्यक्ष श्रीमान सत्राधिकारी गुरुमुरीय गोस्वामीजीने प्रान्तके अनेक मुख्य स्थानोका दौरा किया। चायबागानके बेकार कुलियोंके सेवा-केन्द्रोंको भी आपने देखा।

आसाममें अफीम एक भारी अभिशाप है। अफीमका प्रश्न वहा बड़ा ही विकट प्रश्न है, जिसे अफीमखोरीकी यह लत लग जाती है, उसका सर्वनाश ही समझिये। स्वास्थ्य और चरित्रसे तो अफीमची हाथ धो ही बैठता है, पैसा भी उसके पल्ले नहीं रहता। जाचसे यह मालूम हुआ है कि आसामके ८ जिलोंके ६४,४५६ अफीमचियोंमें प्रतिमास प्रति मनुष्य डेढ तोला अफीमकी खपत होती है। मिकिर पहाड़ियोंके इलाकेको छोड़ कर नौगाव जिलेमें १०,००० मनुष्य पीछे १८ सेर और लखीमपुरमें १०,००० मनुष्य पीछे ६२ सेर अफीमकी खपत हो जाती है। मिकिर पहाड़ियोंके इलाकेमें तो १०,००० मनुष्य पीछे ६२ सेर से भी ऊपर अफीम खप जाती है।

लखीमपुर, सिवसागर और नौगावमें अफीमके सबसे अधिक आदी गरीब हरिजन ही हैं।

हरिजनोंके अपने मुख्य घरेलू धन्धे—मछली पकड़ना, मिट्टीके बर्त्तन-भाड़े तैयार करना और सोने-चादीके जेवर बनाना है। आशा है कि ग्राम्य-उद्योग-सघकी प्रवृत्तिसे आसामके इन हरिजन कारीगरोंके उद्योग-धन्धोंको मदद पहुचेगी।

पर यह देख कर कि संघने हरिजन-कार्यपर जितना पैसा खर्च किया है, उसमें एक चौथाई प्रबन्ध और प्रचार की मदों पर खर्च हुआ है, आसामकी उक्त

उत्साहजनक रिपोर्ट कुछ फीकी पड़ जाती है। कुल ११,९६६) हरिजन-कार्यपर खर्च हुए हैं, जिनमें ३,६६४) तो प्रबन्धादि खातेमें खर्च हुए हैं और ८,३०२ सेवा-कार्य खाते में। १,१४६) तो केवल प्रबन्ध-कार्यालयके कर्मचारियोंपर खर्च हुए और १,०२०) प्रचारकोंकी मदमें। मैंने यहाँ पूरी-पूरी रकमें ही ली हैं, आना पाई छोड़ दिये हैं। मेरे हिसाबसे सेवा-कार्यपर इससे भी अधिक खर्च होना चाहिये था। यह मैं सैकड़ों बार कह चुका हूँ कि रचनात्मक-कार्य स्वयं ही एक सर्वोत्तम प्रचार-कार्य है। प्रबन्ध-खातेमें भी काट-छाँटकी काफी गुंजाइश हो सकती है। मैं जानता हूँ कि आसाम प्रान्तमें काम करना टेढ़ी खीर है। फिर भी यह बात तो सदा ध्यानमें रहनी ही चाहिये कि हरिजन-सेवक-संघ केवल प्रायश्चितकारियों या देनदारोंकी संख्या है।

हरिजन-सेवक
१४ दिसम्बर, १९३४



हरिजनोंका प्रतिनिधित्व

एक सज्जनके आग्रहपर मैंने ठक्करबापासे पूछा था कि भारतवर्ष भरके हरिजन-सेवक-संघोंमें कुल कितने हरिजन हैं, यह वह मुझको बतलावें। अभी तक जिन दस प्रान्तोंके आँकड़े प्राप्त हुए हैं, उनके अनुसार उन प्रान्तोंके हरिजन-सेवक-संघोंमें कुल १७१ हरिजन सदस्य हैं और १,१५८ इतरजन। ये आँकड़े मैं सिर्फ जानकारीके लिए दे रहा हूँ। इनपरसे यह परिणाम निकालना ठीक न होगा कि ये ठोस कामके चिह्नस्वरूप हैं। हाँ, ये दो बातें बेशक इनसे सिद्ध होती हैं:—

(१) संघोंने इस बातकी कोशिश की है कि अपनी सहायताके लिए जितने भी हरिजन उन्हें मिल सकें उनको अपना सदस्य बना लें।

(२) ऐसे प्रतिष्ठित हिन्दू काफी तादादमें मौजूद हैं, जो इन संघोंके साथ अपना नाम जोड़ने के लिए तैयार हैं, जिनका कि स्पष्ट उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक मामलोंमें शेष हिन्दुओंके साथ हरिजनोंकी समानता प्राप्त करना है।

संघोंमें जो बहुत-से सवर्ण हिन्दू और हरिजन- हिन्दू हैं, मैं चाहता हूँ कि मैं यह बात भी लिख सकता कि ये ठोस प्रगतिके सूचक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि संघमें अधिक संख्यामें सदस्योंके होने से व्यवस्थाका खर्च तो बढ़ता है, पर उस परिमाणमें काम अच्छा या ज्यादा नहीं होता। अतः ऐसे उपाय सोचे जा रहे हैं कि जिससे काम अच्छा और ज्यादा हो, फिर इसके लिए चाहे सदस्योंकी संख्यामें

कमी भी क्यों न करनी पड़े। दलितों और दरिद्रोंके काममें यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यवस्थाके ऊपरी खर्चोंको कम-से-कम रखा जाय; क्योंकि असहाय लोग अपने सहायकोंकी फजूलखर्चियों पर कोई बन्धन नहीं लगा सकते, फिर वे सहायक कितने ही परोपकारी क्यों हों और वे फजूलखर्चियाँ कितने ही अनजानमें क्यों न की जायँ और सहायक भी सुव्यवस्थाके नामपर अनजानमें फजूलखर्ची करने पर जबतक कोई प्रतिबन्ध न लगायेंगे, तबतक उनसे आवश्यकतासे अधिक खर्च हो जाना सम्भव ही है। अनेक दातव्य-संस्थाओंकी व्यवस्थाकी गौरसे छान-बीन करने पर हमें मालूम पड़ेगा कि उनमें कितनी फजूलखर्ची और अव्यवस्था है और ट्रस्टी लोग ट्रस्टकी कैसी अक्षम्य उपेक्षा करते हैं। हरिजन-संघ अगर हरिजनोंके सामने, जिनकी सेवा ही उनका एक मात्र उद्देश्य है, अपना सुन्दर उदाहरण पेश करना चाहते हैं तो उन्हें इन दोनों बुराइयोंसे तो बचना ही होगा।

हरिजन-सेवक
४ जनवरी, १९३४



यह भी सहभोज है ?

उस दिन जब मैं हरिजनों और सवर्णोंकी एक परिषद्में भाषण दे रहा था, तब मुझे प्रसंगवश दुखके साथ यह बात कहनी पड़ी कि आज हमारे मुल्कमें रेलवे-स्टेशनोंपर 'मुसलमान दूध, हिन्दू दूध, मुसलमान पानी, हिन्दू पानी' की आवाज सुनायी पड़ती है। 'हिन्दू रोटी और मुसलमान रोटी' की बात तो मैं बर्दाश्त कर सकता हूँ। हालाँकि ऐसी किसी चीजमें मैं विश्वास नहीं करता, मगर 'मुसलमान दूध और हिन्दू दूधकी बात तो—जिसके बनाने में मनुष्यका वास्ता ही नहीं—न तो मैं समझ ही सकता हूँ और न उसे बर्दास्त ही कर सकता हूँ। मैंने वहाँ यह भी कहा था कि अस्पृश्यता-निवारणमें जिनका सोलह आने विश्वास है, उन्हें मुसलमान दूध या पानी और हिन्दू दूध या पानी जैसे वहमोंसे अपनेको मुक्त करना ही होगा।

'हरिजन-सेवक' में मैं यह तो अनेक बार लिख चुका हूँ कि जो लोग हरिजनोंका छुआ पानी या दूध वगैरह ग्रहण करने से इनकार करते हैं, वे यह दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने अपनेको अस्पृश्यताके कलङ्कसे मुक्त कर लिया है और जब हमने इस भेदभावको अपने दिलसे दूर कर दिया कि यह हरिजन पानी या दूध है और यह सवर्ण पानी या दूध है और यह हिन्दू पानी या दूध है। अगर अस्पृश्यता-निवारणकी यह महान प्रवृत्ति महज अपने मनको समझा लेने की बात रह गयी और उसके पीछे सत्य न रहा तो उसका सारा सौन्दर्य नष्ट हो जायगा। इस

अस्पृश्यतारूपी राक्षसीकी पहुँच सर्वत्र है, इसका रूप सर्वव्यापी है। जो इसकी इस सर्वव्यापकतामें विश्वास करते हैं, वे तबतक अपनेको उससे मुक्त हुआ नहीं कह सकते, जबतक कि वे एक भी मनुष्यको, उसके अमुक जातिमें जन्म लेने के कारण या उसके सम्प्रदाय या धर्मके कारण, अस्पृश्य अथवा सामाजिक दरजेमें किसी-न-किसी तरह अपनेसे उसे नीचा समझते हैं।

मेरे पास हालमें एक ऐसा पत्र आया है, जिसमें इस बातके स्पष्ट कर देने पर काफी जोर दिया गया है कि अस्पृश्यता-निवारणकी प्रवृत्तिका यथार्थ आशय असलमें क्या है। उसमें लिखा है कि बरार प्रान्तके एक हाई स्कूलकी रजत-जयन्तीके उपलक्ष्यमें वहाँ एक सार्वजनिक भोजका आयोजन किया गया था। हरिजन विद्यार्थियोंको भी न्यौता दिया गया था। पत्रसे मुझे यह मालूम हुआ कि हरिजन विद्यार्थियोंको तो वहाँ अलग बिठाया गया था और दूसरी तमाम जातियों व सम्प्रदायोंके आमन्त्रित लोग सब एक पंक्तिमें बिठाये गये थे। संस्कृतिवान हरिजन विद्यार्थियोंको इस तरह वाहियात तरहसे अपमानित करने की आखिर क्या जरूरत आ पड़ी थी? और सब लोगोंकी पाँतमें अगर उन्हें बिठा दिया जाता तो उन्हें देख कर कौन कह सकता था कि वे हरिजन हैं? एक हाई स्कूलके उत्सवके समय ऐसे अपमानजनक कृत्यसे यही प्रकट होता है न कि यद्यपि अस्पृश्यताका बहुत-कुछ मैदान हम सर कर चुके हैं, तो भी वह पुराना वहम आज भी उसी तरह जमा हुआ है और वह भी उन स्थानोंमें जहाँ कि हमें ऐसी बातोंकी आशा करनी ही नहीं चाहिये। यह ध्यान रहे कि वहाँ न तो सहभोजका प्रश्न था; वहाँ तो सिर्फ एक पंक्तिमें बैठ कर जीमने की बात थी। अगर रेलगाड़ीके एक ही डिब्बेमें एक ही बेंचपर सबके साथ बैठना और वहीं बैठ कर भोजन करना सहभोज नहीं समझा जाता, तो वह भी निश्चय ही सहभोज नहीं था; मगर अस्पृश्यताके कोशमें तो सहभोजका कुछ दूसरा ही अर्थ है—उसमे तो एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करने का भी निषेध है।

हरिजन-सेवक

१८ जनवरी, १९३४



"ब्राह्मण धर्मको जो अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है उसका कारण है ज्ञानसे प्रदीप्त निस्पृहता, अन्तःकरणकी शुद्धि और तीव्र तपस्या।'' '''हमारी आन्तरिक परिक्षाका समय है। हम मोहमें लिप्त हैं। घोर-से घोर अस्पृश्य और पापपूर्ण विचारोंका प्रवाह हमें स्पर्श कर रहा है और अपवित्र बना रहा है। ऐसी दशामें हम अपनी पवित्रताके घमण्डमें मस्त हो कर अपने उन भाइयोंके स्पर्शके प्रभावको तिलका ताड़ न बनावें जिन्हें हम अकसर अपने अज्ञानवश और उनसे भी अधिक अपने बड़प्पनकी ठसकसे, अपनेसे नीच समझते हैं"।

घोर अज्ञान

रींगससे एक हरिजन-सेवक लिखते हैं—

"जयपुर राज्य युवक-सम्मेलनके साथ २५–१२–३४ को यहापर जो खादी प्रदर्शनीकी दूकान लगायी गयी थी, उसपर एक बुनकर (हरिजन) का लड़का कपड़ा बेचने को ऊपर बरामदेमे बैठा था और बरामदेके नीचे चौकमें सभाकी गयी थी, जिसमें गावके अन्य सवर्ण लोग थे। उसे देख कर यहाके सवर्ण हिन्दू इसलिए बिगड़ गये कि एक हरिजन लड़केको ऊपर क्यों बैठने दिया और सवर्ण लोगोंने मन्दिरमें पचायत की और यह निश्चय किया कि—

(१) खादी-प्रदर्शनी और सम्मेलनमें गावका कोई भी मनुष्य न जावे। अगर जायगा तो वह जाति-बाहर कर दिया जायगा।

(२) कन्या-पाठशालामें लड़किया पढ़ने न जायं, क्योंकि पाठशालाका सम्बन्ध सम्मेलनवाले लोगोंसे है।

(३) हरिजन-पाठशालाके अध्यापकको कोई अपने मकानमें न आने दे।

पचायतकी इतनी सख्ती होनेपर भी गावके कोई २८ युवकोंने सम्मेलनके कार्यमें भाग लिया और जब पचायतने उनपर एक-एक रुपया जुर्माना किया, तो उन्होंने जुर्माना देने से इनकार कर दिया।

सम्मेलनके रसोड़ेमे जीमनेवाले सवर्ण भी थे और हरिजन भी। करीब तीन-चार सौ मनुष्य सभी एक जगह जीमते थे। जबसे लोगोंने यह बात सुनी है, तबसे तो खूब ही शोर मचा रहे हैं कि धर्म डुबो दिया, धर्म डुबो दिया"।

इस बरतावमे सिवा घोर अज्ञानके और तो कुछ दिखायी देता नहीं। यह ऊँच-नीचका भाव दूर न हुआ तो धर्मका नाश ही समझिये। सवर्णोंके बहिष्कारसे लोग डरे नहीं हैं, यह एक शुभ चिन्ह मालूम होता है। जिन्होंने बहिष्कार किया है उनके ऊपर किसी भी प्रकारका क्रोध न किया जाय। साथ ही, इस बहिष्कारसे डर कर कोई अपना कर्त्तव्य न छोड़े। बहिष्कार करनेवालोंमें यदि कोई प्रतिष्ठित लोग हैं तो उनसे वार्तालाप भी किया जाय। सम्भव है कि इस बहिष्कारका कारण कुछ और हो।

हरिजन-सेवक
१५ फरवरी, १९३४



"......जिस प्रकार एक रत्ती सखियासे लोटा भर दूध बिगड़ जाता है उसी प्रकार अस्पृश्यतासे हिन्दू-धर्म चौपट हो रहा है"।

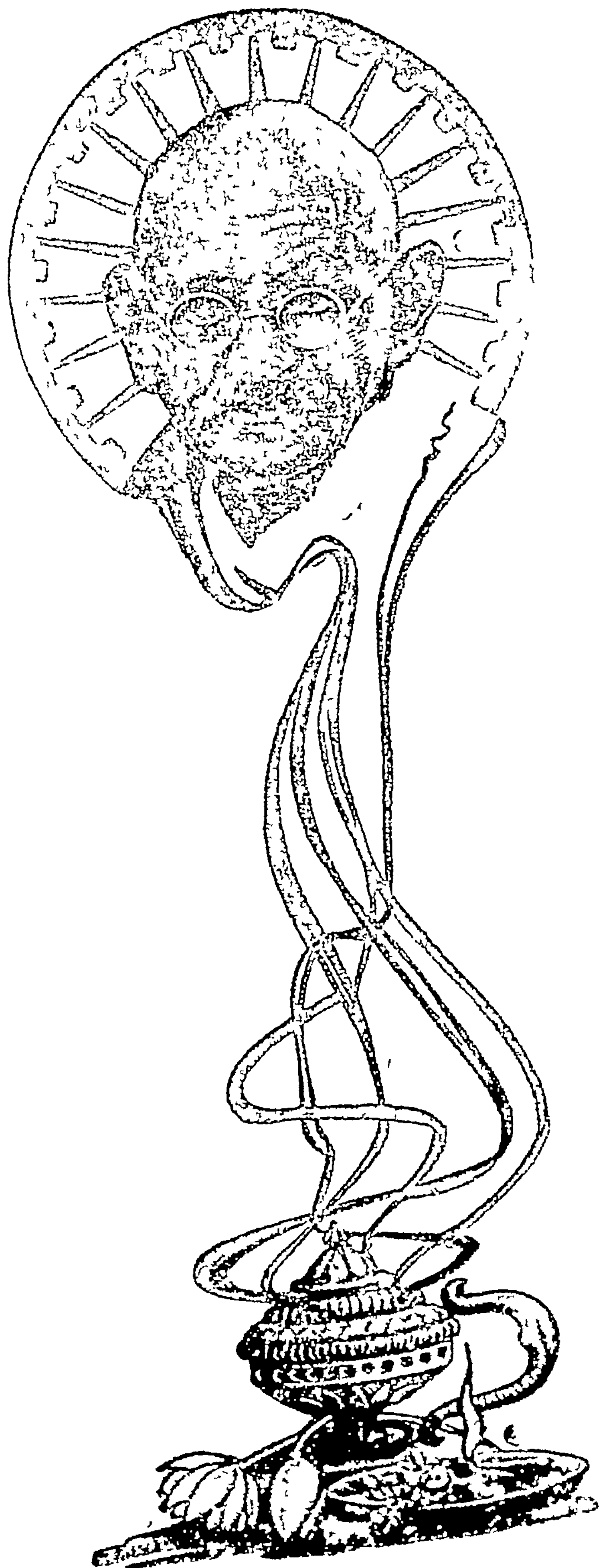
गां
धी
जी

खंड

बारह

अछूतोद्धार

तृतीय भाग



मूल्य एक रुपया आठ आना मात्र
(प्रथम संस्करण : मई, १९५१)

मुद्रक तथा प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
तथा
विद्यापीठ मुद्रणालय
बनारस छावनी

सूची

प्रकाशकका वक्तव्य

गांधीजी ग्रथमालाका यह तेरहवाँ प्रकाशन ग्रन्थमालाके बारहवें अछूतोद्धार खण्डका तृतीय भाग है। इस अकको सामग्री हमें शीघ्र ही उपलब्ध हो गयी थी, फलतः इसके द्वितीय भागके प्रकाशनके लगभग एक मास पश्चात् ही यह अक भी आपके सम्मुख रखने में हम समर्थ हो सके है। आशा है हमारे इस प्रयाससे पाठकोंकी शिकायतें बहुत हद क दूर हो सकेंगी। इस विपयके कुछ और लेख शेप रह गये हैं जिन्हें कुछ कठिनाइयोंके कारण हम इस अकमे स्थान न दे सके। सामग्री भी थोड़ी ही है और उनके लिए एक पृथक अंक तैयार नहीं किया जा सकता। अतः परिशिष्टाकके रूपमे हम इन्हे प्रकाशित करने की चेष्टा करेंगे।

काशीके प्रसिद्ध काग्रेस-कार्यकर्त्ता तथा गाधी-भक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया, स्वर्गीय श्री कन्हैयालाल शास्त्री तथा कारमाइकल पुस्तकालयके सग्रहोंसे हमे बड़ी सहायता मिली है। हम इनके आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्या भाई देसाई, व्यवस्थापक ट्रस्टी 'नव-जीवन ट्रस्ट'—अहमदाबादने जो कृपा की है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

हमारा अगला प्रकाशन 'गाधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण' विषयपर होगा। इस अकके प्रथम भागकी सामग्री हमें उपलब्ध हो गयी है और इसे भी शीघ्र ही प्रकाशित करने में हम समर्थ हो सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।



दरजेका अर्थ

हरिजन सेवक-संघका हालमें जो नया विधान बना है, उसके बारेमें एक अत्यन्त प्रतिष्ठित हरिजन-सेवक लिखते हैं—

"अ और ब प्रतिज्ञामें 'दरजा' शब्द आता है। अगर उसका अर्थ यह है कि जैसे कानूनमें कोई ऊंचा-नीचा नहीं है, तो हमारे यहाके सदस्य उसको मानने के लिए तैयार हैं; अर्थात् धर्म या दर्शनशास्त्रके सिद्धांतके बतौर, आध्यात्मिक रूपमें, व इस बातको मानते हैं, लेकिन अगर इसका अर्थ यह लगाया जाय कि दुनियावी व्यवहारमें मालिक नौकर गुरु शिष्य, पति पत्नी, न्यायधीश और कैदी आदिके बीच दरजेका कोई अन्तर ही न होना चाहिये, तो हमारे लिए एक प्रतिज्ञा-पत्रपर दस्तखत करना मुश्किल है। इसलिए आप यह बतलाने की कृपा करें कि यहांपर 'दरजे'का जो उल्लेख हुआ है वह सांसारिकके बजाय आध्यात्मिक रूपमें ही है या नहीं" ?

प्रतिज्ञाके जिस अंशका ऊपर उल्लेख किया गया है, वह निम्नलिखित प्रकार है—

"मैं किसी मनुष्यको अपनेसे दरजेमें नीचा नहीं समझता और अपने इस विश्वासपर चलने का मैं भरसक प्रयत्न करूगा"।

मै समझता हूँ कि ऊपरकी बातका जवाब तो प्रतिज्ञामें ही दिया हुआ है, लेकिन पत्र-लेखक समानताका अर्थ भिन्नताओंका नाश कर के भ्रममे पड़ गये मालूम पड़ते है। अगर यह भिन्नता या विविधता बिलकुल ही न होती तो यह दृश्य-जगत ही कहां होता और समानता या ऊंच नीचके भावका प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन जब ईश्वर अनेक रूप धारण करता है तब उन विविध रूपोंमे भिन्नता करनी ही पड़ती है। ईश्वरके कोई अंग दूसरे अंगोकी अपेक्षा ऊंचे या श्रेष्ठ होने का दावा करे तो उसे सृष्टिकर्ताके विरुद्ध विद्रोह ही कहा जायगा; क्योंकि उन सबके बीच कद, रंग, रूप, गुण आदिकी भिन्नता चाहे जितनी हो, फिर भी दरजेमे तो वे सब बरबर ही माने जायंगे। पति-पत्नी, गुरु शिष्य नौकर-मालिक, न्यायाधीश और अपराधी, जेल और कैदीके बीच अन्तर तो है ही, लेकिन पति अपनी पत्नी से, मालिक नौकर से या न्यायाधीश सजा पानेवाले अपराधीसे अपनेको ऊंचा माने, तो यह अधर्माचरण होगा। दुनियाका सारा दुःख इस असमानताकी भावन से पैदा हुआ है। हिन्दू जिस अस्पृश्यताका पालन करते हैं, वह इसका आखिरी रूप है, इसलिए इससे बढ़ कर और क्या बात हो सकती है कि हरिजन-सेवक इस पुराने पापको धो डालते वक्त अन्तर्दृष्टि कर के विचारको और असमानताके विषको अपने हृदयसे बिलकुल निकाल डाले ? लेकिन यह किस प्रकार मालूम होगा कि

अमुक मालिक तो अपने नौकरको अपनेसे नीचा मानता है और अमुक उसे अपने समान समझता है। इसका पता इसीसे चल सकता है कि पहले मालिकको अपने नौकरके सुख दुःखका कोई खयाल ही नहीं होगा, क्योंकि उसे तो सिवा इसके और कोई मतलब नहीं कि नौकरको तनख्वाह दे कर उसके बदले काम लिया जाय, जब कि दूसरा अपने कुटुम्बकी तरह उसका खयाल रखेगा। ईश्वरपरायण कुटुम्बोंमें मालिकके बाल-बच्चे पुराने नौकरोंको माँ-बापकी तरह मानते हैं। नौकरोंके सुख-दुःखमें मालिक भी शरीक होते हैं। नौकरोंको ऐसा महसूस नहीं होता कि वे मालिकसे नीचे दरजेके हैं। मालिक उल्टे रास्ते जायँ तो वे उसे रोकते भी हैं। घमण्डी और विनम्र मालिकके बीच वैसा ही अन्तर है जैसा खड़िया और मलाईके बीच, उनमें कम-ज्यादाका कोई भेद नहीं है। उनकी तो किस्म ही अलग अलग है। समानताकी यह स्थिति प्रकृति जन्य है और बुद्धि एवं हृदय रखनेवाले मनुष्यकी हैसियतसे यही हमें शोभा देती है; मगर फिर भी हम सब अभी इस स्थितिसे बहुत दूर हैं, लेकिन बजाय इसके कि मरने के बाद इसके अनुसार व्यवहार करने की आशा करें, हमें अपने रोजमर्राके ही जीवनमें इसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न करना चाहिये। अगर सच्चे दिलसे हम ऐसा करने का प्रयत्न न करें, तो फिर कानूनकी दृष्टिमें समानताका अर्थ ही क्या हो सकता है?

इन मित्र शुद्ध निष्ठासे अवैतनिक काम करनेवाले प्रतिष्ठित हरिजन-सेवक हैं। विधानकी दसवीं धारामें कहा गया है कि प्रांतिक संघोंके सदस्योंमें एक-तिहाई संख्या ऐसोंकी होनी चाहिये कि जो संघके कार्यमें अपना पूरा समय देते हों। इसमें 'पूरा समय देनेवाले सेवक' शब्द आये हैं, उनको मित्र समझने में ही इन मित्रको कठिनाई हुई है। वह कठिनाई ठीक है, क्योंकि नियमोंमें ऐसा कहीं नहीं बताया गया है कि ऐसे सेवक तनख्वाहदार हों वा होने चाहिये। जिस वक्त धीरे-धीरे यह विधान बन रहा था, उस वक्त मैं वहाँ उपस्थित था। इसलिए जान-बूझ कर उसमें जो बात नहीं रखी गयी थी, आसानीसे मैं उसकी पूर्ति कर सकता हूँ। अपना पूरा वक्त देनेवाले तनख्वाहदार सेवकोंको रखने के बारेमें विचार हो रहा है, इसकी योजना भी बन रही है। पूरा समय देनेवाले जिन अवैतनिक सेवकोंके पास इतनी संपत्ति हो कि कमाईका फिक्र किये बिना वे अपना पूरा समय इसमें लगा सकें, उन्हें इस योजनासे अलग नहीं रखा जायगा। 'तनख्वाह' शब्द किसीको बुरा लगेगा, यह भी विधान बनाते समय विचार उठा था; इसीलिए इसे उसमें नहीं रखा गया था, लेकिन यह विचार तो स्पष्ट ही है कि जहाँ-जहाँ मिल सके वहाँ एक-तिहाई सेवक सारा वक्त देनेवाले तनख्वाहदार सेवकोंमें से ही लेने चाहिये। अलबत्ता, यह जरूर है कि जिम्मेदारीके लिए और जिन बातोंकी आवश्यकता हो वे भी उनमें मौजूद हों।

इन मित्रकी तीसरी एक कठिनाई भी है, जिसके बारेमें वह लिखते हैं—

"हमारे संघ के सदस्योंकी, खास कर हरिजनोंकी, इच्छा है कि २४वें नियममें सुधार

होना चाहिये। 'अधिक-से-अधिक जितने सदस्य मिल सकें'के बदले कम-से-कम एक-तिहाईका परिमाण निश्चित कर देना चाहिये। मद्रास-जैसी जगहोंमें १५ हरिजन सदस्य तो आसानीसे मिल सकते हैं और जैसा कि इस समय विधान है, उसके अनुसार और किसीको उसमें लिया ही नहीं जा सकता। इससे तो संघका जो यह उद्देश्य है कि सवर्ण लोग हरिजनोंकी सेवा करें, वही नष्ट हो जाता है"।

यह कठिनाई संभवतः विधानकी इस बात पर ध्यान न जाने से हुई है कि—

"अपने लिए अधिक-से-अधिक सदस्योंकी जो संख्या निश्चित की हो उसका ध्यान रखते हुए"।

इस नियमका पूरा वाक्य इस प्रकार है—

"हरएक संघ या समितिमें सदस्योंकी जो अधिक-से-अधिक संख्या रखी गयी हो उसका ध्यान रखते हुए अधिक से-अधिक जितने हरिजन मिल सकें उतने रखे जायँ"।

इन मित्रने जैसा अर्थ लगाया है ऐसा अर्थ न लगाया जाय, इसीलिए जान-बूझ कर इस नियममें उसका स्पष्टीकरण किया गया है। इन मित्रने जो परिवर्त्तन सुझाया है, केन्द्रीय बोर्डने दिल्लीमें उसपर विचार किया था, लेकिन अनेक सदस्योंको महसूस हुआ कि उपयुक्त हरिजनोंका इतनी तादादमें मिलना मुश्किल है, जो संघके एक-तिहाई सदस्य बनाये जा सकें। इसलिए यह नियम रखा गया जिससे दोनों कठिनाइयोंका हल हो जाता है।

इतनेपर भी यहाँ एक बार फिर मुझे अपनी श्रद्धा प्रकट कर देनी चाहिये। हरिजन-सेवक-संघमें हरिजनोंको लेने के मैं विरुद्ध था और अभी तक भी विरुद्ध हूँ; क्योंकि हरिजन-सेवक-संघ अगर प्रायश्चित करनेवाले देनदारोंकी संस्था हो, जैसा कि इसे माना जाता है, तो लेनदारोंके लिए उसमें कोई स्थान ही नहीं हो सकता। लेनदार तो लेने के लिए सामने रहते ही हैं। एक-न-एक दिन वह अपना बात मनवायेंगे ही। आज तो उनमें से अधिकांश असहाय हैं। कितने ही यह भी समझते हैं कि ईश्वरकी सृष्टिमें वे हीन-से-हीन और बहिष्कृत रहने के लिए ही बनाये गये हैं और इससे अन्य स्थिति प्राप्त करने का विचार करना भी घोर पाप समझते हैं। प्रायश्चित करनेवाले सवर्ण हिन्दुओंका काम है कि पूरी नम्रताके साथ उनकी सेवा करें। उनकी सेवा स्वीकार हो या न हो, उनके प्रायश्चितका समय निकल भी गया हो और अब वह समयके बाद भी क्यों न मालूम पड़ता हो, पर उन्हें तो प्रायश्चित करना ही चाहिये। यह प्रायश्चित वे अपनी जगह हरिजनोंसे नहीं करा सकते। यह भी सम्भव है कि इस नियमका यह अर्थ जानने के बाद हरिजन मित्र यह बोझा उठाने से डरने लगेगा, लेकिन यह प्रायश्चित क्या उनके करने का है, या जो सवर्ण हिन्दू संघमें बिलकुल इसी हो नहीं उनसे वे जबरदस्ती करवायेंगे ?

लेकिन भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके जिन सदस्योंने कुछ हरिजनोंको अपने संघमें रखना चाहा था उनकी प्रत्यक्ष कठिनाईके आगे मेरा विरोध दब गया है। उनके

ठोस अनुभवके सामने मेरे आदर्शको पीछे हटना पड़ा है। इसलिए इस नियमका सीधा-सादा अर्थ यही है कि हरिजन-सेवक-संघोंमें जितने हरिजन मिल सकें उन्हें शामिल करना चाहिये, मगर भारी बहुमत सवर्ण हिन्दुओंका ही रहना चाहिये और समस्त संघमें दो-तिहाईसे कम उनकी तादाद नहीं होनी चाहिये। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि अगर पर्याप्त योग्यतावाले हरिजन न मिले तो वे एक-तिहाई संख्या हरिजनोंकी रखने के लिए बाध्य नहीं हैं। हरिजनो-सम्बन्धी प्रतिज्ञा जान-बूझ कर बहुत मामूली और सीधी-सादी रखी गयी है। इसलिए एक-तिहाई हरिजन सदस्य प्राप्त करने में कोई कठिनाई न होनी चाहिये, जबकि यह नियम है तो ईमानदारीके साथ इसपर अमल होना चाहिये।

हरिजन सेवक
२२ फरवरी, १९३५



हम सब भंगी बनें

अस्पृश्यता से जितने विषैले फल पैदा हुए हैं, उन सबका तो हमें पता भी नहीं। अब चूंकि गांवोंकी सफाईकी ओर ध्यान दिया जा रहा है, इसलिए यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि गांवों और शहरोंकी गन्दगीका खास कारण हमारा यह अस्पृश्यता-विषयक विश्वास है। हम अपना ही मैला छूने और उसे साफ करने में डरते हैं और हमारा जो स्पष्ट धर्म था उसका पालन हमने अपने ही अमुक भाई-बहनोंको सौंप दिया है और हमने उन्हें इसलिए अपने समाजसे बहिष्कृत कर रखा है, उन्हें अस्पृश्य मान लिया है और हम उनके सुख दुःखकी तरफ देखते तक नहीं, क्योंकि वे हमारी सबसे अधिक महत्वकी सेवा करते हैं।

इस सामाजिक बुराई और पापको दूर करने का एक मात्र उपाय यही है कि हम सब अपने अपने भंगी बन जायँ। तभी हम स्वच्छताकी कला शीघ्र सीखेंगे, गन्दगीसे पैदा होनेवाले अनेक महारोगोंके चंगुलसे छुटकारा पायेंगे और इसके साथ ही हमें अर्थ-लाभ भी होगा। फाउलर नामके एक लेखकने 'सम्पत्ति तथा दुर्व्यय' नामकी एक अंग्रेजी पुस्तकमें लिखा है कि मनुष्यका मैला अच्छी तरह ठिकाने लगाया जाय तो प्रति मनुष्यके मैलेसे हर साल २) की आमदनी हो सकती है। अनेक जगहोंमें तो आज सोने-जैसा खाद योंही पड़ा-पड़ा नष्ट हो जाता है और उलटे उससे बीमारियाँ फैलती हैं। उक्त लेखकने प्रोफेसर बुलटीनीका 'कूड़े-कचरेका उपयोग' नामक पुस्तकसे जो उद्धरण दिया है उसमें कहा है कि 'दिल्लीमें रहनेवाले २,८२,००० मनुष्योंके मैलेमें से जो नाइट्रोजन पैदा होता है उसमें कम-से-कम दस हजार और अधिक-से-अधिक १५ हजार एकड़ जमीनको पर्याप्त खाद

मिल सकता है'—मगर चूँकि हमने अपने भंगियोंके साथ अच्छी तरह वर्ताव करना नहीं सीखा है, इससे प्राचीन कीर्तिशाली दिल्ली नगरीमें भी आज ऐसे-ऐसे नरक-कुण्ड देखने में आते हैं कि हमें अपना सिर शर्मसे नीचा कर लेना पड़ता है। अगर हम सब भंगी बन जायँ तो यह तो हमें मालूम हो ही जायगा कि हमें खुद अपने प्रति कैसा वर्ताव करना चाहिये। हमें यह भी ज्ञान हो जायगा कि आज जो चीज जहरका काम कर रही है, उसे पेड़-पौधोंके लिए हम किस प्रकार उत्तम खादमें परिणत कर सकते हैं। अगर हम मनुष्यके मलका सदुपयोग करें तो डाक्टर फाउलरके हिसाबके अनुसार भारतकी ३० करोड़की आबादीसे सालमें ५० करोड़ रुपयेका लाभ हो सकता है।

यह देख कर कोई घबरा न जाय कि यह प्रश्न तो बहुत विशाल है। जिसके गले यह बात उतर गया हो वह खुद ही इसे शुरू कर दे और हृदयमें यह पूरी श्रद्धा रखे कि अगर उसका उत्साह अंत तक ऐसा ही बना रहा तो अवश्य ही सब लोग उसके दृष्टांतका अनुकरण करेंगे। 'श्रद्धा' शब्द शायद यहाँ उपयुक्त न होगा, क्योंकि मनुष्यका मल पशुके गोबरकी ही तरह मूल्यवान है। यह श्रद्धाका नहीं, किन्तु नित्यके अनुभव का विषय है। आवश्यकता तो केवल युग युगान्तरोंसे जमी हुई जड़ता दूर करने की ही है। जिस चीजको आज थोड़े-से आदमी बुद्धि और एकाग्रताके साथ करेंगे, उसे कल सभी मनुष्य करने लगेंगे।

हरिजन सेवक
२२ मार्च, १९३५



मन्दिर-प्रवेश

'हरिजन-सेवक'के पाठकोंको यह तो मालूम ही है कि ठक्कर बापा हरिजन-कार्यके सिलसिलेमें आजकल दक्षिण भारतका दौरा कर रहे हैं। त्रावणकोरमें उनकी उपस्थितिका लाभ लेकर वहाँके कार्यकर्त्ताओंने आणमूलामें एक हरिजन-परिषद् की थी, जिसका सभापति उन्होंने ठक्कर बापाको बनाया था! यह परिषद् १० मार्चको हुई थी। काफी बड़ी संख्यामें लोग इस परिषद्में सम्मिलित हुए थे। सवर्ण हिन्दुओंकी तरह हरिजनोंकी भी खासी अच्छी उपस्थिति थी। इस परिषद्में हरि-जनोंकी ओरसे ठक्कर बापाको एक मानपत्र दिया गया था। मानपत्रमें मन्दिर-प्रवेशके प्रसंगका यह अंश काफी महत्वका है—

"यह हमारा अटल विश्वास है कि जबतक मन्दिरोंके द्वार हमारे लिए बन्द हैं तबतक अस्पृश्यताका कभी अंत नहीं हो सकता और न होगा। मन्दिर-प्रवेश ही हमारे लिए इस हरिजन-आंदोलनकी सफलताकी सबसे खरी कसौटी है। जबतक हमें मन्दिरोंमें

'धर्म-परिवर्त्तन'का दुःख

देवकोटाके एक हरिजन-सेवकने अपनी तरफके हरिजनोंके ईसाई हो जाने के विषयमे मुझे एक दुःखजनक पत्र लिखा है। लोगोंसे यह छिपी नहीं है कि उधरके हरिजनोंको नट्टार लोग किस तरह बराबर सताते आ रहे हैं। दिन रातकी सॉसतसे तंग आकर और सवर्ण हिन्दुओंसे मामूली मदद भी न पाकर अगर गरीब हरिजन ईसाई धर्मकी शरणमें चले जाय, तो हमे इसमे आश्चर्य नहीं करना चाहिये और अगर हम अपने दुःखको प्रबल कार्य-शक्तिमे परिणत नहीं कर सकते तो वह बिलकुल व्यर्थ है। शारीरिक कष्टके दबावमे किया हुआ धर्म-परिवर्त्तन कोई आध्यात्मिक धर्म-परिवर्त्तन तो है नही, लेकिन अगर हरिजन अपनी भौतिक स्थिति सुधारने और सवर्णोंकी यन्त्रणाओंसे बचने के लिए अपना धर्म बदल रहे है तो इसपर हम क्यों कुढ़ें!

दुःख तो हमें उनके धर्म-परिवर्त्तनके कारणपर होना चाहिये। हमें यह देखना और कबूल करना चाहिये कि इस धर्म-परिवर्त्तनका कारण सवर्ण हिन्दू है। अगर देवकोटाके सवर्ण हिन्दुओंका यह खबर होती कि वहाँके हरिजनोंके प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है तो नट्टार लोगोंको, जो खुद सवर्ण हिन्दू हैं, इस तरह हरिजनोंको सताने की कभी हिम्मत न पडती। वे जरूर समझते कि हरिजन भी उसी मानव कुटुम्बके हैं जिसके कि वे हैं। पत्र-लेखकने मेरे सामने यह तजबीज रखी है कि बाहरके कुछ सज्जन देवकोटा जायँ और वहाँ नट्टारों और हरिजनोंके बीच काम करें। यह होता तो अच्छा ही था। मगर इस तरह कभी-कभी बाहरके भूले-भटके लोगोंके एक-आध चक्कर लगा आने से कोई सच्चा फल हासिल होगा इसमे मुझे सन्देह ही है। ऐसा कोई भी प्रयत्न उन डाक्टरोंके प्रयत्नकी तरह निश्चय ही निष्फल जायगा, जो रोगियोंके पास जाते और उनका इलाज करने का जतन तो करते हैं पर रोगी खुद उनकी बतायी हुई दवाइयोंका सेवन नहीं करते। रोगसे तो सवर्ण हिन्दुओंके दोनों ही पक्ष ग्रस्त हैं—वे सवर्ण हिन्दू जो अलग खड़े खड़े यह सब देख रहे हैं और नट्टारके सवर्ण हिन्दू। नट्टार तो अपने भाई बन्धुओंके समान हरिजनोंके पीछे पडे हुए हैं, उन्हें नाना प्रकारकी यंत्रणा दे रहे हैं और दूसरे सवर्ण हिन्दू अपराधपूर्ण उदासीनतासे ग्रस्त हैं। रोगग्रस्त-दोनों ही हैं। बाहरके आदमी तो अधिक-से-अधिक यही कर सकते हैं कि वे वहाँ जायँ, लक्षण देख कर रोगको पहचानें और नुस्खा बता दे। दवाका लेना मरीजका काम है। सो देवकोटाके सवर्ण नवयुवक रोगका कारण और उसकी दवा तो जानते ही हैं। क्या वे उसे काममे लायेंगे? ठक्कर बाप्पा या तो वहाँ पहुँच गये होंगे या पहुँचनेवाले होंगे। क्या वे लोग उनकी सलाहपर ध्यान देंगे? यह धर्म-परिवर्त्तन तो उस रोगका एक छोटा-सा परिणाम है। धर्म-परिवर्त्तन तथा इससे भी बुरे अनेक परिणामोंको रोकना है तो रोगके मूल कारणको दूर कर दो।

हरिजन सेवक
२६ मार्च, १९३५

मंदिर-प्रवेश

अभी कुछ दिन हुए कि त्रिचिनापलीके कुलीतलाई तालुका निवासी पल्ला लोगोंकी एक परिषद् हुई थी, जिसमें ये नीचे लिखे दो प्रस्ताव पास हुए—

१—"महात्माजीने असेम्बलीके मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें जो रुख अख्तियार कर रखा है उसे यह परिषद् दुःख और बड़ी निराशाके साथ देखती है और इसलिए यह परिषद् महात्मा गांधीसे प्रार्थना करती है कि इस विषयपर उनके जो मौजूदा विचार हैं उन्हें वे बदल दें, साथ ही इस विषयको पुनः असेम्बलीमें पेश होने दें, उसका नतीजा फिर चाहे जो हो"।

२—"अगर महात्माजी मंदिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें अपनी मौजूदा राय नहीं बदलना चाहते, तो इस परिषद्ने देश भरकी दलित जातियोंके लोगोंसे यह प्रार्थना करने का इरादा कर लिया है कि वे सब-के सब या तो मुसलमान या ईसाई हो जाय या फिर ब्रिटिश मन्त्रिमंडलके प्रधान मन्त्रीने दलित जातियोंके लिए पृथक निर्वाचनका जो निर्णय किया था उसे ही कायम रखने का वे आन्दोलन करें"।

मुझे पहला प्रस्ताव पसन्द है। इस परिषद्ने मंदिर-प्रवेशके प्रश्नमें जैसी दिलचस्पी ली है, मैं चाहता हूँ कि तमाम हरिजन वैसी ही दिलचस्पी लें। तब मेरा काम उतना मुश्किल नहीं रहेगा जितना कि आज है, पर वह मुश्किल हो या आसान, मैं तो हरिजनोंके लिए हरएक सार्वजनिक हिन्दू-मन्दिरका द्वार खुलवा देने की दृष्टिसे जो मार्ग सबसे अच्छा समझूंगा उसे जरूर पकड़ूंगा; क्योंकि मेरी रायमें, जबतक अन्य हिन्दुओंकी तरह हरिजनोंके लिए तमाम देव-मंदिर नहीं खुल जाते, तबतक यह दावा नहीं किया जा सकता कि अस्पृश्यता दूर हो गयी है। मगर यह दूसरा प्रस्ताव तो, जहाँ तक कि परिषद्का सबंध है, मंदिर प्रवेशके मूलपर ही कुठाराघात करता है। जो लोग अपने धर्मको छोड़ देने की धमकी सिर्फ इस वजहसे देते हैं कि उसी धर्मको मानने का ढोंग करनेवाले कुछ दूसरे लोग उन्हें मन्दिरोंमें जाने से रोकते हैं, वे कदापि धर्मनिष्ठ नहीं कहे जा सकते। ऐसे मनुष्य धर्मकी भावनासे प्रभावित हैं—यह कैसे कहा जा सकता है। मन्दिर तो उपासनागृह हैं। वे उन सबके लिए हैं जिनकी कि उनमें आस्था है। यह धार्मिक-जुल्म कुछ आजकी चीज नहीं है। जुल्म उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन स्वयं धर्म है। यह जुल्म अपने धर्मसे न डिगनेवालोंकी अग्नि-परीक्षा लेता है और उन्हें कंचन-सा शुद्ध कर देता है। हरिजन यदि इस यंत्रणाको धैर्यपूर्वक बर्दाश्त कर सके तो अंतमें विजय माल उनके ही गलेमें पड़ेगी, मगर जिस धर्मको वे सनातनसे बिना किसी शिकायतके मानते चले आ रहे हैं उसे अगर वे आज इस वजहसे छोड़ने की धमकी दें कि उन्हें मंदिरोंमें नहीं जाने दिया जाता, तो उनकी यह धमकी ही उनके सारे मामलेको

खारिज कर देती है। हरिजन अगर हिन्दू समाजको छोड दें तो सनातनी शायद इसकी पर्वा भी नहीं करेंगे और लड़ने को अगर कोई केस हो न रहा हो तो फिर सुधारक भी निरुत्तर हो जायगे, पर सद्भाग्यसे ऐसे लाखों हरिजन मौजूद हैं जो इन सब यंत्रणाओंके बावजूद अपने धर्मसे जरा भी विचलित नहीं हुए हैं।

धर्म निश्चय ही एक व्यक्तिगत चीज है। वह मनुष्य और ईश्वरके बीचकी वस्तु है। उसे हर्गिज मोल-तोलकी चीज नहीं बनानी चाहिये। कुलीतलाई-निवासी पल्ला लोगोंकी परिपद्के कर्णधारोंको मेरी तो यही आदरपूर्वक सलाह है कि वे इस मंदिर प्रवेशके प्रश्नपर उसके गुण दोषकी दृष्टिसे विचार करें और अपने दूसरे प्रस्तावमें उन्होने धर्म त्यागकी जो धमकी दी है उससे इस प्रश्नको व्यर्थकी उलझनमें न डालें।

हरिजन-सेवक
५ अप्रैल, १६३५



हरिजन और सूअर

दो महीनेका अर्सा हुआ कि आगरेके सेठ अचल सिहजीने मुझे एक पत्र लिखा था। उन्होंने उस पत्रमे एक ऐसे दृश्यका वर्णन किया था, जिसे उन्होने अपने जीवनमे पहली ही बार देखा था। सूअरोंके मुह रस्सीसे खूब कसके हरिजन उन्हें जिन्दा ही भून रहे थे—यह हृदय-विदारक दृश्य उन्होने अपनी आँखोसे देखा था। उस वर्णनने तो मुझे दहला दिया, मगर मैं यह जानता हूँ कि सूअरको सिक्ख तथा आंध्र देशके हजारों हिन्दू भी खाते हैं। सभवत. भारतके दूसरे प्रान्तोंमे भी इतर हिन्दू सूअरका माँस खाते हैं। निश्चयपूर्वक तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि निरामिष भोजियोंके अतिरिक्त, मुसलमान ही केवल एक ऐसे हैं जो कभी सूअरका गोश्त नहीं खाते।

वर्धाके मेरे साथियोंने, जिन्होने अपनी आँखों सूअरोंका यह निर्दय-वध देखा है, मुझे बतलाया है कि जिनके हृदयमे कुछ दया होती है वे लोग तो आनन-फानन उसका दम घोट कर तुरन्त समूचा ही उसे भून डालते हैं, पर जिन लोगोंके दिलमें दया-भावका लेश भी नहीं होता वे तो उसे जिन्दा ही भूनते हैं। अच्छी मजबूत लाठियाँ लेकर चारों तरफसे लोग आगको घेर लेते हैं और जब वह गरीब जानवर मारे दर्दके ऐठता हुआ इधर-उधर भागने की कोशिश करता है तब वे लोग उसे लाठियाँ मार-मार कर दहकती हुई आगकी तरफ ठेलते हैं। मैंने श्री पार्पानाटको

लिखा था कि आपके आंध्रमें सूअरको किस तरह मारते हैं। उनका यह जवाब आया है—

"आंध्रके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें सूअरको मुखतलिफ तरीकोंसे मारते हैं और वे सभी अत्यन्त निर्दयतापूर्ण हैं। वे तरीके ये हैं—

१. "सूअरको पकड़ कर उसकी टांगें एक काफी लम्बी रस्सीसे खूब कस के बांध देते हैं और फिर नथुओंके ऊपर उसका मुंह एक दूसरी रस्सीसे खूब मजबूतीसे कस दिया जाता है। इससे उसकी सांस रुक जाती है और कुछ समय बाद वह दम घुटने के कारण मर जाता है। आंध्र देशमें सबसे अधिक यही तरीका प्रचलित है।

२. जैसा कि ऊपर बताया गया है, सूअरकी टांगोंको खूब कस के बांध देते हैं, और उसके मुंहको रस्सीसे कसने के बजाय, उसे पानीमें डुबो देते हैं और वह वहीं तड़पता हुआ मर जाता है।

३. तीसरा तरीका यह है कि टांगोंको बांध देते हैं और भाला चुभो-चुभो कर उसे मार डालते हैं। सूअर चूंकि बड़ा बलिष्ठ जानवर होता है—इसलिए यह आसानीसे नहीं मरता और बड़ी देर तक तड़पता रहता है।

४. एक तरीका मारने का यह भी है कि उसकी पिछली और अगली टांगोंको अलग अलग बांध देते हैं और दो आदमी उसे चित लिटा कर उसकी टांगोंको खूब जोरसे पकड़े रहते हैं, फिर एक तीसरा आदमी उसकी छाती पर तबतक खूब प्रहार करता है जबतक कि वह मर नहीं जाता। यह तरीका सबसे अधिक कष्टदायक है।

मुझे यह भी बतलाया गया है कि आजकल कुछ लोग बंदूकसे भी सूअरको मारते हैं, पर यह तरीका बहुत ही कम प्रचलित है।

महंगा होने के कारण सूअरका गोश्त यों हरिजन बहुत कम खाते हैं, पर शादी-ब्याहके अवसरपर तो सूअरके मांसके बिना चल ही नहीं सकता। कहीं-कहीं हरिजन सूअरोंके छोटे-छोटे घिटले खरीद लेते हैं और जबतक वे कत्ल करने लायक नहीं हो जाते तबतक उन्हें पालते-पोसते हैं। फिर सारा गांव मिल कर एक अच्छा मोटा ताजा सूअर किसी हरि-जनसे खरीद लेता है और उसे मार कर सारा गांव आपसमें बांट लेता है, उसका खर्चा सबके हिस्सेमें बराबर बराबर पड़ता है"।

श्री वापीनीडूने अपने पत्रके साथ अमेरिकाकी छपी हुई एक छोटी सी पुस्तिका भी भेजी है, जिसका नाम "वी कैन किल ए हाग" (सूअर मारने के तरीके) है। इस पुस्तिकामें इस बातका बड़ा दिल दहलानेवाला वर्णन आया है कि सूअर कैसी-कैसी बेरहमीसे गोश्तकी खातिर मारे जाते हैं, पर मुझे तो वह चीज दिल थाम कर किसी तरह पढ़नी ही पड़ी और उसे पढ़ कर जो वेदना हुई उसे कैसे बताऊं? सूअरोंके मारने के जो तरीके उसमें दिये गये हैं उनमें निर्दयताकी दृष्टिसे कोई विशेष अन्तर नहीं है। अगर बेरहमीकी मात्राका खयाल किया जाय तो ऐसा लगता है कि सूअरोंके मारने के लिए अपार बेरहमीकी जरूरत होती है। मेरा लिखने का मतलब यह है कि

इस सम्बन्धमें हरिजन तो सबसे कम दोषी हैं। मानता हूँ कि वे ऐसा स्वेच्छासे नहीं करते, बल्कि निरी आवश्यकता उनसे मजबूरन यह काम कराती है; इसलिए सेठ अचल सिंहने जो प्रश्न उठाया है उससे स्वतः इस निश्चयकी ध्वनि निकलती है कि यह सुधार हरिजनोंसे सम्बन्ध नहीं रखता, बल्कि यह तो दया-धर्मका एक व्यापक सुधार है। यह ठीक नहीं है कि जो भी बुरी बात हमारे देखने में आवे उसे हम गरीब हरिजनोंके मत्थे मढ़ दें।

मगर इस सुधारकी आवश्यकता इस बातसे कुछ कम नहीं हो जाती कि उसका हरिजनोंके साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है। अगर हमारी सद्विवेक-बुद्धि कुण्ठित न हो गयी होती, तो हम यह स्वीकार कर लेते कि मनुष्योंसे पशुओंके हकूक कुछ कम नहीं हैं। दया-धर्मका प्रचार करनेवाली संस्थाओंका यह खास काम होना चाहिये कि वे लोगोंको 'हृदय की' शिक्षा दें। मैं जानता हूँ कि मनुष्यके गुरुतर्खसे भरे हुए प्रभुत्वके पैरोंके तले पड़ी हुई यह मानवेतर सृष्टि बुरी तरह कराह रही है। यह मनुष्य जब अपनी वासना शान्त करने पर उतारू हो जाता है, तब जा हो या बेजा वह किसी भी प्रकारकी बेरहमीको अनुचित या निन्दनीय नहीं समझता।

हरिजन सेवक

१६ अप्रैल, १९३५



एक उदार दान

ठक्कर बाप्पा जब त्रावणकोरमें दौरा कर रहे थे उस दर्म्यानमें केरल प्रांतीय संघके अध्यक्ष श्री परमेश्वरन् पिल्लेने संघको अपनी जमीनका एक हिस्सा हरिजन-आश्रमके लिए दान किया था। यह जमीन त्रावणकोर राज्यके अन्तर्गत विदुर नेडुमंगद गाँवमें है। श्री पिल्लेने सभामें इस दानके संबंधमें जो छोटा-सा भाषण किया था उससे उनके दानका उद्देश पूर्णतया समझमें आ जाता है, वह भाषण यह है—

चौदह वर्षसे ऊपर हुआ, जब यहाँ एक पाठशाला खोली गयी थी। दस महीनेका अर्सा हुआ कि मैंने करीब आठ सौ रुपया लगा कर इस पाठशालाका मकान फिरसे बनवा दिया। आजकल इस पाठशालामें तीन कक्षाएं हैं और ७५ विद्यार्थी हैं। इनमें ४० हरिजन हैं—३४ बालक और ६ बालिकाएँ; १६ बच्चे 'कनी' जातिके पढ़ते हैं। यह एक जंगली जाति है। हरिजनोंको जो कष्ट हैं वे तो 'कनी' लोगोंको भोगने ही पड़ते हैं, पर उनकी दशा हरिजनोंसे भी खराब है। वे अब भी जंगली ही हैं और इससे जो लोग उनके अज्ञानका अनुचित लाभ उठाते हैं उनके घोर अत्याचारका शिकार उन्हें होना पड़ता है।

मेरा बहुत दिनोंसे यह विचार था कि ऐसी पाठशाला जबतक किसी आश्रमके साथ न होगी तबतक उसका उद्देश पूर्णतः सफल होने का नहीं। ऐसे आश्रममें एक दो सेवक दिन रात रहें और वे हरिजन सेवाका काम अपने हाथमें ले लें और उसे नित्य नियमपूर्वक करें, इसीलिए मैंने आश्रमके लिए यह एक छोटा-सा मकान बनवाया है। आश्रमके निमित्त मैंने दस एकड़ जमीन भी अलग कर दी है, जिसमें से ८॥ एकड़ जमीनपर करीब दो हजार सुपारीके पेड़ लगवा दिये हैं। दो सालमें इन पेड़ोंमें फल आने लगेंगे। सुपारीके दाम तो अच्छे आ ही जाते है,इससे आश्रमको आमदनीका यह एक अच्छा जरिया हो जायगा। आश्रमके मौजूदा मकानपर सिर्फ १५०) ही खर्च हुए हैं। मेरा यह विचार है कि इसमें एक छप्पर तो दवाखानेके लिए और दूसरा छप्पर ग्राम-उद्योग विभागके लिए और डलवा दिया जाय। पाठशालाको राज्यकी ओरसे २५॥) मासिक सहायता मिल रही है। इस तरह पाठशाला तो स्वावलम्बी रहेगी ही। मेरा विचार ऐसे ५ हरिजन विद्यार्थियोंको तुरन्त ही ले लेने का है जो आश्रममें ही रह कर विद्याध्ययन करें। इनमें दो विद्यार्थी 'कनी' जातिके होंगे। एक ऐसे कार्यसंचालककी नियुक्ति कर दी गयी है जो आश्रममें विद्यार्थियोंके साथ रहेगा। छः महीने बाद ५ और विद्यार्थी दाखिल करने का मेरा विचार है। इस तरह कुल १० विद्यार्थी हो जायगे। आश्रमके संचालकको बाहरके हरिजनोंकी और खासकर 'कनी' लोगोंकी सेवाका एक पूरा कार्यक्रम बनाना होगा। मेरी यह खास इच्छा है कि यह आश्रम खादी कार्यका एक सुन्दर केन्द्र बन जाय। मुझे आशा है कि कुछ दिनोंमें दवाखानेका भी काम शुरू हो जायगा, जो हरिजनोंके लिए आशीर्वाद स्वरूप सिद्ध होगा। आश्रमका ग्रामोद्योग विभाग अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघके साथ संबद्ध कर दिया जायगा। इस विभागमें इधरके जंगलोंमें पैदा होनेवाली बरूकीकी कमचियोंकी टोकरियाँ और चटाइयाँ छोटे पैमानेपर तैयार हुआ करेंगी। तीन करघे भी रहेंगे। मेरा यह विचार है कि जहाँ तक हो नागर कोइलके हाथ कते सूतका ही यहाँ बुनवाया जाय। इस विभागमें हरिजन बालकोंको काम सिखाया जायगा।

इस विचारसे कि ऐसी संस्था हरिजन सेवक-संघका अंगस्वरूप रह कर ही अच्छा काम कर सकती है, मैंने पाठशाला, आश्रमका भवन और दस एकड़ जमीन—यह सब हरिजन सेवक-संघकी केरल प्रान्तीय शाखाके सुपुर्द कर दिया है। मुझे आशा है कि इस कामके लिए हमारा सेन्ट्रल बोर्ड आर्थिक सहायता देगा, पर संस्थाका एक-तिहाई खर्चा मैंने खुद ही देना स्वीकार कर लिया है। आज तो यह अल्पारंभ हो रहा है, भविष्यमें उससे हरिजनोंकी और खास कर कनी लोगोंकी सच्ची सेवा होगी—ऐसा स्वप्न मैं देख रहा हूँ"।

इस उदार दान देने के लिए श्री पिल्लेको मैं बधाई देता हूँ और यह आशा करता हूँ कि इस आश्रमकी ओर चूंकि दाताको स्वयं प्रेमपूर्वक ध्यान देना है, इसलिए हरिजन उसका पूरा सदुपयोग करेंगे।

हरिजन सेवक
१६ अप्रैल, १९३५

अस्पृश्यताका ही परिणाम है

कराई कुडीमें नाट्टार लोग हरिजनोंपर जो अत्याचार ढा रहे हैं उससे हरिजन-सेवकके पाठक भली भाँति परिचित है। अब राजपूतानेसे भी वैसी ही एक खबर आयी है। जयपुर राज्यके अन्तर्गत सीकरके ठिकानमें खुडी नामका एक छोटा-सा गाँव है। मेरे पास जो पत्र आये हैं उनसे इस बातकी पुष्टि होती है कि गत २८ मार्चको राजपूतोंकी एक टोलीने जाटोंकी एक बरातको घेर लिया और बेचारे निहत्थे जाटोंपर बसन बुरी तरह लाठियाँ बरसायीं—गुस्ताखी उन बरातियोंकी यह थी कि उनका दूल्हा घोड़ेपर सवार था।* इधर दुनियाके इस हिस्सेमें यह रिवाज मालूम देता है कि शादी-ब्याहके अवसरपर जाटोंको हाथी या घोड़ेको सवारीके काममें नहीं लाना चाहिये। यह विश्वास किया जाता था कि दोनों पार्टियोंमें समझौता हो गया है और किसी भी अवसरपर जाट लोग हाथी या घोड़ेको सवारीके काममें ला सकते हैं, पर इन घटनाओंसे तो यह जाहिर होता है कि जिसने यह करार कराया था वह उसका पालन कराने में राजपूत लोगोंपर जोर नहीं डाल सका। कहा जाता है कि राजपूतोंने इस लाठीचार्जके पहले ही एक जाटको कत्ल कर दिया। ४० आदमियोंसे ऊपर ही लाठियोंसे सख्त घायल हुए और एक आहत तो बेचारा मर ही गया।

हमें आशा करनी चाहिये कि राज्यके अधिकारी इस मामलेकी पूरी-पूरी तहकीकात करेंगे और गरीब जाटोंको ऐसा उचित संरक्षण देंगे कि जिससे वे उन सामान्य अधिकारोंको अमलमें ला सकें जो न्यायत: मनुष्य मात्र को प्राप्त हैं।

हमारे साथ इस घटनाका यह सम्बन्ध है कि यह मूर्खता पूर्ण अत्याचार इस अस्पृश्यताका ही, इस विश्वासका ही एक प्रत्यक्ष परिणाम है कि ईश्वरने जो मानव-सृष्टि सिरजी है उसमें कुछ मनुष्य दूसरोंसे बड़े या ऊँचे हैं और यह दर्प-भावना इस हद तक पहुँच जाती है कि वे छोटे आदमी अस्पृश्य ही नहीं, अदर्शनीय तक हो जाते हैं; खुडी गाँवके जाटोंपर जो अत्याचार हुआ है वह अस्पृश्यताका ही एक प्रकार है—हाँ, हरिजन-सेवकके पाठक अस्पृश्यताके जिस रूपसे परिचित हैं उससे यह अस्पृश्यता सिर्फ मात्रामें ही भिन्न है। अस्पृश्यताके उग्र रूपको नष्ट करनेमें ज्यों हम सफल हुए कि उसके शेष रूप तो निश्चय ही नष्ट हो जायँगे। इसलिए यह जरूरी है कि इस महापिशाचिनीका अन्त हर तरहसे और जल्द-से-जल्द किया जाय।

हरिजन सेवक

१९ अप्रैल १९३५

---

* कहीं कहीं तो राजपूतोंके सामने गरीब जाट न तो खाटया पर बैठ सकते हैं और न हुक्का ही नली लगा कर पी सकते हैं।—सम्पादक

पापका पोषण

'पापको पोसना मृत्यु है'—यह बाइबिल का वाक्य है। अपने अस्पृश्यता रूपी पापको पोस-पोस कर, हम नित्यप्रति आर्थिक मृत्युको आमंत्रण दे रहे हैं। इस बातका दृष्टांत राजपूतानेके एक सज्जनके पत्रमें मिलता है। उस पत्रका सार यह है—

"इधर हमारी तरफ जहां भी मैं देखता हूँ ढोरोंकी हड्डियां रास्तोंपर पड़ी दिखायी देती हैं। पड़ी किसे है कि कोई उन्हें इकट्ठा करता फिरे? इससे गांवोंके इर्द-गिर्दकी तमाम जगहें उपेक्षित श्मशान-सी दिखायी देती हैं और ये कुछ तो और भी खराबी करते हैं। आपने 'हरिजन'में इस विषयपर जब-कब लिखा तो है, पर क्या आप हरिजनों एवं ग्राम-सेवकोंके पथ-प्रदर्शनार्थ इस सम्बन्धमें कुछ ठोस सलाह नहीं देंगे? अगर आप इन हड्डियोंका किसी हड्डी पीसनेवाली मिलमें भेजने की सलाह देंगे तो वह तो व्यर्थ सी बात होगी, क्योंकि वहां तक भेजने का खर्चा बहुत ज्यादा पड़ जायगा। फिर आपको इस धार्मिक-कट्टरताका भी खयाल रखना होगा कि हड्डियां आदिकी बनी हुई चीजोंको लोग इस्तेमाल नहीं करते"।

इस देशमें चीजोंका जो दुर्व्यय हो रहा है, वह सचमुच भयानक है। अस्पृश्यता पिशाचिनीके कारण जो बरबादी हुई और हो रही है उसके आँकड़े अगर कोई अर्थशास्त्री निकाल कर रखे तो वे सचमुच दिल दहलानेवाले होंगे। अस्पृश्यता-पापका पोषण करने में हम जो लाखों करोड़ों रुपये स्वाहा कर रहे हैं, उससे बड़े आरामसे भूखों मरनेवाले करोडों आदमियोंको रोटी दे सकते हैं। यह कोई छोटी-मोटी बरबादी नहीं है, जो भारतके पाँच करोड़ मनुष्योंकी जान मानकी मानसिक और नैतिक वृद्धि नहीं होने देती, साथ ही जो उनकी आर्थिक हानि भी खूब कर रही है; मगर इस प्रश्नका कोई इतने बड़े रूपमें विचार करने बैठेगा तो वह चक्करमें पड़ जायगा। कार्यकर्त्ताओंके लिए तो यह प्रश्न काफी सरल है, क्योंकि उन्हें न तो लाखों-करोडोंकी संख्यामें धनका हिसाब लगाने बैठना है और न जनका ही। धार्मिक भावनाओंमें तो परिवर्तन करना ही होगा। भारत-जैसे देशमें जहाँ पशुओंका भी जीवन पवित्र माना जाता है, हमें मौतसे मरे हुए पशुओंकी लाशके तमाम भागोंका उपयोग भी उतना ही पुण्य-कार्य समझना होगा, मगर मुर्दार-माँसको खाने के काममें हरगिज नहीं लाना चाहिये। मेरा खयाल है कि हरिजन-सेवकोंने अब इस स्थितिको अनुभव कर लिया है। मेरा यह अनुमान अगर ठीक है तो गाँवके रास्तेपर उन्हें जो हड्डियां पड़ी दिखायी दें, उन सबको वे जमा कर के तबतक

किसी जगह रखे रहें जबतक कि उन्हें कोई दूसरा आदेश न मिले। मैं किसी ऐसे आसान तरीकेकी तलाशमे हूँ जिससे कि हड्डियोंको पीस कर उनका बुरादा बनाया जा सके। मुझे ऐसा लगता है कि हड्डियोका खाद बनाना ही उन्हें ठिकाने लगाने का सस्ते से-सस्ता तरीका है। खादी-प्रतिष्ठानके सतीश बाबू आजकल इस बातके प्रयोग करने मे लगे हुए है कि गॉवके लोगोंके हकमें ऐसा कौन सा बढ़िया-से बढ़िया तरीका हो सकता है कि जिससे वे अपनी पशुओंकी लाशके तमाम हिस्सोंका सबसे अच्छा आर्थिक उपयोग कर सकें। सतीश बाबू अपने अनुसंधानोसे जिन नतीजोपर पहुंचे हैं उन्हें 'हरिजन-सेवक'के पाठकोंके आगे रखने का मेरा विचार है।

हरिजन-सेवक
२६ अप्रैल, १९३५



घोर दुर्व्यवहार

"करीब चार महीनेसे मैं हरिजन सेवक-संघकी ओरसे एक चेरी (बस्ती) में काम कर रहा था। गावमें मेरे काम शुरू करने से पहले एक हरिजन इस चेरीसे इस चारित्रिक अपराधपर निकाल-बाहर कर दिया गया था कि उसने एक व्याही वरी औरतको भगा लिया था। एक दिन वह हरिजन अपने लड़केको, जो हमारी पाठशालामें पढ रहा था, देखने आया। मैंने उसे अपने साथ वहीं ठहरा लिया। रातमें वह पाठशालाके ओसारेमें पड़ा हुआ था। मैं किसी कामसे बाहर गया हुआ था। इस बीचमे यह हुआ कि उस औरतके पाच नजदीकी नातेदार और कुछ एक सवर्ण हिन्दू वहा चढ आये और उस पुराने अपराधपर उस हरिजनको उन लोगोंने बहुत बुरी तरहसे पीटा और घसीट कर उसे ओसारेसे बाहर कर दिया। ज्योंही मुझे इस वाकयाका पता लगा, मैं तुरन्त उन लोगोंके पास पहुचा, जिन्होंने कि खुद ही कानूनको अपने हाथमें ले लिया था। मैंने उनके उस दुर्व्यवहारका विरोध किया और उस हरिजनको फिरसे चेरीमे दाखिल कर लेने के लिए उनसे कहा, पर उन्होंने साफ इनकार कर दिया। इसलिए मैंने वहा रहना ठीक नहीं समझा और उस गावको छोड कर चला आया"।

एक लम्बे पत्रका यह बहुत संक्षेपमें सारांश है। इस कथनकी यथार्थताका मैं कोई प्रमाण तो नहीं दे सकता, किन्तु यदि जैसा कहा गया है वह सही है, तो निश्चय ही उस हरिजनको पीटना एकदम अनुचित था। अगर उसने कोई जुर्म किया था तो अदालतसे उसे दंड दिलाना चाहिये था, पर इस तरह कानूनको खुद

अपने हाथमें ले लेने का, खुद ही मुंसिफ बन जाने का किसीको कोई अधिकार नहीं था। जो बस्ती इतना भी मामूली-सा इन्साफ करने को तैयार नहीं थी, वहाँ इस हरिजन-सेवकने न रहना मुनासिब समझा तो अच्छा ही किया। मैं आशा करता हूँ कि यह मामला स्थानीय संघके आगे रखा जायगा और संघ इस बातका प्रयत्न करेगा कि लोग उस हरिजनके प्रति सद्व्यवहार करने लगें। इस सारे मामलेकी बहुत अच्छी तरह तहकीकात होनी चाहिये। मुझे भय है कि ऐसे मामले तो अकसर और काफी तादादमें होते रहते हैं। यह हरिजन-सेवकोंका काम है कि एक ओर तो वे अत्याचार-पीड़ितोंकी रक्षा करें और दूसरी ओर जहाँ उनके चरित्रमें कोई दोष देखें वहाँ उन्हें सदाचारका मार्ग दिखावें। अपराधियोंकी कोई खास जाति नहीं होती। भूल किससे नहीं होती। दूधका धोया कोई नहीं है। अपराधियोंके हृदयपर केवल सुयोग्य और सच्चरित्र जन-सेवकोंका ही प्रभाव पड़ सकता है।

हरिजन-सेवक
१७ मई, १९३५



हरिजनोंके लिए कुएँ

बम्बई-सरकारने बम्बई सूबेमें हरिजनोंके लिए कुएँ बनवाने का जो निर्णय किया है, उसके लिए हमें उसे धन्यवाद देना चाहिये। कामको देखते हुए तो यह रकम बहुत ही कम रखी गयी है। यह तो हम सबको भली भाँति विदित है ही कि कांग्रेस-द्वारा स्थापित भूतपूर्व अस्पृश्यता-निवारक बोर्डकी तरफसे कई वर्ष हुए कि गुजरातमें हरिजनोंके लिए कुएँ बनवाये गये थे और अब सन् १९३२ से यह काम हरिजन-सेवक-संघ कर रहा है। संघके कूप-निर्माणका कार्यक्रम काफी व्यापक है और अब चुपचाप काम करनेवाले महानजन-सेवक श्रीयुत् जूठाभाईने भी इस सुन्दर धर्म-कार्यपर ध्यान देने का निश्चय किया है। क्या अच्छा हो कि इस एक ही उद्देश्यको ले कर काम करनेवाली इन भिन्न-भिन्न संस्थाओंमें पूरा-पूरा सहयोग रहे। अगर सहयोगका प्रयत्न संभव न हो तो कम-से कम श्रम और कार्य क्षेत्रका विभाग तो होना ही चाहिये। खैर, जो कुछ भी काम किया जाय उसमें यह ध्यान रहे कि काम शीघ्रतासे हो, अच्छा हो और पैसा कम-से कम खर्च हो। सस्ते-से-सस्ता काम तो तभी हो सकता है, जब हरिजन हिन्दू या सवर्ण-हिन्दू अथवा दोनों ही स्वेच्छापूर्वक इस धर्म-कार्यमें अपने शारीरिक श्रमका योग दें।

हरिजन-सेवक
१७ मई, १९३५

एक लाख रुपया चाहिये

हरिजन-सेवक-संघका सेंट्रल बोर्ड सेठ युगलकिशोर बिड़लाके दिये हुए रुपयेसे बहुत-से कुएँ हरिजनोंके लिए बनवा चुका है। वह रुपया अब समाप्त हो चला है और हरिजनोंके लिए कुएँ बनवाने की अब भी आवश्यकता है। सार्वजनिक कुओंसे हरिजनोंके पानी भरने का विरोध अब भी अनेक स्थानोंमें किया जा रहा है और बेचारे हरिजनोंको या तो मवेशियोकी हौदियोंका पानी पीना पड़ता है, या लोग दयावश उनके घड़ोंमें दूरसे जो पानी डाल देते हैं उसके लिए उन्हें पैसा देना पड़ता है; इसलिए जितने भी नये कुएँ बनेंगे उनसे इसमें संदेह नहीं कि हरिजनोका कष्ट-निवारण तो होगा ही, साथ ही, उनसे देशकी सम्पत्तिमें वृद्धि भी होगी। इस कामके लिए हरिजन-सेवक-संघके सेंट्रल बोर्डने एक लाख रुपयेकी अपील निकालने का निश्चय किया है। किस प्रांतमे कितने कुओंकी जरूरत है इसके आँकड़े जनताके सामने रखने के लिए तैयार किये जा रहे हैं। इतनी बड़ी आवश्यकताको देखते हुए एक लाख रुपया तो कुछ भी नहीं है; मगर संघके पास कोई ऐसा जरिया नहीं कि जिससे वह कुओंके बनवाने पर बड़ी-बड़ी रकमे खर्च कर सके। यह ऐसा काम है जो धीरे-धीरे ही होता है और फिर उसमें विशेष बुद्धि-कौशल भी चाहिये। हर कोई कुआँ नहीं बनवा सकता, फिर यह काम एक-दो जगहका तो है नहीं, तमाम प्रान्तोमे सैकड़ों जगह कुएँ बनवाने हैं, इससे कामका ठीक-ठीक देख-भाल रखना भी बहुत मुश्किल है। बोर्डकी यह नीति है कि जिस कामपर वह ठीक तरहसे पैसा खर्च नहीं कर सकता और जनताके आगे उसका ठीक-ठीक हिसाब-किताब नहीं रख सकता उस कामके लिए वह पैसा मॉगता ही नहीं। मैं उम्मीद करता हूँ कि लोग इस छोटी-सी अपीलका तुरन्त पर्याप्त उत्तर देंगे।

हरिजन-सेवक
३१ मई, १९३५



"...... अस्पृश्यता स्वयं एक असत्य है। असत्यका समर्थन कभी सत्यसे नहीं हुआ, जैसे कि सत्यका समर्थन असत्यसे नहीं हो सकता। अगर होता है तो वह स्वय असत्य हो जाता है"।

—गाधीजी

हरिजनोंके लिए कुएँ

यद्यपि भूकम्प-विध्वस्त क्वेटाकी डरावनी छाया अब भी मेरे हृदयपर पड़ रही है, तो भी देशके उदार दानियोंसे यह कहने मे मुझे न तो दुःख है, न संकोच कि उन्हें 'हरिजन'में प्रकाशित पानी-फंडकी अपीलका तुरन्त उचित उत्तर देना चाहिये। क्वेटाका सहायक तो आज सारा संसार है, पर हरिजनोंके मददगार थोड़े-से ही हैं। क्वेटाका एक भी पीड़ित मनुष्य न तो प्यासों मर रहा है और न उसे वह मजबूरन गंदा पानी पीना पड़ रहा है, जिसे लोग अपने पशुओंको भी पिलाना पसन्द न करेंगे।

ऐसी-ऐसी भारी विपत्तियोंके आने पर हमें अपनी विवेक-बुद्धि नहीं गवाँ बैठना चाहिये। शायद कुछ हालतोंको छोड़ कर एक क्षणके लिए लोगोंकी रंग-रेलियाँ तक तो बन्द हुई नहीं। क्वेटाके मुसीबतका यह सारा बोझ क्या गरीब हरिजनके ही सदियोंसे कुचले हुए कंधोंपर पड़ना चाहिये ? हरिजनोंको पीने का स्वच्छ पानी देने के लिए दाताओंने जिस आर्थिक सहायताका संकल्प कर लिया था, उस सहायताका रुख अगर उन्होंने दूसरी तरफ मोड़ दिया, तो उन्हें अन्तर्यामी ईश्वरकी अदालतमे गबनके अपराधियोंके रूपमें हाजिर होना पड़ेगा; इसलिए उचित तो यह होगा कि वे अपने जाती बजटको न कि धर्मादाके बजटको, फिरसे देखें और उसीमे उचित काट-छाँट करें—हरिजन-पानी-फंडके निमित्त जो प्रायश्चित स्वरूप संकल्प वे कर चुके हों, उसमें की तो एक पाई भी इधर-की-उधर न करें। प्रार्थनाके लिए जो अपील की गयी है, वह बिना किसी अर्थ या अनुभवके नहीं की गयी। अन्तस्थलसे निकली हुई प्रार्थना मनुष्यको शक्ति व साहस देती है, उसे नम्र बनाती है और उसे उसके तात्कालिक कर्त्तव्यका रास्ता भी बताती है।

पाँच बड़ी-बड़ी नदियाँ जिस प्रान्तमें बह रही हो उस पँचनद प्रदेशके हरिजनोंके जल-कष्टकी रिपोर्ट पाठक पढ़ें। क्या यह शर्मकी बात नहीं है कि पंजाबके धनी लोग हरिजनोंके लिए स्वच्छ पानीका प्रबन्ध नही कर सकते ? पानी-फंडकी जो यह एक लाख रुपयेकी तुच्छ अपील निकाली गयी है उसमें जल्द-से-जल्द एक लाखसे ऊपर ही रुपया आ जाना चाहिये।

हरिजन-सेवक
२८ जून, १९३५



"जिस प्रथाकी बदौलत हिन्दुओंका एक बड़ा भाग पशुसे भी बदतर हालतको जा पहुँचा है उसके लिए मेरे रोम-रोममें घृणा व्याप्त हो रही है"।

—गाधीजी

हरिजन-सम्मेलन

१६ जूनको मैसूर राज्य-हरिजन-सेवक-संघकी ओरसे मैसूरमें श्रीमती रामेश्वरी नेहरूकी अध्यक्षतामें हरिजन-सेवकोंका एक सम्मेलन हुआ था। मैसूरके दीवान सर मिरजा इस्माइलने निम्नलिखित संदेश भेजा था—

"मुझे यह जान कर बड़ी खुशी हुई है कि मैसूर राज्यका हरिजन सेवक-संघ अपने गत वर्षके कार्यका परिणाम देखने तथा भावी कार्यकी दिशा निश्चित करने के लिए उन सब कार्यकर्त्ताओंका सम्मेलन कर रहा है, जो हरिजनोंकी उन्नतिके पुण्य-कार्यमे लगे हुए हैं। इस सम्मेलनकी मैं हृदयसे सफलता चाहता हूँ इसके कहने की जरूरत नहीं। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि श्रीमान महाराजासाहब और उनकी सरकारका अपनी रिआयाकी भलाई और खुशहालीके लिए जो गहरा खयाल है उसमे जात-पाँत, धर्म या कौमके भेद-भावके लिए कोई जगह नहीं है। श्रीमान महाराजासाहबकी प्रजामें हरिजनोंकी काफी संख्या है। उनकी सामाजिक और शिक्षा संबधी प्रगतिके लिए श्रीमान महाराजासाहबकी सरकारने सक्रिय सहानुभूति और सहायता दी है और अब भी देगी। इधर कुछ वर्षोंके अन्दर हरिजनोंकी स्थिति सुधारने के लिए सरकारने कई काम किये हैं। इस काममें प्रजा तथा बंगलोर-हरिजन-सेवक संघ जैसी संस्थाओंका सहयोग अभिनन्दनीय है। मैं चाहता हूँ कि हरिजनोंके सामाजिक जीवनको ऊँचा उठाने और उन्हें राज्यके सार्वजनिक जीवनमें भाग लेने लायक बनाने के प्रयत्नमें इस संघको पूरी सफलता मिले"।

सम्मेलनने स्थानीय महत्वके जो अनेक प्रस्ताव पास किये हैं, उनसे एक अवतरण ले कर मैं नीचे देता हूँ—

"यह सम्मेलन सरकारसे प्रार्थना करता है कि वह हरिजनोंको नीचे लिखी ये सुविधाएँ और दे दे—

(१) इर्विन-नहरवाले भागमे तथा वाणीविलास सागरके पास कृषि संबंधी बस्तियाँ बनाने के लिए जगह।

(२) गाँवोंमें हरिजन बस्तियोंको विस्तृत बनाने के लिए जमीन।

(३) गाँवोंमें हरिजनोंको कुएँ बनवा देने के लिए बजटमे एक निश्चित रकम रखने की योजना।

(४) हरिजन-छात्रालयोंकी आर्थिक-सहायता तथा छात्रवृत्तियोंमें वृद्धि और खेल-कूदकी तथा पुस्तकालयोंकी फीससे हरिजन छात्रोंकी मुक्ति।

(५) हाई स्कूल और कालेजकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हरिजनोंको सरकारी नौकरियोंमें पसंदगी।

(६) राज्यके हरिजनोंके नैतिक और आर्थिक सुधारोंकी देख-रेख रखने के लिए एक खास अफसरकी नियुक्ति।

(७) मैसूरमें हरिजन बालिकाओंके लिए एक निःशुल्क छात्रालय।

(८) सरकारके 'मुजराई विभागके अधीन तमाम मंदिरोंमें हरिजनोंके प्रवेश और पूजा करने की परवानगी'।"

हमें आशा है कि राज्यके अधिकारी सम्मेलनकी इन उचित प्रार्थनाओंपर स्वीकृति दे देंगे और राज्यके हरिजनों तथा दूसरे नागरिकोंके बीच पूर्ण समानता स्थापित हो जायगी।

हरिजन सेवक
१२ जुलाई, १९३५



बाध्य नहीं

भादरण तालुका (बड़ौदा राज्य) के पीपलाव ग्राम निवासी कुछ बुनकरोंने मुझे लिखा है कि—

"दो सालका अर्सा हुआ कि हम लोगोंने मुर्दार-मास न खाने का निश्चय किया और इसीसे ढोरोंकी लाशें उठाने और उनकी खाल उधेड़ने का काम भी छोड़ दिया, मगर इस गांवके चमार और भंगी यह सब काम बराबर करते हैं। गांवके पाटीदारोंको यह सहन नहीं हुआ। उनकी दृष्टिमें हमने यह भारी गुस्ताखीका काम किया! इसलिए उन्होंने हमारे सख्त बहिष्कारकी घोषणा कर दी, तमाम सामाजिक संबंध तोड़ दिये। हमारे कुएका पानी खराब कर डाला और हमारे छप्परोंपर पत्थर फेंकने लगे। अब आप बतावें, ऐसेमें हम क्या करें"?

अपनी अस्पृश्यता-निवारणकी प्रगतिशील नीतिके लिए बड़ौदा राज्य काफी प्रसिद्ध है। मुझे भरोसा है कि सवर्ण हिन्दुओंके द्वारा जहाँ भी गरीब असहाय हरिजन सताये जायँ, वहाँ राज्यके अधिकारी अवश्य उनकी मदद करेंगे। प्रगतिशील भादरणके सुधारकोंका भी यह फर्ज है कि वे इन गरीब बुनकरोंको हर तरहसे मदद दें और पीपलावके पाटीदारोंको जा कर समझावें कि अपने बुनकर भाइयोंके साथ उन्हें ऐसा जालिमाना बर्ताव नहीं करना चाहिये। मुर्दार-माँस छोड़ देने के लिए बुनकर बधाईके पात्र हैं, पर इसके लिए उन्हें यह जरूरी नहीं कि वे ढोरोंकी लाशें उठाना और उनकी खाल उतारना छोड़ दें। यह तो एक फायदेका और प्रतिष्ठित पेशा है। साथ ही, यह एक आवश्यक समाज-सेवा भी है, लेकिन इस कामके लिए वे मजबूर नहीं किये जा सकते। अगर एक प्रतिष्ठित धंधा आज अपमान-

जनक समझा जाता है, तो उसके ऐसे समझे जाने का उत्तरदायित्व सवर्ण हिन्दुओंपर ही है। इसमें अचरज ही क्या, अगर पीपलावके बुनकर अपनी अपमानजनक अवस्थाका भान होने पर उससे छुटकारा पाने के लिए एक ऐसे धंधेको छोड़ बैठे हैं, जिसकी बदौलत वे आज तिरस्कृत या पतित समझे जाते हैं। यह अच्छी बात है कि पीपलाव गाँवके चमार और भंगियोंको अभी अपनी अवनत अवस्थाका भान नहीं हुआ और अब भी वे लाशोंको उठाने और चमड़ा उधेड़ने का प्रतिष्ठित धंधा कर रहे हैं; जिसे समाजने गलतीसे एक नीच काम मान रखा है। अगर इन उच्च कही जानेवाली जातियोंने अपनेसे किसी भी अन्य जातिके लोगोंको नीच समझने की पाप-पूर्ण प्रथाका नाश अपना धर्म समझ कर न किया, तो निश्चय ही हमारा सारा सामाजिक ढाँचा टुकड़े टुकड़े हो जायगा, किन्तु उस अवस्थाके आने से पहले अधिकारियों और सुधारकोंका यह फर्ज है कि पीपलाव गाँवके गरीब बुनकरोंके साथ जिस जालिमाना बर्तावके होने की खबर आयी है, उससे असहाय हरिजनोंकी रक्षा करने में उन्हें अपनी शक्ति भर कुछ उठा नहीं रखना चाहिये।

हरिजन-सेवक
३० अगस्त, १९३५



सेवाकी रीति

एक बहिन एक गाँवमें करीब एक सालसे रहती है और वहाँ ग्रामवासियोंकी सेवा करती है। धीरे-धीरे वह अपना सेवा-मार्ग तय कर रही है। कठिनाइयोंके बहुत-कुछ पहाड़ वह लाँघ चुकी है। किसानोंके साथ हल चलाती है, रास्ता साफ करती है, स्त्रियोंको सूत कातना सिखाती है और बालकों तथा वयस्कोंको पढ़ाती है। वह अपने अनुभव मुझे भेजती रहती है। अभी हालमें उसने जो अनुभव लिख भेजा है उसे अत्यन्त उपयोगी समझ कर मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"एक दिन क्या हुआ कि महारवाड़ेमें एक बकरी मर गयी। महार लोगोंने मुर्दार जानवरका मांस खाना या उसका चमड़ा उतारना दोषास्पद समझ कर छोड़ दिया है और जो ऐसा करे उसका ५०) दण्ड नियत कर दिया है; इसलिए जब मैं वहाँ गयी तब वे लाशको दफनाने की तयारी कर रहे थे। मैंने उनसे कहा कि यह तो ठीक नहीं है। लाश गाड़ देने से नुकसान ही होगा और चमड़ा बेकार जायगा। वह बकरी एक बुढ़ियाकी थी। वह बोली, 'फिर क्या करें'? इसे हम गाड़ेंगे नहीं, तो हमें जाति-दण्ड भरना पड़ेगा मैंने उससे पूछा, 'तो इसे चमारको क्यों न दे दिया जाय? वह इसकी खाल उतार लेगा' जवाब मिला कि 'चमार नहीं लेगा'। मैंने कहा, 'कैसे नहीं लेगा, चलो, मैं चमारको दिखा

देंगी'। बुढियाने कहा—'पर वहा तक ले कौन जायगा ? हमलोग तो लाश उठायेंगे नहीं'। इसपर मैंने कहा—'इसकी फिक्र मत करो। लाओ टोकरी में सिरपर रख कर ले चलूँगी'। यह सुन कर वह अवाक् हो गयी, पर मेरा निश्चय देख कर उसने अपनी बहूके सिरपर बकरीकी लाश रख कर मेरे साथ भेज दी। मैं चमारबाड़ेमें गयी, पर महारकी छुई हुई लाश लेने के लिए चमार तैयार नहीं थे! उलटे मुझे सिखाने लगे कि हमसे यह सब भ्रष्टाचार मत कराओ! जब वे किसी भी तरह समझाने से न समझे, तब मैंने कहा कि तो अब मागवाड़ा चलना चाहिये, मगर वह महार बहिन मागवाडा जाने को राजी हो तब ना! पर लाश तो ठिकाने लगानी ही थी। मैंने खुद ही अपने सिरपर रख ली। यह देखकर तो उसके आश्चर्यका पार ही नहीं रहा। लोगोंके लिए तो यह एक तमाशा था। जुलूस सा बन गया। रास्तेसे मैं अकेली ही जा रही थी और लोग आखें फाड़ फाड़ कर देख रहे थे। मैं सीधी मागवाड़ेमें गयी और माग लोगोंने वह लाश ले ली और कहा, 'बहिनजी, तुम खुद ही अपने सिरपर लाद कर इसे क्यों लायी ? हमें कहला भेजतीं, तो क्या हम आते नहीं' ? मैंने कहा, 'मुझे यह बतलाना था कि काम गन्दा नहीं होता, मनुष्य गंदा होता है। मुझे तो कोई शर्म थी नहीं, इसलिए तुम्हें क्यों-किसलिए देती' ?

इस उदाहरणसे यह प्रकट होता है कि भाषणोंसे काम नहीं चलता। दूसरोंसे हम जो काम कराना चाहते हैं वह हमें खुद ही कर के दिखाना चाहिये, तभी काम चलेगा।

हरिजन-सेवक
३० अगस्त, १९३५



हमारा कर्त्तव्य

अस्पृश्यताकी चक्कीमें एक तरहसे गुजरातके हरिजन शायद जितना पिस रहे हैं उतना दूसरी जगहके नहीं। धोलकामें एक हरिजनको एक सवर्ण हिन्दूने मार डाला और वह हत्यारा ३००) जुर्माना दे कर साफ छूट गया। कावीठा गाँवके हरिजनोंने एक सार्वजनिक पाठशालामें अपने बच्चे भेजने का साहस किया, तो वहाँके राजपूत कहे जानेवाले लोगोंने उन असहाय गरीबोंपर बड़ी बेरहमीसे चढ़ाई कर दी। काठियावाड़में तो आज यह हाल है कि वहाँ कई राज्योंके अनेक गाँवोंमें सवर्ण हिंदू हरिजनोंको बेतरह सता रहे हैं—और यह इसलिए कि ढोरोंमें वहाँ महामारीका प्रकोप बढ़ रहा है। लोगोंके मनमें वहाँ यह वहम समा गया है कि जादू-टोना कर के हरिजन ये बीमारियाँ फैलाते हैं। हरिजनोंको हमेशा ही अपने जान-मालका भय लगा रहता है। सुधारक लाचारी महसूस करते हैं। राज्य या तो उदासीन है, या फिर ताकतवर सवर्णोंके मुकाबिलेमें यह खुद अपनेको

असहाय समझते हैं। कारण स्पष्ट है। हरिजनोंको यह पता ही नहीं कि इस अत्याचारका आखिर क्या इलाज किया जाय। अपनी रक्षा करने की उनमें इच्छा ही नहीं। अपने सवर्ण भाइयोंके इन धृष्टतापूर्ण औद्धत्यसे अपनी रक्षा करने के अर्थ उन्हें अपने मनुष्योचित गौरव या स्वाभाविक शक्तिका बिलकुल ही भान नहीं। सुधारकोंको वहाँ हरिजनोंको सतानेवाले सवर्ण हिन्दुओंका अज्ञानांधकार दूर करना है। सवर्णोंको यह खबर नहीं कि वहमके वश हो कर वे यह सब क्या कर रहे हैं। उन लोगोंमें पर्चे छपा-छपा कर बाँटे जायँ, पर ये उपद्रवी सवर्ण शायद ही कभी अखबार या पर्चे वगैरह पढ़ते हैं। वे अपनेको स्वयं पूर्ण और स्वयं सन्तुष्ट समझते हैं। उन्हें समझाने का तो सिर्फ एक रास्ता है और वह यह कि उनसे हेल मेल बढ़ाया जाय। जरूरत हो तो उनके घरोंमें जा कर उनसे मिला जाय। उनके गाँवोंमें सभाएँ की जायँ। कितनी ही नाराजी प्रकट करो, कितनी ही बातें बघारो, इससे उनका अज्ञान दूर होने का नहीं। जल्दी-से-जल्दी उन लोगोंका अज्ञान दूर करने का उपाय तो यह है कि उनमें यह प्रचार किया जाय कि ढोरोंमें किस तरह ये छुतैले रोग फैलते हैं और अच्छी तरह ठीक-ठीक इलाज करने से वे किस तरह रुक सकते हैं या दूर हो सकते है।

इसका यह अर्थ हुआ कि प्रचारकोंको धीरजके साथ खूब लगातार काम करना होगा और जिन राज्योंमें हरिजन सताये जायँ उन राज्योंमे भी कहा जाय कि वे उन गरीबोंकी रक्षा करें। जहाँ सुधारक खासी अच्छी संख्यामें हो वहाँ वे हरिजनोंके बीच जा कर बस जायँ और जो मुसीबत उनपर पड़े उसे वे भी अपने साथ-साथ झेलें। हरिजनोंका सताया जाना अगर सुधारक नहीं रोक सकते, तो उन गरीबोंकी विपदाको तो वे बँटा ही सकते हैं। अज्ञान-निवारणकी इस प्रवृत्तिमें सनातनियोंकी भी मदद लेनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि गलत रास्तेपर जानेवाले नासमझ सवर्णोंके द्वारा बिलकुल बेकसूर हरिजनोंपर किये गये निर्दयतापूर्ण अत्याचारोंका कोई भी समझदार सनातनी समर्थन नहीं करेगा।

हरिजन-सेवक
६ सितम्बर, १९३५

"... कई काँग्रेसजनोंने इस कामको केवल राजनैतिक दृष्टिसे ही जरूरी समझा है और यह नहीं माना कि हिन्दुओंको उसकी आवश्यकता अपने धर्मकी रक्षाके लिए है। काँग्रेसी हिन्दू इस कामको शुद्ध भावनासे अपने हाथमें ले लें तो सनातनी कहलानेवाले लोगोंपर आज तक जो असर हुआ है उससे कहीं अधिक असर पड सकेगा। .. हरएक हिन्दूको हरिजनोंको अपनाना चाहिये, उनके सुख-दुःखमें भाग लेना चाहिये और उनके पृथग्वासमें उनके साथ मित्रता करनी चाहिये।........"

नहीं, यह पैबंदगिरी नहीं है

एक सज्जनने, जिनकी सच्चाईके बारेमें किसीको भ्रम नहीं हो सकता, कुछ समय पहले मुझे एक बड़ा लम्बा पत्र लिखा था। उसमे उन्होंने, अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन और हरिजन सेवक-संघने अस्पृश्यता दूर करने के लिए जो उपाय अख्तियार किये हैं, उनके विरुद्ध बहुत-कुछ लिखा था। इस कामको उन्होंने योंही इधर-उधर पैबंद लगाने जैसा काम कहा था। उनका वह पत्र कई हफ्ते मेरे कागज-पत्रोंमें पड़ा रहा। जब लिखने को बैठता, तब कोई-न-कोई ऐसा काम आ जाता जिसे मैं अधिक महत्वका और जरूरी समझता था। इसीसे उनके पत्रपर अबतक कुछ लिख नहीं सका। बड़ी कठिनाईके साथ अब उस पत्रको ठीक तरहसे संक्षिप्त रूपमें कर के नीचे दे रहा हूँ—

"मैं समझता हूँ कि अस्पृश्यता-निवारणके संबंधका आपका जो कार्यक्रम है वह नीचे लिखे कारणोंसे गलत धारणापर बना हुआ मालूम होता है। आप समझते हैं कि हरिजनोंके कष्टोंके दस अंशोंमें नौ अंश तो यह अस्पृश्यता है और उन कष्टोंके दूर करने का एक मात्र इलाज अस्पृश्यता-निवारण है। आप इसे सामाजिक और धार्मिक अभिशाप मानते हैं। क्षमा कीजिये, मैं यहाँ आपके साथ सहमत नहीं हूँ। मैं तो यह मानता हूँ कि यह सारी विपदा बिलकुल आर्थिक है। लोगोंके खयालमें जो सामाजिक व धार्मिक रूप घुसे हुए हैं वे तो सिर्फ असलीयतको जरीकी चादरसे ढाँके हुए हैं। युगोंसे हमारे पूर्वज (जिन्हें इसका ठीक-ठीक पता था) यह शिक्षा देते आ रहे हैं कि आँख मीच कर कड़ुवा घूँट पी जाओ, पर इससे तो उस कड़ुवेपनका असली रूप और भी बुरी तरहसे हमारे सामने आ जाता है। मेरा विश्वास है कि हरिजनोंको अपनेको छोटे समझने की भावनाके नष्ट होते ही वह अस्पृश्यता निश्चय ही दूर हो जायगी। हरिजनकी गरीबीके कारण दूर कीजिये। उसकी आर्थिक अवस्था सुधारिये, राष्ट्रिय-सम्पत्तिके जरा और भी उचित विभाजनके लिए लड़िये और हरिजनको यह महसूस कराइये कि उसे इस मौजूदा थैलीशाही शोषणके विरुद्ध विद्रोह करना है और फिर देखिये कि उसके उज्ज्वल भविष्यके द्वार चारों ओरसे किस तरहसे खुल जाते हैं। उसे तब इस बातके लिए किसी बाहरी सहायताकी जरूरत न रहेगी कि प्रगति-पथपर वह कितने दूर चला है और बीच बीचमें कहाँ किस मंजिलपर उसे खतरेसे आगाह रहने के लिए ठहरना है।

आपकी यह धारणा है कि अस्पृश्यता हिन्दू-समाजकी ही एक विशेषता है और वह चीज सिर्फ हमारे ही देशमें है, मगर मेरा विचार तो इससे बिलकुल ही जुदा है। यह तो एक विश्वव्यापी समस्या है। हरएक देशमें अस्पृश्यता है, हरएक देशमें हरिजन हैं; इसलिए इस बुराईको निर्मूल करने का उपाय तो ऐसा होना चाहिये, जो सब देशोंके लिए एक सा लागू हो सके, जो उसकी जड़पर कुठाराघात करे और सिर्फ ऊपर-ऊपरकी डालियाँ ही छाँट कर हम संतुष्ट न हो जायँ। आखिर यह अस्पृश्यता है क्या चीज? सारी की-सारी कौमके साथ कोढ़ियोंके ऐसा बर्ताव करना और उन्हें मनुष्यके मौलिक अधिकारों बरूसे

वंचित कर देना ही अस्पृश्यता है। महज 'छूना' या 'न छूना' तो उस बीमारीका मनुष्यको गुलामकी तरह दबाये रहने का एक बाहरी चिन्ह या लक्षण है और जबतक उस खास नासूरको दूर करने का जतन नहीं किया जाता तबतक रोगीको उससे कुछ भी फायदा नहीं हो सकता। इस दृष्टिसे, अस्पृश्यता सारे जहानमें फैली हुई बीमारी है और इस जुल्मके विरुद्ध सभी सताई हुई जातियोंको बगावत करनी है। भिन्न-भिन्न देशोंमें इस मायाविनीने भिन्न-भिन्न रूप धारण कर रखे हैं, अन्तर है तो बस केवल न्यूनाधिक मात्रामे। कहीं यह अस्पृश्यता कम है तो कहीं अधिक, पर है सर्वत्र। हर जगह आधार उसका आर्थिक ही है, जिसे गलतीसे हम 'राजनीतिक' प्रश्न कहते हैं। मेरा विश्वास है कि भारतीय अस्पृश्यताका उद्भव आर्योंकी उस विजयसे हुआ, जो उन्होंने 'आदिम कही जानेवाली जातियोंपर की थी। आजके हरिजनोंको अपने पूर्वजोंके अनुक्रमका पता उन्हीं आदिम जातियोंमे लगाना है। अमरीकी अस्पृश्यताकी उत्पत्ति इस प्रकार है। वहाँ हबशियोंको अस्पृश्य मानते हैं। इसकी भी जड़ वही आर्थिक है। हबशियोंके प्रति वहाँ जो सूग है उसकी जड़ उस स्वेताग मनुष्यकी वहाकी सरसब्ज जमीनके प्रति लालच है जो सबसे पहले अमरीका पहुँचा था। यहूदियोंके प्रति हिटलरशाहीकी घृणा, बूरजुआके प्रति बोलशेविकोंकी सूग और चीनवालोंकी 'मिकाडोका' भय इन सबका मूल कारण एक ही है, याने आर्थिक शोषण। इसके लिए मुलायम शब्दका प्रयोग करना हो तो 'राजनीति' शब्दसे काम चल जाता है। हिन्दुस्तानकी 'अस्पृश्यता', अमरीकाका 'लिंचिंग', बेलोंजियमका 'कीगों' और नाजियोंका 'यहूदियों'पर जुल्म ढाना—ये सब उसी अन्यायके उदाहरण हैं और दुनियामें बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंका मूल-स्रोत स्वभावतः यही है।

फिर अस्पृश्यता या और स्पष्ट रूपमें कहा जाय तो इस देशके विजित मूल निवासियोंकी 'छुटाईकी भावना' असलमें आर्योंकी एक बूरजुओं-जैसी राजनीतिक आवश्यकता थी, ताकि केवल अपने आर्थिक-स्वार्थ साधने के लिए आर्य लोग अपेक्षाकृत हरिजनोंकी छोटी जातियोंको चिरकाल तक अपने अधीन रख सकें, अर्थात विजित लोगोंपर विजेता स्थायी रूपसे अपने दर्जेका बड़प्पन कायम रख सकें। भारतीय सिविलियनोंके 'फौलादी' ढाँचेकी उत्कृष्टता, जिसका आज इतना अधिक विज्ञापन किया जा रहा है और अफ्रीकाके हबशी सरदार शेक-डीको उसके यूरोपियन मालिकोंने हालमें जो असभ्यतापूर्ण धमकी दी है वह और यूरोपियन लोगोंके नस्लवालोंके साथ दूसरोंके मुकाबलेमे होनेवाला आला वर्ताव—यह सब क्या है? छोटे-छोटे किन्तु प्रबलतर राष्ट्र बड़ी बड़ी किन्तु दुर्बल जातियोंका शोषण कर सकें इस खयालसे खूब सोच विचार कर जो आयोजन रचे गये हैं उनसे सम्बन्ध रखनेवाली ही ये सब जीती-जागती याददिहानियाँ हैं। विजेता आर्योंने इस देशके पराजित निवासियोंके साथ जो निर्दयतापूर्ण व्यवहार किये, यह इससे अच्छी तरह प्रकट हो जाता है और आर्थिक स्वार्थ-साधनके लिए ही यह सब किया गया था इसकी सम्भावना इससे और भी अधिक बढ़ जाती है। फिर क्या; जैसे दिनके बाद निश्चय ही रात आती है, उसी तरह इसके बाद खूब बेरहमीके साथ हरिजनोंको दबाया गया और उनके रहने, मिलने जुलने, खाने-पीने और दूसरी तमाम बातोंमें अपनी जातिगत उच्चता दाखिल करने और उसे कायम रखने के लिए

हर तरहका प्रयत्न किया गया। कवियोंने इस प्रथाका यशोगान किया, पुराणोंने उसपर 'ईश्वरीय विधान'की छाप लगा दी! 'नेटालके प्रवासी भारतीयों'की तरह हरिजनोंको डराया-धमकाया गया कि वे हमारी व्यापारिक प्रतिस्पर्धामें न उतरें और यह कानून बना दिया गया कि मुख्य-मुख्य उद्योग-धंधों और उन्नतिकारी व्यापार-क्षेत्रोंसे उन्हें निकाल-बाहर कर दिया जाय। अब बेचारे दरिद्र हरिजनोंके हाथमें केवल मेहनत-मजूरीका ही काम रह गया। तनपर पूरा कपड़ा नहीं, रहने की सड़ी-गली झोपड़ियाँ, चारों ओर गदगी और घर-घर निरक्षरता। जो सिरपर आवे चुपचाप झेलते जाओ, चूँ-चपड़ करने का भी अधिकार नहीं। दुनियामें विजित जातियोंको जो दण्ड भोगना पड़ता है, हरिजनोंको भी वही दड भोगना पड़ा।

आप 'वर्ग युद्ध'में विश्वास नहीं करते और न उन थैलीशाहोंको पदच्युत करने को ही तैयार हैं और यह महज इसलिए कि उनके दर्जेमें किसी तरहका खलल नहीं डालना चाहिये। आप यह माननेवाले नहीं कि जबतक थैलीशाहों और श्रमिकोंकी मौजूदा स्तिथिमें असमानताको हम स्वीकार करते हैं और इस बातकी कोशिश करते हैं कि वह बनी रहे, तबतक उनके हितोंमें निश्चय ही सघर्ष होता रहेगा।

हरिजन बेचारा मागता है रोटीका टुकड़ा और मिलता है उसे पत्थर। जहा तक मैं हरिजनोंके सम्बन्धमें जानता हूँ वहा तक उन्हें इन 'छूओ मत' की बलासे कोई वास्ता नहीं। मुझे यकीन है कि आप यह मानते हैं कि हरिजनोंकी यह अस्पृश्यता इतनी गहरी जड़ जमा चुकी है कि कभी-कभी उनके साथ बैठ कर खा-पी लेने से उनके मुहल्लेमें झाड़ू लगा आने से, मन्दिरोंमें बतौर एक दस्तूरके उनका प्रवेश करा देने से और दया-भावसे प्रेरित हो कर उन्हें कपड़े व मिठाई बाट आने से वह दूर नहीं हो सकती। यह तो एक ढला-ढलाया प्रोगाम मालूम होता है जो शायद लड़ाईसे परिश्रात कांग्रेसजनोंके लिए तैयार किया गया है। यह प्रोग्राम तो बड़े मजेमें चलता हुआ मालूम देता है। 'हरिजन' में यह निकलता रहता है कि इतने लड़कोंको उन स्कूलोंमें छात्रवृत्तिया मिल रही हैं जिनके द्वार उनके लिए अभी-अभी तक बद थे और इतने मन्दिर खुले व इतने कुए, पर हरिजन क्या इन सबसे सतुष्ट हो रहे हैं? क्या हम यह कह सकते हैं कि इस तरह उसका बहुत जल्दी उद्धार हो जायगा? लोगोंसे अगर यह कहा जाय कि हरिजनोंसे काम तो कम घटे कराया जाय और मजदूरी उन्हे अधिक दी जाय और उन गरीबोंके प्रति वे अपना उचित कर्त्तव्य पालन करें, तो फिर देखें इसका क्या जवाब मिलता है।

आपसे मैं सत्य ही कहूँगा, मुझे मजबूरन यह कहना पड़ता है कि हरिजनोंके जीवनके लिए जो अधिक आवश्यक प्रश्न हैं उनके मुकाबलेमें आपने अस्पृश्यताके इस छोटे-से प्रश्नपर जरूरतसे ज्यादा जोर दे रखा है। इससे हरिजन आत्मप्रवञ्चनाकी ओर जा रहे हैं, थैलीशाहोंके शोषणका शिकार बन रहे हैं और उनको उस आर्थिक स्वतन्त्रताका शुभ-दिन अनिश्चित कालके लिए दूर होता जा रहा है, जिसे उनके दूसरे देशोंके भाई बन्धु प्राप्त करने के लिए जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं"।

हरिजन-कार्यके सिलसिलेमें पार साल जब मैं दक्षिणमें प्रवास कर रहा था, तब

ऐसी ही दलीलें मेरे सुनने में आयी थीं। यह अच्छा हुआ कि उन सब दलीलोंको एक पत्रमें एकत्र कर के रख दिया गया है। पत्र-लेखकने एक भूल की है। उनका यह खयाल है कि अस्पृश्यता-निवारणकी यह लड़ाई छूत-छात दूर हो जाने के साथ ही खत्म हो जायगी। धर्मके अभेद्य प्रतिबन्धके निवारणसे इस प्रवृत्तिका आरम्भ करना पड़ा है। धार्मिक प्रतिबन्धके दायरेमें जो लोग आते है उनका एक जुदा ही वर्ग है। अस्पृश्यताका काला दाग तो जन्मके साथ ही उनके शरीरपर लगा आता है। यह कौन नहीं जानता कि उनकी आर्थिक अवस्था ठीक होते हुए भी उनके साथ सामाजिक कोढ़ियोंका-सा सलूक किया जाता है? त्रावणकोरके हजारों एजवा और बंगालके नमोशूद्र खासे अच्छे सम्पन्न है, तो भी उनके लिए यह कितने दुःखकी और सवर्ण कहे जानेवाले हिन्दुओंके लिए कितनी शर्मकी बात है कि उन हरिजनोंकी सम्पन्नता या समृद्धतासे उनके सामाजिक दर्जेमें कोई अन्तर नहीं आता।

यह कबूल करने में कोई कठिनाई नहीं कि इस दुष्ट प्रतिबन्धके दूर होने के बाद काफी काम करने को है। सचमुच इस स्पष्ट सत्यको स्वीकार कर के ही हरिजन-संघने हरिजनोंका शिक्षा सम्बन्धी और आर्थिक काम अपने हाथमें लिया है, जिसे मालूम होता है, पत्र-लेखक सज्जन कोई अधिक महत्व नहीं दे रहे हैं। इस कामसे हरिजनोंकी असली सेवा हो रही है और सुधारकोंकी सच्चाईकी परीक्षा भी इससे हो जाती है; और जिनकी सेवा करने के लिए उन्होंने कमर कसी है उनके निकट सम्पर्कमे वे इस कामके जरिये आते हैं। अस्पृश्यता जब सर्वांशमें दूर हो जायगी, तब हरिजन भी दूसरोंके साथ-साथ उस आर्थिक उन्नतिसे लाभ उठायेंगे जो धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रीतिसे हो रही है। हिन्दुस्तानकी कुल जनसंख्यामें लगभग १६ प्रतिशत हरिजन है, लेकिन आर्थिक शोषणके जो लोग शिकार हो रहे हैं, वे कम-से-कम ९० प्रतिशत हैं; इसीलिए जैसा कि मैं 'हरिजन'मे लिख चुका हूँ, चर्खा-संघ और ग्राम-उद्योग-संघ तथा हरिजन-सेवक संघका एक दूसरेके साथ अन्तर्सम्बन्ध है और इसी वजहसे हरिजनोंका क्षेत्र विस्तृत हो गया है।

पत्र-लेखकका यह कहना सही नहीं कि 'मैं वर्ग-युद्धके अस्तित्वमें विश्वास नहीं करता'। जिस चीजमें मैं विश्वास नहीं करता वह है वर्गयुद्धको उकसाना या उत्तेजना देना और उसे जारी रखना। दिन-दिन मेरा यह विश्वास बढ़ता ही जाता है कि वर्ग-युद्धका न होने देना पूर्णतया सम्भव है। उसे उकसाने मे कोई तारीफ नहीं। तारीफ तो उसे रोकने मे है। पूँजीपतियों और श्रमिकोंके बीचका संघर्ष केवल ऊपरी या दिखाऊ है। श्रमिक वर्गमें जब अपना संघटन कर लेने लायक सुमति आ जायगी और बिलकुल एकमत हो कर वे काम करने लगेंगे तो उनके श्रमका मूल्य रुपये-पैसेसे अधिक नहीं तो उसके बराबर तो अवश्य हो जायगा। झगड़ा तो असलमे समझ और नासमझीके बीच है। ऐसे झगड़ेका जारी रखना सचमुच एक नादानीका ही काम है। उनमे जो सुमतिका अभाव है उसे जरूर दूर कर देना चाहिये।

रुपयेका उतना ही उपयोग है जितना कि श्रमका। आखिरकार रुपया है तो

विनिमयका ही एक चिन्ह। एक आदमीके पास २५) है। वह ५० मजदूरोंको ।।) रोजपर रखता है और उनसे आठ घंटा रोज काम लेता है। उधर एक श्रमजीवी है। उसके साथ उसके ४९ श्रमजीवी भाई पूर्णतः संघटित हो कर काम करते हैं। अतः उस ४९ साथियोंवाले श्रमजीवी और उस व्यक्तिमें जिसके पास २५) हैं कुछ भी अन्तर नहीं। अगर कुछ फायदा कोई उठा सकता है तो वह मनुष्य जिसके पास इजारा है, चाहे वह इजारा श्रमका हो या रुपयेका। अगर दोनों समान हैं, तो उनमें मेल या सामंजस्य बना-बनाया है। इसलिए प्रश्न एक वर्गको दूसरे वर्गके विरुद्ध उभाड़ने का नहीं, किन्तु श्रमजीवियोंके अन्दर श्रमकी प्रतिष्ठाकी भावना भरने का है और दुनियामें धनिकोंकी संख्या है ही कितनी? श्रमजीवियोंमें यह भावना आते ही ये रुपये-पैसेवाले आदमी उसी क्षण ठीक हो जायँगे। धनिकोंके खिलाफ मजदूरोंको उभाड़ना वर्ग-जनित द्वेष और उससे पैदा होनेवाले दुनिया भरके सत्यानाशी परिणामोंको स्थायी रूप देना है। यह द्वन्द्व 'रक्त-बीज'की तरह संघर्षको सदा बढ़ानेवाला है। इसे तो रोकना ही है, चाहे इसके लिए बड़ी-से-बड़ी कीमत क्यों न देनी पड़े। यह तो कमजोरीको कबूल करना है, या छुटाईकी भावनाका एक चिन्ह है। श्रमजीवियोंके अपने श्रमकी प्रतिष्ठा पहचानते ही रुपया-पैसा उचित स्थानपर आ जायगा, याने श्रमिकोंके हितार्थ वह ट्रस्टकी चीज हो जायगा—क्योंकि रुपये-पैसेसे श्रमका मूल्य अधिक है।

हरिजन-सेवक
१९ अक्तूबर, १९३५



अपनी आखिरी साँस ले रही है

हिंदू रह कर मरने की अपेक्षा किसी दूसरे धर्मको ग्रहण कर लेने की डाक्टर अम्बेडकरने जो धमकी दी है उसके जवाबमें मेरे इस दावेको, कि कावीठाकी दुःखद घटनाके होते हुए भी अस्पृश्यता आज अपनी आखिरी साँस गिन रही है, कुछ आलोचकोंने बिना किसी हिचकिचाहटके अयुक्त या असंगत बतलाया है। वास्तव में, कावीठाकी खुद यह घटना मेरे इस दावेका समर्थन करती है। कावीठा गाँव जबसे बसा, शांतिके साथ रह रहा था। यह तो हमारे एक जरूरतसे ज्यादा जोशीले कार्यकर्त्ता ने, जिसे खुद अपनी मर्यादाओंका पता नहीं था, कावीठाके हरिजनोंको अपने बच्चे वहाँकी पाठशालामें भेजने के लिए हिम्मत दिलायी, यद्यपि वह यह जानता था कि कावीठाके कुछ सवर्ण हिंदू इस कामकी मुखालिफत करेंगे। वह तो इस आशामें था, जैसा कि दूसरी जगहोंमें हुआ है, कि हरिजनोंको

सार्वजनिक पाठशालाओंमें अपने बच्चोंको भेजने का जो हक है, उसपर वे दृढ़ताके साथ डटे रहेंगे और उसमें उन्हें सफलता भी मिलेगी, किन्तु कावीठाके सवर्णोंने यह दिखला दिया कि उन्होने समयकी गतिको अभी पहचाना नहीं था।

कुछ ही साल पहले कावीठामें यह घटना घटी होती तो किसीका उसपर ध्यान भी न जाता। उन दिनो सुधारकोंकी संख्या बहुत ही कम थी। थोड़े से जो इने-गिने सुधारक थे, वे अधिकतर बड़े-बड़े कस्बों और शहरोंमें ही थे। अब ईश्वरकी कृपासे उनकी संख्या बराबर बढ़ती ही जाती है और आज हर गाँवमे आपको कुछ-न-कुछ सुधारक मिल जायँगे, किन्तु कुछ ही बरस पहले हरिजनोंको किसी भी कारणसे अस्पृश्यताका सामना करने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सकता था। अस्पृश्यता जिस तरह सवर्णोंके धर्मका एक अंग है, उसी तरह वे उसे अपने धर्मका एक अंग मानते थे। अस्पृश्यता निवारण आन्दोलनकी साप्ताहिक प्रगतिका 'हरिजन'में काफी प्रामाणिक-विवरण निकलता रहता है। हालाँ कि प्रगति प्रत्यक्ष देखने मे आती है, तो भी कावीठाकी तथा ऐसी ही अन्य दुःखद घटनाओसे यह पता चलता है कि अनेक जगहोके अधिकांश सवर्णोंके दिलपर अब भी इसका कोई असर नहीं हुआ है। सुधारको और हरिजनोको इससे यह चेतावनी मिलती है कि सवर्णोंके कठोर हृदय पिघलाने के लिए अब भी बहुत कुछ करने को बाकी है।

फिर यह भी एक देखने की बात है कि कावीठाकी इस दुःखान्त घटनाको लोक-प्रकाशमे लाने और उसे एक अखिल भारतीय महत्व देने का काम सवर्ण सुधारकोंने ही किया है। इस घटनाने जितना रोष हरिजनोको दिलाया है उससे कहीं अधिक उसने सवर्णोंके हृदयमें खलबली-मचा दी है। मुझे शर्म और अफसोसके साथ यह लिखना पड़ता है कि कावीठाके हरिजन भी अपने अधिकारोंके लिए अब और अधिक हलचल नहीं मचाना चाहते। सवर्णोंकी उद्दण्डताके आगे उन्होंने अपनेको दीनतापूर्वक झुका दिया है। उन्हें सब तरहसे मदद देने पर भी वे कावीठा छोड़ने को तैयार नहीं। वहाँ जो थोड़े-से हरिजन हैं उनके लिए कहीं भी इज्जत-आबरूके साथ मेहनत-मजूरी कर के पेट भरना कोई मुश्किल काम नहीं है। सुधारकोंने उन्हें अपनी हिफाजतमे कावीठा छोड़ देने के लिए प्रोत्साहित करने का जो प्रयत्न किया वह असफल ही रहा।

धर्मका परिवर्त्तन उसकी अपनी निजो त्रुटियोके कारण नहीं बल्कि उसके अनेक अनुयायिओंके अनुचित दुराग्रहके कारण उचित भी मान लिया जाय, तो भी डाक्टर अम्बेडकरके इस धर्मान्तरसे उस कार्यकी, जिसे वे करना चाहते हैं, केवल हार ही होगी। डाक्टर अम्बेडकर जैसे शक्तिशाली लोगोंके हिन्दू-धर्मसे अपना संबंध विच्छेद कर लेने से हरिजनोंके बचावके हकमें कुछ कमजोरी ही आ सकती है। अहिंदू हरिजन, फिर वे चाहें कितने ही प्रभावशाली हों, हिन्दू हरिजनोंको सहायता नहीं पहुँचा सकते। असल में, जिन धर्मोंको उन्होने ग्रहण किया है, उनमें

अब भी उनका वर्ग एक अलग है ही। भारतमें भारतीय नमूनेकी अस्पृश्यताका लोगोंपर इस तरह कब्जा है !

डाक्टर अम्बेडकरके इस उचित रोषसे सुधारकोंको अधीर या उद्विग्न नहीं होना चाहिये, उन्हें तो उससे और भी अधिक प्रयत्नशील बनने की प्रेरणा मिलनी चाहिये। यद्यपि यह सच है कि अस्पृश्यताके विरुद्ध लड़नेवाले कार्यकर्त्ताओंकी संख्या अब बहुत बढ़ गयी है, फिर भी इसमें संदेह नहीं कि उनकी संख्या अब भी इतनी छोटी है कि उससे युगोंका दुराग्रह दूर नहीं हो सकता। तो भी अस्पृश्यता-निवारण-जैसी प्रवृत्ति ने जहाँ तक प्रगति की है और जो छोटी-से-छोटी प्रतिकूल घटनाके होने से दुनिया भरका ध्यान आकर्षित कर सकती है, उसे देखने से तो यही कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता अपनी आखिरी ही साँसे ले रही है। मानवता अब उसे बहुत दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकती।

हरिजन-सेवक
२६ अक्तूबर, १९३५



दो प्रश्न

हरिजन आन्दोलनके एक कार्यकर्त्ताने मुझे दो प्रश्न लिख भेजे हैं। उनमे से पहला यह है—

"मैं अपने यहा एक हरिजन रखता हूँ। एक दिन मेरे यहा एक मेहमान आते हैं, जो अस्पृश्यताके हामी हैं। उस समय यदि मैं अपने नौकरसे उन्हे पानी वगैरा दिलवा देता हूँ, तो उन्हें धोखा देता हूँ और अगर नौकरसे न दिलवा कर खुद देता हूँ, तो नौकरका जी दुखता है,-मेरे लिए यह एक भारी धर्म-सकट है। ऐसी हालतमे क्या करना चहिये, कुछ समझमे नहीं आता"।

इसमे धर्म-संकटका तो सवाल ही नहीं उठता। जब हम किसी भंगी हरिजनको अपना कुटुम्बी बना कर रखें तो पहलेसे ही उसे अपने घरके सब नियम बता देने चाहिये। उससे यह साफ-साफ कह देना चाहिये कि हमारे यहाँ अस्पृश्यता माननेवाले मेहमान भी आते हैं और उनके दिलको न दुखाने के लिए हम खुद ही उन्हें पानी वगैरा देते है या दूसरे नौकरोंसे दिलवा देते हैं। जो भंगी नौकर हमारी आदतको जानता है, उसे दुःख मानने का कोई कारण नहीं रह जाता, लेकिन उक्त प्रश्नमें यह अध्याहार है कि इस वर्तावसे भंगीके सामने एक नयी समस्या खड़ी हो जाती है। इसलिए ऐसे मौकोंपर हम अपने मेहमान और भंगी सेवक दोनोंके सामने अपनी

आपत्तिको खोल दें, तो न तो किसीको धोखा ही होगा और न किसी प्रकारका धर्म-संकट ही आयगा।

दूसरा प्रश्न यह है—

"कुछ हरिजनोंको एक भोज दिया जाता है, जिनमें अधिकतर चमार हैं और दो-चार राजपूत भी। भोजन बनानेवाले और परोसनेवाले भंगी हैं, पर यह बात भोजन करनेवालोंको नहीं बतायी जाती। वे बिना जाने खा कर चले जाते हैं। अगर उन्हें यह बात भोजन करने से पहले बता दी जाती तो वे छोड़ कर चले जाते और बादमें बतायी जाती, तो झगड़ा करते, इसलिए उन्हें अनजानमें खिलाना क्या धोखा नहीं हुआ? यह उचित था या अनुचित"।

यह प्रश्न अगर किसी बीती हुई घटनाके बारेमे है तो बिलकुल निरर्थक है। मैं भविष्यके बारेमें ही कह सकता हूँ। जब हम सब प्रकारके हरिजनोंको भोजनके लिए बुलावें, उन्हें पहलेसे ही बता देना चाहिये कि भोजन बनाने और परोसनेवाले भंगी हरिजन ही होंगे। अगर हम यह बात साफ नहीं करते, ता सरासर धोखा देना है। हमें यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि अस्पृश्यता रूपी जहर हरिजनोंमें भी फैला हुआ है।

हरिजन-सेवक
२ नवम्बर, १९३५



एक रोचक बात

गत सप्ताह वर्धामें हरिजन-सेवक-संघकी कार्यकारिणी समितिकी बैठक हुई थी। मेरी 'जात-पॉत नष्ट होनी ही चाहिये' शीर्षक लेखको ले कर उसमें कुछ सदस्योंने यह प्रश्न उठाया कि मेरे लिए 'हरिजन' या 'हरिजन-सेवक' जो कि हरिजन-सेवक-संघकी ओरसे निकलते हैं, मेरे द्वारा जाति-प्रश्नके संबधमें ऐसे विचार प्रकट करना कहाँ तक ठीक है, जो संभव है संघके अनेक सदस्योंको पसन्द न हो? अथवा, क्या मैं उनमें ऐसे विचार प्रकट कर सकता हूँ, जो संघकी अख्तियार की हुई नीतिके अन्दर न आते हों, या क्या संघ अपने उद्देश्योंका क्षेत्र व्यापक बना सकता है?

मैंने उन्हें बताया कि मैंने ऐसा समझ-बूझ कर किया है, क्योंकि अपनी रायमें व्यक्तिगत रूपसे मैं 'हरिजन या हरिजन-सेवकके अन्दर उन विचारोंको देने के लिए स्वतंत्र हूँ, जो हो सकता है कि कुछ सदस्योंके विचारोंसे मेल न खाते हों या जिन्हें अभी संघने अपनी नीतिके तौरपर न अपनाया हो। मेरी रायमें संघके हरएक सदस्यको यह स्वतंत्रता है, क्योंकि उसके विचारोंसे संघके उद्देश्यमें कोई बाधा नहीं

पड़ती। संघकी नीति तो नरम-गरम दोनों ही तरहके सुधारकोंके बीच अधिक-से-अधिक सामन्जस्य बनाये रखना है; क्योंकि हरिजन-सेवक-संघमें दोनों ही तरहके लोग काफी संख्यामें मौजूद हैं। उसमें जहाँ ऐसे सनातनी भी हैं, जो अस्पृश्यता-निवारणमे खाली स्पर्श तक ही सीमित रखना चाहते है, वहाँ ऐसे लोग भी हैं जो रोटी-बेटी व्यवहार तकको उसमें शामिल करना चाहते हैं। सदस्यताके प्रतिज्ञा-पत्रमें तो वही बात रखी गयी है जो हरएक सदस्यको मंजूर हो सके और वह अपने जीवनमें उसपर अमल कर सके। उससे किसी सदस्यको और आगे बढ़ने में उस वक्त तक कोई बाधा नहीं पड़ती, जबतक कि वह उन विचारोंको संघपर लादने की कोशिश न करे। इस आन्दोलनके आरम्भमे सब तरहके हिन्दुओंकी एक सम्मिलित सभा हुई थी और उसने एक ऐसा व्यापक प्रस्ताव पास किया था, जिसपर उपस्थितजनोंमें अधिकांश व्यक्ति सहमत थे। इस निर्णयकी बुद्धिमत्ता इस बातसे सिद्ध है कि भारतभूषण मालवीयजीकी कृपासे, प्रायः सर्वसम्मत्तिसे वह हुआ था। यह स्पष्ट है कि उस प्रस्तावमे अगर यह बात होती कि संघके सदस्य व्यक्तिगत रूपसे भी प्रगतिशील विचार नहीं रख सकते या उनपर अमल नहीं कर सकते तो अनेक सदस्य उन पाबंदियोको स्वीकार न करते। इसके विरुद्ध दूसरी ओर साधारण सदस्य तो दूर, व्यवस्थापक-मंडलके सदस्योंका बहुमत भी, जहाँ तक उद्देश्यसे संबंध है, संघका विधान नहीं बदल सकता। यह तो खास तौरपर इस कामके लिए की जानेवाली हिन्दुओकी ऐसी आम सभाके द्वारा ही हो सकता है, जिसमें सब तरहके विचार रखनेवाले हिन्दुओका प्रतिनिधित्व हो; इसलिए फूँक-फूँक कर कदम रखनेवाले सुधारकको तो इस बातसे निश्चित रहनी चाहिये कि सघकी मूल नीतिमें सहसा कोई परिवर्त्तन नहीं होगा, दूसरी ओर अत्यन्त उग्र सुधारक भी व्यक्तिगत रूपमे निर्बाध रीतिसे उन विचारोंका प्रतिपादन कर सकते है, जिनसे उनकी रायमें हिन्दू जाति शुद्ध और स्वस्थ हो सकती है।

प्रसंगवश यहाँ यह भी बतला देना चाहिये कि 'जात-पाँत नष्ट होनी ही चाहिये' शीर्षक लेखमें मैंने जो विचार प्रकट किये हैं, उन्हें भिन्न-भिन्न शीर्षकोंसे, मैं अकसर इन पत्रोंमें प्रकट करता रहा हूँ, फिर वह लेख सवर्ण और हरिजन हिन्दुओंके संबंधमें नहीं है। उसमे तो सवर्णोंके ही सुधारका वर्णन है। जब अस्पृश्यता नहीं रहेगी, तो अस्पृश्योंकी बहुत कुछ वैसी ही स्थिति हो जायगी जैसी कि आज सवर्णोंकी है और तब कोई भी नियम या प्रथा क्यों न हो, सवर्ण लोग उन हरिजनोंपर हुकूमत करेंगे जो कि उस वक्त हरिजन न रहेंगे; इसलिए अगर उस वक्त भी आजकी ही तरह जाति-भेद बना रहा, तो हरिजनों और सवर्णोंके बीच न तो खान-पानका सम्बन्ध होगा और न ब्याह-शादीका ही, लेकिन अगर जाति प्रथा जिस रूपमे वह आज-कल है, न रहे जैसा कि किसी-न-किसी दिन होगा अवश्य, तो फिर हरिजनों और सवर्णोंके बीच आपसमें उसी तरह रोटी-बेटी व्यवहार होने लगेगा जिस तरह कि सवर्ण-सवर्णके बीच होता है और अगर वर्ण-व्यवस्था रही, जो कि मुझे उम्मीद है रहेगी, तो भूतकालकी तरह काम-धन्धे

परस्परमें मर्यादित रहेंगे, लेकिन रोटी-बेटी व्यवहारमें उसी तरह कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा जिस तरह कि पहले नहीं था। जो कुछ भी होगा, यह तय है वह संघ द्वारा संस्थाके रूपमें की गयी हलचलके कारण नहीं, बल्कि उन दूसरी शक्तियोंके कारण होगा जिनका न तो संघ संचालन ही कर सकता है और न जिनपर वह नियंत्रण ही रख सकता है। संघके सदस्य भी व्यक्तिगत रूपमे, उन शक्तियोंको अपने इच्छानुसार दृढ़ करने और आगे बढ़ाने में पर्याप्त रूपसे भाग लेंगे यह निश्चित है।

हरिजन-सेवक
३० नवम्बर, १९३५



मन्दिर-प्रवेश

हरिजन-सेवक-संघने हालमें मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया है वह पाठकोंको याद होगा। कोई यह खयाल न बाँध बैठे कि चूँकि इस प्रश्नके बारेमे आजकल कुछ अधिक सुनने को नहीं आ रहा है, इसलिए संघने या तो भुला दिया है या छोड़ दिया है। पंडित मालवीयजीका नासिक जाना और वे विशाल जन-समूह जो उनके चारों ओर एकत्र हो जाते थे, इन सबसे प्रकट होता है कि कुल मिला कर जनता अस्पृश्यता-निवारणके विरुद्ध नहीं है, यद्यपि इससे यह भी मालूम हुआ कि रूढ़ि-प्रिय सनातनी अब भी अस्पृश्यता छोड़ने को तैयार नहीं है; मगर धीरे-धीरे इस चीजके विकसित होने तक प्रतिक्षा करना संभव नहीं। स्थानीय संघोका यह अनवरत प्रयत्न होना चाहिये कि वे मौजूदा मन्दिरोंको खुलवायें और नये मन्दिर भी बनवायें जो केवल हरिजनोंके लिए नहीं, बल्कि सबके लिए हों। अगर ये नये मंदिर अच्छा और स्वच्छ जगहोंमें हों और उनके साथ पाठशाला, सत्संगका स्थान और धर्मशाला हो तो तमाम वर्गोंके हिन्दुओंमें वे मन्दिर अवश्य ही उपयोगी और लोक-प्रिय साबित होंगे। वहाँ नित्य साँझको या नियत समयपर सामूहिक प्रार्थना हो और कभी-कभी धार्मिक कथा-वार्त्ताका भी आयोजन किया जाय। ये मन्दिर अगर ठीक तरहसे चलाये जायँ तो हरिजनोंके लिए मौजूदा मन्दिर खोलने के विरुद्ध जो दुराग्रह देखने में आ रहा है, उसे दूर करने में इनसे काफी मदद मिले। हरिजनोंके लिए जहाँ मन्दिर खोले जायँ, वहाँ यह ध्यान अवश्य रखा जाय कि उनके साथ कोई भेद-भाव तो नहीं बरता जा रहा है। अन्य हिन्दुओंके लिए जिन शर्तोंपर वे खुले हुए हों ठीक उन्हीं शर्तोंपर हरिजनोंके लिए खोले जायँ।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि वाँछित उद्देश्य साधने के लिए भिन्न-भिन्न

तरीके ग्रहण किये जायँ। निःसन्देह पूर्ण अहिंसाका पालन तो हर हालतमें किया जाय। एक साथ एक ही प्रकारका अखिल भारतीय आन्दोलन चलाया जाय—इसपर गौरसे विचार नहीं किया गया है। कहाँ कितने जोरसे और किस तरीकेपर आन्दोलन चलाया जाय यह तो हरएक जगहकी अपनी-अपनी परिस्थितियोंपर निर्भर करता है। जहाँ कोई सक्रिय अल्पमत कोई मन्दिर खोलने के विरुद्ध हो वहाँ मन्दिर नहीं खोलना चाहिये। कोई भी मन्दिर खोला जाय इसके पहले व्यावहारिक मतैक्य अपने पक्षमे कर लेना चाहिये; इसलिए जरूरत इस बातकी है कि स्थानीय लोकमतको मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें कर लेने का अनवरत प्रयत्न किया जाय।

हिन्दू-रियासतोंमें स्थिति कुछ भिन्न है। जहाँके राजा या उसके अधिकारियोंकी इच्छा मन्दिर-प्रवेशके अनुकूल हो, वहाँ तो मन्दिर खोलने के संबन्धमें कोई दिक्कत होनी ही नहीं चाहिये। यह प्रश्न त्रावणकोर राज्यमें काफी महत्व रखता है। अन्य अधिकांश स्थानोंमें मंदिर-प्रवेशके विषयमे हरिजन उदासीन-से हैं। त्रावणकोरकी स्थिति सबसे उलटी है। इस राज्यके हरिजनोंकी बहुत बड़ी संख्या और जगहोंके हरिजनोंसे काफी आगे बढ़ी हुई है। उनमें कितने ही अच्छे-अच्छे पदोंपर हैं, कितने ही वकील और डाक्टर हैं। अनेकने कालेजोंमें शिक्षा प्राप्त की है। उनकी स्वतन्त्रतामे कोई रुकावट नहीं आती है। सुनते हैं कि वहाँके अधिकाश सवर्ण इस प्रतिबन्धको हटाने के बिलकुल पक्षमें हैं। फिर त्रावणकोरके महाराजा भी सुसंस्कृत हैं और श्रीमती साहबा भी। निश्चय ही चन्द रूढ़ि-प्रिय लोगोंके विरोधसे, भले ही उनका अपने-अपने क्षेत्रोंमें प्रभाव हो, यह अत्यावश्यक सुधार जो आज बहुत पहले हो जाना चाहिये था रुक नहीं सकता; मगर हरिजन-सेवकोंको ठीक-ठीक मतसंग्रह कर के या ऐसे ही किसी जरियेसे बिना किसी सन्देहके यह बता देना चाहिये कि सवर्ण हिन्दुओंकी एक बहुत बड़ी संख्या निश्चित रूपसे त्रावणकोरके मन्दिरोंको हरिजनोंके लिए ठीक उन्हीं शर्तोंपर खोलने के पक्षमें हैं जिन शर्तोंपर कि वे स्वयं मंदिरोंमें जाते है। संभव है कि महाराज त्रावणकोर लोकमतके आगे न जायँ, पर मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि जो लोकमत स्पष्टतया प्रकट हो चुका है उसकी वे अवहेलना करेंगे।

हरिजन-सेवक
२८ मार्च, १९३६



"...... अन्त्यजोंके तो हमने पर काट डाले हैं, उनकी सद्भावनाओंको दबा दिया"। —*गांधीजी*

सच हो तो बर्बरतापूर्ण है

'हिन्दू' (मद्रास) के 'निज संवाददाताने' रामनदसे ८ जूनको जो खबर भेजी थी उसमें से नीचेका पैराग्राफ ले कर एक सज्जनने मेरे पास भेजा है—

"देवकोटा पचायत बोर्डकी बैठक शनिवारको उसके अध्यक्ष श्री अरुणाचलम् चेट्टीके सभापतित्वमें हुई है। उसमे मामूली रिवाजका पालन किया गया, अर्थात, बोर्डमे जो हरिजन सदस्य हैं उसने सभा-भवनमें आ कर हाजिरीके रजिस्टरमें अपने दस्तखत किये और सभा-भवनके बाहरी दरवाजेपर जा कर खड़े हो गये और जबतक बैठक खतम नहीं हो गयी तबतक बराबर वहीं खड़े रहे।

"बोर्डने कस्बेके विभिन्न गलियोमे बिजलीकी रोशनीका प्रबन्ध करने के लिए खर्च मजूर किया और श्री रगपुरम्, नटराजपुरम् तथा अरुणागिरिपाटनम्के बीच सड़कें बनाने के लिए स्थान लेने का निश्चय किया"।

'हिन्दू'की इस कटिंगके साथ मेरे नाम जो पत्र आया है उसमे लिखा है—

"मैं ११ तारीखके 'हिन्दू'की एक 'कटिंग' आपके पास भेज रहा हूँ जिसमे एक बहुत मनोरंजक बात है। उसमें जिस पंचायत बोर्डका जिक्र है वह चेट्टीनादके बीचो-बीच है और ऐसा खयाल किया जाता है कि कांग्रेसके आदमी तथा ऐसे व्यक्ति ही उनमें जो अभी हालमें कांग्रेसकी ओरसे खड़े हो कर चुने गये हैं, स्थानीय बोर्डों और पंचायतोंके द्वारा कांग्रेसके उद्देश्यों तथा लक्ष्यकी ओर प्रगति करना ही उनका ध्येय है।

यह पढ कर हृदयको धक्का सा लगता है कि ऐसी सस्था, इस बीसवीं सदीमे अपने हरिजन सदस्यको सभा-भवनके बाहर खड़ा रहने के लिए मजबूर करने का साहस करे और यह जानते हुए भी कि वह खुद उस संस्थाका एक बाकायदा चुना हुआ सदस्य है और समाजके एक भागका प्रतिनिधित्व करता है, जिसके कारण ऐसी सदस्यतासे प्राप्त तमाम सुविधाओंके उपयोगका हक उसे हासिल है"।

मै नहीं जानता कि इन सज्जनका यह कहना ठीक है या नहीं कि देवकोटा पंचायतमें कांग्रेसी ही कांग्रेसी हैं। अगर ऐसा है तो यह उन कांग्रेसियोंके लिए बहुत ही बुरी बात है, क्योंकि पंचायतने अपने हरिजन सदस्यके साथ जो व्यवहार किया वह तो स्पष्ट ही अन्यायपूर्ण है, लेकिन उनके अलावा भी तो कांग्रेसी तो अस्पृश्यताका विरोध करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है; मगर पंचायतमें कांग्रेसी हों या न हों बोर्डके इस व्यवहारको तो बर्बरतापूर्ण ही कहा जा सकता है—ठीक उसी प्रकारकी जैसे लेजिसलेटिव असेम्बलीकी बैठकके समय उसके सदस्य रायबहादुर राजाको वहाँ एक कोनेमे खड़ा रखा जाय तो कहा जायगा।

लेकिन 'हिन्दू' के संवाददाताने तो सर्वसाधारणको यह भी बताया है कि देव-कोटा पंचायतमें यह आम रिवाज है। इसपर से यह सवाल होता है कि इस समय दक्षिणमें अस्पृश्यताकी चर्चा खास तौरसे जोरोंपर है, इसलिए इस आम रिवाजकी

पहले ही वे उनकी जरूरतोंको जान लें। हरिजन-सेवक-संघ तो छुआछूत दूर करने के लिए सबसे बड़ी संस्था है। उपयुक्त हरिजन छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ देने की अत्यन्त उदार नीति ग्रहण कर के इसने बड़ी बुद्धिमानी की है। जहाँ तक हो सकता है यह हरिजनोंको ही नौकर रखता है, लेकिन बेरोजगार हरिजनोंकी नौकरियाँ तलाश करने की 'ब्यूरो' यह किसी हालतमें नहीं है। वैसे आम तौरपर जो हरिजन कोई काम करना चाहे उनके लिए नौकरियोंकी कोई कमी नहीं है, बशर्ते कि वे उस कामके लायक हो। सबसे बड़ी कठिनाई जो हरिजनोकी होती है वह तो पीने तथा घर गृहस्थीके अन्य कामोंके लिए शुद्ध पानीका न मिलना, सार्वजनिक स्कूलो तथा अन्य संस्थाओंमें प्रवेश न पाना, गाँववालों द्वारा हमेशा तंग किया जाना और मन्दिरोंमें न जा पाना है। ये ऐसी असुविधाएँ हैं जिनका बहुसंख्यक हरिजनोंको रात-दिन अपने जीवनमें अनुभव होता रहता है। सामूहिक रूपमें उन्होंने हिन्दू-धर्म छोड़ा तो वह इन असुविधाओंके कारण ही होगा जो उन सबको एक समान भुगतनी पड़ती है और जिनके कारण वे हिन्दू-समाजमे कोढ़ी-से बने हुए है। हिन्दू-धर्मको इस समय भारी अग्नि परीक्षामे से गुजरना पड़ रहा है। अगर यह नष्ट हुआ तो वैयक्तिक या सामूहिक धर्म-परिवर्त्तनसे नहीं, बल्कि सवर्ण कहे जानेवाले हिन्दुओं द्वारा हिन्दुओंके लिए मौलिक न्यायसे भी इनकार किये जाने के पाप-स्वरूप होगा। अतएव,धर्म-परिवर्त्तनकी हरएक धमकी सवर्णोको इस बातकी चेतावनी है कि अगर समय रहते वे न चेत गये तो फिर कुछ न हो सकेगा।

एक शब्द उन अधीर और जरूरतमन्द हरिजनोसे भी। हिन्दू संस्थाओं या व्यक्तियोंसे सहायता माँगते समय वे धमकियाँ न दें। उन्हें तो अपने मामलेके औचित्यपर ये आधार रखना चाहिये। हरिजनोंमें से तो ज्यादातर यहीं नहीं जानते कि धर्म-परिवर्त्तनका अर्थ क्या है। वे तो सवर्ण लोग अपनी खुदगर्जीके लिए जो दुर्व्यवहार उनके साथ करते हैं उसे चुपचाप सहते रहते है। उन्हींकी सहायता करना हिन्दू-सुधारकोका मुख्य काम होना चाहिये, फिर वे चाहें स्वयं कोई शिकायत करें या नहीं। जो इतने समझदार हैं कि अपने साथ हो रहे हीन व्यवहारको समझते और महसूस करते हैं और साथ ही यह भी जानते हैं कि धर्म-परिवर्त्तनका क्या अर्थ है, वे या तो इतने अच्छे हिन्दू हैं कि उन्हें अपने पूर्वजोका धर्म छोड़ना पड़े तो उसमे हर तरह उनकी सहायता करनी चाहिये, या धर्मसे उदासीन होन के कारण वे हिन्दू धर्ममे बने रहने के लिए सवर्ण हिन्दुओंसे बदलेमें किसी सहायताका दावा ही नहीं करेंगे। अतएव, समझदार हरिजनोसे मैं कहूँगा कि स्वयं उनका भी इसीमे भला है कि भौतिक उन्नतिके लिए धर्म-परिवर्त्तनकी धमकी न दें और सुधारकोंको जहाँ एक ओर उन धमकियोंके आगे झुकना हर्गिज न चाहिये, वहाँ दूसरी ओर सवण हिन्दुओके हाथों हरिजनोके साथ कोई अन्याय न हो इसके लिए उन्हें अथक रूपसे प्रयत्न करते रहना होगा

हरिजन सेवक
२१ जुलाई, १९३९

तब तो, मैंने कहा, स्वभावतः आप लोग उस पार्टीका साथ दें जो आपको ज्यादा-से-ज्यादा फायदा पहुँचावें। मेरी रायमें ऐसी पार्टी निःसन्देह कांग्रेस ही है। अस्पृश्यताको जड़-मूलसे उखाड़ फेंकने के लिए वह प्रतिज्ञाबद्ध है। अस्पृश्यता-निवारणके काममें जो लोग लगे हुए हैं उनमें सबसे अधिक संख्या कांग्रेसवालोंकी है, पर आपके लिए अच्छा यह होगा कि अगर कांग्रेसको अपने पूर्ण स्वतंत्रताके ध्येयके अनुसार, जिसकी कि स्पष्ट व्याख्या कर दी गयी है, काउन्सिलोंके बहिष्कार या सविनय अवज्ञाकी लडाईमें कभी कूदना पड़े तो आप उसमें भाग न लें। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि ऐसी किसी लड़ाईके लिए हरिजनोंकी बहुत बड़ी संख्या आज मुश्किलसे ही तैयार है। आपका तात्कालिक ध्येय तो यही है कि तथाकथित सनातनी हिन्दू धर्मके नामपर जो आपको बराबरीका दरजा नहीं दे रहे हैं उसे आप प्राप्त करें। आप तो जैसे एक बिलकुल अलग व्यक्तिके तौरपर पूछ रहे हैं, लेकिन सब हरिजन तो आपकी ही तरह तो है नहीं। आपके लाखों-करोड़ों हरिजन भाई न तो आपकी तरह शिक्षित हैं न समझदार। अगर आपके प्रति मैं सच्चा हूँ, तो मुझे उन करोड़ों निरक्षर हरिजनोंको ही दृष्टिमें रख कर बात करनी चाहिये, जिनका प्रतिनिधित्व हरिजन सदस्य काउन्सिलोंमें जा कर करेंगे।

यही उस बातचीतका आशय है और खूब विचारपूर्वक मैंने इस सम्बन्धमें जो राय कायम की है वह सब इसमें आ सकती है। पाठकोंको यह सब बात दिलचस्प मालूम होगी कि यही सवाल मैंने हरिजनोंको उस वक्त दी थी जब कि मैंने सविनय अवज्ञा की पहली लड़ाई छेड़ी थी और आश्रमके हरिजनोंको रोक दिया था कि वे न तो लड़ाईमें भाग लें और न आश्रम ही छोड़ें।

हरिजन सेवक
२७ जून, १९३६



डाक्टर अम्बेडकरका दोषारोप

पाठकोंको याद होगा कि गत मईमें लाहौरके 'जात-पाँत तोड़क मंडलका वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डाक्टर अम्बेडकर उसके सभापति चुने गये थे, लेकिन डाक्टर अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत समितिको अस्वीकार प्रतीत हुआ जिसके कारण वह अधिवेशन ही नहीं किया गया। यह बात विचारणीय है कि स्वागत समितिका अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर देना कहाँ तक उचित है कि उनका भाषण उन्हें आपत्तिजनक मालूम पड़ा। जाति-प्रथा और हिन्दू-शास्त्रोंके विषयमें डाक्टर अम्बेडकरका जो विचार है उन्हें तो समिति पहलेसे ही जानती थी। यह भी उसे मालूम था कि वह हिन्दू धर्म

ओर ध्यान गया है; मगर कुछ पंचायतोंमें हरिजन सदस्योंके साथ ऐसा व्यवहार करने का रिवाज आमतौरपर प्रचलित भी हो तो लोकमतको चाहिये कि भविष्यमें ऐसा होना असम्भव कर दिया जाय। स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस बातके जाहिर हो जाने से सर्वसाधारणमें कोई हलचल नहीं मची है। दक्षिणके अखबारोंने भी अपने सम्पादकीय स्तम्भोंमें इस घटनाकी, जो इतनी वेहूदी है कि जिसकी सख्त निन्दा होनी चाहिये, कोई चर्चा नहीं की, ऐसा मालूम पड़ता है। वे सज्जन धन्यवादके पात्र हैं कि मुझे सूचित कर के उन्होंने 'हिन्दू'के इस पैराग्राफको विस्मृतके गर्त्तसे निकाल लिया है।

यह व्यवहार न केवल बर्बरतापूर्ण है, बल्कि मैं समझता हूँ गैर-कानूनी भी है। हरिजन सदस्यको अपने साथी सदस्योंके साथ बैठने का हक कानूनन प्राप्त है। यह कह देने भरसे कोई काम नहीं चलेगा कि अपने अपमानमें हरिजन सदस्यका अपना भी कसूर है; क्योंकि हिन्दुस्तानके दूर-दूरके भागोंमे रहनेवाले वेचारे हरिजनोंकी स्थितिको मैं बखूबी समझ सकता हूँ, जिसके कारण कि इनमें अपने अधिकारोंपर जोर देने का साहस नहीं है और हरिजनोंके लिए दुर्भाग्यवश, देवकोटा काफी दूरकी ही जगह है।

जो कुछ हो, प्रान्तीय और स्थानीय हरिजन-सेवक-संघ हरिजनोंके छोटे-से-छोटे अधिकारोंके लिए यदि वैसे ही उत्सुक हों जैसे बड़े-से-बड़े व्यक्तियोंके लिए तो उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस बातकी जाँच करें जिससे भविष्यमें हरिजनोंके साथ कोई ऐसा दुर्व्यवहार न कर सके; क्योंकि यह अपमान सिर्फ एक सज्जनका नहीं बल्कि सारे हरिजन-समाजका हुआ है।

हरिजन-सेवक

२७ जून, १९३६

हरिजन और चुनाव

बंगलौरसे लौटते हुए उस दिन श्री ए. कालेश्वर राव तथा हरिजन वकील श्री वी० कूर्मियाके साथ मेरी जो बातचीत हुई वह 'हिन्दू'में प्रकाशित हुई है। मित्रोंने मुझसे पूछा है कि 'हिन्दू'के सम्वाददाताने इस बातचीतकी क्या सही रिपोर्ट दी है? अपनी राय खुद अपनी भाषामे देनेके लिए भी उन्होंने मुझे लिखा है।

'हिन्दू'मे उसके संवाददाताकी दी हुई रिपोर्ट जितनी प्रकाशित हुई है वह वास्तवमें सही है। हाँ, उसमें बातचीतके शुरूका अंश छोड़ दिया गया है। श्री कूर्मियाके प्रश्नके उत्तरमे मैंने कहा था कि नागपुरके एम० एल० सी० श्री गवईको मैंने जो लिखित सलाह भेजी है उसपर मैं कायम हूँ, लेकिन अगर हम लोगोंमें पूरा एका न हो और हममें से कुछ व्यक्ति या समुदाय इतने समर्थ न हों कि वे बगैर किसीकी मददके काम कर सकें तो उस सूरतमें हम क्या करें?—श्री कूर्मियाने पूछा।

लोगोंमें ऐसे योग्य हैं। निश्चय ही ऐसे लोगोंमें वह अत्यन्त जिद्दी स्वभावके हैं। ईश्वरकी कृपा समझो जो बड़े नेताओंमे ऐसे विचारके वही अकेले हैं और अब भी वह एक बहुत छोटे अल्पमतके ही प्रतिनिधि हैं; मगर जो कुछ वह कहते हैं, कम या ज्यादा जोशके साथ वही बातें दलित जातियोंके और नेता भी कहते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि दूसरे—जैसे, रायबहादुर एम० ए० सी० राजा और दीवान बहादुर श्री निवासन—हिन्दू-धर्मको छोड़ने की धमकी नहीं देते है, पर उसीमें इतनी गुंजाइश देखते है कि जिससे हरिजनोंके विशाल जन-समूहको शर्मनाक कष्ट भोगना पड़ रहा है उसकी क्षति पूर्त्ति हो जायगी।

पर उनके अनेक नेता हिन्दू-धर्मको नहीं छोड़ते। इसी बातसे हम डाक्टर अम्बेडकरके कथनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। सवर्णोंको अपने विश्वास और आचरणमें सुधार करना ही पड़ेगा। इसके अलावा सवर्णोंमें जो लोग अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर शास्त्रोंकी प्रामाणिक व्याख्या कर सकें उन्हें शास्त्रोंकी यथार्थता आशयका भी स्पष्टीकरण करना होगा। डाक्टर अम्बेडकरके दोषारोपसे जो प्रश्न उठते हैं वे ये हैं—

(१) शास्त्र क्या है (२) आज जो कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोंका अभिन्न भाग है या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मान कर छोड़ देना चाहिये ?

(३) इस तरह काटछाँट कर जिस अंशको हम स्वीकार करें वह अस्पृश्यता, जाति प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अन्तर्जातीय विवाहोंके बारेमें क्या कहता है ? (इन सब प्रश्नोको अपने निबन्धमें डाक्टर अम्बेडकरने काफी योग्यता-पूर्वक छानबीन की है)।

इन प्रश्नोंका मेरा खुद अपना उत्तर क्या है यह तथा डाक्टर अम्बेडकरके निबन्धमें जो (कम से-कम कुछ) स्पष्ट त्रुटियाँ हैं उनके विषयमे अपना वक्तव्य अगले अंकके लिए सुरक्षित रखता हूँ।

हरिजन-सेवक
११ जुलाई, १९३६

❀

छोड़ने का बिलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके हैं। डाक्टर अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया उससे कम ही उनसे उम्मीद ही नहीं की जा सकती थी, लेकिन समितिने, ऐसा मालूम पड़ता है, एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुननेसे जनताको वंचित कर दिया, जिसने कि समाजमे अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है। भविष्यमें वह वाना क्यों न धारण करें, मगर डाक्टर अम्बेडकर ऐसे आदमी नहीं है जो अपनेको भूल जाने देंगे।

डाक्टर अम्बेडकर स्वागत समितिसे यों हार जानेवाले नहीं थे। उसके इनकार कर देने पर, उसके जवाबमे उन्होंने उस भाषणको अपने ही खर्चेसे प्रकाशित किया है। उन्होंने आठ आने उसकी कीमत रखी है, लेकिन मैं उनसे कहूँगा कि वह उसे घटा कर दो आना या कम-से-कम चार आना कर दें तो ठीक होगा।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। रूढ़िग्रस्त लोग भी इसे पढ़ कर लाभ उठावेंगे, लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिये कि भाषणमें एतराज करने लायक कोई बात नहीं है। इसे तो पढ़ना ही इसलिए चाहिये क्योंकि इसमें गहरे एतराजकी गुंजाइश है। डाक्टर अम्बेडकर तो मानो एक चुनौती हैं। हिन्दूकी तरह पलने और एक जबरदस्त हिन्दू द्वारा शिक्षित किये जाने पर भी, सवर्ण कहे जानेवाले हिन्दुओं द्वारा अपने और अपनी जातियोंके साथ होनेवाले व्यवहारसे वे इतने निराश हो गये हैं कि वह न केवल उन्हें बल्कि उस धर्मको भी छोड़ने का विचार कर रहे हैं जो उनकी तथा और सबकी संयुक्त विरासत है। उस धर्मको मानने का दावा करनेवाले एक भागके कारण, सारे धर्मसे ही वह निराश हो गये हैं।

लेकिन इसमें कोई अचरजकी बात नहीं, क्योंकि किसी प्रथा या संस्थाका निर्णय कोई उसके प्रतिनिधियोंके व्यवहारसे ही तो कर सकता है। अलावा इसके, डाक्टर अम्बेडरको मालूम पड़ा है कि सवर्ण हिन्दुओके विशाल वहुमतने अपने उन सहधर्मियोंके साथ, जिन्हें कि जिन्होंने अस्पृश्य शुमार किया है, न केवल निर्दयता या अमानुषिकताका ही व्यवहार किया है, बल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोंके आदेशको बनाया है और जब उन्होंने शास्त्रोंको देखना शुरू किया तो उन्हें मालूम पड़ा कि सचमुच उनमें अस्पृश्यता और उनके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोंकी काफी गुंजाइश है। शास्त्रोके अध्याय और श्लोक उद्धृत करके उन्होंने तिहरा दोषारोप किया है—(१) उनमे निर्दय व्यवहार करने का आदेश है, (२) ऐसा व्यवहार करनेवालोंके व्यवहारका धृष्टतापूर्वक समर्थन किया गया है और (३) परिणामस्वरूप यह अनुसन्धान किया गया है कि यह समर्थन शास्त्र-विहित है।

ऐसा कोई भी हिन्दू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा समझता है इस दोषारोपकी गम्भीरताकी उपेक्षा नहीं कर सकता और फिर भी इस तरह निराश होनेवाले अकेले डाक्टर अम्बेडकर ही नहीं हैं। वह तो उनमें एक ऐसे व्यक्ति मात्र हैं जो इस वातके प्रतिपादनमे कोई समझौता करना भी चाहते और ऐसे

है कि मुखतलिफ काम-धन्धे करनेवालोंकी—यहाँ तक कि ब्राह्मणों तक भी—कम ईर्में परस्पर भेद हो। यह भी मैं देखता हूँ कि गिरावटके इन दिनोंमें भी ऐसे सच्चे ब्राह्मण मौजूद हैं जो स्वेच्छापूर्वक उनको दी जानेवाली शिक्षापर निर्वाह करते हुए उनके पास जो आध्यात्मिक निधि है उसे उदारतापूर्वक दूसरोंको प्रदान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थाका उसके उस हास्यजनक विकृत चित्रसे निर्णय करना गलत और अनुचित है जो कि हमें उन लोगोंके जीवनमें मिलता है जो दावा तो यह करते हैं कि हम अमुक वर्णके हैं किन्तु उसके एकमात्र प्रवर्त्तक नियमको खुले तौरपर भंग कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थामें ऐसी कोई बात है ही नहीं जिससे अस्पृश्यताको आधार मिलता हो। हिन्दू-धर्मका तो सार इसमें है कि सत्यको ही एक मात्र ईश्वर मानता है और अहिंसाको उसने मानव जातिके लिए अटल नियमके रूपमें साहसके साथ स्वीकार किया है।

मैं यह जानता हूँ कि हिन्दू-धर्मकी मैंने जो व्याख्या की है उसपर डाक्टर अम्बेडकरके अलावा और भी बहुत-से लोग आपत्ति करेंगे; मगर इससे मेरी स्थितिपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि यह तो एक ऐसी व्याख्या है जिसे मैं कोई आधी सदीसे मान रहा हूँ और जिसके अनुसार अपनी पूरी योग्यताके साथ मैंने अपने जीवनको व्यवस्थित बनाने की कोशिश की है।

मेरी रायमें डाक्टर अम्बेडकरने जो सबसे बड़ी गलती की वह उन्होंने ऐसे उद्धरण चुने हैं जिनकी प्रामाणिकता और महत्ता संदिग्ध है और ऐसे पतनोन्मुख हिन्दुओंकी दशाका वर्णन किया है कि जो उस धर्मके उपयुक्त नमूने नहीं हैं जिसे कि वे बड़े बुरे रूपमें गलत तरीकेपर बता रहे हैं। डाक्टर अम्बेडकरने जो स्टैन्डर्ड रखा है उससे वे देखें तो सम्भवतः आजकलका कोई जीवित धर्म खरा न उतरे।

अपने योग्यतापूर्ण भाषणमें विद्वान डाक्टरने अपने मामलेको जरूरतसे ज्यादा सिद्ध किया है, लेकिन जिस धर्ममें चैतन्य, ज्ञानदेव, तुकाराम, तिरुवल्लुर, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र ठाकुर, विवेकानन्द तथा अन्य बहुत-से ऐसे लोग हुए जिनके नाम आसानीसे लिए जा सकते हैं। क्या, जैसा डाक्टर अम्बेड-करके भाषणमें सिद्ध किया गया है, उसमें कोई अच्छाइयाँ बिलकुल है ही नहीं? किसी धर्मका निर्णय उसके सबसे बुरे नमूनोंसे नहीं बल्कि उसकी सर्वोत्तम कृतियोंसे ही किया जा सकता है; क्योंकि उसे और एक मात्र उसे ही ऐसा स्टैन्डर्ड माना जा सकता है जिससे आगे न जा सकें तो भी उस तक पहुँचने की तो हम आकांक्षा करें ही।

हरिजन सेवक

१८ जुलाई, १९३६

❀

डाक्टर अम्बेडकरका दोषारोप

वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ और रामायण तथा महाभारत सहित सारे पुराण हिन्दुओंके शास्त्र हैं, लेकिन यह ऐसी सूची नहीं है जिसमें कोई घटा-बढ़ी ही नहीं हो सकती। हरएक युग और शताब्दी तकने इसमें वृद्धि की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छपी हुई या हस्तलिखित मिलनेवाली हरएक चीज शास्त्र नहीं है। उदाहरणके लिए स्मृतियोंमें बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें ब्रह्म-वाक्य हर्गिज नहीं माना जा सकता। यथार्थतः जो शास्त्र कहे जाते है उनका सम्बन्ध मूल तत्त्वोंसे ही हो सकता है और वे उसी हृदयको अपील कर सकते हैं जिनके ज्ञान-नेत्र खुल गये हों। ऐसी किसी बातको ब्रह्म-वाक्य नहीं माना जा सकता जिसकी तर्क-बुद्धि द्वारा परीक्षा न हो सके या आध्यात्मिक रूपमे जिसका अनुभव न किया जा सकता हो; और फिर शास्त्रोंका परिष्कृत संस्करण आपके पास हो तो भी आपको उसकी व्याख्याकी जरूरत पड़ेगी ही। सर्वोत्तम भाष्यकार कौन माना जायगा? निश्चय ही कोरे विद्वान सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार नहीं माने जा सकते। विद्वता तो होनी ही चाहिये, लेकिन उसपर धर्मका आधार नहीं होता; उसका आधार तो सन्तों और ऋषियोंके अनुभवों, उनके जीवन और उपदेशोंपर होता है। जब शास्त्रोंके अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण सब भाष्य बिलकुल विस्मृत हो जायँगे ऋषियों और सन्तोंके अनुभव तो तब भी स्थिर रहेंगे और आगेके अनेक युगो तक स्फूर्ति प्रदान करते रहेंगे।

जातिका धर्मसे कोई सरोकार नहीं है। यह एक ऐसी प्रथा है जिसके मूलका मुझे पता नहीं और न अपनी क्षुधा-तृप्तिके लिए मुझे उसके जानने की ही कोई जरूरत है, लेकिन यह मैं जानता हूँ कि आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय—इन दोनों ही प्रकारकी प्रगतियोंके लिए वह हानिकारक है। वर्ण और आश्रयका जात-पाँतमे कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्ण-व्यवस्थासे तो हमें यही शिक्षा मिलती है कि हममें से हरएकको अपने कैदामी काम धन्धेके द्वारा अपनी जीविका कमानी चाहिये। यह हमारे अधिकारोको नहीं बल्कि कर्त्तव्योंको स्पष्ट करता है। इसमे तो आवश्यक रूपसे उन्हीं काम धन्धोंका उल्लेख हो जो हमें केवल मानव-हितकी ओर ही ले जाते हैं। इसका यह भी अभिप्राय है कि कोई काम धन्धा न तो बहुत नीचा है और न कोई बहुत ऊँचा। सभी अच्छे, जायज और दर्जेमे बिलकुल समान हैं। आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाले ब्राह्मणसे ले कर मैला उठानेवाले भंगी तकके सब काम समान हैं और ईश्वरके सामने उन सभी का समान महत्व है और ऐसा मालूम पड़ता है कि एक समय ऐसा था जब मनुष्योंको उन सबका समान ही प्रतिफल मिलता था। दोनोको अपने गुजारे भरके लिए मिलने का हक था—उससे अधिक नहीं, और गाँवोंमे तो वस्तुत. अब भी इस सुन्दर नियम-प्रवृत्तिकी थोड़ी-बहुत धुँधली-सी रेखाएँ नजर आती हैं। ६००की आबादीके गाँवमे रहते हुए मुझे यह नहीं मालूम पड़ता

है कि मुखतलिफ काम-धन्धे करनेवालोंकी—यहाँ तक कि ब्राह्मणों तक भी—कसाईमें परस्पर भेद हो। यह भी मैं देखता हूँ कि गिरावटके इन दिनोंमे भी ऐसे सच्चे ब्राह्मण मौजूद हैं जो स्वेच्छापूर्वक उनको दी जानेवाली शिक्षापर निर्वाह करते हुए उनके पास जो आध्यात्मिक निधि है उसे उदारतापूर्वक दूसरोंको प्रदान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थाका उसके उस हास्यजनक विकृत चित्रसे निर्णय करना गलत और अनुचित है जो कि हमे उन लोगोंके जीवनमे मिलता है जो दावा तो यह करते हैं कि हम अमुक वर्णके हैं किन्तु उसके एकमात्र प्रवर्त्तक नियमको खुले तौरपर भंग कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थामें ऐसी कोई बात है ही नहीं जिससे अस्पृश्यताको आधार मिलता हो। हिन्दू-धर्मका तो सार इसमें है कि सत्यको ही एक मात्र ईश्वर मानता है और अहिंसाको उसने मानव जातिके लिए अटल नियमके रूपमें साहसके साथ स्वीकार किया है।

मैं यह जानता हूँ कि हिन्दू-धर्मकी मैंने जो व्याख्या की है उसपर डाक्टर अम्बेडकरके अलावा और भी बहुत-से लोग आपत्ति करेंगे; मगर इससे मेरी स्थितिपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि यह तो एक ऐसी व्याख्या है जिसे मैं कोई आधी सदीसे मान रहा हूँ और जिसके अनुसार अपनी पूरी योग्यताके साथ मैंने अपने जीवनको व्यवस्थित बनाने की कोशिश की है।

मेरी रायमें डाक्टर अम्बेडकरने जो सबसे बड़ी गलती की वह उन्होंने ऐसे उद्धरण चुने हैं जिनकी प्रामाणिकता और महत्ता संदिग्ध है और ऐसे पतनोन्मुख हिन्दुओंकी दशाका वर्णन किया है कि जो उस धर्मके उपयुक्त नमूने नहीं है जिसे कि वे बड़े बुरे रूपमें गलत तरीकेपर बता रहे हैं। डाक्टर अम्बेडकरने जो स्टैन्डर्ड रखा है उससे वे देखे तो सम्भवतः आजकलका कोई जीवित धर्म खरा न उतरे।

अपने योग्यतापूर्ण भाषणमे विद्वान डाक्टरने अपने मामलेको जरूरतसे ज्यादा सिद्ध किया है, लेकिन जिस धर्ममे चैतन्य, ज्ञानदेव, तुकाराम, तिरुवल्लुर, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र ठाकुर, विवेकानन्द तथा अन्य बहुत-से ऐसे लोग हुए जिनके नाम आसानीसे लिए जा सकते हैं। क्या, जैसा डाक्टर अम्बेडकरके भाषणमें सिद्ध किया गया है, उसमे कोई अच्छाइयाँ बिलकुल है ही नहीं? किसी धर्मका निर्णय उसके सबसे बुरे नमूनोंसे नहीं बल्कि उसकी सर्वोत्तम कृतियोंसे ही किया जा सकता है; क्योंकि उसे और एक मात्र उसे ही ऐसा स्टैन्डर्ड माना जा सकता है जिससे आगे न जा सकें तो भी उस तक पहुँचने की तो हम आकांक्षा करें ही।

हरिजन-सेवक

१८ जुलाई, १९३६

हरिजन-सेवक संघ और म्युनिसिपल सहायता

हरिजन-सेवक संघके मन्त्री लिखते हैं—

"धूलियाकी म्युनिसिपैलिटीने गत वर्ष हरिजन-सेवक सघको जो सहायता दी उसपर सरकारी आडिटरोंने एतराज किया है। उनका कहना है कि हरिजन-उद्धारके कामका उद्देश्य शिक्षणात्मक नहीं हैं, इसलिए म्युनिसिपैलिटी उसके लिए खर्च नहीं कर सकती। यह एक गभीर प्रश्न है जिसका हल होना आवश्यक है।

इसमें तो यह भी मान लिया गया है कि विद्यार्थियोंके छात्रावास भी शिक्षणात्मक सस्थाएं नहीं हैं। यह एक आश्चर्यजनक व्याख्या है और जल्दी ही यह दुरुस्त न हुई तो इससे सघ तथा अन्य सस्थाओंके कामोंको बडी हानि होगी"।

जो बाते ऊपर कही गयी हैं वह अगर सच है तो जरूर कहीं-न-कहीं कुछ गलतफहमी हुई है। यह बात तो विवादास्पद हो सकती है कि हरिजन-उद्धारका प्रयत्न शिक्षणात्मक कहा जा सकता है या नहीं, लेकिन जब हरिजनोके लिए कोई स्कूल खोला जाय या विद्यार्थियोंके लिए छात्रावास बनाया जाय तो ये दोनों निश्चय ही शिक्षणात्मक काम हैं—और उस हालतमें म्युनिसिपैलिटी द्वारा उन संस्थाओंको आर्थिक सहायता मिलने में कोई एतराज नहीं होना चाहिये।

मेरा खयाल है कि सरकारी आडिटरोंने जो एतराज किये हैं वे स्थितिको गलत रूपमें समझने के ही कारण किये गये हैं। यह हो सकता है कि धूलिया म्युनिसिपैलिटीने 'हरिजनोद्धार' के नामपर सहायता मंजूर की हो और उसे शिक्षा-संस्थाओंके और किसीको सहायता देने का अधिकार न होने के कारण 'हरिजन उद्धार'के नामपर दी जानेवाली सहायताको शिक्षा-सम्बन्धी सहायतामें शुमार न किया जा सकता हो। अतः इस सम्बन्धमे और प्रकाश डालने की जरूरत है। जबतक इस सम्बन्धकी सब बाते मालूम न हों। इस बारेमें और कोई टीका-टिप्पणी न करना ही ठीक होगा।

हरिजन-सेवक
१८ जुलाई, १९३९



सेलममें पानीका कसाला

सेलम जिलेके हरिजन सेवक-संघके मन्त्री लिखते हैं—

"यह जिला खुश्क है और सवर्ण हिन्दुओंकी मालिकीके जो कुए हैं उनसे हरिजनोंको पानी नहीं भरने दिया जाता। अलबत्ता, गाधीआश्रमने दो तीन गावोंमे उनके लिए कुओंकी व्यवस्था की है। अवगीर गावमे तो अब हरिजनोंको रेलके इजनपर निर्भर रहना पड़ता है। वह जब स्टेशनपर आता है तब वे उससे पानी पीने के लिए लेते हैं। इजन ड्राइवर कृपा कर के थोड़ा पानी दे देता है। उसीपर उन्हें सन्तोष करना पड़ता है। मगलपुरम् नामका एक और ऐसा स्थान है जहा पानीकी किल्लत बहुत ज्यादा है"।

इससे एक दिल हिला देनेवाली स्थितिका पता लगता है। कोई खानगी संस्था तो कभी इस भयानक दुर्दशाका उपाय कर ही नहीं सकती और सेलम जिलेमे तो वैसे ही पानीका बड़ा कसाला रहता है, फिर इसके साथ जब इसके बाशिन्दोंके एक बड़े भागमें साधारण एक भाई-चारेका भाव भी न रहे तब तो दुरावस्था और भी असह्नीय हो जाती है। सेलम जिलेके हरिजनोंके साथ यही हुआ है। क्या वह जिला बोर्डका प्रथम कर्त्तव्य नहीं है कि वह समाज द्वारा सबसे ज्यादा उपेक्षित किन्तु सबसे ज्यादा उपयोगी सेवक हरिजनोंके लिए नियमित रूपसे पानी मिल सकने की व्यवस्था करें? और अब तो जब कि मद्रास सरकारने एक ऐसा मुहकमा खोल रखा है जो हरिजनों-जैसी श्रेणियोंकी मुसीबतोंका इलाज करने के लिए ही है, हरिजनोंके कुछ पानी मिलने में दिक्कत होने की दिन-दिन कम-से-कम शिकायतें हमारे सामने आनी चाहिये? लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हरिजन-सेवक अपनी सतर्कता कम कर दें या दानी लोग निजी तौरपर हरिजनोंके लिए पानीकी व्यवस्था करने से लापरवाह हो जायँ। हरिजनोंके लिए पानीका प्रबन्ध तो होना ही चाहिये। फिर वह किसी भी जरियेसे क्यों न हो और यह होगा तभी जब कि सभी साधन इस दुर्दशाको दूर करने मे जुटा दिये जायँ।

हरिजन-सेवक
२५ जुलाई, १९३६



भूल-सुधार

'सच हो तो बर्बरतापूर्ण है' शीर्षक मेरे लेखके सम्बन्धमे देवकोहाईके पंचायत बोर्डके अध्यक्ष लिखते है—

> गत महीनेकी २७ तारीखके 'हरिजन' में आपका लिखा हुआ 'सच हो तो बर्बरतापूर्ण है' लेख मैंने पढ़ लिया है। उसमे जिस पचायत-बोर्डके सदस्यके साथ दुर्व्यवहार करने की बात कही गयी है। उस बोर्डका मैं अध्यक्ष हूँ। इसलिए मैं इस सम्बन्धके सच्चे तथ्योंको आपके सामने रखने के लिए तुरन्त यह पत्र लिख रहा हूँ।
>
> बोर्डकी बैठकोंमें हरिजन सदस्य दूसरे सदस्योंके साथ बैठे, इसपर मैंने या बोर्डके अन्य किसी भी सदस्यने कभी एतराज नहीं उठाया। बल्कि हरएक बैठकमें उनसे यह प्रार्थना की गयी है कि वे हमारे साथ बैठा करें। इधर चार महीनेके अर्सेमें बोर्डकी जो बैठकें हुई हैं, उनमें से कुछ-एकमें उन्होंने मेरी प्रार्थनाको मान ली है।
>
> यह होते हुए भी कराईकुडीकी जिला कांग्रेस कमेटीमे यह बात किसीकी फैलायी मालूम होती है कि इस बोर्डके हरिजन सदस्यको दूसरे सदस्योंके साथ नहीं बैठने दिया जाता

साफ-सुथरे रहे, पर वे ईसाई मैले-कुचैले ही हैं। हम चाहते हैं कि हमारे आदमी शराब छोड़ दें, पर ये ईसाई शराब पीते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे आदमी सहचारिता सीखें, पर ये ईसाई दूसरोंकी बनिस्बत ज्यादा सदाचारी नहीं हैं। हम चाहते हैं कि हमारे आदमी मिल-जुल कर रहें, पर इन ईसाइयोंमें तरह तरहके मतभेद और दल बन्दियाँ मौजूद हैं। यह तो ईसाई-गिरजाघरोंके लिए इस बातका बड़ा भारी आवाहन है कि वे आत्म-निरीक्षण और प्रायश्चितकी ओर ध्यान दें। यह ठीक है कि ईसामसीह सबको अपनी छत्रछायामें आने के लिए आकर्षित करता है, मगर हमें ईसाइयोंके आचरणसे जिस ईसामसीहका बोध होता है वह तो कभीको आकर्षित नहीं करता"।

लेकिन मिस्टर हरिस अलेजेण्डरको तो हिन्दुस्तानका कहीं अच्छा ज्ञान है; इसलिए वे इससे भी आगे बढ़ कर कहते है—

"तस्वीरका एक दूसरा भी स्वरूप है जिसे हमें हर्गिज दरगुजर नहीं करना चाहिये। गाधीजीके साप्ताहिक पत्र 'हरिजन' को जैसे-जैसे हर सप्ताहमें पढ़ता जाता हूँ उससे मुझे उस पुरुषार्थपूर्ण और निरन्तर होनेवाले आन्दोलनका पता लगता जाता है जिसमें कि वह तथा हिन्दू अनुयायी जो ज्ञानसे लगे हुए हैं, और दलित जातियोंके लिए तथा उनके साथ उनकी मुक्तिकी लड़ाई लड़ रहे हैं, मुझे लगता है कि उनके इस प्रयत्नमें रुकावट डालनेवाली कोई भी बात करना एक तरहका जुर्म ही होगा"।

मिस्टर गॉर्डन हेल्स्टडने 'करेण्ट हिस्टरी' के जूनके अंकमे एक दूसरे ही दृष्टि-कोणसे इस प्रश्नपर विचार किया है। उन्होंने हरिजन-उद्धारके लिए इन तीन उपायोंपर विचार किया है,

(१) हिन्दू-धर्मका परित्याग, (२) पृथक राजनीतिक प्रतिनिधित्वकी माग और (३) समझदार हिन्दुओंका प्रायश्चितकी भावनासे आत्म-शुद्धि तथा आत्म-त्यागके लिए प्रवृत्त होना।

ईसाइयोंके सामूहिक आन्दोलनका सप्रमाण अध्ययन करनेवाले डाक्टर वाटसन पिकेटके शब्द उद्धृत करते हुए वह कहते हैं—

"यह दावा करने से तो कि, जाहिरा तौरपर ईसाई-धर्म ग्रहण कर लेने से तुरन्त ही दलितके भेद-भाव दूर हो जायगे, (अस्पृश्यतासे) मुक्तिके काममें मदद मिलने के बजाय और बाधा ही पड़ेगी"।

उन्होंने और भी ताजा प्रमाण दिया है और क्राइस्ट चर्च कालेजके प्रेसिडेण्ट डाक्टर चटर्जीके भाषणसे यह उद्धरण दिया है—

सयुक्त प्रान्तमें ईसाइयोंकी कुल सख्या १,७३,००० है। इनमें से १,२५,००० से अधिक ग्रामीण ईसाई हैं जो अस्पृश्य जातियोंमे से हैं और उनकी हालत वैसी ही दयनीय है जैसा कि उन लोगोंकी है कि जिन्हें छोड़ कर उन्होंने ईसाई-धर्म ग्रहण किया है। अनेक स्थानोंपर तो उन्हें मनुष्योंके जन्म-सिद्ध अधिकार तक प्राप्त नहीं हैं। वे कुओंसे न तो पानी भर सकते हैं न उनके बच्चे सार्वजनिक स्कूलोंमें पढने जा सकते हैं और ईसाई-धर्म ग्रहण करने से उनपर अतिरिक्त रूपसे और भी आर्थिक तथा सामाजिक रुकावटें लग गयी हैं"।

साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि मुसलमान हो जाने से भी उनकी इन रुकावटोंमें कोई कमी नहीं हुई। इसके बाद उन्होंने बताया कि दूसरे उपायमें कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ हैं और कहा है कि—

"भारतकी शान्त-क्रान्ति या मुक्तिका तीसरा उपाय अर्थात सामूहिक शिक्षा और नव-रचना और अपने राष्ट्रीय आर्थिक जीवनके पुनर्निमाण द्वारा अस्पृश्यता दूर करने के लिए अस्पृश्योंको सवर्णोंके साथ मिल कर काम करने का आवाहन करना ही एक मात्र ऐसा मार्ग मालूम पड़ता है जिसपर भारतकी एकताको कायम रखते हुए अस्पृश्यतासे मुक्ति पाने की आशा कर सकते हैं"।

इस प्रकार जब कि पिगॉर्ड हेल्स्टेड बाहरी प्रयत्नकी निरर्थकता और उससे होनेवाली सम्भावित शासनका निर्देश करते हैं, मिस्टर हरिस अलेग्जेण्डर ठेठ मूलपर पहुँचे हैं और हरिजनोंको अपने धर्ममे मिलने की प्रवृत्तिको उन्होंने 'जुर्म' बताया है। लेकिन अगर मिशनरियोंकी ओरसे होनेवाला यह प्रयत्न जुर्म है तो हरिजनोंको एक भड़के हुए भाग द्वारा आत्म-शुद्धिके आन्दोलनकी उपेक्षा करना और उसके लिए हो रहे प्रयत्नोंकी कमकदरी करना या उन्हें मुराद तक न पहुँचने देना एक तरहका आत्मघात है और आत्मघात चाहे अपराध न हो, पर पाप तो निश्चय ही है।

यह तो साफ जाहिर है कि अन्याय और अत्याचारकी घटनाएँ अब भी जहाँ-तहाँ घटती रहती हैं, पर क्या यह बात भी सही नहीं है कि हमारे हरिजन-आन्दोलनके शुरू होने से पहले ऐसी-ऐसी घटनाएँ दूर-दूरके गाँवोंमें इतनी ज्यादा हुआ करती थीं कि जिनका कोई हिसाब नहीं और उनकी तरफ कोई इतना अधिक ध्यान भी नहीं देता था और यह भी साफ जाहिर है कि यह प्रायश्चित या आत्म-शुद्धिका आन्दोलन हिन्दुस्तानके दूर-दूरके कोने तक पहुँच गया है। काठियावाड़में अभी-अभी तक अस्पृश्यता काफी अधिकार जमाये हुए है, पर वहाँके भी एक सुदूर गाँवसे मुझे यह पत्र मिला है—

डाक्टर अम्बेडकरपर 'हरिजन'में आपने जो लेख लिखा था उसमें आपने यह बतलाया था कि किस-किस तरह तंग किये गये; साथ ही आपने सोपालावाली हालकी उस घटनाका भी उल्लेख किया था, जहाँ एक ड्राइवरने हरिजनोंको लारीमे बैठाने से इनकार कर दिया था और उन बेचारोंसे पेशगी पैसा ले कर चम्पत हो गया था। आपको मैं एक ताजी मिसाल दूँ जो सोपालावाली मिसालसे उलटी है—और क्या आप उसे डाक्टर अम्बेडकर तक पहुंचा देंगे? वारसाड़ामे एक हरिजनने, जो जातिका चमार और बुनकर है, अपनी लड़कीकी शादी की थी। मेहमानोंके लिए उसने कुछ गद्दे अमरेलीसे मगवाये थे। शादीके बाद अब उसे वे गद्दे वापस अमरेली भेजने थे। गाँवके एक सवर्ण किसानने, जिसका इस हरिजनके साथ खासा मित्रताका संबन्ध था, उसे अपनी बैलगाड़ी दे दी और एक पैसा भी उससे भाड़ेका नहीं लिया। इतना ही नहीं, वह खुद उसके तीन हरिजन मेहमानोंको अपनी गाड़ीमें बिठा कर अमरेली तक पहुंचाने गया। रास्तेमें मैं मिल गया और मुझे भी उसने गाड़ीमें बिठा लिया। गाड़ीमें अब इतनी सवारियाँ थीं—एक तो वह सवर्ण किसान

था, एक और सवर्ण था और मैं था तथा तीन हरिजन। उनमे से एक हरिजन बम्बईमें एक स्कूलका अध्यापक था। अस्पृश्यतापर हमलोगोंमें चर्चा होने लगी। अन्तमें यह तय हुआ कि इस हरिजन अध्यापकके मार्फत डाक्टर अम्बेडकरके कान तक यह बात पहुचा दी जाय कि हमारे काठियावाड़में ऐसे भी सवर्ण हैं जो विना भाडा लिये हरिजनोंको खुद उनके घर तक पहुंचाने के लिए तैयार हैं और यहाँ जबतक टैक्सी-ड्राइवर हरिजनोंको मोटर-लारीमें बिठाने को राजी नहीं होता, तबतक उसे लाइसेन्स नहीं मिल्ता। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि समय अब बड़ी तेजीसे बदलता जा रहा है"।

इससे भी सुन्दर पत्र मेरे पास एक और आया है। वह खेड़ा जिलेके एक ब्राह्मण सज्जनका लिखा है। एक ग्राम-पाठशालामें वह अध्यापक है। अस्पृश्यताको उसने दूर कर दिया और अपने वेतनमें से एक नियत रकम हर महीने हरिजन-फंडमें भेजा करता है—

इस वर्ष मैंने जो अस्पृश्यता-निवारणका कार्य किया है उसकी सक्षिप्त रिपोर्ट आपकी सेवामें भेज रहा हूँ। कुछ समयसे यह रिवाज-सा हो गया है कि हरिजन मैलेकी टोकरियाँ लिये हुए जब अपने घर जाने लगते हैं तब लोग उन्हें अनाज देते हैं। मैंने इस घृणित रिवाजको बन्द कर दिया। अपनी भगिनसे मैंने दिनमें किसी भी समय नहा-धो कर आने के लिए कहा। वह रोज तीसरे पहर नहा-धो कर आने लगी और उसे इससे प्रसन्नता हुई। उसके रोज इस तरह आने का लोगोंपर बड़ा अच्छा असर पड़ा है। करीब-करीब सभीने इस गन्दे रिवाजको बन्द कर दिया और भगियोंको अब सफाईके साथ अनाज मिलने लगा। मैंने देखा कि जिन बर्तनोंमे ये लोग मल-मूत्र उठा कर ले जाते थे उनमें ढक्कन नहीं है। म्युनिसिपैलिटीके प्रेसिडेण्टने मेरे कहने पर फौरन अच्छे ढक्कनदार टीन मगवा दिये। इस वर्ष मैंने अपने दो लड़कोंका 'यज्ञोपवीत' सस्कार किया। इस अवसरपर दो हरिजन-बालकोंको बुला कर उन्हें नयी खादीका एक जोड़ा देने का मैंने निश्चय किया। लड़कोंकी माँ पहले तो राजी हो गयी, पर आखिरी दिन उसने कहा, 'माफ कीजिये, मै अपने बच्चोको नहीं ला सकूगी'। उसके यह शक था कि उसके बालकोंको नये कपड़े दे कर शायद मैं अपने लड़कोंपर से कोई 'अलाय-बलाय' उतारना चाहता हूँ। इन कपड़ोंमें जरूर कुछ-न-कुछ मत्र-टोना होगा। उसे मैंने कितना समझाया कि यह खादी तो मैं इस मगल अवसरके उपलक्ष्यमें दे रहा हूँ, पर उसने मेरी एक न सुनी। तब जिस गावमें मैं पढता हूँ वहींके दो हरिजन बालकोंको जा कर मैंने वह खादी दी। सद्भाग्यसे वे इस तरहके मूढ़ विश्वासी नहीं थे। हरिजनोंको मैंने यज्ञोपवीत सस्कारके दिन प्रेमसे बुला कर अच्छा स्वच्छ भोजन दिया। वही भोजन जो कि मैंने अपने दूसरे मेहमानोके लिए तैयार कराया था। मेरा अनुकरण मेरे एक मेहमानने भी इसी तरहके शुभ अवसरपर किया। महाराजा गायकवाड़की हीरक-जयन्तीके दिन मेरे गावमें जो सभा हुई उसका सभापति बनने के लिए मुझसे कहा गया। मैं जब वहा गया तो देखता क्या हूँ कि बेचारे हरिजन बाहर धूपमे बैठे हुए हैं। मैंने कहा कि जबतक हरिजन भाइयोंको सवर्ण हिन्दुओंके साथ बैठने के लिए नहीं कहा जायगा, तबतक मैं इस सभाका अध्यक्ष कैसे बन सकता हूँ? इस मागलिक अवसरपर हरिजन बच्चोंको खादीका एक-एक टुकड़ा और एक-एक टोपी बाटनी थी। प्रबन्ध यह किया गया था कि किसी अहिन्दूके

हाथसे ये चीजें तकसीम करा दी जायं। मैंने कहा कि यह तो नहीं होने दूंगा। मेरी बात उन्होंने मान ली। सब हरिजन मण्डपमें सवर्णोंके साथ बैठाये गये और मैंने खुद अपने हाथसे बच्चोंको पारितोषिक बांटा। हरिजन-बस्तीमें मैं बराबर नियमित रूपसे जाता हूँ। उनकी दारूखोरीकी लत छुड़ाने मे मुझे धीरे-धीरे सफलता भी मिल रही है। महात्माजीके इस कथनमे तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिन मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए बन्द हो, उनमें भगवानका वास नहीं है, पर गाधीजीके प्रति उचित आदर-भाव रखते हुए भी मै ऐसे मन्दिरमें इसलिए जाता हूँ कि मन्दिरोंमें जानेवाले सवर्ण हिन्दुओंको मै वहीं समझा सकता हूँ, अन्यत्र नहीं और अगर मैं मन्दिरमें जाना बन्द कर दूँ तो इसका यह अर्थ हुआ कि मैं इन लोगोंमें प्रचार करने का अपना अधिकार खुद ही छोड़ देता हूँ। वे मुझे नास्तिक समझ कर वहासे निकाल-बाहर कर देंगे"।

इस तरहकी मिसालें और भी दी जा सकती हैं। जिन हरिजन-वर्गोंकी सेवा करने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं, उनकी तरफसे अगर हमें समर्थन और सहयोग मिलता रहे तो ऐसे अनेक उदाहरण हमें आसानीसे मिल सकते हैं।

हरिजन-सेवक
१ अगस्त, १९३६



एक जरायम पेशा जाति

इस पृथ्वीपर शायद ऐसी जगहें बहुत नहीं हैं जहाँ हिन्दुस्तानकी तरह जुर्म करना ही कई जातियोंका पेशा हो और धर्मके आवरणमें वह पनपता रहता हो। इसीके कारण हमारे देशमें कानूनन जरायम पेशा (क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट) नामका एक कानून भी बना हुआ है। हिसार जिलेके अहेरी भी ऐसे ही एक जाति माने जाते हैं। ७ जूनको गॉगन खेड़ी गॉवमें उनका एक सम्मेलन हुआ था जिसके सभापति लाला ठाकुरदास भार्गव थे। इस सम्मेलनमें कोई १००० से ऊपर अहेरी और २०० से अधिक सवर्ण हिन्दू शामिल थे। इसकी जो रिपोर्ट मेरे पास आयी है उससे मालूम पड़ता है कि कुछ लोगोके द्वारा अहेरियोंसे यह कहा गया था कि अगर वे मुसलमान हो जायँ तो उन्हें इस कानूनके अमलसे मुक्त करने में मदद की जायगी और उनपर जरायमपेशाका जो कलंक लगा हुआ है वह दूर हो जायगा; इसलिए अहेरियोंने एक जगह एकत्र हो कर हिन्दू-धर्मके प्रति अपनी अटल श्रद्धाकी घोषणा की और सरकारसे प्रार्थना की कि वह उन्हें इस जरायमपेशा कानूनके अमलसे मुक्त कर दे।

लेकिन जोशके इन दिनोंमें खाली सम्मेलनों और प्रस्तावोंके सांसारिक

प्रलोभनोंके लिए हिन्दू-धर्म प्रवर्त्तकोंकी जो प्रवृत्ति हो रही है उसमें कोई रुकावट नहीं पड़ेगी, न इससे वह मुक्ति ही मिलेगी जो वे चाहते हैं। अपने धर्मको छोड़ कर दूसरे धर्ममें चले जाने के खतरेको रोकने और विशेष कठिनाइयोसे मुक्ति पाने का तो एक मात्र उपाय आत्मशुद्धि तथा सवर्णों द्वारा दलितों की निरन्तर निःस्वार्थ सेवा ही है। जरायमपेशा कौमें और अस्पृश्य जातियाँ तो हिन्दू-समाजने धर्मके पवित्र नामपर अपने ही लोगोंके साथ जो नास्तिकतापूर्ण व्यवहार कर रखा है उसके लिए उसे मिलनेवाला दण्ड है और शरीरके किसी भी अवयवमें कोई तकलीफ हो तो सारे शरीरपर उसका असर पड़ता ही है; इसलिए इसका एक मात्र प्रभावकारक उपाय यही है कि अन्दरसे ही सुधार किया जाय। अगर सारा समाज शुद्ध हो जाय तो उसपर होनेवाले बाहरी आक्रमण कितने ही भयंकर क्यों न हों, वह उनसे सुरक्षित हो जायगा। इसके विरुद्ध बाहरी आक्रमणोंसे कितना ही लड़ते रहें, उससे अन्दरूनी खराबी नही रुकेगी।

अलबत्ता, बाहरी आक्रमणोंसे मुकाबला करने में जो शक्ति खर्च होगी उससे और थकावट जरूर आवेगी जिससे विनाश और जल्दी होगा।

इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जो जिम्मेदार सवर्ण हिन्दू इस सम्मेलनमें शामिल हुए थे वे सम्मेलनमें शुरू किये काम को जारी रखेंगे और रचनात्मक दिशामें ही अपनी शक्ति लगायेंगे।

हरिजन-सेवक
१ अगस्त, १९३६



वर्ण बनाम जाति

जात-पाँत-तोड़क मण्डल, लाहौरके श्री सन्तरामजीने निम्नलिखित पत्र मेरे पास प्रकाशनार्थ भेजा है—

"डाक्टर अम्बेडकर और लाहौरके जात-पाँत-तोड़क मण्डलके बारेमें आपने जो कुछ लिखा है, वह मैंने पढ़ा। इस सम्बन्धमें मैं नीचे लिखी बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ—

"डाक्टर अम्बेडकरको अपने सम्मेलनका सभापति बनाने के लिए हमने इसलिए आमंत्रित नहीं किया था कि वह दलित जातिके हैं; क्योंकि सवर्ण और अवर्ण (दलित) हिन्दूका हम कोई भेद-भाव नहीं रखते। उलटे हमने उन्हें तो इसलिए चुना था कि हिन्दू-जातिके महारोगका उनका निदान भी वही है जो कि हमारा है। याने उनका भी यही मत है कि जाति-प्रथा ही हिन्दुओंके पतन और उनके अंग-भंग होने का मूल कारण

है। हमारे तो सम्मेलनका उद्देश्य ही यह था कि हिन्दुओंको जात-पात तोड़ने के लिए प्रेरित किया जाय, लेकिन राजनीतिक तथा सामाजिक मामलोंमे किसी अहिन्दूकी सलाहका उनपर कोई असर नहीं हो सकता, मगर डाक्टर अम्बेडकरने अपने भाषणके परिशिष्टांशमे यह कहने का आग्रह किया है कि बहैसियत हिन्दू यह मेरा आखिरी भाषण है जो कि हमारे सम्मेलनके लिए बिलकुल असम्बद्ध, बल्कि उसके हकमें खतरनाक भी था; इसलिए हमने प्रार्थना की कि वह भाषणसे उस अंशको निकाल दें, क्योंकि और किसी मौकेपर वह इस बातको आसानीसे कह सकते थे। मगर उन्होंने इस बातको इनकार किया। तब अपने समारोहका दिखावा करने में हमे कोई उपयोग दिखायी न पड़ा, लेकिन इन सबके बावजूद मैं उनके भाषणकी प्रशसा किये बगैर नहीं रह सकता। वह तो जहाँ तक मैं जानता हूँ इस विषयका अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण निबन्ध है और हिन्दुस्तानकी हरएक भाषामें अनूदित होने लायक है।

"अलावा इसके मैं यह बात भी आपके सामने लाना चाहता हूँ कि जाति-वर्णके बीच आप जो तात्विक भेद करते हैं वह इतना गूढ है कि आम लोग उसे नहीं समझ सकते, क्योंकि सभी अमली बातोंमें हिन्दू समाजके अन्दर जाति और वर्ण एक-से-एक हैं, क्योंकि दोनों ही का प्रयोजन अन्तर्जातीय विवाहों और सहभोजको नियन्त्रित करना ही है। वर्ण-व्यवस्थाका आपका सिद्धान्त इस युगमें अव्यावहारिक है और निकट भविष्यमें उनके पुनरुद्धारकी कोई आशा नहीं है, लेकिन हिन्दू तो जात-पातके गुलाम हैं और उसे नष्ट नही करना चाहते, इसलिए जब आप अपने आदर्श या काल्पनिक वर्ण-व्यवस्थाका प्रतिपादन करते हैं वे तो जात-पातसे चिपटे रहने का औचित्य पा जाते हैं, इसलिए वर्णभेदकी अपनी काल्पनिक उपयोगिताका प्रतिपादन कर के समाज-सुधारकी दिशामें आप बड़ा नुकशान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थाकी जड़पर कुठाराघात किये बगैर अस्पृश्यताको दूर करने की कोशिश तो मानों रोगके उपरी अलामातोंका इलाज करना या पानीके ऊपर लकीर खींचना है। द्विजोंकी दिली मंशा तो यह है कि वे अस्पृश्य शूद्रोंको सामाजिक समानता नहीं देना चाहते, इसलिए वे जात-पाँतको नहीं तोड़ते और इस प्रश्नको तोड़ने के खातिर अस्पृश्यता-निवारणके लिए बड़ी-बड़ी रकमोंका चन्दा देते हैं और अस्पृश्यता और जात-पाँतके निवारणार्थ शास्त्रोंकी सहायता लेना तो मानों कीचड़को कीचड़से धोना ही है"।

इस पैराके आखिरी पैरासे तो पहला पैरा निश्चय ही रद्द हो जाता है। जात-पाँत-तोड़क मण्डल शास्त्रोंकी बातोंको अस्वीकार कर के वही करता है जो डाक्टर अम्बेडकर कर रहें हैं, याने हिन्दू नहीं रहता और ऐसी हालतमे, वह डाक्टर अम्बेडकरके भाषणपर सिर्फ इसलिए कैसे एतराज कर सकता है कि उसमें उन्होने यह कहा कि बहैसियत हिन्दू यह मेरा आखिरी भाषण है? यह स्थिति तो बिलकुल असंगत है, खास कर उस हालतमें जब श्री सन्तरामजी जिसकी ओरसे बोलने का दावा करते हैं वह मण्डल डाक्टर अम्बेडकरके सारे भाषणकी प्रशंसा करता है।

लेकिन यह पूछना अप्रासंगिक न होगा कि जात-पाँत-तोड़क मण्डल शास्त्रोंको

नहीं मानता तो आखिर मानता किसको है? अगर कोई मुसलमान कुरान को न माने या ईसाई बाइबिलको मानने से इनकार करने लगे तो भला वे मुसलमान या ईसाई रहेंगे ? जाति और वर्ण अगर एक ही बात है और वर्ण उन शास्त्रोंका अभिन्न अङ्ग है जिनमे कि हिन्दू धर्मकी व्याख्या की गयी है तो मैं नहीं जानता कि जो व्यक्ति जाति याने वर्णको मानने से इनकार करता है वह कैसे अपनेको हिन्दू कह सकता है ?

श्री सन्तराम शास्त्रोंको कीचड़की उपमा देते हैं। जहाँ तक मुझे याद है डाक्टर अम्बेडकरने शास्त्रोंके बारेमे अभी तक ऐसा कुछ नहीं कहा है। मैंने जो यह कहा है कि शास्त्रों द्वारा अगर वर्त्तमान अस्पृश्यताका समर्थन होता हो तो मै अपनेको हिन्दू कहना बन्द कर दूँगा, वह अवश्य किसी अर्थसे ही कहा था। इसी तरह आज जातिका जो विभत्स रूप हमें दिखायी पड़ता है उसका शास्त्रोंसे समर्थन होता हो तो सम्भवतः मैं अपनेको हिन्दू नहीं कहूँगा या हिन्दू नहीं रहूँगा, क्योंकि विभिन्न जातियोंके रोटी-बेटी-व्यवहारमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। शास्त्रों और उनकी व्याख्याके बारेमें मेरी जो स्थिति है उसे यहाँ दुहराने की कोई जरूरत नहीं समझता। मैं तो श्री सन्तरामजीसे यह कहने का सिर्फ साहस भर करता हूँ कि बुद्धि, सच्चाई और नैतिकताके लिहाजसे जो स्थिति वांछनीय है वह एक मात्र वही है और हिन्दू परम्परामे उसके लिए काफी गुंजाइश है।

हरिजन-सेवक

१५ अगस्त, १९३६



एक खतरनाक योजना

रायबहादुर राजाने अपने और डाक्टर मुंजेके बीच होनेवाला पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर के लोक-सेवा ही की है। इस पत्रको प्रकाशित करने में कोई विश्वास-घातकी बात नहीं; क्योंकि पत्र पानेवाला जिस बातको भयानक या खतरनाक समझे, जैसे कि मुंजे-अम्बेडकरकी योजना निश्चित रूपसे है, उसे गुप्त रखना लाजिमी नहीं है। डाक्टर मुंजे और डाक्टर अम्बेडकर—दोनों ही अपनी योजनाको खतरनाक नहीं समझते। इस बातसे वह उनके लिए कम खतरनाक नहीं हो जाती जो उसे नापसन्द करते है और रायबहादुर राजाने जब हर तरहके उचित उपायोंका सहारा ले कर उसे अमलमें आनेसे रोकना चाहा, तब इसके सिवा वह और करते भी क्या ? उन्होंने उन कुछ व्यक्तियोंसे इस बारेमे पत्र-व्यवहार करना शुरू किया जो यरवदा-पैक्टमें शामिल थे और जब यह देखा कि उनमें से कोई भी इस योजनाको पसन्द

नहीं करता तो उन्होंने तुरन्त वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया। आशा करनी चाहिये कि कई लाख मूक हरिजनोंको माल असवाबकी तरह दूसरे रूपमें परिवर्त्तित करने का सवर्ण हिन्दुओं तथा डाक्टर अम्बेडकरके बीच यह आखिरी ही सौदा होगा।

जहाँ तक यरवदा-पैक्टसे ताल्लुक है वह हिन्दुओंके दो बड़े समुदायोंके बीच हुआ समझौता है। उसने हिन्दू-जातिको उसके दो टुकड़े होने से बचाया है और सवर्ण हिन्दुओंको उन लाखो करोड़ोंकी क्षति-पूर्ति करने का मौका दिया है जिनके साथ वे सदियोंसे दुर्व्यवहार करते चले आ रहे हैं।

डाक्टर अम्बेडकर इसके लिए हिन्दुओंको दंड देना चाहते हैं और उन्हें ऐसा करने का हर तरह हक भी है, लेकिन उन्हें यह आशा नहीं करनी चाहिये कि सवर्ण हिन्दू भी इसमे उनका साथ देंगे। उन्हें अधीर होने का पूरा हक है, मगर सदियोंके दुराग्रह और अन्धविश्वास एक क्षणमे दूर नहीं हो जाते। सुधार-आन्दोलनका जिसने जरा भी अध्ययन करनेकी कोशिश की है, ऐसा कोई व्यक्ति इस बातसे इनकार नहीं करेगा कि अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका सन्देश सवर्ण हिन्दुओ तक पहुँचाने का वह सब प्रयत्न किया जा रहा है, जो मनुष्यके लिए शक्य है। डाक्टर-अम्बेडकरकी योजना अगर मान ली गयी तो सुधार-आन्दोलनको ऐसा धक्का लगेगा जो अन्तमे जा कर शायद मौत ही साबित होगा, क्योंकि इसमे हरिजनोको कागजी लेकिन कानूनी तौरपर हिन्दू धर्मके दायरेसे दूसरे दायरेमे कर देने की बात है; फिर उसका नाम कुछ भी क्यो न हो, इसका अर्थ अवश्य ही भ्रातृघात है; क्योंकि इससे खुद हरिजन ही दो परस्पर विरोधी भागोंमें बँट जायँगे और उन दोनोको यरवदा-पैक्टके अर्थमे हरिजन शुमार किया गया तो उनकी हालत आजसे भी बदतर हो जायगी और दुःखी भारतपर यह आपत्ति आयी तो वह उनके लिए बहुत ही बुरा दिन होगा।

यह दलील बेकार है कि इसमे धर्मका नाममात्रके लिए परिवर्त्तन भले ही हो, पर वस्तुतः कोई धर्म-परिवर्त्तन नहीं होगा और अगर कोई हुआ भी तो वह वैसा खराब नहीं होगा जैसा कि हरिजनोके ईसाई या मुसलमान बन जाने से होता। अगर धर्म-परिवर्त्तन ही हो, तो इसमे कोई सार नहीं कि वे किसी नामसे पुकारे जाते हैं। अगर सिर्फ कहने मात्रके लिए तो वे दूसरे धर्ममें चले जावें, मगर बने रहें फिर भी हरिजन ही, तो इससे तो उनके अन्दरूनी झगड़ोके लिए एक अतिरिक्त कारण पैदा हो जायगा—और वह सब होगा सवर्ण हिन्दुओंको सजा देने की इच्छा पूरी करने के लिए। अपनी नाराजगी या अधीरतासे डाक्टर अम्बेडकर इस स्पष्ट परिणामको न देखना चाहें तो न देखें, लेकिन डाक्टर मुंजेको तो इसे देखना ही चाहिये।

और, हम स्वयम्भू नेता हरिजनोंकी धार्मिक-स्वतन्त्रताका सौदा करनेवाले होते कौन हैं? क्या हरएक हरिजनको ही, फिर वह चाहे बेवकूफ हो चाहे मन्द-बुद्धि ही क्यों न हो, अपने लिए चुनाव करने का हक नहीं? डाक्टर अम्बेडकर और दूसरे जो लोग धर्म-परिवर्त्तन करना चाहते हैं उनके लिए ऐसा करना एक बात है,

लेकिन राजनीतिक या अन्य दलोंके लिए हरिजन-समुदायोंकी ओरसे ऐसा मान बैठना और उससे कानूनी तथा दूसरे दूरदर्शी परिणामोंके आधारपर तय करना बिलकुल ही जुदी बात है।

हिन्दुस्तानमें विभिन्न धर्मोंके जो नेता हैं वे हरिजनोंको अपने-अपने धर्मोंमें मिलाने के लिए आपसमें चढ़ा-ऊपरी करना बन्द कर दें, तो इस अभागे देशके लिए सौभाग्यकी बात होगी। मेरा तो पक्का विश्वास है कि जो लोग इस चढ़ाऊपरीमें लगे हुए हैं, वे धर्मकी कोई सेवा नहीं कर रहे हैं। राजनीतिक या आर्थिक रूपमें उनका सौदा कर के वे तो धर्मके महत्त्वको उलटा घटा रहे हैं। उचित तो यह है कि खुद राजनीति व अन्य सब बातें धर्मके अन्तर्गत हों; क्योंकि धर्मका सम्बन्ध तो आत्मासे है। दुनियाकी दूसरी शक्तियाँ कितनी ही बड़ी क्यों न हों, अगर ईश्वर जैसी कोई चीज है तो आत्म-शक्ति सबसे प्रबल है। वस्तुतः यह तो हम जानते ही है कि जो शक्ति जितनी बड़ी होगी वह उतनी ही बढ़िया भी होगी। बढ़िया भौतिक शक्तियोंमें विद्युत ही सर्वप्रधान है, मगर उसके आश्चर्यजनक परिणामोंके सिवा और रूपमें उसे अभी किसीने नहीं देखा है। हाँ, वैज्ञानिक-शक्ति विद्युतसे भी बढ़िया शक्तिके उपयोगका साहस करती है, लेकिन मनुष्य-कृत कोई ऐसा औजार नहीं है जो आत्माका अर्थात आध्यात्मिक-शक्तिका किसी निश्चित रूपमें पता लगा सके। सच्चे धार्मिक सुधारकोंने अभी तक इसी शक्तिपर अपना आधार रखा है और उनकी आशा कभी निष्फल नहीं रही। इसी शक्तिसे अन्तमें हरिजनोंका तथा हरएक व्यक्तिका कल्याण होगा और मनुष्योंके लगाये सारे अनुमान गड़बड़ हो जायँगे; फिर वे बौद्धिक दृष्टिसे कितने ही बढ़े क्यों न हों, जो सुधारक हिन्दू-धर्मको अस्पृश्यताके रोगसे बचाने को आरूढ़ हैं, उन्हें तो हरएक बातमे इसी एक शक्तिपर निर्भर रहना पड़ेगा।

हरिजन-सेवक
२२ अगस्त, १९३६

❀

तिलका ताड़

दो मित्रोंने, मेरे उस रुखपर जो कि अम्बेडकर-मुंजे-योजनापर मैंने प्रकट किया है, अफसोस जाहिर करते हुए मुझे लिखते हैं—उनकी दलील संक्षेपमे यह है—

"यह तो निश्चय ही आप तिलका ताड बना रहे हैं। गुरुनानक वैसे ही समाज-सुधारक थे जैसे अन्य हिन्दू-धर्मोंके सस्थापक। सिक्ख तो सब तरह और सब मानेमें हिन्दू ही हैं। उनकी सस्कृति भी हिन्दुओंकी-सी है। हरिजन अगर अपनेको सिक्ख कहलाना चाहे तो इसे आप धर्म-परिवर्त्तन क्यो कहते हैं"?

ऐसा मालूम पड़ता है कि ऐसी राय रखनेवाले ये आपत्ति करनेवाले अकेले ही हैं। अपनी इच्छासे चौदह बरस बाहर रहने के बाद जब, १६१५के बाद किसी समय, मैं वापस हिन्दुस्तान आया तो किसी कामसे मुझे पंजाब जाने का इत्तिफाक हुआ था। वहाँ सिक्खोंकी एक सभामे भाषण करते हुए मैंने कहा कि मेरी रायमें वे हिन्दू ही है और हिन्दुओके एक सुधारक पंथमें ही शामिल हैं। इसपर एक प्रतिष्ठित सिख मित्रने मुझे एक तरफ ले जा कर कहा कि सिक्खोको हिन्दू कह कर आपने इच्छा न होते हुए भी उन्हें चोट पहुँचायी है।

इस चेतावनीके बादसे, मैंने उन्हें कभी हिन्दू नहीं कहा; क्योंकि मेरे या अन्य कुछ व्यक्तियोंके मानने से कुछ नहीं होता। असल बात तो यह है कि वे खुद अपनेको क्या मानते हैं? सिक्खोंको पृथक निर्वाचन प्राप्त है। डाक्टर अम्बेडकर भी सिक्खोंको हिन्दू नहीं मानते। वह तो निश्चित रूपसे धर्म-परिवर्त्तन चाहते हैं। सिक्ख अगर हिन्दुओंका ही एक वर्ग हो, तो फिर पैक्टमें किसी परिवर्त्तनकी कोई जरूरत ही नहीं है; क्योंकि हिन्दू तो हरएक अपना सम्प्रदाय बदल कर भी हिन्दू बना रह सकता है। इसके अलावा सामूहिक रूपसे सब हरिजनोके फिरकेको न तो डाक्टर अम्बेडकर और न रायबहादुर राजा या दूसरा कोई व्यक्ति ही एकदम कलमके एक प्रहारसे बदल सकता है। धर्म तो असलमें एक वैयक्तिक विषय है जिसका निर्णय हरएकको खुद ही करना होता है। अतएव, ऐसा कोई भी व्यक्ति जो धर्मको पवित्र रूपमें मानता है डाक्टर अम्बेडकर और मुंजे द्वारा प्रस्तुत योजनामें साझीदार नहीं हो सकता।

हरिजन-सेवक

१६ सितम्बर, १९३६



हरिजन-सेवकोंसे

जबसे हरिजन-सेवक-संघकी स्थापना हुई है, प्रधान कार्यालय अपनी प्रान्तीय शाखाओंकी खुले हाथों सहायता करता रहा है और यह बिलकुल ठीक भी था, पर निःसन्देह अब वह समय आ गया है जब कि शाखाओंको अपने पैरोंपर खड़े हो कर स्वावलम्बी बन जाना चाहिये। यह करते हुए उन्हें अपने कार्य-क्रमको छोटा करना पड़े तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं होगी। प्रत्येक प्रान्त, बल्कि प्रत्येक जिला और प्रत्येक तहसीलका काम स्थानीय सवर्णोंकी सक्रिय सहायताका प्रतीक हो; क्योंकि संघका प्रधान उद्देश्य तो यही है कि वह सवर्णोंके हृदयपर असर डाले और उसमें आवश्यक परिवर्त्तन कर दे। मान लीजिये कि प्रधान कार्यालय दो-तीन सुधारकोंसे एक करोड़ रुपया एकत्र कर लेता है और उसकी सहायतासे देशमें हरिजन बालक-बालिकाओंके लिए पाठशालाएँ और छात्रालय खोलने की गरजसे सारे हिन्दुस्तानमें अपनी शाखाएँ स्थापित कर देता है, तो भी इससे कहीं अस्पृश्यता रूपी भयंकर राक्षसोंका अन्त थोड़े ही नजदीक आ सकता है; क्योंकि सवर्णोंका हृदय तो ज्यों-का-त्यों कठोर बना रहेगा। इसके विपरीत यह फर्ज कीजिये कि हमें एक पाई भी खर्च नहीं करनी पड़ती है और सद्भाग्यसे एकाएक सवर्णोंका हृदय पलट जाता है, अस्पृस्यताका पाप एक भूतकालकी चीज बन जाता है, तब तो संघका सारा उद्देश्य सफल हो जाता है—कारण कि उस दशामें तो प्रत्येक पाठशाला, देवालय और अन्य संस्थाओंके द्वार हरिजनोंके लिए भी उसी तरह खुल जायँगे जिस तरह की आज वे सवर्णोंके लिए खुले हुए है। कोई नही कह सकता कि वह शुभ दिन कब आयेगा, शायद हमारी आशासे जल्दी आवे। शायद देरसे भी आवे, पर वह जब कभी आवे, हरिजन-सेवक संघका है उद्देश्य यही है। उसका उद्देश्य यह तो हरगिज नहीं कि हरिजनोंके लिए अलग-अलग पाठशालएँ, मन्दिर, कुएँ वगैरा वह बनवाता रहे और इस तरह हम अस्पृश्यताकी आयु बढ़ाते रहें। वेशक मन्दिर, कुएँ और पाठशालाएं तो खुद हम भी अभी बनवा ही रहे हैं, पर बनवाते है उसी उद्देश्यको पूरा करने के लिए। इन चीजोंका बनवाना हमारे लिए जरूरी इसलिए हो गया है कि सवर्णोंके हृदयमें परिवर्त्तन बहुत धीरे-धीरे हो रहा है। सुधारकोंकी संख्या जरूर बढ़ रही है, पर वे अपने अन्दरसे छुआछूतका पाप हटा कर के और इस तरहकी घोषणाएँ कर के ही अपनेको कृतकृत्य न समझ लें। यह परिवर्त्तन उनके आचरणमें भी नजर आना चाहिये। हरिजन-कार्यके लिए कुछ आर्थिक सहायता करना इसके परिवर्त्तनका प्रत्यक्ष प्रमाण और हरिजन-सेवाके कार्यक्रमका एक आवश्यक अंग होगा, पर अगर कहीं यह एक ऐसी चीज बन गयी कि जिसके अन्दर मुट्ठी भर लोग हों, जो अपने दिलको समझाने के लिए उदारतापूर्वक रुपये-पैसेकी सहायता कर दिया करते हों तो वे मेरे बताये महान आदर्शका चिन्ह नहीं हो सकता; इसलिए संघका यह

कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने कार्य-क्रमके इस मौलिक हिस्सेकी ओर अपनी शाखाओंका ध्यान आकर्षित करे और खुद शाखाएँ भी इसके महत्वको महसूस करते हुए अपने आपको पूरे स्वावलम्बी बनाने की तैयारीमें लग जायँ। असलमें, प्रांतीय संघोंपर धीरे-धीरे यह भार डालना शुरू भी कर दिया गया है कि खुद ही अपनी संस्थाओंकी आर्थिक सहायता करें, पर अब तो इस संबंधमें निश्चित और आखिरी निर्णय करने का समय आ गया है। जबतक तमाम कार्यकर्त्ता यह अनुभव नहीं कर लेते कि यह आन्दोलन मुख्तया धार्मिक है, तबतक वे पूर्णतया स्वावलम्बी भी नहीं हो सकेंगे। इस देशमें हम ऐसी चीजोंपर खुले दिलसे खर्च करते है जिन्हें लोग धार्मिक समझते है। अगर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहे तो वह हमारे तीर्थस्थानोंकी एक बार सैर कर आवे। धार्मिक संस्थाओंके इतिहासका अगर हम एक अध्ययन करें तो हमें यह जान कर दुःख होगा कि लाखों-करोड़ो भोले-भाले लोग इन संस्थाओंको अतुल धनराशि अर्पण कर देते हैं और इस बातकी तनिक भी परवा नहीं करते कि उसका उपयोग किस तरह हो रहा है! अगर उन्हें यह विश्वास हो जाय कि जिस चीजके लिए वे दान कर रहे हैं वह धार्मिक है तो इतना उनके लिए काफी है।

हरिजन-सेवक जिस उद्देश्यसे सेवा कर रहे हैं, वह शुद्धतम अर्थमें सम्पूर्णतः धार्मिक है। अगर अपने अंगीकृत कार्यमें उन्हें पूरी श्रद्धा हो तो वे पर्वतोंको भले ही विचलित न कर सकें, पर इतना धन तो अपने आस-पाससे जरूर इकट्ठा कर सकते हैं कि जिससे उनकी संस्थाओंका काम चल जाय।

हरिजन सेवक
१० अक्तूबर, १९३६



अपमान किसका ?

हरिजनोंमें काम करनेवाले एक कार्यकर्त्ताके लिखे एक लम्बे पत्रसे मैं नीचे लिखा अवतरण ले रहा हूँ—

"पढे-लिखे हरिजनोंमे अपने आपको हिन्दू कहलाने के प्रति दिन-ब-दिन असन्तोष बढ रहा है, क्योंकि वे अगर कहते हैं कि वे हिन्दू हैं तो उन्हें जाति भी बतानी पड़ती है और इससे उनके आहत हृदयको और भी चोट पहुचती है। अपने आपको हिन्दू कहलवा कर इस तरह अपमान सहने के बजाय तो वे ईसाई कहलाना ज्यादा पसन्द करते हैं। फिर हम भी उन्हें क्यों न कहे कि आप लोग सिक्ख या बौद्ध बन जायं? इससे उनके अपमानका अन्त तो हो जायगा, क्योंकि सिक्ख या बौद्ध या हिन्दू कहलाना—बात तो आखिर एक ही है"।

पत्र-प्रेषकने यह कह कर अपने पक्षको छोड़ दिया है कि सिक्ख और बौद्ध

और हिन्दूओंमें कोई भेद नहीं है; क्योंकि अगर बात यही है तो हरिजन या किसी दूसरेको ऐसी प्रेरणा होने का फिर कोई कारण ही नहीं रह जाता। हर हिन्दूको यह हक है कि वह हिन्दू-धर्मके अन्तर्गत असंख्य पंथ या सम्प्रदायोंसे किसी एकका भक्त अपने को कहे और हिन्दू ही बना रहे, पर अगर कोई हिन्दू अपनी जाति बताना नहीं चाहता या जात-पाँतको उसने छोड़ दिया है तो वह जाति बतावे ही क्यो ? ऐसे बहुत-से हिन्दू हैं जो जात-पाँत नहीं मानते। मैंने यह बताने की कोशिश की है कि जात-पाँत हिन्दू-धर्मका कोई अभिन्न अंग नहीं है। वर्णके माने जाति नहीं, बल्कि वर्ग है। अगर कोई सचमुच धर्मका उपदेश करनेवाला है तो वह अपने आपको ब्राह्मण कह सकता है, व्यापारी या किसान तो अपनेको वैश्य कह सकता है और परिचारक हो तो अपनेको शूद्र कह सकता है, सैनिक हो तो अपनेको क्षत्रिय कह सकता है। इन विभागोंको जाति नहीं वर्ग कहना चाहिये और इनका सम्बन्ध पेशेसे है। अछूत नामका तो कोई वर्ग ही नहीं है; इसलिए किसी अछूतके लिए यह कहना कि उसका कोई खास वर्ग है उचित नहीं है। अगर वह चाहे तो कह सकता है कि हिन्दू-समाज उसे अछूत मानता है, पर वह खुद ऐसा नहीं मानता। मैं खुद कह सकता हूँ कि हिन्दू-समाजकी रीतिके अनुसार मेरी जाति बनिया है, पर मैं कहता हूँ कि मैं बनिया नहीं हूँ; क्योंकि मैं तो जात-पाँत मानता ही नहीं, पर अगर मुझे यह बताना ही पड़े कि निरे हिन्दूके अलावा मैं क्या हूँ, तो मैं कहूँगा कि मैंने अपने आपको हरिजन कहलाना पसन्द किया है; क्योंकि अपनी शक्ति भर मैंने हरिजनोंसे मिल जाने की कोशिश की है।

पर आखिर हिन्दू-समाजने जो जाति विभाग बना रखा है उसे प्रकट करने में हरिजन अपना अपमान क्यो समझे ? वास्तवमें यह अपमान तो उस समाजका है जिसने अपने सदस्योंको इस कदर गुलामोंसे भी बुरी अवस्थामें ला कर डाल दिया है जिन्हें अलहदा, खराब और गन्दी बस्तियोंमे रखा जाता है और सारा समाज जिन्हें दुरदुराता रहता है। पढ़े-लिखे हरिजनोंको तो खास तौरपर अपने आपको यह कहने में सच्चा अनुभव समझना चाहिये कि वह सही माने मे हिन्दू हैं, जबकि अपने आपको ऊँची जाति कहनेवाले हिन्दुओंने व्यवहारतः धर्मको कभीसे तिलांजलि दे दी है और जो अछूतोंपर अकथनीय जुल्म ढा रहे हैं।

अगर छुआछूतका पाप नष्ट हो गया और हिन्दू-धर्म जिंदा बचा रहा तो भविष्यके इतिहासकार उन हरिजनोंका गौरवके साथ उल्लेख करेंगे जो अपने भाइयों द्वारा सताये जाने पर भी अपने धर्मपर अडिग बने रहेंगे; इसलिए जब कभी किसी हरिजनको यह बताना पड़ता है कि वह हिंदुओंमे से किस जातिका है तो वह अपमान उनका नहीं, बल्कि उन ऊँची कही जानेवाली जातियोंका है जो उनपर जुल्म ढा रही है।

हरिजन सेवक
२४ अक्तूबर, १६३६

मन्दिर-प्रवेश

एक साथी लिखते है—

"हरिजन-सेवाका काम करनेवाला एक साथी उस दिन आया और फगवाड़ा (जालन्धर) के हरिजन-मन्दिर तथा हरिजन-पाठशालाके लिए सहायता मॉगने लगा। मैंने मन्दिरके लिए पैसा देने से साफ इनकार कर दिया। इस तरहके और खास तौरपर केवल हरिजनोंके लिए मन्दिर बनवाने के मैं सख्त खिलाफ हूँ; क्योंकि उनके अछूतेपनको हमेशा बनाये रखने का यह भी एक तरीका है। वह मुझसे जोरोंके साथ बहस कर रहा था कि डाकिया 'हरिजन' ले कर आया जिसमे इसी विषयपर आपका लेख था। यह एक शुभ-सयोगकी बात थी। मुझे मालूम हुआ कि कुछ सनातनी हरिजनोंसे कहते हैं कि वे अपने लिए अलग मन्दिर बनवाये जिससे मौजूदा मन्दिरोंमे जाने का हक मागने की उन्हें कोई जरूरत ही नहीं रह जायगी, पर असलमे इस विषयमें हरिजनोंके पक्षकी हिमायतकी बहुत जरूरत है और आपका लेख बिलकुल ठीक समयपर निकला है।

"एक दिन हमारे एक परिचित सज्जनसे, जिन्हे कि आप भी जानते हैं आपके इस 'मन्दिर प्रवेश' वाले प्रश्नपर खासी लम्बी-चौड़ी बहस हुई। इस मित्रने कहा—

(अ) खुद महात्माजी तो कभी मन्दिरोंमे पूजाके लिए नही जाते तब वे हरिजनोंको ऐसा करने के लिए क्यों प्रोत्साहन देते हैं? क्योंकि मन्दिर-प्रवेशका प्रचार करना अप्रत्यक्ष रूपसे मन्दिरोंमे जा कर ही पूजा करने का प्रचार करने के बराबर है।

(आ) हमारे मन्दिर प्रायः उन पुजारियोंकी आजिविकाका एक साधन है जो कि और किसी प्रकार ईमानदारीके साथ पेट भरने की योग्यता ही नहीं रखते। हम उन्हें क्यो प्रोत्साहन दें?

(इ) मन्दिरोंमे हरिजनोको मन्दिर-प्रवेश मिलने से उन पुजारियोकी आमदनी बढेगी; क्योंकि मन्दिरोंमें कोई खाली हाथ जा ही नहीं सकता। कम-से-कम एक पैसा तो ले ही जाना पड़ता है।

(ई) हरिजनोंकी गरीबीको इस तरह क्यों बढाया जाय?

(उ) जिस प्रकार खुद महात्माजी खुले मैदानमें प्रार्थना करते हैं उसी तरह वे हरिजनोंको भी करने के लिए क्यों नहीं कहते"?

"मुझे मालूम नहीं कि पहले भी किसीने आपसे ये प्रश्न पूछे थे या नहीं और आपने कभी उन्हें उत्तर दिये या देना उचित समझते हैं या नहीं, पर मुझे तो यही लगता

है कि हरिजनोंको अपने लिए अलग मन्दिर नहीं बनाने देने चाहिये । मन्दिरोंसे हरिजनोंके प्रवेशपर जो बन्दिश है उसके उठ जानेपर केवल सवर्णोंकी ही शुद्धि होगी । हरिजनोंको तो अपने बलपर तथा हमारी सहायतासे और बातोंमें भी ऊपर उठाना चाहिये" ।

इस पत्रमे उठाये गये प्रश्नोंका जवाब भी इसीमे आ गया है, फिर भी उसका प्रचार और उसपर चर्चा करनी जरूरी है । ये सवाल तो कई बार उठाये जा चुके हैं और किसी-न-किसी रूपमे उतनी ही बार उनके जवाब भी दिये जा चुके हैं ।

सहायता मॉगनेवाले कार्यकर्त्ता और वह भी जिन्होंने कि लेखकके सामने बहुत-सी समस्याएँ उपस्थित की हैं—दोनों 'मन्दिर-प्रवेश' का प्रधान हेतु भूल रहे हैं । हरिजनोंके लिए मन्दिरोंमें इसलिए प्रवेश नहीं मॉगा जा रहा है कि खुद वे इसे चाहते हैं या यह कि मन्दिरोंमें प्रवेश मिल जाने पर उनमें एकाएक कोई कायापलट हो जायगा । यह माँग तो सवर्णोंकी शुद्धिकी दृष्टिसे की जा रही है । वह इसलिए भी पेश की जा रही है कि हरिजनोंको अन्यायपूर्वक एक ऐसे अधिकारसे वंचित रखा जा रहा है जो अन्य तमाम हिन्दुओंको प्राप्त है । अपने हरिजन भाइयोंके लिए मन्दिरोंके दरवाजे खोल देना सवर्णोंका धर्म है चाहे एक भी हरिजन मन्दिरोमे न जावे । सवर्ण हिन्दुओंके हृदयसे अस्पृश्यता हट जाने का वह सबसे सच्चा चिन्ह है । निःसन्देह और भी रुकावटें उठनी ही चाहिये, लेकिन जबतक यह बनी रहेगी अस्पृश्यता नहीं तर सकती । सवर्ण हिन्दू चाहें या न चाहें, हरिजनोंको नागरिकताके हक मिलने मे जो अन्य रुकावटें हैं वे तो जावेंगी ही, परन्तु मन्दिर तो उनकी सम्पूर्ण अनुमतिके बगैर नहीं खोले जा सकते । अगर हरिजन कहें कि हम सार्वजनिक कुएँसे पानी भरेंगे, या वे चाहें कि उनके बच्चोंके साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा कि अन्य बच्चोंके साथ होता है तो उन्हें इसमे कोई रोक नहीं सकता । आज वे ये मॉगे आम तौरपर नहीं पेश कर रहे हैं । इसकी तो वजह यह है कि अपने कानूनी अधिकार माँगने का उन्हें साहस ही नहीं है । आज उन्हें यह डर है कि अगर वे कोई ऐसी बात करें तो उन्हें शायद सवर्ण हिदू मारे-पीटे या उनकी और भी बुरी हालत कर दें, पर ज्यो-ज्यो उनका बल बढ़ता जायगा वे जरूर अपने हक मॉगने लगेंगे और उन अधिकारोपर अमल भी करने लगेंगे जिनपर वे अबतक अपनी दुर्बलताके कारण अमल कर नहीं सके हैं। अगर हरिजन एक जलूस बना कर किसी मन्दिरमे जायॅ और कहें कि हम अन्दर जाना चाहते हैं तो कानून ही उन्हें उस मन्दिरमें जाने से रोकेगा, इसलिए यह तो सवर्ण सुधारकोंके लिए जरूरी है कि वे इस बातके लिए आन्दोलन करें कि हरिजनोंके लिए मन्दिर खोल दिये जायॅ ।

केवल हरिजनोंके लिए मन्दिर बनवाने का तो हमने हमेशा विरोध किया है, पर इसमें भी अपवाद तो है ही । अगर हरिजनोंमे ही कोई ऐसी हलचल हो और ऐसे मन्दिर खुद बनवाना चाहें जो उनके तथा सवर्णोंके लिए यह कोई जरूरी नहीं है कि मैं खुद मन्दिरोंमे जाऊॅ । इसके लिए नि.संदेह यह काफी है कि परमात्मामें मेरा विश्वास है और मैं प्रतिदिन उसकी पूजा करता हूँ और मेरी पूजा कोई निरो

विधिपूर्ति नहीं है। वह तो मेरी आध्यात्मिक खुराकका एक अभिन्न अंग है। मैं तो हरिजनोंको भी खुले मैदानमें पूजा करने के लिए निमन्त्रण देता हूँ, पर इसके माने यह नहीं कि सवर्णोंके मन्दिरमे जाने से मैं उन्हें रोकना चाहता हूँ।

मन्दिरोंमे भ्रष्टाचार भी जरूर है। बहुत दुःखकी बात है कि बहुत-से मन्दिरोंके पुजारी अपढ़ हैं और बुरी तरह अज्ञानी हैं, पर इससे तो प्रकट होता है कि उनमें सुधारकी जरूरत है न कि उन्हें नष्ट करने की और मन्दिरोंसे हरिजनोंके आने के लिए यह कोई जरूरी नहीं कि वे वहाँ कुछ चढ़ावें ही। मुझे तो दृढ़ विश्वास है कि हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके दरवाजे खुलवाने का यह आन्दोलन अगर सफल हुआ—और निःसदेह उसे सफल होने में ज्यादे दिन नहीं लगेंगे—तो मन्दिरोंके अन्दरकी बहुत-सी बड़ी-बड़ी बुराइयोंको दूर करने मे सहायक होगा।

हरिजन-सेवक
१४ नवम्बर, १९३६



और भी आत्मशुद्धि करें

हरिजनोंको धार्मिक-स्वतंत्रता देने के बारेमें त्रावणकोर दरबारकी घोषणा बहुत बड़े आनन्दकी बात है, पर साथ ही वह ऐसी घटना है जो हमे और भी नम्र और पवित्र बन कर प्रयत्न करने की प्रेरणा दे रही है। इस घोषणामें कहीं छुआछूतका अन्त थोड़े ही हो गया है जैसा कि चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्यजी ने कहा है। यह तो सहज इस बातका प्रमाण है कि हम अगर परमात्माकी सहायता माँगे तो हमे किस तरहकी सहायताएँ मिल सकती हैं। अपने काममें वह हमारे अन्दर आशा और स्फूर्ति पैदा करती है, पर इससे हम अपने प्रयत्नोंको ढीला न कर दें और अपने खुदके बारेमे जाग्रत रहने मे जरा भी ढिलाई न करें। अगर यह घोषणा प्रार्थना और आत्मशुद्धिका प्रमाण है और यह सच है कि उन विज्ञापित सभाओं और उनमे पास किये गये उनके प्रस्तावोंसे प्रभावित हो कर नहीं बल्कि त्रावणकोरके निःस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं और उनके साथ-साथ हिन्दुस्तानके इसी प्रकारके अन्य धर्मात्माओंकी मूक-प्रार्थनासे ही जान या अनजानसे प्रेरित हो कर त्रावणकोरके महाराज तथा उनके सलाहकारोंने यह घोषणा की है, तो यह निश्चित है कि कार्यकर्त्ताओंका और भी स्वार्थ-त्याग तथा भक्ति-भाव शेषको भी ठेठ मुकाम पर पहुँचा देगें।

अब और रह क्या गया है, यह जरा सोच लें? हमे अभी तक यह पता भी

नहीं है कि त्रावणकोरकी कट्टर सनातनी जनता तथा हरिजनोंपर इस घोषणाका क्या असर पड़ेगा ? अगर जनताके तरफसे इसका ठीक उत्तर नहीं दिया गया तो यह कानून बड़ी आसानीसे मुर्दा कानून बन जायगा। मंदिरोंके महज खुल जाने के कुछ भी माने न होंगे अगर उसके साथ ही उनकी और पुजारियोंकी आवश्यक शुद्धि न हो सकी।

त्रावणकोरके मन्दिर खुले तब उसके पड़ोसी राज्य कोचीन और गुरुवापुरके मन्दिरोंके भी दरवाजें खुल जाने चाहिये; क्योंकि ये सब लगभग एक-से ही हैं, इन सबमें वही परम्परा है और वही पूजा-विधि वगैरा होती है। इसके बाद तमिल, तेलुगू और कॉगड़ी भारतके महान मन्दिरोंका नम्बर आता है। उत्तरमें काशी विश्वनाथ, पश्चिममें द्वारकाधीश और पूर्वमे जगन्नाथजीके मन्दिरोंके दरवाजे हरिजनोंके लिए अभी तक बाद हैं। हिन्दुस्तानपर बहुत-से बड़े-बड़े धब्बे हैं। हालॉ कि, अलगसे देखा जाय तो त्रावणकोर भी एक बड़ा भारी धब्बा था, पर इसकी तुलनामें वह छोटा ही है, किन्तु ईश्वरकी दयासे, जो कि त्रावणकोरके महाराजाकी घोषणाके रूपमें प्रकट हुई है, यह धब्बा एक प्रकाश-बिन्दुमें परिणत हो गया है और अब वह अपना प्रकाश सारे भारतमें फैला रहा है। क्या इसकी प्रकाश-किरणें इतनी जोरदार साबित होंगी कि जिनका असर ऊपर गिनाये हुए बड़े-बड़े तमिस्र-पटलोंपर भी असर कर जाय ?

और अगर इस धार्मिक स्वतंत्रताके साथ-साथ वह सच्ची है, चूँकि वह कट्टरताके एक गढ़से आविर्भूत हुई है, तो देश भरमें हरिजनोंकी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नत्ति भी होनी चाहिये। इन महान बातोंका उल्लेख भर हमारी आत्म-शुद्धिके लिए काफी होना चाहिये, पर अगर हमारे हृदयमें अपनी अंगीकृत कार्य और ईश्वरके प्रति श्रद्धा होगी तो यह हमे हरगिज डरा नहीं सकता।

इस महान और दिव्य कार्यके लिए हमे जरूरत है अधिक कार्यकर्त्ताओंकी, स्त्रियों और पुरुषोंकी, लड़को और लड़कियोकी। हमे और भी अधिक धनकी—नोट, सोना, चॉदी, तॉबाकी जरूरत होगी। मुट्ठी-मुट्ठी नाजकी जरूरत होगी, पर ये सब जरूर और तभी आवेंगे जब हमारे वर्त्तमान कार्यकर्त्ता सीजरकी स्त्रीकी तरह परे होंगे। क्या हम सब हृदयसे शुद्ध हैं ? हमारे जिम्मे जो कार्य हैं उसके वफादार हम हैं ? अपने कार्यके शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूपमें हमे श्रद्धा है ? अगर हॉ में हमें सब उत्तर मिलता है तो सब ठीक है, पर जिन मामलोंका मैंने इन शब्दोंमें जिक्र किया है और जिनकी हम अभी तक खोज-बीन कर रहे हैं, वे कहते हैं, सावधान ! अगर हमारे अन्दर और भी ऐसे बदनाम शख्स हों तो क्या हाल हो ? इसमे कोई निष्पाप नहीं है, पर अपने सामाजिक व्यवहारमे जितने मनुष्यत्वकी हमसे अपेक्षाकी जा सकती है उतना भी हमसे अगर न हो और अपने अपराधकी गम्भीरताको कम ऑकनेके बगैर किसी तरहका प्रयत्न उसे हम कबूल भी न करें तो मैं फिर पूछता हूँ कि

हमारा और इस महान कार्यका क्या हाल होगा, जिसे हाथमें लेने की हमने धृष्टता की है; इसलिए इस घोषणासे मुझे आनन्द तो हो रहा है, पर चूँकि हमारे बीच जो चल रहा है उसकी प्रत्यक्ष जानकारी है, इसलिए मुझे दुःख होता रहता है और उससे मेरा वह आनन्द कम हो जाता है, पर इसमें निराशा जैसी कोई बात नहीं है और न मारे आनन्दसे फूलने जैसी ही है। हाँ, इस घोषणाके कारण हमारी जो जिम्मेदारी बढ़ गयी है उसे खूब अच्छी तरह समझने और खूब सावधानीके साथ निरीक्षण करने की जरूरतकी सबसे अधिक आवश्यकता है।

हरिजन-सेवक
२८ नवम्बर, १९३६



आदर्श-भंगी

मेरा आदर्श भंगी तो वह है जो मेरा आदर्श ब्राह्मण हो अथवा उससे भी बढ़ कर हो। ब्राह्मणके बिना भंगी सम्भव है, पर यदि भंगी न हो तो ब्राह्मणका अस्तित्व ही नहीं। भंगी होने से ही सारा समाज टिक सकता है। माता जो काम अपने बच्चेके लिए करती है वह काम भंगी सारे समाजके लिए करता है। माता बच्चोंका मैला धोती है और उन्हें स्वच्छ रख कर उनके शरीरकी रक्षा करती है, उसी प्रकार भंगी समाजका मैल साफ कर के, उसे स्वच्छ रख कर उसके शरीरकी रक्षा करता है और ब्राह्मणका धर्म जैसे समाजकी आत्माको स्वच्छ रखने का है, आत्माका मल दूर करने का है, उसी तरह भंगीका धर्म समाजके शरीरको साफ रखने का, उसका मल दूर करने का है। फर्क सिर्फ इतना है कि भंगी तो अपने धर्मका पालन इच्छासे या अनिच्छासे करता है, पर ब्राह्मण ऐसा करते हुए नजर नहीं आता। यहाँ अपवादोंकी गिनती नहीं की गयी है। समाजके आधार-स्तम्भ बहुत-से है, पर सभीमे भंगी उनके मूलमे हैं और वह बड़ा-से-बड़ा आधार है।

ऐसा होते हुए भी भारतवर्षके समाजमे भंगीको कनिष्ठ माना गया है—हरिजनोंमे भी सबसे नीच, गाली और लात खाने लायक। समाजका वह बचा-खुचा जूठन खाता है, कचरेके बीचमें रहता है, उसका कोई भी सहायक नहीं, भंगी गालीका शब्द हो गया है। ऐसा क्यों? इसका जवाब खोजना शायद व्यर्थ है। व्यर्थ न हो तो भी मैं उसे जानता नहीं, पर इतना जरूर जानता हूँ कि भंगीका आत्यंतिक तिरस्कार कर के हम स्वतः तिरस्कारके पात्र बन गये हैं। भंगीकी अवगणना कर के हमारे गॉव घुरेकी तरह बन गये हैं और बिना मौतके मर रहे हैं। भंगीका पद यदि ब्राह्मणके जितना होता तो आज हमारे गॉव, हमारे शरीर स्वच्छ होते और हम उसी प्रमाणमे निरोगी होते। बहुत से रोग अस्वच्छतासे पैदा होते हैं। इन रोगोंसे तो हम मुक्त होते।

जब भंगीका धन्धा सम्मान देने योग्य समझा जायगा, जब भंगी और ब्राह्मणके बीचका भेद दूर हो जायगा तब और केवल तभी समाज तनसे, मनसे और धनसे सुखी होगा—इस विषयमें शंकाके लिए स्थान ही नहीं।

तो समाजका इस प्रकारका माननीय सेवक कैसा हो? मेरी दृष्टिसे आदर्श भंगीको स्वच्छताके नियमका उत्तम ज्ञान होना चाहिये। पाखाने कैसे हों, उन्हें किस तरह साफ रखा जाय, मल-मूत्रका खाद किस प्रकार बनाया जा सकता है?—यह सब उसे जानना चाहिये। इतना ही ज्ञान काफी न होगा। भंगीको मल-मूत्रका ज्ञान भी होना चाहिये। मलकी जाँच-पड़ताल कर के आदर्श भंगी उन-उन व्यक्तियोंको यह चेतावनी देगा—'आपके मलमें आज अमुक द्रव्य थे, इसलिए आप होशियार हो जायँ। आपकी पेशाबमें शक्कर थी। आपके मैलेमें आज अत्यन्त बदबू थी, आपके मलमें कीड़े थे'। इस प्रकारकी ज्ञान प्राप्तिका अर्थ है शौचशास्त्रका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना। ऐसा आदर्श-भंगी छोटे-छोटे गाँवो और बड़े-बड़े शहरोंमे मल-मूत्रकी व्याख्याके सम्बन्धमें विशेष ज्ञान रख कर वहाँके समाजका सलाहकार और पथ-दर्शक होगा। इससे इतना स्पष्ट होना चाहिये कि आदर्श-भंगीको अच्छा अक्षर ज्ञान हो, क्योंकि उसमें शास्त्रोंके पढ़ने की शक्ति होनी चाहिये। ऐसा भंगी अपनी आजिविका प्राप्त करते हुए भी अपना काम धर्म समझ कर करेगा। वह धनिक होने के स्वप्न नहीं देखेगा। वह तो जिस समाजके शौचका ठेकेदार होगा उस समाजका काम करने में अपनी सफलता और सार्थकता समझेगा।

ऐसा आदर्श-भंगी कैसे पैदा हो? अनेक आप्पा पटवर्द्धन हों तव। भंगीका मान बढ़ाना शिक्षित-समाजका धर्म है। खुद शौचशास्त्र सीख कर, उसमें पारंगत हो कर भंगीको सिखायें, भंगीकी स्थिति समझें। उनमे जो बुराइयाँ पैदा हो गयी हों उन्हें धीरजके साथ दूर करायें, उनको शुद्धता सिखायें। उनके पास आज तो अच्छा झाड़ू नहीं है, मैला उठाने के साधन ठीक नहीं हैं, पाखाने कितने गन्दे हैं और उनमे प्रवेश करने का द्वार तो जैसे नरक है। भंगीके घरके इर्द-गिर्द मल-मूत्रके तालाब भरे होते हैं। इस स्थितिमें फेरफार कराने के लिए यह शिक्षित-वर्ग यत्न करे और इस कामसे अपने कार्यकी पूर्णता समझ कर ही संतोष प्राप्त करे।

ग्राम-सेवकोंको समझना चाहिये कि उनके अभ्यासक्रमका आरंभ इस प्रकारके आदर्श-भंगी होने मे है।

हरिजन-सेवक
२८ नवम्बर, १९३६

❀

एक ही शत्रु

मनुष्य मात्रका एक ही शत्रु है, एक ही मित्र और वह है आप खुद ही। यह मेरा वचन नहीं सर्वशास्त्रोंका है। जब मनुष्य अपने आपको धोखा देता है तब वह अपना शत्रु बन जाता है। जब वह अपने अन्तरमें रहनेवाले परमेश्वरकी गोदमें अपने आपको छोड़ देता है, तब वह खुद अपना मित्र बन जाता है। यह लिखने का प्रयोजन है चरित्र-पतनके वे दोनो मामले जिनका कि मैंने उल्लेख किया है और मेरी दृष्टिमें आनेवाले इसी प्रकारके और भी छोटे-छोटे किस्से हैं। इन मामलोमें मैं ज्यों-ज्यों गहरा उतरता जाता हूँ त्यों-त्यो देखता हूँ कि उन व्यक्तियोंने अपने आपको धोखा दे रखा है। मेरी जाँच-पड़तालका परिणाम क्या आता है यह तो आगे मालूम होगा।

दोष तो हम सभी करते हैं, लेकिन जब हम दोषमे से निर्दोषिता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं तब हम और अधिक नीचे गिर जाते है।

एक पुरुषको दो स्त्रियाँ भाईके समान मानती है—तपस्वीके रूपमे, शुद्ध सेवकके रूपमे उसे देखती हैं, शिक्षक या गुरु मानती है; उन्हींके साथ उसका पतन होता है और पीछे उनमें से एकसे शादी कर लेता है। इसे मैं अपना व्यभिचार छिपाने की युक्ति मानता हूँ। इस प्रकारके सम्बंधको विवाहका नाम देना विवाहकी मानो फजीहत करना है। मैं जानता हूँ कि ऐसा आजकल बहुत जगह हो रहा है। पापका गुणाकार होने से उसकी वृद्धि होती है। वह कुछ पुण्य रूप नही कहा जा सकता। सारा जगत पाप करता है; इसलिए वह रूढ़ि भले ही हो जाय, पर अगर वह पाप होगा तो वह पाप ही रहेगा। ऐसा नियम पाप समझे जानेवाले सभी कृत्योंको लागू नहीं होगा यह मैं जानता हूँ। मेरी दृष्टिमें तो जो वस्तु परम्परासे मानी जा रही है और जिसे आज समाज पाप मानता है उस प्रकारके ये किस्से हैं।

शिक्षकोंके अपनी शिष्याओंके साथ गुप्त-सम्बन्ध हो जाय और पीछे उन सम्बन्धोमे से किसी एकको विवाहका रूप दे दिया जाय, तो इससे ऐसा सम्बन्ध पवित्र नही बन सकता। जिस प्रकार सगे भाई-बहिनके बीच पति-पत्नीका सम्बन्ध सम्भव नही, उसी प्रकार शिक्षक और शिष्याके बीच होना चाहिये—यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है। अगर इस सुवर्ण नियमका पालन न हो तो परिणाम यह होगा कि शिक्षण संस्था टूट जायगी; कोई लड़की शिक्षकोंसे सुरक्षित नहीं रह सकेगी। शिक्षकका पद ऐसा है कि लड़के और लड़कियाँ सदा उनके नीचे रहते है, शिक्षकके वचनको वेदका वचन मानते हैं। अतः शिक्षक जो स्वतन्त्रता लेता है उसके विषयमें उन्हें कोई शंका नहीं होती; इसलिए जहाँ शरीरसे भिन्न आत्माका सम्मान है वहाँ इस प्रकारके सम्बंध असह्य समझे जाते है और समझे जाने चाहिये। जब ऐसा कोई सम्बंध 'हरिजन-सेवक-संघ' जैसी संस्थामें हो तो वह उसके कार्यको हानि पहुँचाता है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि त्रावणकोरके राजमन्दिर हरिजनोंके लिए खुल जाने की जो अनचेती घटना घटी है उसके पीछे मूक-सेवकोंका बल था। ऐसे सेवक सारे देशमें बिखरे पड़े हैं। उन्हें कामनाकी इच्छा नहीं। वे आडम्बरको पास फटकने नहीं देते। सेवा करने में ही वे अपनी सार्थकता समझते हैं। उन्हींके पुण्य प्रतापसे त्रावणकोरके महाराजाके मनमें भगवान आ बसे और उनसे मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खुलवा दिये। यह तो प्रभुकी महिमाका प्रथम दर्शन है। सेवकोंको विशेष सावधानीका, विशेष पवित्रताका, विशेष तन्मयताका आमन्त्रण है। एकाएक मन्दिरका द्वार हरिजनोंके लिए नहीं खुल जाता, एकाएक मन्दिरमें से दम्भ, पाखण्ड, कलुप दूर नहीं होता। हिन्दुओंके रोम-रोमसे जबतक अस्पृश्यता दूर नहीं हो जाती, तबतक कोई सेवक या सेविका शान्तिसे नहीं बैठ सकती और उन्हें समझना चाहिये कि इस सनातनके पापको धुलने में जो यह ढील हो रही है उसका कारण हालमें प्रकट होनेवाला ऐसे सेवकोंका पाप ही है। कौन जाने, ऐसे कितने सेवक अपने पापको छिपा रहे होंगे। सेवक पापको पुण्य समझ कर अपनी दुर्बलताका पोषण न करे, पापको छिपा कर खुद नीचे गिरते हुए अपने कार्यको भी साथमें न घसीट लाये। पापके यत्किंचित स्वीकारको सन्तोप न माने।

कुछ लोगोंको प्रकट रूपमें स्वीकार करते संकोच होता है, कुछको स्वीकार करते हुए आपे चढ़ती है। धर्म तो पुकार-पुकार कर कहता है—अपने किये हुए राईके समान दिखनेवाले दोषोंको पर्वतके समान देखो। यदि हृदयमें उनको पूर्णतया स्वीकार करोगे, तो जैसे मैला कपड़ा मैल छूट जाने से शुद्ध होता और शुद्ध दीखता है उसी तरह तुम भी शुद्ध हो जाओगे और दीखोगे और तुम्हारा प्रकट स्वीकार और पश्चाताप भविष्यमें पापसे बचने में ढाल-रूप सिद्ध होगा।

हरिजन-सेवक
५ दिसम्बर १९३६



मन्दिर-प्रवेशके नियम

हरिजनोंके लिए मन्दिरोंको खोल देने के लिए जारी किये गये त्रावणकोरके प्रसिद्ध फर्मानके सिलसिलेमें मन्दिर-प्रवेशके कुछ नियम बनाये गये हैं। जबतक इन नियमोंपर अमल होने नहीं लगता, इनके विषयमें कुछ भी नहीं लिखा जा सकता; क्योंकि और नियमोंकी भाँति ये भी हैं, अर्थात जहाँ एक तरफ इनका अर्थ और अमल फर्मानकी ही तरह उदार हो सकता है, तहाँ दूसरी तरफ वह इतना संकुचित भी हो सकता है कि जिससे यह फर्मान बिलकुल बेकार भी हो सकती है। यही नहीं, बल्कि हालत पहलेसे भी खराब हो जा सकती है, पर यह मान लेने का भी कोई कारण नहीं है कि इसका कोई दुःखद परिणाम होगा। जैसा कि मैं मानता हूँ फर्मान

तो एक सुधार-प्रिय नरेश द्वारा समयकी भावनाके जवाबमें ही हुआ है और जो कुछ अखबारोंमें प्रकाशित होता है वह सच है और उन लोगोंसे जिन्हें कि इस सम्बन्धकी ठीक-ठीक जानकारी होनी चाहिये मैं जो कुछ सुनता हूँ उसमें विश्वास किया जा सकता है, तो कहना होगा कि इस घोषणाके पीछे लोक-सम्मत्ति भी है।

लेकिन जैसा कि पहले ही लिख चुका हूँ इस सुधारको सफल बनाने का भार खास तौरपर त्रावणकोरके सुधारकोपर ही पड़ेगा। वहाँ तो ऐसा वायुमण्डल बन जाना चाहिये जिससे सत्ताके बलपर इन नियमोंके पालन कराने की नौबत ही न आने पाये। मन्दिरोंमें प्रायः सच्चे भक्त भी जाते है और ढोंगी पाखंडी भी। भक्त चाहते हैं कि उनकी पूजा सफल हो; इसलिए डरते हुए रूढ़िगत छोटी-से-छोटी भी बातका पालन करने का वे यत्न करते हैं, नहीं तो उन्हें डर रहता है कि उनकी सारी पूजा बेकार न चली जाय और पाखंडी भी पूजा अर्चाका उतना ही ध्यान रखते है, पर उनका उद्देश्य यह होता है कि कहीं वे पकड़े न जायॅ। मन्दिर-प्रवेशके इस तरहके ये नियम बनाना उस युगकी एक नयी चीज है, पर वह बिलकुल जरूरी है। जब दुनियाबी फर्मान द्वारा हजारों लोगोंके लिए दरवाजे खोले जाते हैं तो उनका यथोचित पालन कराने के लिए दुनियाबी नियम बनाना भी जरूरी हो जाता है। इसमे कोई शक नहीं कि त्रावणकोरमे इस सारे महान प्रयोगमे बड़े ध्यान, सहानभूति और श्रद्धाके साथ काम करने की जरूरत है। अगर इसके पीछे शुद्ध धार्मिक भावना हो तब तो सब ठीक होगा, पर इस दिशामे सुधारक और जिन्हें वे मन्दिरोंमें ले आना चाहते है उन हरिजनोंके अतिरिक्त दूर दिशामें कौन मार्ग दिखा सकता है?

हरिजन-सेवक
५ दिसम्बर, १९३६



उसकी लीला अगाध है

गत ३ और ४ तारीखको हरिजन-सेवक-संघ त्रिवेन्द्रमूसे नीचे लिखा तार पूना भेजा गया था—

"घोषणापर अत्यन्त सफलताके साथ अमल हो रहा है। कुछ लोगोंको इस विषयमे शका थी, पर वे सब भय झूठे साबित कर दिये गये। इढवा तथा हरिजनोंके लिए मन्दिरका ऐसा कोई हिस्सा बन्द नहीं है जो अन्य भक्तोंके लिए खुला हो। मन्दिरके गर्भगृहको छोड़ कर जिसमे केवल पुजारी ही जा सकता है और सब जगहें—जैसे, मण्डप, सुरक्षित मञ्च वगैरा नये प्रवेश पाये हुए भक्तोंके द्वारा भी उसी तरह काममें लाये जाते है जैसे कि अन्य सवर्ण भक्तो द्वारा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन मन्दिरोंके साथ तीर्थोंमे भी इढवा

तथा हरिजन अब स्नान कर सकते हैं। पहले जो हरिजनोंके नजदीक आते ही भय और सनसनी छा जाती थी अब वह जरा भी नहीं रही। अन्य जातिके भक्त जब पूजा कर रहे हों उस समय यदि 'हरिजन भक्त पहुच जाय भी तो इन लोगों पर कोई खास तरहका असर पड़ता हुआ नहीं दिखायी देता। यह भी बताने की कोई जरूरत नहीं कि हरिजनोंके लिए पूजा दर्शन आदिके लिए कोई खास समय या मर्यादा नियत नहीं की गयी है। यह भी आशाका एक चिन्ह हैं कि पुजारी और मन्दिरोंके अन्य अधिकारी सच्चे और खुले दिलसे सहयोग दे रहे हैं। उनके ऊपर कोई मानसिक बोझ तक पड़ा नहीं दिखायी देता। 'इडियन सोशल रिफार्मर' ने जो यह अनुमान लगाया था कि इस घोषणामे त्रिवेन्द्रम्का अनन्तपद्मनाभका मन्दिर नहीं शुमार किया गया है वह गलत है। इसके विपरीत सच्ची बात तो यही है कि चूंकि यह मन्दिर राजमहलके बिलकुल समीप है और महाराजा साहब वहा प्रतिदिन आते हैं घोषणापर सबसे अधिक पूर्णताके साथ अमल इसमें होता है। हरिजन छात्रावासके ४० लड़कोंको जिनमें पुलया, परिया और कुरवा भी शामिल हैं, कल अनन्तपद्मनाभके मन्दिरमें पूजा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्हें गर्भ-गृहकी ठेठ उस हद तक जाने दिया गया था, जहा तक कि ऊची-से ऊची जातिका हिन्दू जा सकता है।

तारीख २ सितम्बरको भी इसी तरहका दृश्य देखा गया। सैंतीस मीलके एक देहातसे हमारे एक कार्यकर्त्ता बगैर हमे किसी प्रकारकी पूर्व सूचना दिये कोई १५० हरिजनोंको साथ ले कर यहा पहुचे और उसी अनन्तपद्मनाभके मन्दिरमें उनको दर्शन कराया। वे कल हमारे दफ्तरमे दलबलके साथ आये थे और उन्होंने सुनाया कि उनका वहा बड़े प्रेमके साथ स्वागत किया गया और बगैर किसी प्रकारके प्रतिबन्धके उन्हें दर्शन-पूजन करने दिया गया। जब उनसे खास तौरसे सवाल पूछे गये तो उन्होंने कहा कि एक शिलावाले मडपमें खड़े रह कर उन्होने दर्शन किया था। यह अन्तिम सीमा है जहाँ ऊची से-ऊची जातिके हिन्दू खड़े हो कर दर्शन करते हैं। सौभाग्यसे उन्हे महाराजाके भी दर्शन मन्दिरकी सीमाके समीप हो गये। फिर स्थानीय सुब्रह्मण्य स्वामीके मन्दिरमे भी, जो एक महत्वपूर्ण देवस्थान है, हमारे छात्रालयके कुछ विद्यार्थी गये। पास ही के तीर्थमें उन्होंने स्नान किया और मन्दिरमे देव-दर्शन करने गये। किसीने जरा भी आपत्ति नहीं उठायी, न कोई प्रतिबन्ध डाला गया। पुजारियोंने बड़ी सहानुभूति और प्रेम प्रकट किया। यही नहीं, बल्कि कहना तो यह चाहिये कि उनमे उत्साह दिखायी दिया। जब एक फोटोग्राफरने इस दृश्यकी एक तस्वीर उतारी तो उसमें भी वे शरीक हो गये। केरल-सघके अध्यक्ष परमेश्वरन् पिलाई जिला सघके अध्यक्ष रामगोविन्द और श्री चक्रवर्ती राजागोपालाचार्य तारीख २ को वकारानाई गये थे। उन्होंने पुजारियोंसे जा कर व्यक्तिगत रूपसे भी पूछताछ की थी और उन्हें जो हालत मालूम हुए वे संतोषजनक थे। यह भी पता लगा कि इढवा और हरिजन काफी सख्यामें खुद-ब-खुद जर्नादन भगवानके मन्दिरमें जाते हैं और बगैर किसी कठिनाईके घोषणासे मिले हुए लाभ उठा रहे हैं।

यह घोषणा एक हजार पाच सौ छब्बीस मदिरों पर लागू होती है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें राज्यके प्रबन्धमें चल रहे हैं। इनमें से एक सौ पचास बड़े-बड़े मन्दिर

हैं जिनमें कन्या कुमारी, शुचीन्द्रम् अनन्तपद्मनाभ, वरकलाईका जनार्दन-मंदिर, हरिपाद, अम्बलपुळा, वायकोम अत्मूला, चेंगानूर, एत्तूमनूर, नेय्यतिंकर और कलादि ये बारह तो बहुत प्रसिद्ध हैं और अखिल भारतीय महत्व रखते हैं। सच तो यह है कि त्रावणकोरमें ऐसे महत्वपूर्ण मंदिर कम हैं जो राज्यके अधीन नहीं हैं। देहातसे भी जो खबरें आ रही हैं उनसे यही प्रकट होता है कि त्रिवेन्द्रम्की भांति वहां भी घोषणापर श्रद्धा और शान्तिपूर्वक सन्तोष-जनक रीतिसे अमल हो रहा है। कन्याकुमारी, शुचीन्द्रम्, नेय्यतिंकर, वित्तलन, हरिपाद, अलेप्पी, वायकोम, एत्तुमनूर अम्बलपुळा तथा परूरसे तो इस तरहकी खबरें आ चुकी हैं। इळवा जातिपर इनका बड़ा सन्तोषजनक असर पड़ा है। पढ़े-लिखे तथा दूसरे सबकी अपेक्षा उन्हें सबसे अधिक आनन्द हुआ है। जो खबरें आ रहीं हैं उनसे पता चलता है कि जिन व्यक्तियोंको हिन्दू-धर्मके विषयमें शका थी और जो बुरी तरह उसके खिलाफ थे उनमें तक बड़े उत्साह और सहयोगकी बड़ी सच्ची भावना दिखायी दे रही है। नम्बूद्रियों सहित कट्टर सनातनियोंने व्यक्तिगत रूपसे और सामूहिक तौरसे भी कोई विरोध नहीं प्रकट किया है, बल्कि उनमें से अधिकाशने तो घोषणाके साथ अपनी पूरी सम्मत्ति जाहिर की है। उनमें तो नाराजगीके कोई चिह्न हमें नजर आते ही नहीं। उनके व्यवहारसे तो ऐसा नजर आता है कि कोई असाधारण बात नहीं हुई है। पहलेकी कट्टरताको देखते हुए तो यह आश्चर्यजनक बात मालूम होती है कि उस महान घोषणापर पूरी तरह अमल हो रहा है"।

चगनचेरीके परमेश्वरन् पिल्लाई, अध्यक्ष केरल हरिजन-सेवक-संघ
एम. गोविन्दम्, अध्यक्ष, त्रिवेन्द्रम् जिला हरिजन-सेवक-संघ
जी. रामचन्द्रन् मत्री, केरल हरिजन-सेवक-सघ

यह तार इतनी देरीसे पहुँचा कि पिछले अंकमें प्रकाशित नहीं किया जा सका। सम्पादन एक जगह और छपाई दूसरी जगह होने से ऐसी ही असुविधा होती है।

जब मन्दिर-प्रवेशकी घोषणा की गयी तो मुझे कुछ शंकाएँ थीं जिन्हें मैं दबा न सका और न चाहता था कि दबा लूँ। यह कोई राजनीतिक घोषणा तो है नहीं जिसमें कोई पोलें हो और कई बातें जान-बूझ कर गोलमोल रखी गयी हों? अगर यह एक ऐसी चीज है जो जबरदस्ती लादी गयी हो तो सवर्ण हिन्दुओंपर इसका क्या असर होगा? हरिजनोंपर क्या परिणाम आयगा? क्या उनके चित्तमें और उदासीनता नहीं छा जायगी?

मित्रोंकी खुशी और उत्साहमे मै शरीक नहीं हुआ इसके लिए मुझे कसूरवार ठहराया, पर मैं करता क्या? यह नहीं कि श्रीमती महारानी, श्रीमान् महाराजा या उनके दीवान सर सी. पी. रामस्वामीकी इच्छाकी सचाईमे मुझे शक था। नहीं, वास्तवमें वर्षों पहले जब मैं त्रावणकोर गया था, मुझे तो महारानी साहबा और उनके आशापुत्र वर्त्तमान महाराजाके मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तभी महारानी साहबाने इस सुधारमें अपनी श्रद्धा प्रकट की थी। मैंने कुमारसे—

महाराजा तब कुमार ही थे—मजाक करते हुए यह पूछा था कि "क्या आप गद्दी-नशीन होने पर अस्पृश्यताको दूर कर देंगे और अछूतोंके लिए मन्दिरोंके दरवाजे खुलवा देंगे?" उन्होंने उत्साहपूर्वक जवाब दिया था—'जरूर'।

क्या मैं १६१५-१६ से नहीं जानता हूँ कि सर सी. पी. रामस्वामी भी खुद एक सुधारक हैं? पर मुझे जो शंकाएँ थीं उनके गहरे कारण थे जिन्हें कि प्रकट करने की मैंने कोशिश की है। हो सकता है कि जनतामें मेरी इतनी श्रद्धा न होगी। हाँ, हरिजन-सेवक-संघकी छायामें काम करनेवाले सुधारकोंकी पवित्रता और उनके प्रयत्नोंकी पूर्णतामें मुझे शक था ही।

पर इस नयी घटनाकी खबरने, जो कि बहुत तफसीलके साथ उपर्युक्त तारमें दी गयी है, मेरे तमाम सन्देहोंको दूर कर दिया है। पिछले हफ्ते जो नियम प्रकाशित किये गये हैं उनकी भी सारी भयंकरता अब चली गयी है। वास्तविकताने तमाम उपेक्षाओंको पीछे छोड़ दिया है। हरिजनोंका उत्साह, उच्चतम जातियोंको जहाँ तक जाने का हक है वहाँ तक जाने की इजाजत हरिजनोंको मिल जाना और पुजारियोंका स्वेच्छापूर्वक ही नहीं बल्कि हार्दिक सहयोग मिल जाना—ये सब ही बताते हैं कि यह महान सुधार बिलकुल सच्चा और स्वाभाविक है। मनुष्यके लिए जो बात असंभव थी, ईश्वरने उसीको संभव कर के बता दिया। राजाज्ञाएँ लाखों आदमियोंके दिलोंको नहीं बदल सकतीं। हिन्दुओंमें सामूहिक रूपसे हृदय-परिवर्त्तनका यह एक सुन्दर नमूना है। सत्य यह इसलिए है कि यह स्वाभाविक है।

कुछ ही बरसोंकी बात है, सवर्ण हिन्दुओंने धमकी दी थी कि वायकोम मन्दिरको जाने के कुछ रास्तोंपर अगर हरिजन पैर भी रखेंगे तो हिंसा-काण्ड हो जायगा। आज वायकोमके उसी मन्दिरमें हरिजनोंको वही सब प्रवेश और पूजाके अधिकार मिल गये जो सवर्णोंको प्राप्त हैं और यह सब किसी भी तरफसे बगैर किसी प्रकारके दबावके हुआ है। मुझे तब शंकरस्मृतिका हवाला दिया गया था। आज महाराजास्मृतिने उसका स्थान ले लिया है, जिसकी प्रामाणिकता सवर्ण हिन्दुओंके असंदिग्ध समर्थनने सिद्ध कर दी है। हरिजनोंने भी दूसरी तरफसे इसका असंदिग्ध समर्थन कर के सिद्ध कर दिया है। सचमुच उसकी महिमा अगाध है, उसकी झाँकी देखने के लिए सिर्फ अपनी आँखोंके सामनेसे अज्ञानके पटल दूर कर देने का देर है। महाराजा, उनकी सहृदया माता और उनके महान दीवान और त्रावणकोरके हिन्दुओंको भी मैं बधाई देता हूँ। हम आशा करें कि जहाँ तक ऊँच-नीचके भेदभावके सम्बन्ध हैं, त्रावणकोरके तमाम जाति भेद दूर हो गये हैं। अगर हम इसी प्रकारका उत्साह सब जगह दिखावें तो सारे हिन्दुस्तानमें त्रावणकोरकी-सी भावना फैलने में देर नहीं लगेगी।

हरिजन-सेवक
१२ दिसम्बर, १६३६

*

आदर्श और व्यवहार

'आदर्श भंगी' शीर्षक मेरा लेख पढ़ कर एक सज्जनने लम्बा पत्र लिखा है, जिसका सार यह है—

"आदर्श भगीवाला आपका लेख बार-बार पढा, फिर भी वह मेरे गले नही उतरा। मालूम होता है आप आदर्श और व्यवहारके बीचमे भेद नही करते। आपका आदर्श भगा ऐसा है कि उस तक कभी कोई पहुच ही नही सकता। समाज और सब धन्धे भले हजम कर जाय पर भगीके धन्धेको नहीं छुर छुयेगा। ऐसे आदर्श भगी पैदा करने के लिए आपको संस्था खोलनी पडेगी, तब भी आप उसमे सफल नहीं होंगे"।

लेखकने तो अपने पत्रको बहुत-सी दलीलोंके साथ अलंकृत किया है, पर उसमें कोई ऐसी नयी दलील नहीं है। मुझे समझाने के लिए यह पत्र काफी ही है; इसलिए उन दलीलोंमे मै पाठकोको उतारना नहीं चाहता। जवाबमे सिर्फ कुछ तथ्य ही देना चाहता हूँ जिससे कि आशय अधिक स्पष्ट हो जाय। जो आदर्श अमलमें जरा भी नहीं लाया जा सके वह आदर्श ही नहीं। आदर्श और व्यवहारके बीचमें अन्तर सदा रहेगा ही। इस अन्तरको कम करने के लिए पुरुषार्थकी आवश्यकता रही है। आज ही मेरे आदर्श भंगी तक पहुँचने का प्रयत्न करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त भंगीका काम करनेवाले अच्छी संख्यामे मिल रहे है। उनकी संख्या रोज बढ़ती जाती है। अगर कुछ मनुष्य जन्म भर बढ़ई रहेंगे, अनेक किसान रहेंगे, कुछ संगतराश रहेंगे, नाई रहेंगे, तो भंगी क्यो नहीं। ये सब ज्ञानीके अधिकारी नहीं है क्या? असलमें देखा जाय तो हरएक डाक्टर हरएक नर्स भंगी तो है ही। उन्हें मल-मूत्र बिखेरना पड़ता है, सूँघना पड़ता है, साफ करना पड़ता है और उसका पृथक्करण करना पड़ता है। उन्हें हम यदि भंगी मान लें तो उनका अपमान होगा? किस कारणसे? भंगीने ऐसे-ऐसे कौन-से पाप किये है कि उसका धन्धा नीच-से-नीच माना जाय? सारी दुनियामे ऐसा नहीं है। विलायतमें कुछ लोगोंको रास्ते साफ करने पड़ते हैं, मैला उठाना पड़ता है, पर वहाँ इस धन्धेको कोई हलका नहीं मानता।

चाहे जिस धन्धेका जब शास्त्र बनाया जाता है तब उसमे दूसरे शास्त्रोंके जितना ही रस उत्पन्न हो जाता है। हमारे यहाँ ही धन्धेदारोंको नाच मान कर समाजने उनके शास्त्र नहीं पनपने दिये; इसलिए बढ़ईगिरीका शास्त्र बढ़ई नही रचता; उनका शास्त्र हम पश्चिमसे लाते है। डाक्टर फाउलर आज बंगलोरमे भगीका काम कर रहे हैं। जिस होटलमें वे रहते हैं वहाँका सारा मैला वे इकट्ठा करते हैं और सूक्ष्म रीतिसे यह शोध कर रहे हैं कि उसका आसान-से-आसान तरीकेसे खाद किस तरह बन सकता है। पश्चिममे बड़े-बड़े शहरोंका मैला उठाने की बहुत बड़ी क्रिया है, तो उसे करनेवाले और शोधनेवाले भंगी ही हैं ना? दार्जिलिंग और शिमलेमे मैलेकी सफाईपर काफी पैसा खर्च किया जाता है। यह कैसी दुःख और शर्मकी बात है कि हमारे भंगी

भाइयोंमें से किसीने इसका ज्ञान प्राप्त नहीं किया। यह उच्च वर्णके माने जानेवाले लोगोंका महान पाप है। भंगीकी अवगणना कर के वे जगतकी अवगणनाके पात्र बन गये हैं। मेरे मनमे जरा भी सन्देह नहीं कि ब्राह्मणके जितना ही मान जबतक भंगीको प्राप्त नहीं होगा, तबतक भारतको सुख मिलने का नहीं, और न आर्थिक, समाजिक और राजनितिक स्वतन्त्रता ही मिलेगी। यह मैने कोई आदर्शकी बात नहीं कही है बल्कि यह शुद्ध व्यवहारकी है। भंगी जैसा आज है उसे भी मान दिया जाय यही मेरी माँग है। जब कोई भंगी ब्रह्मज्ञानी हो जायगा तब तो हम विवश हो कर उसकी पूजा करेंगे ही, पर भंगी आज जैसा है वैसा भी वह हमारा सगा भाई है—ऐसा समझ कर हम करेंगे तभी हमारी शुद्धि होगी।

हरिजन-सेवक
२६ दिसम्बर, १६३६



इसका रहस्य

मैंने लिखा था कि—"इस महान कार्य (त्रावणकोर नरेशकी घोषणा) का रास्ता हरिजन-सेवक संघकी त्रावणकोर शाखाके विनम्र किन्तु सतत् प्रयत्नसे तैयार हुआ था"। मेरे इस कथनको गलत साबित करने के लिए त्रावणकोर-असेम्बलीके डिप्टी प्रेसिडेन्टने एक पत्र लिखा है जिसमे उन्होंने स्थानीय संघसे यहाँ तक कहा है कि अपने कामका ढिंढोरा पीटने के लिए वह न तो सार्वजनिक सभाओंका आयोजन करे और न श्री राजगोपालाचार्य जैसे बाहरी लोगोंको आमंत्रित ही करे। यही नहीं, बल्कि इसके विपरीत उन्होने यह भी बताया है कि मैं तो, जिस अहमदाबादमें मेरा सबसे ज्यादा प्रभाव समझा जाता है, वहीं हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवाने मे बिलकुल असफल रहा हूँ।

मेरे लिखने का तो स्पष्ट आशय यह था कि शिक्षण और प्रचारके रूपमे स्थानीय (त्रावणकोरमे) संघने जिस अविरल उत्साहसे इसके लिए काम किया, उसीने सवर्णोंको इसके लिए तैयार किया और जहाँ तक पता है त्रावणकोरमे उसके सिवा और कोई ऐसी संस्था ही नहीं जो सवर्णोंकी आत्माको जागृत करने के लिए काम कर रही हो। मेरे लेखमें ऐसी कोई बात नहीं थी जिससे कि यह ध्वनि निकलती हो कि महाराजा साहबने जो कुछ किया वह हरिजन-सेवक-संघकी हलचलके फलस्वरूप किया है।

और सब बातें ऐसी हैं जिनके बारेमे वहाँके कार्यकर्त्ता अच्छी तरह जानते हैं कि क्या करना है और वह कैसे करना चाहिये। जहाँ तक मेरे अपने प्रभावका

सवाल है मैं डिप्टी-प्रेसीडेन्ट महोदयके इलजामको कबूल करता हूँ। न सिर्फ अहमदाबादमें ही मैं हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवाने में असफल रहा हूँ, बल्कि वर्धामें आ कर बस जाने के बाद भी मैं उनके लिए मन्दिर नहीं खुलवा सका हूँ और मेरी प्रख्यातिके लिए इससे बढ़ कर जो बुरी बात है, वह यह है कि इस छोटे-से गाँवमें सवर्णोंके जो दो मन्दिर हैं उन्हें भी मैं हरिजनोंके लिए नहीं खुलवा सका हूँ, लेकिन इस तरह अपनी असफलताको स्वीकार कर लेने से मेरा प्रायश्चित पूरा नहीं हो सकता। मेरी असफलता उस सफलताकी, जिसमें मुझे पूरा विश्वास है, पहली सीढ़ी है, लेकिन ईश्वरको जब मंजूर होगा तभी वह मुझे मिलेगी। मेरा काम तो सिर्फ यही है कि उसके लिए प्रयत्न करते-करते प्राण विसर्जन करूँ।

इसलिए त्रावणकोरमें जो यह चमत्कार हुआ उसका श्रेय निश्चय रूपसे महाराजा साहब, उनकी नेक माता और उनके दीवानको ही है और हमलोग जो जड़मूलसे अस्पृश्यताको उखाड़ने के प्रयत्नमें लगे हुए हैं उन सबके लिए यह एक सबक है। ठीक हो या गलत, हिन्दूधर्मकी रूढ़ि प्रथाके अनुसार किसी भी हिन्दू नरेशका यह कर्त्तव्य और अधिकार है कि वह स्मृतियोंके नियमोंका इस प्रकार प्रतिपादन करे जो धर्मके उन मूल सिद्धान्तोंसे मेल खाता हो जो कि लोगोंकी नैतिक जिम्मेदारियोंको पूरा करने के लिए आवश्यक है। कई साल पहले जब वायकोमके पंडितोंसे मेरी बातचीत हुई थी तो उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया था कि हालाँ कि स्मृतिसे हमारी मान्यताका समर्थन होता है, लेकिन हमारे महाराजा साहब इससे विपरीत नियम बना देंगे तो उनका वे पालन करेंगे। त्रावणकोरके निवासी राज-घोषणाका जो पूरी तरह पालन कर रहे हैं और आज वहाँ जो सुखद दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा है, सम्भवतः उसका बहुत कुछ कारण यही है। दूसरी हिन्दू-रियासतें भी यदि त्रावणकोरके इस सुन्दर उदाहरणका पालन करें तो उन्हें भी शायद इस बातका पता लग जायगा कि जो नियम वे जारी करेंगे प्रजा उनका परिपालन करेगी। जो भी हो, इन रियासतोंके लोगोंको अपने यहाँ इस प्रकारका लोकमत तैयार करने में तो कोई हानि है ही नहीं। हाँ, राजाज्ञाकी प्रतीक्षामें ट्रस्टियों द्वारा हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवाने के अपने प्रयत्न उन्हें हर्गिज ढीले नहीं करने चाहिये; क्योंकि सुधारकोंकी तो दलील यही है कि हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलने या अस्पृश्यताको दूर करने के लिए किसी नयी स्मृतिकी जरूरत नहीं है। जरूरत सिर्फ यह है कि अपनी उद्देश्य-पूर्त्तिके लिए कोई भी सम्मानपूर्ण रास्ता हमें दिखायी दे उसका हम पूरा उपयोग करें और इसमें अगुआ बनने के लिए राजाओंसे प्रार्थना करना एक ऐसा ही रास्ता है जो सम्मानपूर्ण है और जो बहुत सम्भवतः सफलतापर जल्दी पहुँच सकता है।

हरिजन-सेवक

२६ दिसम्बर, १९३६

❀

एक कष्टप्रद कर्त्तव्य

नीचे लिखा पत्र मैं बिना किसी हेर-फेरके ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर रहा हूँ—

'महात्मा गान्धीजीके नाम खुली चिट्ठी'

"प्रिय महात्माजी,

२१–११–३६ के 'हरिजन'मे मेरे सम्बन्धमे आपने जो नोट लिखा है उसे पढ कर दिलको चोट पहुची । उस नोटमें मेरे बारेमे असत्य बातें लिखी हैं। मै कटकके नजदीक हरिजन-कार्य नहीं कर रहा हूँ, न मैं साधारण धन सग्रह करने के लिए बम्बई ही गया और न साधारणतया पैसा इकट्ठा करने के लिए जाने से पहले मैं आपसे सलाह ही लेता हूँ।

बम्बईमें आपके हरिजन-कार्यके निमित्त पैसा इकट्ठा करने के लिए मै नहीं गया था और न साधारण धन-सग्रह करने के लिए ही । मै तो वहा नवम्बरके दूसरे हफ्तेमे उडीसाकी असेम्बलीकी उम्मीदवारीके सिलसिलेमे अपने कुछ मित्रोसे मिलने गया था। 'हरिजन' पढ कर मुझे बडा सदमा पहुचा और आपने उस नोटमें मेरे खिलाफ जो-जो आरोप किये हैं उनकी असत्यता और उनकी अवास्तविकताके बारेमे मैंने तुरन्त आपको लिखा, पर महात्माजी, सत्यके सबसे बडे अवतार होते हुए भी आपने उन अनुचित आरोपोंको वापस लेने से इनकार कर दिया, इसलिए आपको यह खुली चिट्ठी लिखने और उसे अखबारोंमे प्रकाशित करा देने के सिवाय मेरे पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहा ।

२१-११-३६ के 'हरिजन'मे आपके नोटमे जो बातें आयी है उनका निवारण तथा उनको दुरुस्त करने के लिए मैं नीचे लिखे वक्तव्य दे रहा हू । यद्यपि मैं किसी समय साबरमती आश्रममे था, पर कटकके पास या किसी और जगह हरिजन-कार्य या दूसरा कोई कार्य चलाने के लिए मुझे आपसे या किसी औरसे कभी कोई मदद नहीं मिली । कटकके पास मैं हरिजन-कार्य नहीं कर रहा हू । जिस सेवाश्रमको मैने खोला है और जिसका नाम आपके सम्मानार्थ 'गाधी सेवाश्रम' रखा है उसके निमित्त पैसा इकट्ठा करने के लिए जाने से पहले मैने कभी आपसे सलाह नही ली । यह आश्रम न तो किसी काग्रेसी-सस्थासे सम्बन्ध रखता है और न आपसे ही और न किसीके अधीन ही है । १६२१ ई० मे जब मैं साबरमतीसे लौटा तो उस तरीकेपर, जिसका कि आप प्रचार कर रहे थे, देश सेवा करने की मेरे मनमे एक कल्पना थी ।

उडीसामें मैने देखा कि काग्रेसके स्थानीय नेताओका वातावरण मेरी देश सेवा कल्पनाके मुताबिक नहीं है; इसलिए मैंने अपने खुदके विचारो के अनुसार काग्रेस-कार्यको मदद पहुचाने की गरजसे गावोमे काम करने के लिए एक आश्रम खोला । मैं उडीसाके तथा बाहरके लोगोके पास पहुचा और उनकी सहायता और सलाहसे गत दस सालसे ग्राम-सेवा-कार्य कर रहा हूँ । अपने आश्रमके लिए मदद मागने मे मैंने आपके नामका कभी उपयोग नहीं किया । आपके लिए मेरे हृदयमे व्यक्तिगत आदर होने के कारण मैंने उसका

नाम 'गाधी-सेवाश्रम' रखा। मैं जानता हूँ और वक्तन-फौक्तन आपको सूचित भी करता रहा हूँ कि मैं काग्रेसके अनेक तथोक्त स्थानीय नेताओंकी अच्छी नजरोंमें नहीं हूँ। ये लोग मुझे हानि पहुचाने में कुछ उठा नहीं रखते और पीछे-पीछे मेरी शिकायत करते और आपके कानोंमें मेरे खिलाफ जहर भरते रहते है—यह सिर्फ इसलिए कि सालोंसे मैं अच्छी तरह शान्तिपूर्वक काम करता आ रहा हूँ और गावोंमे अपने ही ढगसे काग्रेसके सन्देशका प्रचार कर रहा हूँ और आश्रमसे जो मैं मुनाफा उठा रहा हूँ, जैसा कि उनका खयाल है, उसमे उन्हे हिस्सा लेने नहीं देता हूँ।

चूकि यह मेरा व्यक्तिगत उद्योग है, इसलिए मैंने उनकी पर्वा न की। यहा तक कि आपने भी, जब कि गत वर्ष आप आश्रमसे गुजरे, गावोंमे मेरे काम करने के कुछ तरीकोंको पसन्द नहीं किया था। मेरे दुश्मनोंने स्थानीय पत्रोंमे मुझे बदनाम कर के आपकी नापसन्दीसे खूब फायदा उठाया, तो भी मै किसीके कोपका या कृपाका खयाल किये बगैर अपना काम करता जा रहा हूँ।

१८ महीने बाद जब आपके पास मेरे खिलाफ कुछ शिकायतें पहुची तब आपने मुझे उनके विषयमें लिखा और मैंने आरोपोंको सजीदगीके साथ अस्वीकार करते हुए आपको उचित उत्तर भेज दिया। आपके प्रति मेरा जो कर्त्तव्य है, वह जहा तक कि मेरा और मेरे आश्रमका सम्बन्ध है, वहा खत्म हो जाता है। अब आप जो तहकीकात करना चाहें, खुशीसे कर सकते हैं।

मगर अन्तमें मै जोर दे कर यह कहूँगा कि मेरी अंतरात्मा स्वतन्त्र है और नम्रतापूर्वक गरीब ग्रामवासियोंको सहायता पहुचाने का अपना कार्य मै कर रहा हूँ। असेम्बलीके चुनावके समय बगैर मुझसे कुछ पूछे ऐसी नुकसान्देह बाते छाप दीं यह मेरे साथ आपने ज्यादती की है। यह तो मेरे बने हुए दुश्मनोंको मौका देना है और उड़ीसाके काग्रेस-कार्यको नुकसान पहुचाना है।

कटक — आपका

६ दिसम्बर, १९३६ — गोविन्दचन्द्र मिश्र

अगर लेखक इस पत्रको प्रकाशित न करता तो मैं इसे दबा लेता। इसे प्रकाशित करना एक दुःखदायी काम है, इसपर टीका करना एक कष्टप्रद कर्त्तव्य है।

गोविन्द बाबूको पहले-पहल मेरे पास दीनबन्धु एण्डरूजने भेजा था, जबकि वह बहुत ही तंगहालीमे थे। उड़ीसामे उनकी दरकार नहीं थी। उड़ीसाके लिए मेरे हृदयमे जो करुणा है उसने उन्हें साबरमतीमें रख लेने के लिए मुझे मजबूर किया। उनकी असंबद्ध बातचीतने मुझे उनकी ओर आकर्षित नहीं किया और अगर वे उड़िसावासी नहीं होते और उन्होने अपने कष्टोंका करुण-क्रन्दन न किया होता तो दीनबन्धुकी सिफारिसके बावजूद उन्हें मैं जगह न देता। औरोंकी नाई

तुरंत वे मेरे लिए पुत्रकी तरह बन गये। उनका बर्ताव इतना अनाकर्षक था कि आश्रमके लोग उन्हें दिलसे नहीं चाहते थे; इसलिए मुझे उनपर अलगसे खयाल रखना पड़ता था। मुझसे सलाह ले कर वे उड़ीसा गये। मुझसे सलाह ले कर उन्होंने आश्रम खोला। अपनी रिपोर्ट वह बाकायदा मेरे पास भेजते थे। निश्चय ही उन्होंने मेरी देख-रेखमें हरिजन-कार्य तथा खादी-कार्य किया। बम्बईमें उन्होंने खास कर उन लोगोंसे, जो मेरे परिचित थे और उनको एक साबरमती आश्रमके सदस्यके रूपमे जानते थे, रुपया इकट्ठा किया। मैं खास कर उनका आश्रम देखने गया था। वहाँ जाने पर वह बंगला देख कर, जो उन्होंने बनवाया है, मुझे गहरा दुःख पहुँचा और मैंने सार्वजनिक तौरपर उनकी निन्दा की। उन्होंने अपना कसूर मान लिया। सिर्फ एक ही नाम लेने लायक मैंने वहाँ काम देखा और वह दवाखाना जिसमे दवाइयाँ तो काफी रखी हुई थी, पर जो साफ-सुथरी हालतमे नहीं थी। मेरी आशाओंपर पानी फेर देने, ठीक-ठीक हिसाब-किताब न रखने और कोई भी रचनात्मक कार्य न करने के लिए मैंने उन्हें काफी फटकारा। दवाखानेकी निश्चय ही जरूरत नहीं थी। मैंने कहा कि अगर किसीके पास पैसा हो तो दवाखाना खोल देना उसके लिए सबसे आसान काम है।

उन्होंने गलती सुधारने का मुझे वचन दिया, पर उसे सुधारा नहीं। तब बाबा राघवदासको तहकीकात करने के लिए भेजा गया और उन्होंने खिलाफ रिपोर्ट की। उसके बाद उनके चरित्रके सम्बन्धमें गंभीर दोषारोप आये। इन आरोपोकी तहकीकात अब भी हो रही है। असेम्बलीके लिए वह खड़े हो रहे हैं। इसके बारेमें तो मुझे कुछ भी पता नहीं था। इस संबधमे उन्होने मुझसे कभी सलाह नहीं ली। वह जानते थे कि मैं उनके लिए यह प्रस्ताव नामंजूर कर देता। उनके बारेमें जब वह नोट निकला तब कहीं उन्हें लगा कि यह रहस्य अब मजबूरन खोलना ही पड़ेगा। उनके पहले पत्रमे सत्यको दबा लिया गया था, पर दूसरेमे उन्होने कबूल कर लिया। उस नोटके प्रकाशित होने के बाद अपनी स्थिति साफ करने के लिए उन्होंने सेगाँव जाने के लिए पूछा। उनके पहलेके मित्रोंके कई ऐसे बयान मेरे पास थे जिनमे कि बहुत ही ज्यादा नुकसान पहुँचानेवाली बाते थीं; इसलिए मैंने लिख दिया कि वह आ सकते हैं, लेकिन यह कह कर वे नट गये कि मेरी फिलासफीमे उनका विश्वास नहीं रहा। गोविन्द बाबूके साथ अपने संबन्धकी मैंने जो यह रूपरेखा दी है उसके प्रकाशमे केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उनके इस पत्रमें सत्यका गला घोटा गया है। जिस मनुष्यको बनाने में मुझे बहुत कुछ करना पड़ा और जो किसी समय में जो कुछ कराना चाहता वह करने को तैयार था, उसके विरुद्ध एक भी शब्द लिखना मेरे लिए खुशीकी बात नहीं है।

इस सारी ही कहानीमे सिर्फ एक राहत पानेवाली चीज है—वह यह है कि गोविन्द बाबूको मूर्छित मनुष्यकी तरह यह पता नहीं रहता कि वह क्या बोल रहे हैं या कि वह असत्य बोल रहे हैं। मैंने यह जो लिखा है इसमे वह एक ऐसे

माता-पिताकी वेदनाको जरा गहरा उतर कर देखें जिसने कि अचानक एक आज्ञाकारी पुत्रको रेत दिया है और मेरे हृदयमें उन्होंने जो घाव कर दिया है उसपर पश्चाताप करें। उनकी तमाम मर्यादाओंके बावजूद मैंने कभी उनकी वफादारीपर और उस कार्यके हकमें जिसने कि उन्हें मेरे साथ प्रेमके बन्धनमें बाँध दिया था, मेरी इच्छाएँ पूरी करने की उनकी तत्परतापर, मैंने कभी सन्देह नहीं किया। उनके हालके दो पत्रोंने और इस आखिरी पत्रने तो मेरे लिए वज्रपातका काम किया है।

हरिजन-सेवक

२६ दिसम्बर, १६३६

❀

ईसाई हरिजनोंके प्रति कर्त्तव्य

एक सज्जनने पूछा है कि ईसाई हरिजनोंके प्रति हरिजन-सेवक संघका क्या कर्त्तव्य है? उनके पत्रमें अनेक छोटे-छोटे प्रश्न हैं जिन्हें यहाँ अलगसे देने की जरूरत नहीं है। वह लेख ही प्रश्नोंको लक्ष्य कर के लिखा जा रहा है।

साधारण रीतिसे यह कहा जा सकता है कि जो ईसाई-धर्ममें चले गये हैं उनके प्रति वह विशेष कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है जो हिन्दू हरिजनोंके प्रति संघने मान रखा है और जिसे पालने का वह प्रयत्न करता है, पर एक मनुष्यका दूसरे मनुष्यके प्रति जो सद्भाव होना चाहिये वह सद्भाव तो ईसाई हरिजनोंके प्रति होना ही चाहिये। यह नियम सभी धर्मोंके मनुष्यपर लागू होता है। कोई हरिजन अपनेको ईसाई कहता है—इससे उसके प्रति रोष नहीं करना चाहिये, पर उसे संघकी ओरसे छात्रवृत्ति जैसी कोई खास मदद मिलती हो तो वह बन्द हो जायगी, किन्तु ईसाई होने पर भी यदि वह हरिजन-पाठशालामें पढ़ता हो और वहाँ रहना चाहे तो उसे निकाला न जाय। शायद उससे फीस भी माँगनी चाहिये। उसे मुफ्त कपड़े वगैरा दिये जाते रहे हों तो न दिये जायँ; क्योंकि संघका पैसा केवल हिन्दू हरिजनोंके लिए ही है। हरिजन-पाठशालामें अन्य हिन्दू दाखिल हो सकते हैं, पर वे उसमें मुफ्त नहीं आ सकते।

ईसाई हरिजनोंको फिरसे हिन्दू-धर्ममें आने की लालच नहीं होनी चाहिये, पर वह राजी-खुशीसे अपने धर्ममें आना चाहें तो उसे मना नहीं करना चाहिये, लेकिन ईसाई-हरिजन कुएँ वगैराकी सहायता माँगते हों तो उसे पहुँचाने का सामान्य धर्म स्वाभाविक है, पर यहाँ भी हरिजन फंडसे मदद न दी जाय। जिस कुएँसे हरिजन पानी भरते हों वहाँ उन्हें भरने की सुविधा कर देनी चाहिये। जिस डाक्टरकी या सेवककी बगैर फीसके सेवा मिलती हो उसकी सेवा ईसाई हरिजनोंको भी संघके सेवक दे सकते हैं और देना उनका धर्म है।

हरिजन-सेवक

२६ दिसम्बर, १६३६

❀

साँपनाथ कहो चाहे नागनाथ

ठक्कर बापाने मेरे पास अखबारकी यह कतरन भेजी है—

सवर्ण कैथलिक ईसाइयोंने उपासना छोड दी

"कुंभकोणम, १४ दिसम्बर। कुमकोणमके सेंट मेरी कथेड्रलमे कल रविवारकी उपासनामें काफी तनातनी देखने में आयी। हुआ यह कि कैथलिक हरिजन बजाय उस भागमे बैठने के, जो कि उनके लिए खास कर रखा गया है, सघटित रूपमें सवर्ण कैथलिकोंकी तरफ खिंडते चले आ रहे थे और उनके बीचमें जा-जा कर बैठ रहे थे। वहाँपर हरिजनोंको एक इञ्च भी हटने से इनकार करने पर खूब खलबली और हुल्लड मचा। स्थिति जब और भी खराब हो चली तब यह निश्चय जाहिर कर के, कि जबतक इन सवालोंका आखिरी तसफिया नहीं हो जाता, तबतक हम उपासनामें शरीक नहीं हो सकते, सवर्ण लोग वहासे उठ गये। हरिजनोंने एक मीटिंग की जिसमे यह निश्चय हुआ कि जबतक हमे समानता नही मिल जाती तबतक लडाई जारी रखी जाय। पादरीने हरिजनोको सलाह दी कि वे बुद्धिपूर्वक युक्तिसे काम लें। उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि महज सुविधाकी अलग-अलग जगह नियत कर देने का अर्थ कोई खास भेदभाव नहीं है। उन्होने कहा कि आपसी सद्भाव छोड कर इस तरह नये-नये तरीके जारी कर के उन्हे दूसरे लोगोंकी भावनाओंको दुखाना नहीं चाहिये। पादरीके इस तरह विश्वास दिलाने पर सतुष्ट न हो कर, हरिजन नेता गावोंमे यह प्रचार कर रहे है कि सवर्णोंकी उस उद्धतता और दुराग्रहके खिलाफ उन्हे डट कर लडना चाहिये"।

आपा हरिजन नाम मात्रका ईसाई है या मुसलमान या हिन्दू है या अब सिख है, वह तब भी हरिजन है। तथोक्त हिन्दू-धर्मसे विरासतमे पाये हुए धब्बोंको वह बदल नहीं सकता। वह अपने वस्त्रको भले ही बदल दे और अपने को कैथलिक हरिजन कहने लगे या मुसलिम हरिजन अथवा नव-मुसलिम या नव-सिख, पर उसकी अस्पृश्यता उसके जीवन-कालमे उसके पेड़े पड़ी रहेंगी। चाहे आधा दर्जन कहो चाहे छः बात—एक ही है। साँपनाथ और नागनाथमें कोई फर्क नहीं आता। हिन्दू-धर्ममें से जबतक अस्पृश्यता दूर नहीं हो जाती तबतक हरिजनोंका यह दाग दूर होने का नहीं, भले ही वे अपना कुछ भी नाम रख ले; इसलिए हिन्दू-धर्मको बचा लेना या उसे नष्ट कर देना हरिजनोंके हाथमे है जैसा कि सवर्ण हिंदुओंके हाथमे है। निःसन्देह, हरिजनोंके लिए अपना नाम बदल लेना जितना आसान है उतना आसान सवर्ण हिन्दुओंके लिए अपना हृदय बदल लेना नहीं है, पर हरिजनोंके लिए हरएक पार्थिव-प्रलोभनसे ऊँचा उठने और उस धर्मको जिसमे किउनके सहधर्मियोंने उन्हें प्रारम्भिक-से-प्रारम्भिक मनुष्योचित अधिकारोंसे महरूम कर रखा है, बुद्धिपूर्वक मज-बूती से पकड़े रहना आसान हो सकता है। इसमें शक नहीं कि जो प्रलोभन हरिजनोंको आज दिये जा रहे है उनका प्रतिरोध करना किसी भी आदमीके लिए कठिन है। अगर

वे अपने पूर्वजोंके धर्मके प्रति, बुद्धिमानीपूर्वक महान प्रयत्न द्वारा उसे शुद्ध करने के दृढ़-विश्वासके साथ सच्चे साबित हुए और उससे मजबूतीके साथ चिपटे रहें तो यह एक महान आश्चर्य ही कहा जायगा। इसे वे इतना पहले नहीं कर सकते थे जितना कि आज कर सकते हैं; क्योंकि वे जानते है कि ऐसे सवर्णकी संख्या बढ़ती ही जाती है जो इस कार्यमें उनका साथ दे रहे है और अपनी पहलेकी भूलोंके लिए और अपने सवर्ण हिन्दू भाइयोंकी उन गलतियोंके लिए जो आज भी वे करते जा रहे हैं, प्रायश्चित कर रहे हैं। इस तरह कुंभकोणमकी इस घटनाको देखें तो वह रोमन कैथलिक धर्म तथा हिन्दू धर्म—दोनों ही के लिए एक-सी लज्जाजनक है।

हरिजन-सेवक
२६ दिसम्बर, १९३६



हिन्दू-आचार

निम्नलिखित पत्र सात महीनेसे मेरी फाइलमें रखा रहा—

"हालमें अहमदाबाद और आसपासके गांवोंमें हरिजन सेवाका काम कर रहा हूँ। सफाईके कामके अलावा उनसे धर्मकी बातें भी कहता हूँ। हालमें एक हरिजन भाईने मुझसे कहा कि तुम सत्य, अहिंसा, सादा जीवन आदिकी ऐसी ऐसी बातें करते हो जो न हम पूरी तरहसे समझते हैं और न उनपर चलते हैं। इसके लिए तुम अमुक निश्चित बातें ही हमें समझाओ और उन्हें आचारमें लाने का आग्रह रखो तभी हम कुछ सुधरेंगे।

मुझे ऊपरकी बातोंसे यह सच जान पड़ता है कि हम हरिजनोंसे पवित्र जीवन बिताने जैसी सर्वमान्य बातें करें। इसकी अपेक्षा अगर हम हिन्दू-धर्मको कुछ सार रूप आज्ञाएँ तैयार कर के उन्हें आचारमें लायें तो वे वैसा करने लगेंगे—जैसे, नित्य प्रार्थना करना, स्नान कर के ही जीमना, कामकी चोरी न करना, कोई व्यसन न रखना आदि बातें जिसमें आ जाय। इस प्रकार हिन्दू-धर्मका सच्चा आचार बनानेवाली कुछ आज्ञाएं आप तैयार कर दें तो अच्छा हो"।

इस पत्रको मैंने इस आशासे दबा रखा था कि इसका जवाब खुद देने की अपेक्षा किसी किसान शास्त्रज्ञसे लिखा कर भेज दूँ तो अच्छा हो। अब यह काम आचार्य आनन्दशंकर भाईने मेरी प्रार्थनासे हाथमें ले लिया है, पर जो पुस्तक तैयार होगी उसके ऊपरके प्रश्नोंका हल, जैसा कि लेखक चाहता है, वैसा नहीं होगा। इस पुस्तकमें से वह खुद आवश्यक चीजें निकाल लेगा ऐसी मेरी आशा है। इस प्रकारकी कई चीजें मैं यहा दे देता हूँ, चूँकि हरिजनमें मुझे काम करते वर्षों हो गये।

मैं हरिजनोंसे हिन्दू-धर्मके तत्त्वोंकी बातें नहीं करता। उनके मन्दिर अगर पृथक् होते हैं तो उनमें चला जाता हूँ। उनके पुजारीके साथ विनोद भी करता हूँ। उस बेचारेको साधारणतया कुछ ज्ञान नहीं होता है, पर सवर्णोंका पुजारी सब कुछ जानता है—ऐसा कहने का मेरा आशय नहीं; मगर सवर्ण पुजारी मेरी बात सुनेगा ही क्यो ? हरिजन पुजारी मुझे एक बड़ा आदमी मानता है और मेरी बात सुनता तो है, पीछे भले ही एक कानसे सुन कर दूसरे कानसे निकाल दे। यह तो अलग बात हुई। हरिजन-मण्डलीको तो मैं इस प्रकार कहूँगा—तुम्हें आज तक हमने दुत्कारा ही है, तुम्हारी तरफ देखा भी नहीं, तुम्हारे दुःख-सुखमें भाग नहीं लिया, इसलिए हमारे धर्मका हमसे क्या तकाजा है यह मैं तुम्हें बता दूँ—

(१)सबेरे पौ फटने से पहले जागनेकी आदत न हो तो डाल लेनी चाहिये।

(२) बहुत-से लोग उठते ही या तो बड़ी चिलम फूकने लगते हैं, या घरवालोको योंही अन्ट-शन्ट खबरें सुनाने लगते हैं। ऐसा करने के बजाय बिस्तर छोड़ने के पहले आलस्यको भगाते हुए प्रभुका नामोच्चारण करना चाहिये और रात निर्विघ्न बीत जाने के लिए भगवानका आभार मानना चाहिये।

(३) बिस्तर छोड़ते ही बाल-बच्चोंको उठा देना चाहिये और जहाँ लोगोंका आना-जाना न हो वहाँ बैठ कर नीम या बबूलकी दाँतून करनी चाहिये। साथमें नमक या घरमें पिसे हुए कोयलेसे दाँतोको अच्छी तरह घिसना चाहिये। दाँतुनको चीर कर उससे जीभ साफ करें और अच्छी तरह कुल्ले करें, आँखोंपर पानीके छींटे मारें, कीचड़ हो तो उसे निकालें और चेहरा, कान, नाक वगैरा अच्छी तरह धायें और साफ कपड़ेसे उन्हें पोछें।

(४) अगर शौचकी खबर हुई हो और गाँवके नजदीक पाखाना न हो तो दूर जा कर जहाँ लोगोकी आवा-जाई न हो वहाँ शौच क्रिया करनी चाहिये और मल-विसर्जनका भाग पानीसे ठीक साफ कर देना चाहिये। इसके बाद पानी और मिट्टीसे हाथ धोने चाहिये और लोटा भी खूब माँज कर साफ करना चाहिये।

(५) यह सब नित्य-क्रिया करते समय मनमें रामधुन या कोई भजन गाते जायँ और अगर ऐसी कोई चीज न आती हो तो केवल राम-नामकी ही रट लगानी चाहिये।

(६) घर आते-आते इस तरह पौ फटने का समय हो जायगा, कुटुम्बके लोग भी इसी तरह शौच आदिसे निवृत्त हो चुकेंगे, इसलिए उनके साथ बैठ कर पाँचसे ले कर आध घंटे तक भगवानका भजन-कीर्त्तन करना चाहिये। अगर कोई भजन-कीर्त्तन न आता हो तो रामनाम तो सब ले सकते हैं।

(७) इसके बाद नाश्ता कर के सबको अपने-अपने काममें लग जाना चाहिये। बालक काम पर न जाते हों तो पाठशाला चले जायँ।

(८) दोपहरका भोजन करने से पहले साफ पानीसे सारे शरीरको अच्छी

तरह रगड़ कर नहाना चाहिये। धोती-साड़ी वगैरा कपड़े धो कर साफ करने चाहिये। गरीब आदमी, जिन्हें रोज कपड़े बदलने की सुविधा न हो, लँगोटी पहन कर नहा लें। नहाने के बाद शरीरको खूब अच्छी तरह पोछना चाहिये।

(९) इस तरह नित्यका काम-धन्धा करते हुए जब शाम हो जाय तब खाना खाने के बाद और सोने से पहले ईश्वरका नाम लेना चाहिये और दिन निर्विघ्न बिता देनेके लिए ईश्वरको धन्यवाद देना चाहिये।

(१०) हर समय खाना खाने के बाद, जिसमे कि हाथ गदे होते हों, हाथ धोने चाहिये। खाना खाने के बाद कुल्ला कर के मुहँ साफ करना चाहिये।

(११) हमें समझना चाहिये कि हमारे हरएक विचारको ईश्वर देखता है; इसीलिए उसे तो कोई धोखा दे ही नहीं सकता। तो फिर उसके सिरजे हुए अपने भाई-बहनोंको हम किस तरह धोखा दें ? भले ही वे लोग हमारी धोखेबाजीको न समझ सकें और जान जायँ तो धोखा दे ही कैसे सकते हैं ?

(१२) इसलिए हम जिसकी नौकरी करते हो उसका काम दिल लगा कर करें, उसे दगा न दें।

(१३) और किसीको धोखा न दें, तो किसीकी चोरी तो करें ही किस लिए ? खोटी तोल तोली तो वह भी चोरी ही हुई।

(१४) हमें कोई गाली दे या हमारी माँ-बहनके साथ दुराचरण करे तो वह हमें निश्चय ही अच्छा न लगेगा; इसलिए हम किसीको गाली न दें, अपनी स्त्री या बाल-बच्चोको भी न दें।

(१५) न किसीको मारें-पीटें। इसमे स्त्री और बाल-बच्चे आ गये। इनका नाम अलगसे लेना पड़ा है, क्योंकि बहुत-से पुरुष अपनी स्त्री और अपने बच्चोंको माल-मिलकियत समझते हैं, पर यह भारी भूल है। स्त्रीको तो हमारे धर्ममें पुरुषके समान ही माना है; इसीसे वह अर्धांगिनी कही जाती है, सहधर्मिणी कही जाती है, देवी मानी जाती है। बाल-बच्चे भी हमारी मिलकियत नहीं है। माता-पिता उनके रक्षक हैं; इसलिए उनके प्रति भी नरमाई, सहनशीलता और धीरजसे काम लेना चाहिये।

(१६) जिस प्रकार हम अपनी स्त्री या बालकोंके साथ सद्भाव रखें उसी प्रकार माता-पिता आदि बुजुर्गोंके साथ मान या आदरसे वर्ताव करें।

(१७) और ऊपर १४वें पैरामे जो बताया है उसके अनुसार यह तो सत्य ही है कि पुरुष पर-स्त्रीको माँ-बहनके समान समझे और इसी तरह स्त्री पर-पुरुषको भाई और बापके समान माने।

(१८) जिस प्रकार मनुष्य मात्र एक ईश्वरकी कृति है, उसी तरह प्राणी मात्र भी उसीकी कृति है; इससे वे भी एक कुटुम्ब रूप हैं; इसलिए उनके साथ भी हमें सद्भाव रखना चाहिये। अतः मिट्टी या पत्थरका भी दुरुपयोग न किया जाय।

हमारे धर्ममें तो हमें इस प्रकारकी प्रार्थना भी सिखायी गयी है—हे धरती माता ! तेरे ऊपर हम रोज चलते हैं, तेरे ही आधारपर तो हम टिके हुए हैं, हमारे पैरोंके स्पर्शके लिए तू क्षमा करना—ऐसा कह कर हम चुटकीसे धूल माथेपर चढा लें।

(१९) और इससे हम अपने पशुके साथ भी ममताका बर्ताव करें, उसे ठीक-ठीक खिलावें, जितना वह बोझ ले जा सके उससे अधिक नहीं लादना चाहिये। उसे अच्छी जगहमें रखें, उसे मारे-पीटे नहीं।

(२०) इसी तरह जितनेकी जरूरत हो उतने ही पेड़-पत्तोंको तोड़ें। तोड़ने में विवेकसे काम लें। चाहे जिस तरह न काटें।

(२१) जहाँ तक हो सके मांसाहार न करें, पर गोमांस तो खाना ही नहीं चाहिये। हमारे धर्ममें गो-रक्षाके लिए महानस्थान है।

(२२) १९वें पैराके अनुसार सब पशु हमारे भाई-बहन हैं; इससे हमारे ऋषि-मुनियोंने सिखाया है कि गायको माता मानें। हमे मनुष्य जातिसे, इस तरह समस्त जीवोंके प्रति, भाई-चारेका बर्ताव करना चहिये। गायको माता मानना भी उचित है; क्योंकि माताकी तरह वह भी हमें दूध देती है। जिसे दूध-दही मिलता है उसे मास-मछलीकी जरूरत नहीं रहती, फिर गाय तो हमें बैल भी देती है और मरने के बाद चमड़ा, खाद, गाड़ियों वगैराके लिए चरबी आदि चीजें भी हम दे जाती हैं; इसलिए गायकी हत्या तो करनी ही नहीं चाहिये।

(२३) और गायकी हत्या न करें तो उसके मरने के बाद उसका मांस क्यों खायँ ? मुर्दार जानवरका मांस तो दुनियामें कोई समझदार आदमी खावे ही नहीं।

(२४) व्यसनमें मनुष्य फँसने से पागल सरीखा बन जाता है। कितनी ही बार तो उसे बिलकुल ही ज्ञान नहीं रहता; इसलिए दारू, ताड़ी, भांग, गाँजा, तम्बाकू आदिको न पीना चाहिये, न खाना चाहिये।

(२५) जुआ तो ठगी है और उसमें मिला हुआ धन हरामका पैसा है; इसलिए जुआ नहीं खेलना चाहिये।

(२६) जैसा हमें अपना धर्म प्रिय है वैसे ही दूसरोंको अपना धर्म प्यारा है; इसलिए हमें सब धर्मोंका आदर करना चाहिये, उन्हें एक समान मानना चाहिये और इससे हमे मुसलमान, ईसाई वगैरा अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ द्वेष या लड़ाई-झगड़ा करना ही नहीं चाहिये।

(२७) जब धर्म यह सिखाता है कि हमसब ईश्वरकी सन्तान हैं, तो उसमे ऊँच-नीच कोई हो ही नहीं सकता। अस्पृश्यताकी तो गंध भी नहीं होनी चाहिये।

(२८) अन्तमें हमारा धर्म यह भी कहता है कि जो अपने शरीर-श्रमसे आजिविका पैदा नहीं करता वह चोरीका अन्न खाता है; इसलिए सबको खेतोंमें

या कपड़े बनाने में या ऐसी ही मजदूरीमें लग कर अपनी रोटी पैदा करनी चाहिये और इसीसे अपने-अपने गाँवमें अनाज, खादी वगैरा खाने-पहनने की चीजें पैदा करनी चाहिये।

ऐसा मैंने अनेक बार भिन्न-भिन्न अवसरोंपर कहा है और उसीको यहाँ लेखनीबद्ध कर दिया है। इसमें अवसरके अनुसार और इसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा आदि सनातन तत्वोंका अनुसरण कर के और भी ऐसे वचन बनाये जा सकते हैं।

हरिजन सेवक
२ जनवरी, १९३७



अस्पष्ट भाषा

एक सज्जनको, जो 'हरिजन-बन्धु' बारीकीसे पढ़ते हैं, २७वीं दिसम्बरके अंकका 'हिन्दू आचार' विषयक मेरा लेख पसन्द आया, लेकिन उसके १४वें पैरासे उनको कुछ असन्तोष हुआ। वह पैरा इस प्रकार है—

"हमें कोई गाली दे या मारे या हमारी माँ-बहनके साथ दुराचरण करे तो वह हमें निश्चय ही अच्छा न लगेगा; इसलिए हम किसीको गाली न दें, अपनी स्त्री या बाल-बच्चोंको भी न दें"।

इस लेखके बहुत-से पैरे एक दूसरेके साथ सम्बन्ध रखते हैं। चौदहवें पैराका सम्बन्ध पन्द्रहवें, सोलहवें और सत्रहवें पैरासे है। उनको साथ पढ़ने से चौदहवें पैराका मतलब ठीक समझमें आ जाता है; फिर भी हमें यह कबूल करना चाहिय कि अगर अकेले चौदहवें पैराको पढ़ा जाय तो आदमी उससे उलझनमें पड़ जा सकता है। मैं मानता हूँ कि इस पैराकी भाषा अस्पष्ट और अनगढ़ है। फिरसे पढ़ने पर मालूम पड़ता है कि मैंने उनपर जरूरतसे ज्यादा बोझ लाद दिया है जिससे इसके अर्थकी सरलता मिट गयी है। चौदहवें पैरामें लिखी बातोंके स्पष्टीकरणके लिए ही १५, १६ और १७वें पैरा लिखे गये है। १६ वें पैराका बोझा हलका करने के लिए और विचार तथा भाषा की स्पष्टताके लिए १४, १५, १७ पैरा नीचे लिखे अनुसार फिरसे लिखता हूँ। १६वें पैरामे सुधारकी गुंजाइश नहीं (१४) हमे कोई गाली दे या मारे तो यह अच्छा नहीं लगता तो फिर हम किसीको क्यों गाली दें? क्यों किसीको मारें? (१५) किसीको गाली न दें तो अपनी स्त्री और बच्चोंको भी गाली न दें। बहुत-से पुरुष अपनी स्त्री और बच्चोको मिलकियत समझते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। हमारे धर्ममे स्त्री पुरुषके समान ही मानी गयी है। इसी कारण वह अर्धांगिनी कहलाती है, सहधर्मिणी भी कही जाती है। देवोके नामसे सम्बोधित होती है। माता-पिता

लड़कोंके संरक्षक होते हैं। इस कारण उनके प्रति भी नरमी, सहनशीलता और धीरजके साथ व्यवहार करना चाहिये।

(१६) हमारी स्त्री या हमारी माँ-बहनके साथ कोई दुराचरण करे तो वह हम सहन नहीं कर सकते, तो फिर हम दूसरेकी स्त्रीके साथ दुराचरण क्यों करें? किसी स्त्रीके ऊपर कुदृष्टि डालना, उसके साथ गंदा मजाक करना, उसका स्पर्श करना, यह सब दुराचरण ही कहा जाता है। स्त्री मात्र हमारी माँ-बहनके समान है।

हरिजन-सेवक
१६ जनवरी, १९३७



एक व्यावहारिक सूचना

त्रावणकोरकी यात्रा समाप्त होते ही मुझे यह पत्र मिला था—

"विश्वबन्धुत्व और समानतावाले और परमात्माके प्यारे इस राज्यमें महाराजा-त्रावणकोरके एक प्रजाजनकी हैसियतसे मैं आपका स्वागत करने की इजाजत चाहता हूँ। हमारे महाराजा साहबने अपने वश भर वह सब कर दिया है जो वे हिन्दू धर्मकी रक्षा, दलित जातियोंको ऊंचा उठाने और अपने राज्यमें मनुष्य मात्रमें सम्पूर्ण समानता स्थापित करने के लिए कर सकते थे। लोग भी महाराजा साहबकी प्रशंसामें—और वे उसके पात्र भी हैं—अपने आपको बिलकुल भूल-से गये हैं, पर मेरे हृदयके एक कोने में भय अभी छिपा हुआ है और वह यह है कि जब लोग अपने महाराजके प्रति अपनी उचित कृतज्ञता और प्रशंसा व्यक्त कर चुकेंगे तो उनमें इतनी शक्ति भी नहीं रह जायगी कि वे अपने दैनिक जीवनमें उस घोषणाके सिद्धान्तोंपर अमल करें। इस असाधारण सत्पात्र नरेशके अगर हम सच्चे प्राजजन कहलाना चाहें तो अपने घरों आदिमें सब जातियोंके साथ अन्तर्जातीय भोजोंकी प्रथा शुरू कर के और गरीब हरिजनोंको अपने यहां नौकरों और रसोइयोंके स्थानपर रख कर घोषणापर अमल करना हमें शुरू कर देना चाहिये। केवल पूजाविचार सम्बन्धी स्वतन्त्रतामें ही इस घोषणाका अगर अन्त हुआ तो समझना चाहिये कि यह एक प्रकारका संकट ही होगा। आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि यह घोषणा एक वरदान साबित होगी जबतक कि ये तमाम शर्मनाक जाति भेद ज्यों-के त्यों जारी रहने दिये जाते हैं"?

बड़े दुःखकी बात है कि ऊँचे वर्गके कहलानेवाले लोगोंने इस दिशामें अभी कुछ भी करना शुरू नहीं किया है।

यह पत्र किसी कालेजके अवकाश-प्राप्त आचार्यका है और ध्यान देने योग्य है। घोषणाके बहुत-से गर्भितर्थोंकी ओर मैं पहले ही ध्यान आकर्षित कर चुका हूँ, पर

इस सिलसिलेमें मैंने अन्तर्भोजका सवाल नहीं छेड़ा है। इस विषयमें मेरे विचार किसीसे छिपे हुए नहीं है। अन्तर्भोजके विषयमें जो मर्यादाएँ हैं उनका वर्ण-धर्मसे कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। जहाँ तक मेरा खयाल है, वे शुरू-शुरूमें स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम थे। अगर सफाईका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय तो किसी भी आदमीके साथ खाना खानेमे कोई पशोपेश नहीं होना चाहिये। हरिजन लड़कों और लड़कियोंको अपने परिवारके बालकोंकी तरह रख कर उन्हें सुधारने से सफाईके पालनमें कोई सन्देहकी जगह ही नहीं रह जाती। उनका दर्जा बढ़ जाता है और साथ ही अन्तर्भोज सम्बन्धी समाजके बेहूदे बन्धन बड़ी आसानीसे दूर हो जाते हैं। पत्र-लेखकसे मैं पूरी तरह इस बात में सहमत हूँ कि घोषणामें सर्वांगीण समानता अभि-प्रेत है। महाराजाने रास्ता बता दिया है। क्या त्रावणकोरके प्रजाजन उसका पूरे अर्थोंमे पालन करेंगे?

हरिजन सेवक
६ फरवरी, १९३७



हरिजन-सेवकका धर्म

एक हरिजन-सेवक लिखते हैं—

"एक प्रभावशाली राष्ट्रसेवक एलान करते हैं कि वे अपने व्यक्तिगत आचरणोंमें हरिजनोंके साथ पूर्ण समानताका व्यवहार रखते हैं। आश्रम इत्यादिमें हरिजनोंकी बनायी हुई रसोई भी बिना हिचकिचाहटके खा लेते हैं। फिर भी सर्वसाधारणके ऊपर उनके इस आचरणका वांछित प्रभाव नहीं पड़ता। लोग कहते है—घरसे बाहर ये लोग कुछ भी करें, घरमें तो ऐसा न कर पायेंगे। हमलोग घर-गृहस्थीमें रहनेवाले हैं, बाल-बच्चोंका शादी-ब्याह करना है, समाजके नियमोंका उल्लंघन कैसे कर सकते हैं"?

उक्त सेवकके उदार मित्रगण सलाह देते हैं कि—"आप अपने घरमें भी हरिजनोंके साथ ऐसा ही व्यवहार करें जैसा अन्य स्थानोंमें करते है। अच्छा होता कि आप केवल यही दिखलाने के लिए कि अपने घर व गांवमें भी आप हरिजनोंके साथ असमानताका व्यवहार नहीं करते अपने ही गावमे एक सार्वजनिक सभा कर के हरिजनोंसे पानी माग कर पीयें या उनके हाथसे भोज्य-वस्तु ग्रहण करें। ऐसा देखने पर लोग इस विषयपर विशेष रूपसे विचार करेंगे"।

इसपर वे सेवक उत्तर देते हैं—"मेरा व्यवहार तो सदा एक सा ही होता है। घरपर या गावमें कोई हरिजन मुझे पानी व भोज्य-वस्तु दे देगा तो ग्रहण कर ही लूगा, पर प्रदर्शनका आयोजन कर के लोगोंको चिढ़ाऊंगा नहीं"।

"पर बात तो और ही है। जो हरिजन उक्त सेवकको आश्रममें खिलाता है उसने भी तो यही समझ रखा है कि बाबू यहांपर तो हमारे हाथसे भोज्य-वस्तु या पानी ग्रहण कर

लेते हैं, पर घरपर उन्हें पानी देना मेरे लिए अनुचित है। इस हालतमें घरपर तो बिना विशेष आयोजनके ऐसा प्रसंग उठ ही नहीं सकता।

और क्या उपर्युक्त प्रकारके आयोजन करने का अर्थ 'लोगोंको चिढ़ाना' हो सकता है? मैं तो इसका अर्थ 'लोगोंका भ्रम दूर करना' समझता हूँ"।

सुधारक लोगोंको कब 'चिढ़ाता' है और कब लोगोंका 'भ्रम दूर' करता है— इसका उत्तर देना असम्भव नहीं है। एक ही कार्यसे अथवा एक ही वचनसे चिढ़ भी पैदा हो सकती है और भ्रम भी दूर हो सकता है। इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्तिपर ही छोड़ना चाहिये। इतना निश्चयपूर्वक अवश्य कह सकते है कि किसीको चिढ़ाने के कारण हम कुछ न करें और भ्रम दूर करनेकी कोशिश अवश्य करें। जब सुधारकी सब क्रिया स्वाभाविक बन जाता है तब चिढ़ाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता; क्योंकि स्वभावको कोन छोड़ सकता है और जब क्रिया या वचन स्वाभाविक होते हैं तब किसीको उससे चिढ़ पैदा नहीं होती है; इसलिए अच्छा तो यही है कि सुधारक अपने कर्त्तव्यका पालन कर्त्तव्य समझ कर हो करे और दूसरे किसी खयालसे न करे। ऐसा करने से भ्रम अपने आप दूर हो जायगा।

हरिजन सेवक
२० फरवरी, १९३७

हरिजन व इतरजन

एक सज्जन लिखते हैं—

"बिहार में ऐसी हरिजन-पाठशाला है जिसमें सवर्ण लड़कोंकी संख्या अवर्ण अर्थात हरिजन लड़कोंकी सख्यासे अधिक है। प्रथम दृष्टिमें यह बात उचित-सी प्रतीत होगी, लेकिन ऐसा नहीं है। बिहारमे प्राथमिक शिक्षा मुफ्त नहीं दी जाती। सिर्फ हरिजन सेवक-सघ द्वारा जो पाठशाला चलती है उसीमें ही मुफ्त शिक्षा देते हैं। इस कारण काफी हरिजनेतर लड़के वहा जाते हैं। हरिजन-सेवक-संघकी नीति स्पष्ट है कि हरिजनेतर लड़कोंसे फीस ली जाय। इस बारेमें प्रकाश डालने की आवश्यकता है"।

आवश्यकता अवश्य है। यदि सब हरिजन-शालाओंमें ज्यादातर सवर्ण लड़के आ जायँ तो भविष्यमे हरिजन लड़कोंके शिक्षा-रहित हो जाने का भी पूरा डर है; इसलिए प्रत्येक सवर्ण लड़केके पाससे कुछ-न-कुछ फीस लेनी ही चाहिये। यह सम्भव है कि सवर्ण लड़के भी हरिजन लडकोंके जैसे ही गरीब हों। यदि ऐसा है तो बिहार ह. से. संघको बिहार-विद्यापीठके साथ मश्विरा कर के जितने सवर्ण लड़के पाठशालामें आवें उनके लिए विद्यापीठसे खर्चेका हिस्सा लेना चाहिये। विद्यापीठका क्षेत्र अमर्यादित है, हरिजन-सेवक-संघका मर्यादित है—और होना भी चाहिये; इसलिए सवर्ण लड़कोंको मुफ्त सिखाना ह. से. संघके लिए अनुचित होगा। विद्यापीठके लिए शायद यह धर्म होगा।

हरिजन-सेवक
२० फरवरी, १९३७

एक भ्रम

"हिन्दुस्तानमें अछूतोद्धारका आदोलन आजसे पहले भी आर्यसमाज ५० वर्षोंसे कर रही है, पर जितना कार्य आपने इसकी उन्नतिके लिए किया है उतना पहले कभी भी नहीं हुआ; इसलिए आपको ही इस कार्य-पद्धतिका जन्मदाता कहना चाहिये और साथ ही, इसके भले और बुरेकी जिम्मेवारी भी आपपर ही निर्भर करती है।

मैंने आपके इस आन्दोलनपर बहुत अच्छी तरह विचार किया है, पर मेरी तुच्छ सम्मतिमें तो आपके इस आदोलनसे न तो अछूतोंको और न हिंदू-धर्मको ही कोई ज्यादा लाभ हो रहा है। आपके इस प्रोपेगेंडाने तमाम देशके हर खास व आममे और अछूतोंमें यह फैला दिया है कि उच्च-जातिके हिन्दू समुदाय-रूपमें भारी अत्याचारी हैं और अछूतोंपर जुल्म करते हैं और उनके दुःख, कष्ट और पतनके कारण हैं। इस विचारने अछूतोंके अन्दर उच्च जातिके हिन्दुओं तथा हिन्दु धर्मके प्रति घृणा पैदा कर दिया है। इसका परिणाम है कि आज अंबेडकर-जैसे लोगोंकी धमकी हजारों हरिजनोंको धर्मविमुख बना रही है और उन्हें पतित होने की ओर प्रोत्साहित कर रही है। देखना अब यह है कि जितना हम प्रोपेगेंडा कर रहें है उनमें कितनी सच्चाई है तथा हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज उसके लिए कितना दोषी है। अगर यह कहा जाय कि उच्च जातिके हिन्दू इसलिए जालिम हैं कि वे अछूतोंके साथ खान-पानका व्यवहार नहीं रखते, अपने मन्दिरोंमे उन्हे जाने नहीं देते, अपने कुओंमे उन्हे पानी नहीं भरने देते—तो ऐसा व्यवहार तो वे अंग्रेजों, मुसलमानों, पारसियों आदि दूसरी कौमोंके साथ भी करते हैं—तो क्या यह कहा जाय कि सवर्ण हिन्दू इन कौमोंपर जुल्म कर रहे हैं?

अगर अछूतपन धर्मसे समझा जाय तो डाक्टर, वैद्यादि और कुछ दूसरी जातियां भी शास्त्रानुसार अछूत हैं और उनके घरका जलपान भी मना है, पर हम देखते हैं कि हिंदू समाज उन्हें अछूत नहीं मानता; क्योंकि अक्सर देखने में आता है कि ब्राह्मण, क्षत्रियादि उन जातियोंके जूठे बर्त्तन मलते हैं, कपड़े धोते हैं तथा और भी तरह-तरहकी नीच टहल करते हैं, उनका साहस नहीं कि मालिकोंकी किसी भी तरह बराबरी कर सकें। उच्च जातिके हिन्दू होते हुए भी वे पतित और नीच माने जाते हैं। कारण यह है कि वे निर्धन हैं। निर्धनता ही अछूतपनका कारण है। यह देखा गया है कि एक धनाढ्य अछूतके साथ कोई छुआछूतका व्यवहार नहीं करता।

इसलिए अछूतोंको उन्नत करने के लिए उनकी आर्थिक-अवस्थाको उन्नत करना बहुत जरूरी है। इसके बगैर छुआछूतका भूत भगने का नहीं। अछूतोंके साथ रोटी खाने, मन्दिरमें उन्हें जाने देने या कुओंमे पानी भरने देने से कुछ होने-जाने का नहीं। ऐसा करने से उनके जीवनमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इससे उन्हें समानताका दर्जा नहीं मिलता। मेरे विचारसे अछूतोद्धारका आंदोलन इतना धार्मिक नहीं जितना कि आर्थिक है और इसे [illegible]

सवाल उसी तरह हल करना होगा जिस तरह दूसरे देश अमीरी और गरीबीके प्रश्नको हल कर रहे हैं।

राज्यकी लापरवाही और मशीनोंके कारण हमारे देशकी दस्तकारियां बिलकुल नष्ट हो चुकी हैं। हम रहे-सहे केवल काश्तकार रह गये हैं, पर अब तो यह काम भी लाभदायक नहीं है; क्योंकि हमारा मुकाबला उन देशोंके साथ है, जहाकी आबादी २, ५, तथा १२ आदमी प्रति वर्गमील है, अर्थात कनाडा, आस्ट्रेलिया, अमरीका तथा रूस, पर हमारे देशकी आबादी तो २०० मनुष्य प्रति वर्गमील है।

इसलिए जमीन कम होने के कारण हमारे प्रस्तुत पदार्थोंका मूल्य अधिक होता है और इससे हमारी आयमें भारी कमी आती है। ऊपर कमरतोड़ टैक्स अलग कचूमर निकाल रहे हैं। भला इस दशामें दलितोंका उद्धार हो तो कैसे! इसी कारण आज सारा हिन्दुस्तान बेकार और दलित होता जा रहा है। अछूतोंको यह बात समझानी होगी कि उच्च जातिके हिन्दुओंके साथ खान-पान रखने से, उनके मंदिरोंमें प्रवेश करने से तथा उनके कुओंसे पानी भरने से उन्हें रोटी नहीं मिलेगी। जबतक कि हमारे देशमें फिरसे दस्तकारियाँ जोर न पकड़ें तबतक यह अशक्य है।

उनकी रुकावटके लिए न हिन्दू-धर्म दोषी है, न सवर्ण हिन्दू और न उनके विधर्मी होने से ही यह प्रश्न हल होगा"।

यह पत्र मुझे गत वर्षके नवम्बरमें मिला था, लेकिन कार्यवश अबतक मैं इसपर कुछ लिख नहीं सका था। लेखक महोदय लाहौरके एक विद्वान हैं। आश्चर्यका विषय है कि वे एक भारी भ्रमणामें पड़े हुए हैं। त्रावणकोरके हालके चमत्कारने शायद उनके भ्रमको दूर कर दिया हो, तो भी ऐसा भ्रम बहुत-से लोगोंको रहता है; इसलिए अच्छा यह होगा कि उनके पत्रका उत्तर दिया जाय।

त्रावणकोरमें जिन हरिजनोंने मन्दिर-प्रवेशके बारेमें प्रबल आन्दोलन उठाया वे सब पैसे-टके से कैसे सुखी थे। उनके नेता त्रावणकोरके भूतपूर्व जज गोविन्दन थे और आज भी हैं। पैसा उन्हें शान्ति नहीं दे रहा था। मन्दिर-प्रवेशने उन्हें शान्ति-प्रदान की है, यह हम प्रत्यक्ष देख रहें हैं। महाराजा व महारानीपर वे मुग्ध हो गये हैं। महाराजा अगर उन्हें आधा राज्य भी सौंप देते तब भी वह काम नहीं हो सकता था जो मन्दिर खोल देने से हो गया है। इस चमत्कारका अर्थ यह है कि मनुष्य बहुत-सी चीजोंको धनसे भी ज्यादा मूल्यवान समझता है। स्वमानके लिए मनुष्य अपना सर्वस्व चढ़ा देता है। धर्मके लिए लोगोंने अनेक संकट सहे हैं और मृत्यु तकको आलिंगन किया है।

विधर्मियोंसे हिंदू जाति छुआछूतका व्यवहार रखती है। इसमें भी घृणा तो अवश्य है ही, लेकिन विधर्मियोंको, बलवान होने के कारण, इतना बुरा नहीं लगता जितना कि हरिजनोंको लगता है, जो सहधर्मी होते हुए भी अछूत माने जाते हैं।

यह कहना भी ठीक नहीं है कि चार वर्णोंके बीचमें भी खान-पानका

प्रतिबन्ध है। इसमें और अछूतपनमें ऐसा अन्तर है जैसा कि हाथी और चींटीमे। अछूतोंका जाति-बहिष्कार है। उसके पास कितना ही धन हो, यदि दस्तूरके बाहर जा कर वे कुछ करते हैं, तो पीटे जाते हैं। अवश्य मेरा विश्वास है कि हरिजनोंके कष्टोंके लिए सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेवार हैं। उन्होने अधर्मको धर्म बना रखा है। उनके प्रश्नको सिर्फ आर्थिक बना देना मौजूदा स्थितिसे इनकार करना ही कहा जा सकता है।

लेकिन महोदयके लिखने से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि वे हिंदू हैं तो भी अपने समाजसे वे बाहर-से रहते हैं। ब्राह्मण कोई ऐसे नहीं पाये जाते जिनसे कि कोई राजपूत या अन्य वर्णके हिन्दू घृणा करे। इसके विपरीत बल्कि हम हमेशा यह देखते हैं कि ब्राह्मण या और कोई भी अगर जान-बूझ कर गरीबी पसन्द करते हैं तो धनिक भी उन्हें पूजते है।

अन्तमें, लेखकका पत्र विनय और ध्यानपूर्वक पढ़ते हुए भी, अस्पृश्यताके बारेमें मैंने जो कुछ कहा है और किया है, उसके सम्बन्धमें मुझे कोई पाश्चाताप नहीं है।

हरिजन-सेवक
२० मार्च, १९३७



इसके मानी क्या ?

'हरिजनो, उनके मित्रों तथा उनके सहकारियोंको उज्जैनके महाकालेश्वर मन्दिरमें जाने की मुमानियत करनेवाला नोटिस-बोर्ड महाराजा साहब ग्वालियरने हटा दिया है'— इस आशयका एक तार मुझे ग्वालियरसे मिला है।

इसके पहले कि नोटिसके हटाये जाने पर कोई अपनी राय जाहिर कर सके, इस अमरके पूरे मानी जानी जान लेना बहुत जरूरी है। अगर मन्दिर-प्रवेशकी रुकावट तो कायम ही रही हो और केवल वह नोटिस ही हटा दी गयी हो तो इसमे तो उन जलील किये गये हरिजनो और उनके सवर्ण साथियोंको कोई समाधान नहीं मिल सकता। नोटिस-बोर्डको हटा हुआ देख कर अगर कोई हरिजन भाई असावधानीसे मन्दिरमे प्रवेश करने की हिम्मत भी करे, तो मुमकिन है, उसे सजा भी भुगतनी पड़े; मगर उस नोटिसके हटाये जाने के मानी अगर मन्दिर-प्रवेशकी रुकावटका ही खात्मा है, तो इस सिलसिले मे एक एलान निकाल कर इस फैसलेको साफ-साफ जाहिर कर देना उचित होगा और अगर मन्दिरसे रुकावट उठा ली जाती है तो रियासतके प्रबन्धाधीन जो तमाम मन्दिर हैं—जिनकी संख्या करीब ५० के है—उन सबपर से ही वह रुकावट क्यों न उठा ली जाय ?—इसलिए मैं आशा करता हूँ कि

रियासतके अधिकारी इस मसलेपर प्रकाश डालेंगे और उस नोटिसके हटाये जाने के क्या मानी है—यह जनताको समझा देंगे। अपनी रियायाके अत्यन्त गरीब और लाचार लोगोंको एक ऐसे सवालपर न्याय देने में, जो कमाल दर्जेका धार्मिक महत्व रखता हो और जिसके लिए जरा-सी भी आर्थिक हानि न उठानी पड़ती हो, राजा लोग और उनके सलाहकार भीरु नजर आते हैं। त्रावणकोरकी इतनी बड़ी अचरज-भरी मिसालसे वह देख सकते थे कि अगर वह अपने मन्दिर हरिजनोंके लिए खुले कर देते हैं तो ऐसा करने से कोई नाराज तो नहीं होता। हो सकता है कि राजा लोग अपने उन मध्यम श्रेणीके हिन्दुओंसे डरते हों जिनके साथ उनके 'रोजमर्रा' के सम्बन्ध रहते हैं और जो उन अनेक हरिजन या दूसरे मूक दुःखियोंसे कोई वास्ता नहीं रखते। हाथकी उँगलियोंपर गिने जानेवाले राजाओंको छोड़ दीजिये तो बहुत-से ऐसे राजा हैं जिन्हें अस्पृश्यता-निवारणके बारेमें कोई खास धार्मिक आपत्ति भी नहीं है। राजालोगोंकी पुरानी पदवियोंसे प्रकट होता है कि वे धर्म-रक्षक समझे जाते हैं, फिर क्या वे हरिजनोंके लिए मन्दिर खोलवा देने के अपने कर्त्तव्यके पूरा करने में लापरवाही ही करते रहेंगे? उस रोज मैंने महाराज-त्रावणकोरको 'पद्मनाभदास' की पदवीकी ओर पाठकोंका ध्यान खींचा था। अब मुझे दी. ब. हरविलास सारड़ासे मालूम हुआ है कि उदयपुरके महाराणा भी अपने इष्टदेव श्री एकलिंगजीके 'दीवान' ही कहलाते हैं और जब-जब वे वहाँ जाते हैं तो पुजारीका काम खुद करते हैं; इसलिए मैं राजाओं और उनके सलाहकारोंसे आदरपूर्वक पुरअसर शब्दोंमे दरखास्त करूँगा कि वह हिम्मतके साथ और साफ-साफ शब्दोंमें अपनी-अपनी रियासतोंके मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल देने की घोषणा कर दें और अपने आपको अपने धर्मके सच्चे संरक्षक (ट्रस्टी) साबित कर दें।

हरिजन सेवक
२७ मार्च, १९३७

नाटार-हरिजन-समझौता

निम्नलिखित पत्र तमिलनाड हरिजन-सेवक-संघके मंत्री श्री गोपालस्वामीकी ओरसे आया है—

"नाटारोंके एक बड़े वर्ग—जो 'तेन्निलाई नाटार' के नामसे प्रसिद्ध है—और यहाँके हरिजनोंके बीचमें जो समझौता हुआ है, उसके सम्बन्धमें आपको यह सुन्दर समाचार देते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। दोनों पक्षके मुखियाके बीचमें समझौता इस तरह हुआ है—हम तेन्निलाईनाडूके हरिजनों और नाटारोंने, काराईकुडी-हरिजन सेवक संघकी मन्त्रिणी श्रीमती कमला शिवसुब्रह्मण्यकी उपस्थितिमें, आपसी-झगड़ा भूल कर एक दूसरेको माफ कर देने का निश्चय किया है। इसके चिह्न-स्वरूप हमने नीचे लिखे इकरारनामेकी शर्तोंपर सही कर दी है—

१. हरिजनोंसे बेगारमें काम न कराया जाय। वे जो काम करें उसकी मजूरी माँगने का उन्हें पूरा हक है और जो उन्हें मजूरी न दे उसका काम करने से वे साफ इनकार कर सकते हैं।

२. पुरुष कुर्त्ता, कमीज और उपरना जिस तरह पहनना-ओढ़ना चाहे उस तरह पहन-ओढ़ सकते हैं और उनकी स्त्रियोंको भी अपनी मरजीके मुताबिक चाहे जैसे जेवर पहनने का हक है, पर कदा देवी और एलुवन कोटाके रथ यात्रा उत्सवके अवसरपर पुरुष कुर्त्ता वगैरह न पहनें; क्योंकि नाटार-मुखिया खुद भी उस अवसरपर कुर्त्ता, कमीज वगैरह नहीं पहनते।

३. हरिजन अपने इच्छानुसार जैसे मकान बनवाना चाहें बनवा सकते हैं"।

यह जरूर अच्छा समाचार है और जिन्होंने यह समझौता कराया है वे बधाईके पात्र हैं। आशा है कि नाटार इस समझौतेकी शर्तोंका सख्तीके साथ पालन करेंगे, पर यह देख कर सिर नीचा हो जाता है कि भारतकी जनताका अमुक भाग—दूसरे वर्गकी कृपाके बगैर जो अपने को उस वर्गकी अपेक्षा ऊँचा मानता है पर अमलमें जरा भी ऊँचा नहीं—अपनी मरजीके मुताबिक कपड़े या गहने नहीं पहन सकता और मेहनत-मजूरीके लिए पैसे नहीं माँग सकता।

हरिजन-सेवक
१० अप्रैल, १९३७



बुरा है अगर सच है

नेशनल क्रिश्चियन काउन्सिलके श्री पी. ओ. फिलिपके पास त्रावणकोरसे यह शिकायत आयी है—

"आपका पत्र मिला—अनेक धन्यवाद। यह जान कर मुझे सांत्वना मिली कि त्रावणकोरमें इसाइयों और इसाई-धर्ममें आये हुए दलित लोगोंके प्रति सवर्ण हिन्दुओंकी जो द्वेष-भावना है उसे दूर करने मे महात्माजी अपना प्रभाव काममें लायेंगे। अभी पिछले हफ्तेकी ही बात है कि मेरा जेकब पादरी उत्तर-त्रावणकोरके एक गिरजेमें आठ 'पुलिया' अछूतोंको धर्म-दीक्षा दे कर वापस जा रहा था, उसे सरकारी आबकारी महकमेके एक चपरासीने रोक लिया और उसकी खूब पिटायी की। धक्काने उसकी एक आंखमें भी जख्म पहुंची। चपरासी कहता था कि मन्दिर प्रवेश घोषणाके बाद लोगोंको ईसाई धर्मका उपदेश देने और उन्हें धर्मान्तरके लिए तैयार करने का अब तुम्हारा कोई काम नहीं। इसके बारेमें मैंने 'मद्रास-मेल' और 'मनोरमा'को लिखा है, पर इन अखबारोंमें कुछ नहीं प्रकाशित नहीं हुआ। कृपा कर क्या आप इस वहशत-अंगेज मामलेको प्रकाशमें लायेंगे?—और यह

एक-दो घटनाए नहीं हैं, बल्कि ऐसे काम तो बराबर होते रहते हैं और प्रभावशाली सवर्ण हिन्दुओंको इन कामोंका पता भी है, जिनकी मंशा, अगर हो सके तो, ईसाई-धर्मकी प्रगतिको रोक देने की है। मेरे इस नोटकी एक नकल आप गाधीजीके पास भी भेज दें। इस मन्दिर-प्रवेश-घोषणाके बाद साम्प्रदायिक-विद्वेष यहाँ बढ़ता जा रहा है"।

कुछ हफ्ते पहले इसी तरहकी एक और शिकायत मेरे पास इसी जरियेसे आयी थी। तहकीकातके लिए वह कागजात मैंने त्रावणकोर-हरिजन-सेवक-संघके मन्दिर-दफ्तरमे भेज दिये हैं। इस बीचमें मुझे यह खत मिला। इस पोस्टकार्डमे, संक्षेपमें, अत्यन्त गम्भीर आरोप लगाये गये है। लेखकका दावा है कि—

(१) ऐसी एक-दो घटनाएँ नहीं हैं;

(२) ऐसे काम बराबर होते ही रहते है और प्रभावशाली हिन्दुओंको इन कामोंका पता भी है;

(३) सवर्ण हिन्दुओंकी मंशा, अगर मुमकिन हो तो, ईसाई-धर्मकी प्रगतिको रोक देने की है; तथा

(४) मन्दिर-प्रवेश-घोषणाके बाद साम्प्रदायिक-विद्वेष बढ़ता जा रहा है।

अब ऐसे वक्तव्योंको, बिना काफी सबूत पेश किये, नहीं देना चाहिये। लेखकको तो मैं यह सलाह दूँगा कि वे हरिजन-सेवक-संघके सामने सबूत रखे और मैं उन्हें यह वचन देता हूँ कि संघ इन सारी ही शिकायतकी जॉच अच्छी तरहसे करेगा। संघके अध्यक्ष एक भूतपूर्व जज हैं और उसके मन्त्री भी एक शुद्धात.करण वाले एक संस्कारी व्यक्ति है। सवर्ण हिन्दू अगर अहिंसासे जरा भी विचलित हुए तो उन्हें दोषी ठहराने मे मुझे खुद कोई पोशोपेश नहीं होगा। यह समझना मेरे लिए मुश्किल है कि मन्दिर-प्रवेश-घोषणाकी वजहसे साम्प्रदायिक घृणा क्यों बढ़नी चाहिये। निश्चय ही अपनी हालकी त्रावणकोर-यात्रामें ऐसी कोई चीज मेरे देखने मे नहीं आयी और जहाँ तक ईजा पहुँचाने के खास-खास आरोपोंसे सम्बन्ध है, मैं श्री फिलिपके संवाददाताको यह सलाह दूँगा कि स्थानीय अदालतमे जा कर अपनी शिकायतें पेश करे। मैं यहाँ यह बता दूँ कि सवर्ण हिन्दुओंकी तरफसे मेरे पास इससे बिलकुल ही उलटी शिकायते आयी है—उनका आरोप यह है कि ईसाई-मुहल्लोंमे या उनके नजदीक जो हरिजन रहते हैं, उन्हे ईसाई लोग तंग कर रहे हैं। उनके वक्तव्योंको प्रकाशित करने से मैंने इनकार कर दिया है और उन्हें लिख दिया है कि वे स्थानीय अदालतमे जा कर के मुकद्मा चला सकते हैं। ऊपरके पोस्टकार्डमे अगर अत्यन्त गम्भीर आरोप न होते तो उसके जवाबमें भी मैं यही लिखता। ऐसे गम्भीर अभियोगोंपर तो सरेआम और सार्वजनिक रूपसे की हुई तहकीकात द्वारा ही विचार हो सकता है।

हरिजन-सेवक
१७ अप्रैल, १९३७

कोचीन और त्रावणकोर

मुझे जो सबसे बड़ा भय था वह सच निकला। कोचीन और त्रावणकोर राज्य एक दूसरेके खिलाफ मैदानमें उतर आये हैं। यह और भी खेदकी बात है कि लड़ाई ऐसे विषय पर है जो हिन्दू धर्मका है; अतः सारे हिन्दुस्तानके लिए बहुत बड़ी दिलचस्पीका विषय है। अन्धकार और प्रकाशके बीच यह लड़ाई है। मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि कोचीनकी रियाया कोचीन-महाराजसे इस कार्यसे सहमत है। महाराजा साहब अपने कोचीन-शासनाधीन मंदिरोंमें पूजा-अर्चाको जिस तरह चाहें नियंत्रित कर सकते है, लेकिन कोचीनके मंदिरोंमे आनेवाले दर्शकोंके निजी आचारपर यह नियंत्रण लगाये, इस बातकी अनुमति तो अत्यन्त रूढ़िचुस्त हिन्दू-धर्म भी मुश्किलसे ही देगा। हिन्दुस्तानमे ऐसे और भी अनेक मन्दिर हैं जिनमें हरिजनोंको पूजा करने का अधिकार नहीं है, लेकिन उनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जहाँ ट्रस्टियोंको सवर्ण हिन्दुओंके कामोंकी जाँच-पड़ताल करने का हक हो; क्योंकि सवर्ण तो सवर्ण होने के ही कारण मंदिरोंमें जाने के हकदार हैं। फिर कोचीनमें तो महाराजने एक ऐसे मंदिरके बारेमे हस्तक्षेप किया है; जिसके ऊपर एक मात्र उन्हींका नियंत्रण नहीं है। उसपर तो त्रावणकोर-महाराजका भी पर्याप्त अधिकार है। कोचीन राज्यका हुक्म स्पष्ट रूपसे उस अधिकारमें हस्तक्षेप है। त्रावणकोरने अगर पाप किया है तो कोचीनसे उसका कोई सरोकार नहीं। कोचीनका यह हुक्म तो निजी निर्णयके अधिकारमें दस्तंदाजी है।

इस झगड़ेमें सर्वसाधारणका कर्त्तव्य स्पष्ट है। देश भरमें सभाएं होनी चाहिये, जिनमें कोचीनके हुक्मकी निन्दा कर के उसे उठा लेने की माँग रखी जाय। निश्चय ही कट्टर-से-कट्टर हिन्दू भी, चाहे वे सब मन्दिरोंको हरिजनोंके लिए खोल देने के पक्षमें न हों, विरोध-प्रदर्शनके लिए की जानेवाली इन सभाओंमें शामिल हो सकते हैं। चूँकि कोचीनकी प्रजाका ही अपने महाराजके कार्यसे सीधा सम्बन्ध है; इसलिए उसे ही इस सम्बन्धके आन्दोलनका नेतृत्व करना चाहिये। भारतवर्षके पंडितोको चाहिये कि वे तटस्थ रूपसे इन हुक्मोंकी जाँच करें और उनपर अपनी निष्पक्ष सम्मत्ति दें। मैं सोच रहा हूँ कि सिर्फ इस बातपर कि कोचीन-दरबारका हुक्म धार्मिक दृष्टिसे कहाँ तक ठीक है। त्रावणकोर-दरबार पण्डितोंकी सम्मत्तियाँ मँगावे और उनके अनुसार करने को तैयार हो जाय तो अच्छा होगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो त्रावणकोर एक ऐसी पंचायतके निर्णयसे बँधनेकी बात पेश कर सकता है जिसमें दोनों ओरके निष्पक्ष मतके माने जानेवाले पण्डित हो। ऐसे पण्डितोंका निर्णय पंचायती अदालतके लगभग समान ही होगा; क्योंकि जब कि त्रावणकोर-महाराजको अपने शासनाधीन और स्वामित्वके मन्दिरोंको पण्डितोंकी राय लिये बगैर ही हरिजनोंके लिए खोल देने का पूरा अधिकार है, तब संयुक्त शासनाधीन मन्दिरोंके सम्बन्धमें कोई नयी स्मृति चलाना शायद ही ठीक होगा। हरिजनोंका मामला हमेशा और हर जगह सन्देहसे परे रहेगा और त्रावणकोरका शानदार काम तो हमेशा ऐसा है जो नैतिक औचित्यके अधारपर कड़ी-से-भी-कड़ी जाँच-पड़ताल करा सकता है।

हरिजन-सेवक
८ मई, १९३७

हरिजन और बेगार

कुछ गाँवोंमें कुछ हरिजनोंके ईसाई-मिशनोंमें दाखिल हो जाने की धमकी देने की बातको अखबारोंने प्रसिद्धि दी है। ये मिशन उनकी स्थिति सुधारने का, खास कर सवर्ण हिन्दू उनसे जो बेगारमें काम लेते हैं उससे उन्हें छुडाने का, वचन दे कर उनसे हिंदू धर्मका त्याग कराने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि हिन्दू-मिशन और हरिजन-सेवक-संघके प्रतिनिधि इन सताये हुए हरिजनोंके पास पहुँचे और सवर्ण हिन्दुओंसे मिल कर उनसे ऐसा वचन ले लिया कि भविष्यमे वे हरिजनोंके प्रति अधिक अच्छा वर्ताव रखेंगे; इसलिए फिलहाल तो यह तूफान शान्त हो गया है। ये हरिजन ईसाई हो गये होते तो इससे ईसाई-मिशनोंको क्या लाभ होता और हरिजनोंका कहाँ तक सच्चे हृदय-परिवर्त्तनके कारण धर्मान्तर करना कहा जाता ?—इसका मुझे पता नहीं। इतना जरूर जानता हूँ कि इस तरहके धर्मान्तरके प्रयत्नोंसे समाजकी नैतिकताका पतन होता है, शंका और कटुता पैदा होती है और समाजकी सर्वतोमुखी प्रगति रुक जाती है। ईसाई-मिशन अच्छे वर्तावकी कीमतके बतौर धर्मान्तरकी माँग करने के बजाय अगर हरिजनोंका भार हलका करने के प्रयत्नोंमें हरिजन-सेवकका हाथ बँटावें तो उनकी सहायता कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार की जाय और समाजका विकास भी जल्दी हो।

मगर यह जो मैं लिख रहा हूँ इसका उद्देश्य, ईसाई-मिशनोंकी इस कार्य-पद्धतिकी आलोचना करने से अधिक तो सवर्ण हिन्दुओंकी अन्तरात्मा जागृत करने का है। छोटे-छोटे जमींदार, हरिजनों और दूसरे वर्गोंसे जो पिछड़े हुए माने जाते हैं, बेगारमे काम लेते हैं और यह रिवाज हिन्दुस्तानमें करीब-करीब सभी जगह प्रचलित है। ये छोटे-छोटे जमींदार अधिकतर हिन्दू ही होते हैं। हरिजन तथा दूसरे लोग बेगार प्रथाका कानूनन विरोध कर सकते हैं। उनमे उनके अधिकारोंकी भावना धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रीतिसे जागृत होती जा रही है। उनकी संख्या इतनी बडी है कि वे चाहें तो अपने अधिकारोंपर जोर-जबर्दस्तीसे अमल करा सकते हैं, किंतु सवर्ण हिन्दू जब नपुंसकतासे अपने भाग्यके (जिसके वे पात्र हैं) वश हो जायँगे, तब उसमें उनकी कोई शोभा नहीं रहेगी। अधिक अच्छा तो यह है कि वे अपना यह धर्म समझ लें कि हरिजन उनके सगे सहोदर हैं; यह मान लें और स्वीकार कर लें कि उन्हें भी मनुष्योचित सम्मान प्राप्त करने का और अपनी इच्छासे की हुई सेवाके लिए उचित पैसा पाने का हक है।

हरिजन-सेवक चाहे जिस संस्थाके द्वारा काम करते हों, तो भी उनका यह फर्ज है कि वे हरिजनोंके साथ मित्रताका सम्बन्ध जोड़ें, उनकी स्थितिका तफसीलवार अध्ययन करें, सवर्ण हिन्दुओंके पास पहुँचे और उन्हें जितनी नम्रताके साथ समझा

सकें उतनी नम्रतासे समझावें कि जिन्हें उन्होने समाजसे बहिष्कृत कर रखा है और जिनके उन्होंने न्यायसंगत हक भी छीन लिये हैं उनके प्रति इनका क्या कर्त्तव्य है ? मेरे पास कागजात आये हैं। इनसे मुझे यह मालूम होता है कि गुजरातमे ओड और अन्य कुछ गाँवोंमें हरिजन जिस मरे हुए ढोरको उठाते हैं उनसे ढोरके मालिक सवर्ण हिन्दू आधी खाल ले लेते हैं। दूसरी जगह आम तौरपर यह चलन है कि हरिजन जिन मरे हुए ढोरोंको उठाते हैं उनका चमड़ा वगैरा सब उन्हींका होता है। इतना ही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं तो लाश उठा ले जाने की मजदूरी भी उन्हें मिलती है। इस बारेमें और अधिक छानबीन कर के न्यायपूर्वक तसफिया होनी चाहिये। हरिजनोके प्रति आज जो बर्ताव रखा जाता है अगर उससे अच्छा बर्ताव रखा जाय और सवर्ण हिन्दुओंको मरे हुए ढोरोंकी सूग न रहे और वे छुआछूतके वहमी रिवाजोको दूर कर दें तो वे खुद मरे हुए ढोरकी खाल उतारने और लाशकी एक-एक चीजमें से पैसा कमाने की कला सीख जायँ। इससे उन्हें तथा उन हरिजनों, जिन्हें वे मरे हुए ढोरको ठिकाने लगाने के लिए बुलायें—दोनोको ही लाभ हो।

हरिजन-सेवक
८ मई, १९३७

छुआछूतका कलंक खुद लगा रखा है

प्रिय महात्माजी,

इस पत्रका विषय है—'खुद अपने हाथों अस्पृश्यताका कलक लगा लेना'। पहलेके एक पत्रमें आपको यह तो मैं बतला ही चुका हूँ कि मन्दिरके देवी-देवताओंके लिए ब्राह्मणेतर सवर्ण हिन्दू भी अस्पृश्य ही हैं। तमाम सार्वजनिक मन्दिरोंमें पूजा इत्यादि सवर्ण ब्राह्मण ही करते हैं और जिन देवी-देवताओंकी पूजा-अर्चा की जाती है उनके लिए सिवा एक सवर्ण ब्राह्मणोंके बाकी सब अस्पृश्य ही है। ब्राह्मणेतर सवर्ण हिन्दुओंके घरोंमें सैकड़ो खानगी मन्दिर हैं। वहाँ भी पूजा सवर्ण ब्राह्मण ही करते है। इन मन्दिरोंके मालिक ब्राह्मणेतर सवर्ण हिन्दू तक, जो सारा खर्चा उठाते हैं और पुजारियोंका वेतन देते हैं, मन्दिरोंमें स्थापित देवी-देवताओंके लिए अस्पृश्य हैं। तो क्या यह अस्पृश्यताका कलक ऐसा नहीं है जो लोगोंने खुद अपने ऊपर लगा रखा है? इस प्रकारकी अस्पृश्यताका एक आदर्श उदाहरण मैं आपके सामने रखता हूँ—

मेरे देहातके मकानसे लगभग तीन मीलपर कैवर्त्त (मल्लुए) लोगोंका एक गाव है। ये लोग अस्पृश्य माने जाते हैं और इनका नाम परिगणित जातियोंमें आता है। इनके अपने अलग ब्राह्मण पुरोहित हैं। सवर्ण हिन्दुओंकी दृष्टिमें उनके ये ब्राह्मण भी अस्पृश्य हैं। ये अस्पृश्य ब्राह्मण अपने कैवर्त्त यजमानोंके घरोंमे साधारण पूजा इत्यादि कराते हैं। इन ब्राह्मणोंको असवर्ण या अवर्ण ब्राह्मण कहते हैं। इस कैवर्त्त-ग्रामके लोग भी अच्छे पैसेवाले हैं। इनके पास जमीन जायदाद भी अच्छी है। इनका जगन्नाथ स्वामीका अपना खुदका मन्दिर है। इस मन्दिरको इन्होंने अपने पैसेसे बनवाया है और इसका सारा खर्च खुद यही लोग चलाते हैं। ये लोग उड़ीसासे सवर्ण ब्राह्मणोंको ले आये हैं जो नित्य उनके खर्चसे मन्दिरमें पूजा करते हैं। मन्दिरके ये मालिक कैवर्त्त केवल जगन्नाथजीकी मूर्तिके लिए ही अस्पृश्य नहीं हैं बल्कि अपने बनवाये हुए मन्दिरमें प्रवेश भी नहीं पा सकते।

सालमें सिर्फ दो दिन वे मूर्तियोंको छू सकते हैं—जिस दिन रथ निकलता है और जिस दिन रथ लौटता है। इस रथयात्रामें मूर्तियोंको मन्दिरसे बाहर ला कर रथपर सवार कराया जाता है, पर होता क्या है कि कैवर्त्तोंके स्पर्शसे मूर्तिया अपवित्र हो जाती हैं और उन मूर्तियोंका जबतक 'अभिषेक' संस्कार नहीं हो जाता तबतक वे मन्दिरमे नहीं जा सकतीं। यह शुद्धि-संस्कार भी रथयात्राके बाद तुरन्त किया जाता है और वह भी उन्हीं कैवर्त्तोंके खर्चसे! यह सब क्या है? इसे खुद अपने हाथों अस्पृश्यताका कलंक लगा लेना न कहा जाय तो फिर क्या कहा जाय? अधिकाश हिन्दू-समाजका यह विश्वास है या उसे विश्वास कराया जाता है कि हिन्दुओंकी भौतिक और आध्यात्मिक मुक्ति अस्पृश्यताका पालन करने मे है। अस्पृश्योंको यह शिक्षा दी गयी है कि वे किसी देव-मूर्ति या ब्राह्मण देवताका स्पर्श नहीं कर सकते। अगर वे यह पाप करेंगे तो उन्हे घोर नरक-वास करना पड़ेगा। छुआछूतकी भिन्न-भिन्न उलझनोंके साथ, जिन्होंने ब्राह्मणकी प्रभुताको एक स्थायी चीज बना रखा है, पेश आना नामुमकिन है। इन सबका मूल तो एक काल्पनिक शक्ति है जिसके गढ ये मन्दिर हैं। सत्य तक पहुचने के लिए हमारे अस्पृश्य माने जानेवाले भाइयोंको शुद्ध ज्ञानकी सख्त जरूरत है, किन्तु मन्दिर-जनित अस्पृश्यतासे उन्हे वह शुद्ध ज्ञान मिलने का नहीं। भगवान बुद्ध मन्दिरोंका सुधार करने में असफल रहे। तब उन्होंने उन मन्दिरोंका ही मूलोच्छेद कर दिया। कुछ समय तक तो सारे हिन्दुस्तानमे बौद्ध-मन्दिर अस्पृश्यके मन्दिरोका स्थान लिये रहे, पर समयकी गतिसे अस्पृश्यताको उत्तेजन देनेवाले मन्दिरो मे फिरसे जान आ गयी और उन्होंने बौद्ध-मन्दिरोंको अतीतकी वस्तु बना दिया, इसलिए अस्पृश्यताको उत्तेजन देनेवाले इन मन्दिरोंका सुधार करना बिलकुल नामुमकिन है। अतः मानवताकी खातिर तो मन्दिरोकी इस अधार्मिकताका अन्त ही कर देना चाहिये युग प्रवर्त्तक शक्तिया अपने अनुकूल हैं। अस्पृश्योंकी मुक्ति उन मन्दिरोंको नेस्तनाबूद कर देने मे ही है जिनमें कि अस्पृश्यताको धर्मका सारतत्व माना जाता है। युग-प्रवर्त्तक शक्तियों द्वारा उनके मूलोच्छेदका काम धीरे-धीरे किन्तु अनवरत गतिसे हो रहा है। आप एक सत्यशोधक है, ईश्वर आपके द्वारा अस्पृश्य माने जानेवाले उन अज्ञानी भाइयोंकी मुक्तिके लिए शुद्ध ज्ञानकी एक क्रान्ति-लहर भेज दे जिससे कि वे आपका अनुसरण कर के शुद्ध सत्यको पा सकें।

आपका
हरदयाल नाग

यह पत्र उस नये तरीकेको दिखाने के लिए प्रकाशित किया गया है जिस तरीकेसे कि बंगालके यह वृद्ध पितामह बड़ी-बड़ी समस्याओंकी तहमें पहुँचते हैं। उनका पहला पत्र, जिनका कि उन्होंने ऊपर जिक्र किया है, यूँही लापरवाही में नष्ट कर दिया गया। सौभाग्यसे पाठकोंको उसका निचोड़ इस पत्रमे मिल जाता है। श्रीहरदयाल नागका यह कहना बिलकुल सत्य है कि अगर मन्दिरोंमे बद्धमूल अस्पृश्यता नष्ट न की गयी तो मन्दिरोंका ही उच्छेद कर देना चाहिये और अगर मन्दिरोंका मूलोच्छेद हुआ तो इसमें कोई शक नहीं कि उनके साथ-साथ हिन्दू-धर्मका भी लोप हो जायगा।

हरिजन-सेवक
२२मई, १९३७

लाठी राज्यका उदाहरण

लाठी राज्यके ठाकुर साहब द्वारा अपना सुप्रसिद्ध 'अन्नक्षेत्र' नामक मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल देने का सुंदर वर्णन महादेव देसाईके साप्ताहिक पत्रमे तथा चन्द्रशकरके लेखमें पाठकाको इसी अंकमे अन्यत्र मिलेगा। काठियावाड़के लिए यह बड़े महत्वकी घटना है और इस कार्यके लिए ठाकुर साहब प्रह्लाद सिंहजी हिन्दू-धर्म एवं मानव जातिके प्रेमियोकी वधाईके पात्र हैं। प्रकाशित रिपोर्टोंसे मालूम होता है कि इस कार्यके लिए कोई शिकायत या कुढ़न नहीं थी और सवर्ण हिन्दुओने शुद्ध हृदयसे इस मांगलिक समारम्भमें भाग लिया। त्रावणकोरकी घोषणासे मैने जो नतीजा निकाला था वही नतीजा मैं इससे निकालता हूँ। प्रजाके लिए राजाकी धर्म-घोषणा स्मृतियोंके समान ही प्रामाण्य है। ठाकुर साहब लाठीके इस महान कार्यका जो एक स्वरसे स्वागत हुआ है, उसका इस आधारके अतिरिक्त कोई और कारण मैं नहीं बता सकता। लाठीके सवर्णोंकी हठधर्मीके मुझे काफी कटु अनुभव हैं। हरिजन-बस्तियोंमें वे कभी जाते तक नहीं थे। एक हरिजन बहिनके लिए, जो न्यूमोनियासे मर रही थी, डाक्टर मिलना मुश्किल हो गया था। राज्यके दवाखाने तकमें यह भेदभाव माना जाता था। इस सिलसिलेमे मै यह जरूर कहूँगा कि ये अयोग्यताएँ कुछ लाठीमें खास कर नहीं थी, वल्कि काठियावाड़की तमाम रियासतोंमे और उसके बाहर गुजरातमें भी यह कठिनाइयाँ देखने मे आती थीं। सचमुच कुछ जरूरी बातोंमे छुआछूत और जगहोंसे आप गुजरातमे कहीं ज्यादा पायेंगे और काठियावाड़में तो इसका बुरे-से-बुरा रूप देखने में आता है। मैं यह खयाल नहीं बाँध रहा हूँ कि लाठीके इस मन्दिरके खुल जाने से तमाम अयोग्यताएं व्यवहारत. काफूर हो गयी हैं। फिर भी त्रावणकोरकी तरह वहाँके सवर्ण हिन्दू लाठीके ठाकुर साहबको उनके इस महान कार्यमें उत्साहपूर्वक सहयोग दें तो अस्पृश्यताकी समस्याका हल हमें फौरन मिल सकता है; क्योंकि अगर मेरी दलील माकूल है तो हिन्दुस्तानके दूसरे राज्योंको त्रावणकोर और लाठीके इन उदाहरणोंका सिर्फ अनुकरण करना है। इससे अस्पृश्यता देशी राज्योंमें जड़मूलसे नष्ट चाहें न हो, पर उसका तेज धार तो कुंद पड़ ही जायगी—और अगर यह भारी पैमानेपर हुआ तो इसका असर ब्रिटिश भारतपर पड़े बगैर नहीं रह सकता। समझमें नहीं आता कि एक ऐसे मामलेमें, जो हिन्दू-समाजके एक बड़े अंगके लिए जीवन और मृत्युका सवाल है, हमारे राजे-महाराजे क्यों इतना धीमी गतिसे आगे बढ़ रहे हैं! क्या अच्छा हो कि हिन्दू धर्मको अस्पृश्यताके विषसे मुक्त

करने का अपना स्पष्ट कर्त्तव्य हमारे राजे-महाराजे अब भी पहचान लें और तुरन्त इस प्रश्नको हाथमें ले लें।

ठाकुर साहब अपने भाषणमें यह कहा बतलाते हैं कि अच्छे योग्य पुजारी और शिक्षक मिलते ही वे अपने राज्यके और भी मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल देंगे और सभी जातियोंके बच्चोंके लिए पाठशाला भी वहीं खुलवा देंगे। मैं तो उन्हें वही उपाय सुझाऊँगा जो मैंने त्रावणकोरके अधिकारियोंके सामने रखा था। मन्दिरोंमें पूजन कराने तथा पाठशालाएँ चलाने की व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए लाठीमें एक छोटा-सा शिक्षण-केन्द्र खोलना चाहिये। कोई कारण नहीं कि पूजन एवं शिक्षण--इन दोनों कामोंको एक ही व्यक्ति क्यो न करे? शिक्षकोंके लिए हृदयकी शुद्धि उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पुजारियोंके लिए और पुजारियोंको हृदयका उतना ही शुद्ध होना चाहिये जितना कि विद्यालयके शिक्षकोंको—और न शिक्षण-कलासे पुजारी अनभिज्ञ हो। आज सबसे अधिक दुःखका विषय तो यह है कि पुजारी शिक्षारहित होते हैं और प्रायः चरित्रहीन भी। अभ्यासका क्रम बहुत लम्बा नहीं होना चाहिये। वेतन अगर आकर्षक हुआ तो अच्छे पढ़े-लिखे निर्दोश चारित्र्यके युवक मिल जाने चाहिये। मेरी इस सूचनाका निःसन्देह यह फलितार्थ है कि लाठीका वह सुधार-कार्य आध्यात्मिकता मूलक है।

हरिजन.सेवक

२६ मई, १९३७



'गांधीजी' ग्रंथमालाके खण्डोंकी सूची



पहला खण्ड—(प्रथम भाग) भारतीय नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

(द्वितीय भाग) भारतीय तथा रियासती नेताओंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

दूसरा खण्ड—संसारके समाचार-पत्र तथा पत्रकारोंकी श्रद्धांजलियां

तीसरा खण्ड—विदेशोंकी श्रद्धांजलियां

चौथा खण्ड—कवियोंकी श्रद्धांजलियां (प्रकाशित)

पांचवा खण्ड—जीवन-चरित

छठा खण्ड—गांधीजी सम्बन्धी संस्मरण

सातवा खण्ड—भारतको गांधीजीकी देन

आठवा खण्ड—गांधीजीके महत्वपूर्ण भाषण

नवा खण्ड—गांधीजीके पत्र (महत्त्वपूर्ण मूल-पत्रोंके चित्रोंके साथ)

दसवां खण्ड—अहिंसा (गांधीजीकी लेखनीसे) (चार भागमें प्रकाशित)

ग्यारहवा खण्ड—हिन्दू-मुसलिम एकता (,, ,,) (तीन भागमे प्रकाशित)

बारहवा खण्ड—अछूतोद्धार (,, ,,) (तीन भागमे प्रकाशित)

तेरहवा खण्ड—शिक्षा (,, ,,)

चौदहवा खण्ड—महिलाएं (,, ,,)

पन्द्रहवा खण्ड—गांधीजीका राजनीतिक दृष्टिकोण

सोलहवा खण्ड—गांधीजीका आर्थिक दृष्टिकोण (प्रेसमें)

सत्रहवा खण्ड—गांधीजीका धार्मिक दृष्टिकोण

अठारहवा खण्ड—गांधीजीके 'राम'

उन्नीसवा खण्ड—प्रार्थनोत्तर प्रवचन

बीसवा खण्ड—गांधीजीके प्रयोग

इक्कीसवा खण्ड—प्रवासी भारतीय

बाईसवा खण्ड—विद्रोही गांधी

तेईसवा खण्ड—गांधीजीका 'स्वराज्य'

चौबीसवां खण्ड—चित्रावली

पचीसवा खण्ड—विविध

अपनी प्रतियाँ तुरन्त सुरक्षित कराइये